CC-0. Kashmir Treasures Preservation Foundation Chandigarh

आधुनिक योरोप

उत्तरार्ध

(१८७१-१९३९)

ब्र० न० मेहता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिक योरोप

उत्तरार्ध

(१८७१-१९३९)

D2
45-b

ब्र० न० मेहता, एम० ए०, पी-एच० डी०,
अध्यक्ष, इतिहास तथा राज्य-विज्ञान विभाग,
बलवन्त राजपूत कॉलेज, आगरा।

LAKSHMI NARAIN AGARWAL,
EDUCATIONAL PUBLISHERS,
HOSPITAL ROAD, AGRA (INDIA).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथमावृत्ति, दिसम्बर, १९५३

द्वितीयावृत्ति, अगस्त, १९५७

942.08

मूल्य सात रुपये

मुद्रक
मॉडर्न प्रेस, आगरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तरार्ध

(तृतीय खण्ड—पृष्ठ १ से २७४ तक
चतुर्थ खण्ड—पृष्ठ २७५ से ४८६ तक)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो शब्द

हिन्दी के भारत की राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद से अनेक विश्वविद्यालयों ने उच्च शिक्षा हिन्दी के द्वारा देना आरम्भ कर दिया है। परन्तु अभी उच्च शिक्षा के अनेकानेक विषयों पर हिन्दी में उपयुक्त साहित्य की बड़ी कमी है। योरोपीय इतिहास पर एक-दो विद्वानों के अपने ढंग के अच्छे ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किन्तु उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये अभी अनेक अच्छे ग्रन्थों की आवश्यकता है। मैंने प्रस्तुत पुस्तक लिख कर इस आवश्यकता की आंशिक पूर्ति करने का प्रयास किया है।

इस पुस्तक के लिये मैं मौलिकता का लेशमात्र भी दावा नहीं करता। अनेक प्रख्यात अधिकारी योरोपियन एवं अमेरिकन लेखकों के ग्रन्थों से मैंने अपनी सामग्री जुटाई है।* और शिक्षण के अपने थोड़े-बहुत अनुभव के प्रकाश में विश्वविद्यालयों के स्नातकों के लिये जितना ज्ञान मैंने अपेक्षित समझा है उसे अपने ही ढंग से सरल सुगम शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जब तक हिन्दी में इस विषय पर उच्च कोटि के ग्रन्थ प्रकाशित नहीं होते तब तक अंग्रेजी भाषा में लिखे हुए उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अवलोकन छात्रों के लिये अनिवार्य ही रहेगा। इस दृष्टि से मैंने स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियों में ऐसे ग्रन्थों की ओर संकेत किया है। प्रायः ये सब ग्रन्थ ऐसे हैं जो सामान्य कोटि के कालेजों के पुस्तकालयों में मिल सकते हैं और छात्रों की पहुँच तथा समझ के बाहर नहीं हैं। विषय के समुचित ज्ञान के लिये यह आवश्यक है कि छात्र उनमें से अधिकाधिक ग्रन्थ पढ़ें। पाद-टिप्पणियों की सहायता से इस कार्य में उन्हें काफी सुविधा रहेगी।

इतिहास के समुचित अध्ययन के लिये ऐतिहासिक मानचित्रों का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से मैंने इस पुस्तक में कई मानचित्र दिये हैं जिनसे अध्ययन में काफ़ी सहायता मिलेगी।

योरोप के अनेक स्थानों तथा व्यक्तियों के नामों के शुद्ध उच्चारण की समस्या मेरे सामने रही है। उसे हल करने में मुझे अपने मित्र, अनेक भाषाओं के ज्ञाता, हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक एवं अपने कालेज के अंग्रेजी-विभाग के अध्यक्ष श्री डा० रामविलास

---

* इन ग्रन्थों की सूची प्रत्येक खण्ड के अन्त में दी हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शर्मा से बड़ी सहायता मिली है जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। परन्तु अनेक कारणों से मैं सदैव उनसे सहायता न ले सका और मुझे डर है कि कहीं-कहीं हिन्दी में नाम अशुद्ध रह गये होंगे जिन्हें मैं अगले संस्करण में शुद्ध करने का प्रयास करूँगा। कई नाम लिखे कुछ और पढ़े कुछ और ही जाते हैं। मैंने प्रायः उन नामों के आगे कोष्ठक में अंग्रेजी लिपि में उनका रूप दे दिया है जिससे पाठक उन नामों तथा उनके उच्चारणों से परिचित हो सकें।

पुस्तक को सब प्रकार से उपादेय बनाने का प्रयत्न तो मैंने पूरा किया है परन्तु विषय की विशदता, पुस्तक के सीमित आकार तथा स्नातकों की आवश्यकताओं के मेरे अपने अनुमान के कारण इसमें त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है यदि उन त्रुटियों की मुझे सूचना मिली तो मैं अगले संस्करण में उन्हें दूर करने का प्रयत्न करूँगा। मेरी इच्छा इस पुस्तक को चार खण्डों में शीघ्रातिशीघ्र पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने की थी, इसका प्रथम खण्ड पिछले वर्ष ही तैयार हो चुका था, परन्तु शेष तीनों खण्डों को तैयार करने में स्वास्थ्य-सम्बन्धी कठिनाई तथा अवकाश की कमी के कारण बड़ी देर हो गई। इसके लिये मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। यदि यह पुस्तक हमारे विश्वविद्यालयों के छात्रों के काम की हो सकी और उन्हें इससे सन्तोष हो सका तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा। एक शिक्षक के लिये छात्रों के सन्तोष से अधिक मूल्यवान कोई पुरस्कार नहीं हो सकता। आशा है मुझे यह पुरस्कार प्राप्त हो सकेगा।

आगरा
२६-१२-५३

ब्र० न० मेहता

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अध्याय — तृतीय खंड — पृष्ठ

बिस्मार्क युग (१८७१-१८९०)

१, नवीन युग का आरम्भ १
२. नवीन जर्मनी—बिस्मार्क-युग (१८७१-१८९०)—गृह्य नीति १७
३. नवीन जर्मनी—बिस्मार्क-युग (१८७१-१८९०)—विदेश नीति ३७
४. नवीन फ्रान्स—तृतीय गणतंत्र के प्रथम बीस वर्ष ... ५८
५. नवीन इटली ७९
६. क्रीमियन युद्ध के बाद रूस ९१
७. रूस की विदेश-नीति—पूर्वीय-समस्या (१८५६-१८९०) १०२
८ इंगलैण्ड—साम्राज्यवाद और योरोप का विस्तार १२०

सशस्त्र शान्ति का युग (१८९०-१९१४)

९. जर्मनी—द्वितीय विलियम की विश्व-राजनीति १४७
१०. त्रिराष्ट्र-मैत्री (Triple Entente) १७१
११. पूर्वीय समस्या (१८९०-१९१४) २०१

प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८)

१२. प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८) २१९
पाठ्य ग्रन्थ २७३

मानचित्र-सूची

१. बाल्कन प्रायद्वीप, १८००-१८७८ .... ११०
२. १९१४ में अफ्रीका १३८
३. १९१४ में बाल्कन प्रायद्वीप १५२
४. फ्रान्स और बेल्जियम पर जर्मन आक्रमण २३०
५. पश्चिमी मोर्चा (१९१४-१९१८) २३१
६. पूर्वी मोर्चा (१९१४-१९१७) २३५
७. १९१६ के अन्त में युद्ध की स्थिति २४३
८. रूस के साम्राज्य का विघटन २४८
९. १९१४ में योरोप २५८
१०. १९२३ में योरोप २५९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अध्याय — चतुर्थ खंड — पृष्ठ

दो महायुद्धों के बीच (१९१९-१९३९)

१३.	बाल्शेविक क्रान्ति—नवीन रूस—लेनिन का अधिनायकतंत्र	२७७
१४.	नवीन रूस—स्टालिन का अधिनायकतंत्र	३०४
१५.	वार्साई की सन्धि पर अमल—जर्मन गणतंत्र (१९१८-१९२८)	३३०
१६.	आर्थिक संकट	३४८
१७.	जर्मन गणतंत्र का विनाश—नात्सी अधिनायकतंत्र की स्थापना	३५७
१८.	जर्मनी की परराष्ट्र-नीति	३७९
१९.	इटली में उदारवाद की पराजय—फेसिज्म का उदय	३९७
२०.	उदारवाद की विजय—फ्रान्स	४२६
२१.	उदारवाद की विजय—इंगलैण्ड	४४३
२२.	राष्ट्र-संघ और सुरक्षा की खोज	४६४

मानचित्र-सूची

१.	हिटलर के आक्रमण १९३६-३९	३८६
२.	चेकोस्लोवाकिया का विनाश	३९२
३.	योरोप, १ सितम्बर १९३९	४७०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिस्मार्क-युग

(१८७१-१८९०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

D2
45-b

अध्याय १

नवीन युग का आरम्भ

उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त—

योरोप के इतिहास में १८७०—७१ का वर्ष उन्नीसवीं शताब्दी से राजनीतिक इतिहास का चरमबिन्दु है। उस वर्ष उन्नीसवीं शताब्दी का विशिष्ट कार्य समाप्त हो गया।* जैसा हम पिछले खण्ड में देख चुके हैं, उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहास की रूपरेखा १८१४-१५ में वियना-काँग्रेस ने योरोप की एक नई व्यवस्था करके (अथवा पुरातन व्यवस्था को पुनः प्रतिष्ठित करके) निर्धारित कर दी थी। फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति ने योरोप को अन्य वस्तुओं के साथ राष्ट्रीयता तथा उदारवाद की उदात्त भावनाओं से अनुप्राणित किया था और योरोप की जनता में एक नवीन आशा का संचार किया था परन्तु वियना-कांग्रेस के राजनीतिज्ञों ने उन भावनाओं को निर्मूल करने का बीड़ा उठाकर एक महान् संघर्ष का सूत्रपात कर दिया था। उन्नीसवीं शताब्दी की मुख्य घटना, जैसा हम देख चुके हैं, निरंकुश शासन एवं न्याय्यता के प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों के विरुद्ध राष्ट्रीयता एवं उदारवाद के सिद्धान्तों का संघर्ष ही है और उसका मुख्य कार्य इन नवीन सिद्धान्तों को सफलता प्रदान करना ही था। १८७०-७१ में ऐतिहासिक विकास की लम्बी प्रक्रिया, जिसका आरम्भ पन्द्रहवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों से ही राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण के श्रीगणेश के साथ हो चुका था, पराकाष्ठा को प्राप्त हुई। इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, स्पेन, हॉलैण्ड तथा पोर्तुगाल सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक विभिन्न समयों पर स्वतन्त्र राष्ट्रीय राज्य बन चुके थे। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रास भी इस कोटि में आ गया था और उसी समय के लगभग रूस की गणना भी योरोपीय राष्ट्रीय राज्यों में होने लगी थी। १८१५ से १८७१ तक अनेक नये राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण हुआ और योरोप का राजनीतिक मानचित्र बदल गया। ग्रीक लोगों ने तुर्क साम्राज्य से संघर्ष करके अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया और बेल्जियम ने भी हॉलैण्ड से सम्बन्ध विच्छेद करके स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। क्रीमियन युद्ध के उपरान्त पेरिस की सन्धि के द्वारा मोल्डविया तथा वालेशिया नामक प्रान्तों को तुर्क साम्राज्य से स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। पेरिस के शान्ति सम्मेलन ने इन दोनों प्रान्तों को अलग रक्खा था, परन्तु उनकी रुमानियन जनता ने अपना भाग्य-निर्णय स्वयं अपने हाथ में लेकर दोनों राज्यों को संयुक्त करके रुमानिया राज्य का निर्माण कर लिया (१८६१) और तृतीय नेपोलियन के सहानुभूतिपूर्ण प्रयत्नों

*Marriott : The Remaking of Modern Europe, p. 231.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
के फल-स्वरूप योरोपीय राज्यों ने भी इस परिवर्त्तन को स्वीकार कर लिया। आगे चलकर १८७८ में बर्लिन-कांग्रेस ने भी रूमानिया के निर्माण पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा कर उसे स्वतन्त्र घोषित कर दिया। उसी सन्धि के अनुसार सर्बिया तथा बलगारिया को भी तुर्क-शासन से मुक्ति मिली। सर्बिया तो वस्तुतः १८६७ में ही स्वतन्त्र हो चुका था। बलगारिया पर तुर्क प्रभुता १९०८ तक नाम मात्र को बनी रही। इस प्रकार १८७० के पूर्व बाल्कन प्रायद्वीप में भी रुमानिया तथा सर्बिया के राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण हो चुका था। १८७०-७१ में जर्मनी तथा इटली की राष्ट्रीय एकता की स्थापना के साथ आधुनिक योरोप के निर्माण की प्रक्रिया समाप्ति के निकट पहुँच गई और उन्नीसवीं शताब्दी का विशिष्ट कार्य सम्पन्न हो गया। वैसे तो अभी उन्नीसवीं शताब्दी के तीस वर्ष शेष थे परन्तु वे वर्ष नवनिर्माण के नहीं थे। उन वर्षों का मुख्य कार्य क्रमिक उन्नति और सङ्गठन था; जो कार्य हो चुका था उसे स्थिरता एवं पूर्णता प्रदान करना था।* १८७१ से १९१४ तक बाल्कन प्रायद्वीप को छोड़कर योरोप में अन्यत्र कहीं कोई युद्ध नहीं हुआ और न कोई बड़ा परिवर्तन या प्रादेशिक नव-व्यवस्था ही हुई। इस अवधि में योरोप के राजनीतिक मानचित्र में जो थोड़े-बहुत परिवर्तन हुए वे नगण्य से थे और उनसे योरोप की शान्ति में कोई विक्षेप नहीं पड़ा। १८७८ में टर्की ने इङ्गलैण्ड को साइप्रस का द्वीप प्रदान कर दिया; १८९० में इङ्गलैण्ड ने पूर्वी अफ्रीका में स्थित जेंज़ीवार द्वीप के बदले में जर्मनी को हेलिगोलेण्ड का द्वीप, जो जर्मनी के तट के निकट ही स्थित है, दे दिया; १८८४ में पारस्परिक समझौते द्वारा टर्की ने ग्रीस को थिसेली तथा एपिरस का कुछ भाग देकर दोनों राज्यों की सीमाओं का संशोधन किया और १९०५ में नॉर्वे ने स्वीडेन से सम्बन्ध-विच्छेद करके अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। इस युग में योरोपीय सत्ताओं की जो कुछ भी वास्तविक कार्यवाइयाँ हुईं वे योरोप के बाहर तथा विश्व-राजनीति के क्षेत्र में हुई और योरोपीय कूटनीति विश्व-नीति में परिणत हो गई। नये युग में योरोप का इतिहास विश्व का इतिहास बन जाता है।†

राष्ट्रीयता की नई समस्याएँ—

जिस प्रकार १८१५ के बाद के इतिहास की रूपरेखा का निर्धारण फ्रेञ्च क्रान्ति और नेपोलियन-युग की घटनाओं तथा वियना-कांग्रेस ने किया था और योरोप अपने आप को उन घटनाओं द्वारा उत्पन्न की हुई नई शक्तियों और नये वातावरण के अनुकूल बनाने के प्रयत्न में लगा रहा उसी प्रकार १८७१ के बाद के योरोपीय इतिहास की दिशा का निर्धारण पिछली दशाब्दी की घटनाओं ने कर दिया था और योरोप नवीन शक्तियों और नवीन वातावरण के अनुकूल

*Marriott : The Remaking of Modern Europe, p. 231.
†Cambridge Modern History, vol. XII, p. 1.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्लामेण्ट द्वारा स्थापित किया जाय या हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा? कई लोग राजनीतिक ढंग में विश्वास करते हैं। वे विकासवादी समाजवादी (Evolutionary Socialists) कहलाते हैं। दूसरी प्रकार के लोग समझते हैं कि यह कार्य केवल क्रान्ति द्वारा ही हो सकता है। वे क्रान्तिवादी समाजवादी (Revolutionary Socialists) कहलाते हैं। सामूहिक स्वाम्य का क्या रूप हो? उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वाम्य हो या संगठित मज़दूरों का? इस सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। इङ्गलैण्ड का मज़दूर दल (Labour party) तथा फेबियन समाज (Fabian Society) और फ्रांस तथा जर्मनी के समाजवादी प्रायः विकासवादी तथा समष्टिवादी (Collectivist) हैं अर्थात् वे राजनीतिक एवं वैधानिक उपायों द्वारा उत्पादन के साधनों का स्वाम्य 'समष्टि' अर्थात् राज्य को सौंपना चाहते हैं। फ्रांस और इटली के सिण्डिकेलिस्ट लोग (Syndicalists) स्वाम्य विभिन्न व्यवसायों के आधार पर संगठित मज़दूर समितियों (Syndicats) के हाथों में देना चाहते हैं। वे वर्ग-संघर्ष में विश्वास करते हैं तथा हड़ताल, बहिष्कार, तोड़-फोड़ आदि उपायों का अवलम्बन आवश्यक समझते हैं। इङ्गलैण्ड के गिल्ड-समाजवादी (Guild Socialists भी किसी अंश तक क्रान्तिवादी हैं तुरन्त उनका स्थान समष्टिवादियों और सिण्डीकेलिस्टों के बीच में है। रूस के साम्यवादी (Communists) पूंजीवादी राज्य को नष्ट करने के लिए क्रान्ति आवश्यक बतलाते हैं और आरम्भ में उत्पादन के साधनों का स्वाम्य साम्यवादी दल में संगठित मज़दूरों को देते हैं। 'अराजकतावादी साम्यवाद' (Anarchist Communism) के समर्थक, जिनका अब अधिक ज़ोर नहीं रहा, चाहते हैं कि स्वाम्य समाज में प्रत्येक व्यक्ति का हो। नये समाज में वे किसी प्रकार का भी दबाव नहीं चाहते। उसमें न सरकार होगी, न क़ानून होंगे, न किसी प्रकार का दमन ही होगा। उसमें वेतन प्रथा नहीं होगी, प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक काम करेगा और उत्पादित वस्तुओं में से अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को प्राप्त करेगा। इन भेदों के अतिरिक्त विकासवादी समाजवादी साधारणतया राष्ट्रीय मनोवृत्ति के हैं और उनका कार्यक्रम प्रधानतः आर्थिक मामलों तक ही सीमित है परन्तु क्रान्तिवादी समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय मनोवृत्ति के हैं। वे विश्वव्यापी क्रान्ति का समर्थन करते हैं और राज्य के अतिरिक्त चर्च, विवाह आदि संस्थाओं का भी, जिन्हें वे पूँजीवादियों की संस्था समझते हैं, विरोध करते हैं। प्रथम महायुद्ध के पहले तक समाजवाद के ये विभिन्न रूप प्रकट हो चुके थे। उन्होंने विभिन्न राज्यों की आन्तरिक नीति को काफी प्रभावित किया। उनके प्रभाव से प्रायः प्रत्येक देश में मज़दूरों की दशा सुधारने के लिए अनेक क़ानून बने। आन्तरिक राजनीति पर तो उनका काफ़ी प्रभाव पड़ा परन्तु अपने राज्य की बाह्य नीति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रीयता की समस्या बड़ा कठिन रूप धारण किये हुए थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि १८७० ७१ की महान् युगान्तरकारी घटनाओं के बाद भी राष्ट्रीयता की समस्या बनी हुई थी जिसका समाधान आवश्यक था।

सामरिक राष्ट्रीयता—

यह दलित राष्ट्रीयता तो नये योरोप की एक समस्या थी ही, इसके साथ ही जर्मनी की सैनिक विजय के फलस्वरूप राष्ट्रीयता ने एक नया उग्र सामरिक रूप धारण कर लिया था। उग्र राष्ट्रीय चेतना नये युग का एक विशिष्ट लक्षण है। राष्ट्रीय चेतना एक राष्ट्र के लोगों को एकता के सूत्र में बाँधती है और अपनी विशेषताओं पर अधिक जोर देकर उनका सामूहिक रूप से विकास करने के लिए प्रेरित करती है। वह राष्ट्र-भक्ति का पाठ पढ़ाती है और इसके साथ ही राष्ट्र-गौरव की वृद्धि की कामना जागृत करती है। विशुद्ध राष्ट्रीय चेतना अन्य राष्ट्रों से द्वेष करना या उन्हें हीन समझना नहीं सिखाती, परन्तु जब एक राष्ट्र में वह स्वार्थपर होकर विकृत हो जाती है तो वह राष्ट्र अन्य राष्ट्रों को हेय समझने लगता है और उनके हित एवं अधिकारों की अवहेलना कर उन पर अपनी श्रेष्ठता का सिक्का जमाना चाहता है। वह यह भूल जाता है कि संसार में अन्य लोगों को भी जीने और अपने ही ढंग से अपनी उन्नति करने का अधिकार है। वह अन्य राष्ट्रों को पद-दलित कर उन्हें अपने अधीन करने और संसार में सब प्रकार से अपना उत्कर्ष स्थापित करने का अमर्यादित अधिकार समझने लगता है। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना विकृत होकर उद्धत जातिवाद (Racialism) का रूप धारण कर लेती है और साम्राज्यवाद को जन्म देती है। जर्मनों ने अपनी अद्वितीय सैन्य शक्ति से योरोप के दो प्रमुख राष्ट्रों—फ्रांस तथा ऑस्ट्रिया—को परास्त करके योरोप के राज्यों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था और अन्य राज्य देखते ही रहे। इस विजय से जर्मन राष्ट्र का आत्माभिमान बहुत बढ़ गया। वह अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझने लगा और संसार में अपनी शक्ति के अनुरूप स्थिति प्राप्त करने के लिये कटिबद्ध हो गया। राष्ट्रीयता की यह उग्र चेतना जर्मनी से अन्य राष्ट्रों में भी पहुँची और अन्तर्राष्ट्रीय विद्वेष, शङ्का एवं अशान्ति का कारण बन गई।

सैनिकवाद—

इस उग्र राष्ट्रीय चेतना का आधार, जैसा हम देख चुके हैं, सैनिकवाद था जिसकी विजय ने ही जर्मनी को योरोप में सर्वश्रेष्ठ बना दिया था। अतः योरोप में सैनिकवाद का ज़ोर बढ़ा। वास्तव में सैनिकवाद का जन्म जर्मन एकतंत्र में नहीं, वरन् फ्रेञ्च प्रजातंत्र में हुआ था।* उसका जन्म फ्रेंच क्रान्ति की

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 345.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामरिक आवश्यकताओं के कारण हुआ था जब कि फ्रांस ने अन्य राज्यों से युद्ध करने के लिए अपनी सेना का विस्तार करने के उद्देश्य से सेना में अनिवार्य रूप से भरती करने की प्रथा आरम्भ की। जर्मनी के राज्यों ने आत्म-रक्षा के लिए फ्रांस का अनुकरण करके इस प्रथा के अनुसार काम करना आरम्भ किया। प्रशा ने सैनिकवाद को वैज्ञानिक बनाकर और पूर्णता पर पहुँचा कर योरोप में एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव किया। सीडान के युद्ध में फ्रांस की पराजय का एक तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि फ्रांस ने प्रशा का अनुकरण करके अनिवार्य सैन्य सेवा तथा प्रशा के ढङ्ग पर सैन्य शिक्षा एवं तैयारी के आधार पर अपनी सेना का पुनः संगठन किया। फ्रांस के इस प्रयत्न से दोनों देशों में बड़ी तीव्र प्रतियोगिता आरम्भ हुई। दोनों परस्पर सशंक और भयभीत होकर अपनी-अपनी सैन्य शक्ति का विस्तार करने लगे। इसका प्रभाव दूसरे देशों पर भी पड़ा और प्रत्येक राज्य इस शस्त्रीकरण की दौड़ में भाग लेने लगा। केवल इङ्गलैंड को छोड़ योरोप के सभी राज्यों ने अनिवार्य सैन्य सेवा की व्यवस्था की ओर अपनी सैन्य-शक्ति का विस्तार करना आरम्भ किया। इङ्गलैण्ड थल-सेना की प्रतियोगिता से तो कुछ दूर रहा क्योंकि द्वीप होने के कारण महाद्वीप की थल-सेनाओं से उसे अधिक भय न था, परन्तु आगे चल कर जब जर्मनी अपनी नौ-सेना का विस्तार करने लगा तो उसने भी अपनी नौ-सेना बढ़ाई। इङ्गलैण्ड की नौ-सेना महाद्वीप के किसी भी देश की नौ-सेना से बड़ी थी परन्तु अपनी सुरक्षा के लिए उसकी नीति सदा महाद्वीप की दो सबसे बड़ी नौ सेनाओं से बड़ी नौ-सेना रखना रही है। इस प्रकार उग्र राष्ट्रीयता ने सैनिकवाद को प्रोत्साहन दिया और योरोप के सभी राष्ट्र अपनी-अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में संलग्न हो गये। वैसे तो प्रत्येक राष्ट्र अपने आपको शान्ति का इच्छुक बताता था परन्तु अपने पड़ौसियों के सैन्य बल-विस्तार से अपनी सुरक्षा को भय बतलाकर आत्मरक्षा के बहाने से युद्ध की तैयारी करने लगा और धीरे-धीरे कुछ ही वर्षों में योरोप एक सशस्त्र शिविर बन गया। अगले ४० वर्षों में, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, (बाल्कन प्रायद्वीप को छोड़कर) योरोप में कोई युद्ध तो नहीं हुआ परन्तु वातावरण सशंक और भयाक्रान्त बना रहा। इस प्रकार अगला युग शान्ति का तो था परन्तु वह शान्ति सशस्त्र शान्ति (Armed Peace) थी।*

उद्योगवाद तथा आर्थिक राष्ट्रीयता—

उग्र राष्ट्रीयता ने आर्थिक क्षेत्र में भी अपना प्रभाव बतलाया और आर्थिक राष्ट्रीयता (Economic Nationalism) को जन्म दिया। नये युग का एक

* Cambridge Modern History, vol. XII, p. 7.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रधान लक्षण उद्योगवाद (Industrialism) भी था। * हम पहले औद्योगिक क्रान्ति की चर्चा कर चुके हैं और बतला चुके हैं कि १८७० तक पश्चिमी तथा मध्य-योरोप में क्रान्ति का प्रसार हो चुका था। १८७० के बाद क्रान्ति का प्रभाव समस्त योरोप में व्याप्त हो गया और सभी देश उद्योग-धन्धों में प्रगति करने लगे। प्रत्येक देश की सरकार अपने राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों की उन्नति करने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता देकर तथा बाहर से आने वाले माल पर भारी कर लेकर संरक्षण की नीति द्वारा सहायता करने लगी। उद्योगों के विस्तार के साथ कच्चे माल को प्रचुर मात्रा में और सस्ते दामों में प्राप्त करने की आवश्यकता तथा तैयार माल को अधिक से अधिक लाभ पर बेचने के लिए उपयुक्त बाज़ार की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। इन आवश्यकताओं की पूर्ति का एकमात्र साधन यही था कि पिछड़े हुए उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में, जहाँ सब प्रकार का कच्चा माल प्राप्त हो सकता है और तैयार माल बेचा जा सकता है, प्रभाव-क्षेत्र स्थापित किए जावें ताकि किसी अन्य राष्ट्र को वहाँ माल खरीदने और बेचने की सुविधा न हो सके और कच्चे माल के क्रय तथा तैयार माल के विक्रय दोनों की दृष्टि से देश स्वावलम्बी हो सके। इस कारण उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों पर अधिकार जमाने के लिए विभिन्न राष्ट्रों में तीव्र प्रतियोगिता होने लगी। इस प्रकार आर्थिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ।

साम्राज्यवाद का जन्म—पुराना साम्राज्यवाद—

आर्थिक राष्ट्रीयता के साथ नवीन साम्राज्यवाद की सृष्टि हुई। यह साम्राज्यवाद पुराने साम्राज्यवाद से भिन्न था। पुराना साम्राज्यवाद व्यापारिक पद्धति (Mercantile system) पर आश्रित था। हम पहले बतला चुके हैं कि पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त से योरोप वाले पश्चिम तथा पूर्व की ओर समुद्र यात्राएँ करने लगे थे। उन्होंने अमेरिका में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये थे और पूर्वीय प्रदेशों में व्यापार आरम्भ कर दिया था। इसी सिलसिले में स्पेन, पोर्तुगाल, इङ्गलैंण्ड, हालैण्ड तथा फ्रांस ने अमेरिका तथा एशिया में विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिये थे। उसका मूल उद्देश्य व्यापारिक लाभ था। मूल देश अपने उपनिवेशों तथा अधीनस्थ प्रदेशों से स्वयं ही व्यापार करता था। वे अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ मूल देश से ही खरीद सकते थे और अपना कच्चा माल भी मूल देश को ही बेच सकते थे। कोई प्रतिस्पर्धी न होने के कारण मूल देश अपने उपनिवेशों का कच्चा माल सस्ते से सस्ता खरीद कर और अपना तैयार माल अधिक से अधिक दामों में बेच कर उनका आर्थिक शोषण किया करते थे।

व्यापार पद्धति का ह्रास—

यह व्यापारिक पद्धति व्यावसायिक क्रान्ति तक बनी रही परन्तु जब

* Marriott : Europe and Beyond, p. 13.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्रान्ति के परिणाम-स्वरूप माल बहुत बड़ी मात्रा में तैयार होने लगा और उसकी खपत उपनिवेशों में नहीं होने लगी तथा वहाँ से उन्हें पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल भी नहीं मिलने लगा तो इस पद्धति की संकीर्ण मर्यादाओं को तोड़ कर व्यापार को विस्तृत करने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। इसके साथ ही औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न नई स्थिति में एडम स्मिथ, तुर्गो जैसे अर्थशास्त्री आर्थिक क्षेत्र में व्यापारिक पद्धति की रुकावटों का विरोध करके सरकार द्वारा हस्तक्षेप न करने और वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं स्वतन्त्र प्रतियोगिता के सिद्धान्त पर ज़ोर देने लगे और मुक्त व्यापार की नीति का समर्थन करने लगे। इस प्रकार व्यापार पद्धति निर्बल होने लगी। इसके अतिरिक्त उपनिवेश-वासियों के विरोध ने भी इस पद्धति को बड़ी चोट पहुँचाई। वे मूल देश के निवासियों के ही वंशज थे और दूसरों के लिये अपना शोषण सहन नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने विरोध करना आरम्भ किया। इङ्गलैण्ड के अमेरिकन उपनिवेश फ्रेञ्च क्रान्ति के पूर्व ही विद्रोह करके स्वतन्त्र हो चुके थे। नेपोलियन के पतन के बाद, जैसा हम देख चुके हैं, स्पेन तथा पोर्तुगाल के दक्षिणी अमेरिका में स्थित उपनिवेश भी स्वतन्त्र हो गये। फ्रान्स तथा हॉलैण्ड के औपनिवेशिक साम्राज्यों का अधिकांश इङ्गलैंड ने छीन लिया। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक व्यापारिक पद्धति पर आश्रित योरोप के पुराने समस्त औपनिवेशिक साम्राज्य प्रायः नष्ट हो चुके थे। केवल इङ्गलैण्ड का साम्राज्य रह गया था जिसका बड़ा उत्कर्ष हो रहा था परन्तु वह भी व्यापारिक पद्धति पर आश्रित नहीं रहा था। १८३९ में कनाड़ा के विद्रोह के फलस्वरूप इङ्गलैण्ड की औपनिवेशिक नीति बदल गई थी और उसने उन पर से व्यापारिक पद्धति के नियंत्रणों को हटा कर उन्हें स्वराज्य के पथ पर आगे बढ़ाना आरम्भ कर दिया था।

नवीन साम्राज्यवाद—

साम्राज्यवाद के इतिहास में यह युग, जिसमें एडम स्मिथ के मुक्त व्यापार के आर्थिक सिद्धान्त का ज़ोर रहा और विभिन्न उपनिवेशों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली सापेक्ष उदासीनता का युग था। इङ्गलैण्ड में भी, यद्यपि उसके साम्राज्य का विस्तार हो रहा था, उन दिनों उत्साह शिथिल पड़ गया था। परन्तु १८७० के बाद कई कारणों से नवीन साम्राज्यवाद का उदय हुआ। पुराने उपनिवेश तो उन प्रदेशों में बसाये गये थे जहाँ योरोपीय लोग बस सकते थे। जहाँ यह बात सम्भव नहीं थी वहाँ केवल व्यापारिक बस्तियाँ ही बसाई गईं थी, यद्यपि इंगलैण्ड ने धीरे-धीरे उन्हीं बस्तियों से आरम्भ करके भारतवर्ष में एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था। नये साम्राज्यों की स्थापना उष्ण कटिबन्धीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेशों में हुई। फ्रेञ्च साम्राज्यवादी जूल्स फ़ेरी के शब्दों में, उपनिवेश-स्थापना का यह नया रूप था और केवल ऐसे ही राष्ट्रों के अनुकूल था जिनके पास बहुत सी अतिरिक्त पूँजी या अतिरिक्त तैयार माल था। अब योरोपीय लोगों के बसने योग्य कोई भूमि नहीं बची थी और नये प्रदेश प्राप्त करने योग्य क्षेत्र केवल उष्ण कटिबन्धीय ही थे। अब समस्या योरोपीय लोगों के बसने योग्य प्रदेश ढूँढने की नहीं, वरन् तैयार माल बेचने तथा पूँजी लगाने योग्य प्रदेशों को ढूँढने की थी।* योरोप के विभिन्न राज्जों में १८७० के बाद उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों, विशेषकर अफ्रिका में, साम्राज्य की स्थापना तथा विस्तार के लिये तीव्र प्रतियोगिता का आरम्भ होता है। योरोपीय राजनीति विश्व-राजनीति का रूप धारण कर लेती है, संसार का एक प्रकार से योरोपीयकरण हो जाता है और योरोप का इतिहास बहुत कुछ विश्व का इतिहास बन जाता है।

विश्व-राजनीति—

नये साम्राज्यवाद के अनेक कारणों में उग्र राष्ट्रीयता तथा आर्थिक राष्ट्रीयता का प्रमुख स्थान है। जैसा हम अभी देख चुके हैं, १८७० के पहले भी साम्राज्यवाद था। अनेक योरोपीय राज्यों के साम्राज्य थे और वे राज्य केवल योरोपीय राष्ट्र-राज्य न रहकर विश्व-राज्य (World-States) बन चुके थे तथा उनकी समस्याओं का प्रभाव योरोप में उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर भी पड़ता था। परन्तु १८७० के बाद साम्राज्यवाद की अभूतपूर्व प्रगति हुई और योरोपीय राज्यों के झगड़े अब अधिकतर योरोप के बाहर के मामलों पर होने लगे। इसका कारण योरोपीय देशों में औद्योगिक विकास तो था ही जिसके कारण औद्योगिक राष्ट्रों को अपने अधीनस्थ उपनिवेशों की परम आवश्यकता मालूम पड़ने लगी, उसके साथ ही जर्मनी तथा इटली के एकीकरण से भी साम्राज्यवाद की प्रगति में तेज़ी आई। उनके एकीकरण के साथ उन अनेक जटिल समस्याओं का अन्त हो गया जिनके कारण योरोप की शान्ति भंग हुआ करती थी और युद्ध छिड़ते रहते थे। इसके पहले जर्मनी तथा इटली अपनी-अपनी आन्तरिक समस्याओं में ही इतने व्यस्त रहते थे कि विश्व-राजनीति की बात वे सोच भी नहीं सकते थे। फ्रान्स भी अपनी गृह-क्रान्तियों में लगा रहा और उसे भी विश्व-राजनीति की ओर विशेष ध्यान देने का अवकाश नहीं मिला। १८७० में राष्ट्रीय एकता प्राप्त हो जाने पर भी कुछ वर्षों तक जर्मनी तथा इटली नवीन एकता-जन्य समस्याओं का समाधान करने में लगे रहे। फ्रान्स भी अपनी वैधानिक समस्या में व्यस्त रहा। परन्तु शीघ्र ही इन समस्याओं से मुक्ति पाकर इन देशों को बाहर की ओर दृष्टिपात करने का अवसर मिला। उन्होंने देखा कि इंगलैण्ड, बेल्जियम, हॉलैण्ड,

* Slosson : Europe since 1870, p. 112.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पोर्तुगाल जैसे छोटे-छोटे देशों के बड़े-बड़े साम्राज्य थे परन्तु उनके पास कुछ नहीं था, यद्यपि विस्तार, जन-संख्या तथा शक्ति की दृष्टि से वे उन सबसे बढ़कर थे। वे इसे राष्ट्रीय अपमान समझते थे और उसका प्रतिकार करना उन्हें आवश्यक मालूम होता था। इसके साथ ही उन्हें अपने औद्योगिक विकास की दृष्टि से भी उपनिवेशों की आवश्यकता दिखाई देती थी। अतः वे भी अपने राज्य-विस्तार तथा विश्वराज्यों की कोटि में आने के प्रयत्न में लग गये। उस समय तक संसार के अच्छे-अच्छे प्रदेश अन्य राज्य हड़प चुके थे और इन राज्यों की आकांक्षा की पूर्ति युद्ध के द्वारा ही हो सकती थी जिसके लिये सैन्य-बल के विस्तार की आवश्यकता थी। जर्मनी देख चुका था कि उसकी उन्नति सदा बल-प्रयोग द्वारा ही हो सकी थी और अपनी भावी उन्नति के लिये भी उसे बल-प्रयोग अनिवार्य मालूम होता था। वह समझता था कि जब तक उसकी सैन्य-शक्ति इतनी प्रबल नहीं हो जाती कि योरोप में उसका असंदिग्ध प्राधान्य स्थापित हो जाय तब तक उसके लिये साम्राज्य स्थापित करना और विश्व-शक्ति बन सकना असम्भव था। अतः उसने अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ाना आरम्भ किया और संसार में अपनी शक्ति के अनुरूप स्थान प्राप्त करने के प्रयत्न शुरू किये। अन्य राज्य भी पीछे नहीं रहे और साम्राज्य के लिये प्रतिस्पर्धा बढ़ी। विश्व-राजनीति का प्रादुर्भाव तथा साम्राज्यवादी स्पर्धा नये युग के प्रधान लक्षणों में हैं।

मुक्त व्यापार के समर्थक समझते थे कि उसके द्वारा प्रत्येक राष्ट्र अपनी उन्नति कर सकेगा और व्यापारिक नियन्त्रणों से उत्पन्न कटुता एवं वैमनस्य के लुप्त हो जाने पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में एक नये शान्ति-युग का आरम्भ हो सकेगा। उन्हें विश्वास था कि युद्ध बन्द करने का जो काम अन्तर्राष्ट्रीय कानून नहीं कर सका था, उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सफलतापूर्वक कर सकेगा। वास्तव में, यातायात के साधनों में उन्नति हो जाने से और अत्यन्त तेज़ गति से चलने वाले साधनों के बन जाने से दूर-दूर की यात्राएँ बहुत थोड़े से समय में होने लग गई थीं और संसार के विभिन्न भागों में परस्पर निकट सम्पर्क स्थापित हो गया था। उद्योग-धन्धे, व्यापार तथा राजस्व राष्ट्रीय सीमाओं को लांघ कर अन्तर्राष्ट्रीय हो गये थे और संसार के समस्त राष्ट्र आर्थिक दृष्टि तथा राजस्व की दृष्टि से परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हो गये थे। ऐसी अवस्था में एक नये युग की कल्पना असम्भव नहीं थी परन्तु यह केवल कल्पना-जगत की वस्तु ही बनी रही। इङ्गलैण्ड की मुक्त-व्यापार की नीति का अनुकरण किसी ने नहीं किया। सामरिक एवं आर्थिक राष्ट्रीयता के पुजारियों ने व्यापार की स्वाभाविकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति के प्रतिकूल संरक्षण-नीति को अंगीकार करके बाहर से आने वाली वस्तुओं पर भारी भारी कर लगाना आरम्भ किया और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सद्भावना को तिलाञ्जलि देकर सैन्य विस्तार की योजनाओं पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार्य शुरू किया। 'यथार्थवादी' सम्प्रदाय के राजनीतिज्ञ मुक्त-व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के भक्त एडम स्मिथ की जगह संरक्षण-सिद्धान्त के प्रतिपादक जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट से प्रेरणा पाने लगे। लोकप्रियता में विश्वबन्धुत्व का स्थान आर्थिक राष्ट्रीयता ने ले लिया* और अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति का स्वप्न भंग हो गया।

अन्तर्राष्ट्रीयता—

सामरिक तथा आर्थिक राष्ट्रीयता के पुजारियों ने तो इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर से मुँह मोड़ लिया परन्तु लम्बी-लम्बी यात्राओं की सुगमता तथा उसके परिणाम स्वरूप संसार के विभिन्न भागों के लोगों के पारस्परिक सम्पर्क एवं विचार-विनिमय और व्यापारिक एवं आर्थिक अन्योन्याश्रयता के द्वारा उत्पन्न मानव-समाज की आधारभूत एकता की अनुभूति व्यर्थ नहीं हो सकती थी। वास्तव में, अन्तर्राष्ट्रीयता के शत्रुओं के समस्त प्रयत्नों के प्रतिकूल सदा से ही यह अनुभूति कार्य करती रही है और समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा शान्ति के प्रयत्न होते रहे हैं। यह बड़ी विचित्र बात है कि इस नये युग में जहाँ एक ओर अन्तर्राष्ट्रीय विद्वेष से योरोप का ही नहीं, समस्त संसार का वातावरण अशान्त हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर मानव-जीवन के अनेक क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग भी बढ़ रहा था।

जिस प्रकार एक मनुष्य एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता, उसी प्रकार राष्ट्रों के लिए भी एकाकी जीवन व्यतीत करना असम्भव है। मध्य युग में योरोप में ईसाई धर्म तथा पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत न्यूनाधिक एकता थी, परन्तु आधुनिक युग के आरम्भ में राष्ट्रीय राज्यों के प्रादुर्भाव के साथ उस एकता का लोप हो गया और योरोपीय जनता विभिन्न राष्ट्रीय राज्यों में विभक्त होने लगी। राष्ट्रीयता के विकास का स्वाभाविक परिणाम हुआ अन्तर्राष्ट्रीयता अर्थात् विभिन्न राष्ट्रों में सब प्रकार के सम्बन्ध—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध की अमानुषिक क्रूरताओं से त्रस्त होकर लोग उनसे बचने के उपाय सोचने लगे। इसके दो उपाय ही हो सकते थे, मध्य-युगीन सार्वभौमराज्य की पुनः स्थापना अथवा सब राष्ट्रों पर बन्धनकारी किसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय कानून की सृष्टि एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का संगठन। सत्रहवीं शताब्दी से ही इन दोनों साधनों में विश्वास करने वाले लोग होते आये हैं। सार्वभौम साम्राज्य का पक्ष तो निर्बल रहा है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माण के लिए अनेक प्रकार की काल्पनिक और व्यावहारिक योजनाएँ प्रस्तुत होती रही हैं। ह्यूगो ग्रोटियस (Hugo Grotius)

* Marriott: Europe and Beyond, p. 15.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने १९२५ में 'युद्ध तथा शान्ति के नियम' नामक पुस्तक में विभिन्न राज्यों के बीच प्रचलित प्रथाओं तथा नैतिक नियमों के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय कानून की सृष्टि का प्रयत्न किया। उसके ग्रन्थ का आधुनिक योरोप के विचार एवं व्यवहार पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। उसके कुछ ही पहले फ्रान्स के राजा चतुर्थ हेनरी के मंत्री सली (Sully) ने पश्चिमी योरोप में शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से स्वतन्त्र राज्यों के संघ की एक 'महान् योजना' (Great Design) प्रस्तुत की थी। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में (१७१३) एबे द सेंत पितर (Abbe de Sainte Pierre) ने भी एक योरोपीय संघ का प्रस्ताव किया था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त (१७९५) में जर्मन दार्शनिक काण्ट (Kant) ने 'शाश्वत शान्ति पर निबन्ध' (Essay on Perpetual Peace) लिख कर स्वतन्त्र राज्यों के संघ की आवश्यकता बतलाई। परन्तु ये सब उपाय काल्पनिक ही रहे, उन पर कोई व्यवहार नहीं हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग—

फ्रेञ्च-क्रान्ति तथा नेपोलियन-युग के महान् युद्धों के उपरान्त व्यावहारिक योजनाओं का समय आया और, जैसा हम देख चुके हैं, रूस के ज़ार प्रथम ऐलेक्ज़ेंडर की योजना के आधार पर 'पवित्र संघ (Holy Alliance) की स्थापना हुई और उसके साथ चतुर्मुख सन्धि (Quadruple Alliance) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के निर्णय के लिए विभिन्न योरोपीय राज्यों के सम्मेलनों की व्यवस्था हुई। पवित्र संघ की योजना तो कार्यान्वित नहीं हुई और प्रथम एलेक्ज़ेण्डर की मृत्यु के साथ ही उसका अन्त भी हो गया, परन्तु सम्मेलन व्यवस्था बनी रही। इंगलैण्ड और बाद में फ्रान्स के विरोध से चतुर्मुख (बाद में पंचमुख) मण्डल अपनी प्रतिक्रियावादी नीति को कार्यान्वित करने में अधिक सफल नहीं हुआ और क्रीमियन युद्ध के परिणामस्वरूप उसके प्रतिक्रियावादी सदस्यों में फूट पड़ जाने से उस व्यवस्था में निर्बलता आ गई। फिर भी योरोपीय समस्याओं पर विचार करने के लिए समय-समय पर योरोपीय सत्ताओं के सम्मेलन होते रहे। नये युग में, जैसा हम आगे देखेंगे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की यह प्रवृत्ति बनी रही और तुर्क साम्राज्य, अफ्रिका तथा सुदूर पूर्व की अनेक समस्याओं का, जिनके कारण पहले युद्ध छिड़ जाना मामूली बात थी, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों द्वारा समाधान हुआ। १८७८ में बर्लिन-कांग्रेस ने रूस तथा तुर्की के युद्ध से उत्पन्न विकट समस्या को हल करने का प्रयत्न किया और युद्ध को बढ़ने नहीं दिया। इसी प्रकार १८८४-८५ में बर्लिन में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने अफ्रिका के विभिन्न योरोपीय राष्ट्रों के बीच बँटवारे के प्रश्न को शान्तिपूर्वक निपटाया। १९०६ में मोरक्को के प्रश्न पर ऐल्जेसिरास में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुआ। फ्रांस तथा जर्मनी के संघर्ष के भय से बचने के लिये बेल्जियम तथा लुक्सेमबुर्ग को योरोपीय राज्यों ने सुरक्षा की संयुक्त गारंटी दी। सुदूर पूर्व में भी चीन में योरोपीय हितों की रक्षा के लिए प्रमुख राज्यों ने परस्पर सहयोग करके १९०० में एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना भेजी। सामरिक नियमों के सम्बन्ध में भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के प्रयत्न हुये। १८५६ में पेरिस के शान्ति-सम्मेलन ने सामुद्रिक युद्ध के लिये नियमों का निर्माण किया और १८६४ में जनीवा के समझौते (Geneva Convention) द्वारा सभी राष्ट्रों ने घायल सैनिकों तथा उनका उपचार करने वाले डॉक्टरों, स्वयंसेवकों आदि की तटस्थता स्वीकार की। जिस प्रकार रूस के ज़ार प्रथम एलेक्जेण्डर ने पवित्र संघ की योजना प्रस्तुत की थी उसी प्रकार द्वितीय निकोलस ने भी १८९८ में विभिन्न राष्ट्रों के झगड़ों का मध्यस्थ द्वारा निर्णय कराने की पद्धति स्थापित करने का प्रयत्न किया जिसके परिणाम-स्वरूप हेग (The Hague) में १८९९ तथा १९०७ में दो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में योरोप, अमेरिका तथा एशिया के सब मिला कर २६ तथा द्वितीय में ४४ राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे परन्तु उनका कोई विशिष्ट फल नहीं हुआ और उनके प्रयत्न, विशेषकर निःशस्त्रीकरण के लिये किये जाने वाले प्रयत्न, राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के कारण विफल हुये।* पहले सम्मेलन का यह परिणाम अवश्य हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का शान्ति पूर्वक निर्णय करने के लिये हेग में एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थ्य (International Arbitration)—

हेग के सम्मेलन तो विफल हो गये परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थों द्वारा निर्णय करने की प्रथा के लाभ स्पष्ट थे और इन सम्मेलनों के पहले तथा बाद भी शान्तिपूर्ण निर्णय के इच्छुक राष्ट्रों के कई झगड़ों का इसी विधि से निर्णय हुआ। इंगलैण्ड तथा अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र के अल्बामा जहाज़ सम्बन्धी झगड़े का १८७१ में इसी प्रकार निर्णय हुआ। इसी प्रकार वेनेजुएला की सीमा का झगड़ा भी उन दोनों ने इसी विधि से तै कर लिया। १९०४ में रूस तथा इंगलैण्ड ने युद्ध का आश्रय लिये बिना ही अपने झगड़े का मध्यस्थों द्वारा निर्णय कर लिया।

अन्य क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग—

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के ये उदाहरण तो राजनीतिक क्षेत्र के हैं। मानव जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की प्रवृत्ति इस नये युग में बढ़ी और अनेक प्रकार की बातों के नियमन के लिये कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ

*Ketelbey : A History of Modern Times, p.344.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापित हुईं जैसे इण्टरनेशनल रेड क्रॉस सोसायटी (१८६४) यूनिवर्सल टेलीग्राफ़ यूनियन (१८७५), पोस्टल यूनियन (१८७८) आदि।

शान्तिवाद—

इन बातों के साथ ही विश्व के शान्तिप्रिय व्यक्ति अन्य उपायों द्वारा भी संसार में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। योरोप में जगह-जगह शान्ति समितियाँ स्थापित हुईं और शान्ति-सम्मेलनों का प्रचार बढ़ा जिनके द्वारा युद्ध के अनौचित्य तथा शान्ति की आवश्यकता का प्रचार किया जाने लगा। इस अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन का मुख्य कार्यालय स्विटज़रलैण्ड में बर्न नामक स्थान में स्थापित किया गया। शान्ति के प्रचार को प्रोत्साहन देने के लिये धनीमानी सज्जन भी आगे बढ़ने लगे। स्वीडन के एल्फ्रेड नोबल ने अनेक पुरस्कार देने की व्यवस्था की जिनमें से एक पुरस्कार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये सबसे अधिक प्रयत्न करने वालों के लिये रखा। इसी प्रकार अमेरिका के धनकुबेर एण्ड्रयू कारनेगी ने कई शान्ति-समितियों को सहायता देने की व्यवस्था की और हेग में एक 'शान्ति-मन्दिर' की स्थापना की।*

प्रजातन्त्र की प्रगति—

अभी तक हम राष्ट्रीयता के नये रूप तथा उससे उत्पन्न नवीन दृष्टिकोण एवं नवीन समस्याओं की चर्चा करते रहे हैं। नये युग में योरोप के विभिन्न राष्ट्रों की बाह्य नीति का विकास समान रूप से राष्ट्रीयता के उग्र रूप के आधार पर हुआ। उनकी गृह-नीति के विकास में भी हमें समानता दिखाई देती है। उसके आधार में हमें सर्वत्र प्रजातन्त्र का सिद्धान्त दिखाई देता है। नये युग में सभी देशों में प्रजातन्त्र ने प्रगति की और राजनीतिक सत्ता थोड़े से व्यक्तियों के हाथों से निकल कर धीरे-धीरे बहुसंख्यक जनता के हाथों में पहुँचने लगी। प्रजातन्त्र की प्रगति इस युग का एक प्रधान लक्षण है।†

मज़दूर आन्दोलन—

नये युग में, जैसा हम पहले लिख आये हैं, औद्योगिक क्रान्ति प्रायः समस्त योरोप में व्याप्त हो गई और उसके अनिवार्य परिणाम, जिनका वर्णन पहले हो चुका है, सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगे। उनमें से एक परिणाम था मज़दूरों की दुर्दशा और उससे उन्हें मुक्त करने की बढ़ती हुई माँग, जिसकी अभिव्यक्ति तीन प्रकार से हुई।‡ (१) मजदूर लोग स्वयं आत्म-सहायता के सिद्धान्त का आश्रय लेकर अपना संगठन करने लगे और ट्रेड यूनियनवाद (Trade Unionism) का प्रचार तथा महत्व बढ़ा। अपने संगठन द्वारा मजदूरों ने अपनी अवस्था में सुधार करने में काफी सफलता प्राप्त की। (२) उनकी दशा

---

*Hayes and Cole : History of Europe, vol. II. pp. 336—337,
† Cambridge Modern History, vol. XII, p. 5.
‡ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 335.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुधारने के लिए सरकार की ओर से भी प्रयत्न होने लगे जिसका मुख्य कारण मज़दूरों का आन्दोलन था। प्रजातन्त्र की प्रगति के साथ मजदूरों को भी राजनीतिक अधिकार मिलने लगे थे जिसके फलस्वरूप उनके प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभाओं में जाकर अपनी शिकायतों को दूर कराने के प्रयत्न करने लगे थे। (३) मज़दूर आन्दोलन की तीसरी अभिव्यक्ति समाजवाद के रूप में हुई।

समाजवाद—

उपर्युक्त दोनों रीतियों से मजदूरों की दशा में सुधार हो रहा था परन्तु बहुत से लोग उन सुधारों की प्रकृति और प्रगति दोनों से असन्तुष्ट थे। उन्हें उन सुधारों में दान-भावना तथा मज़दूरों को उनके न्याय अधिकार देने की जगह उन्हें कुछ दे दिला कर बहकाने और अपनी वर्त्तमान स्थिति में ही संतुष्ट बनाये रखने के प्रयत्न दिखाई देते थे। उनका विचार था कि वर्त्तमान राज्य पूँजीपतियों की संस्था है जिसका कार्य पूंजीपतियों के हित में मज़दूरों का सब प्रकार से शोषण करना है। उनके विचार में ऐसा राज्य मज़दूरों के साथ न्याय नहीं कर सकता। उनके साथ न्याय तभी हो सकता है जबकि पूँजीवाद और उसके साथ ही उसके अभिन्न अंग, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्तिगत लाभ का अन्त हो और समाज का नये आधार पर नव-निर्माण हो जिसमें आर्थिक समानता हो, उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वाम्य हो और उत्पादन लाभ की दृष्टि से नहीं, बल्कि उपभोग की दृष्टि से हो। जब सम्पत्ति व्यक्तिगत नहीं होगी और व्यक्तिगत लाभ की भावना भी नहीं रहेगी तो मज़दूरों का शोषण बन्द हो जायगा और वे अपनी दुर्दशा से मुक्त होकर सुखी एवं आत्मसम्मानयुक्त जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यह सिद्धान्त समाजवाद (Socialism) कहलाता है। हम पिछले खण्ड में समाजवाद के सम्बन्ध में कुछ विस्तृत रूप से लिख आए हैं और आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का वर्णन कर आये हैं।* मार्क्स के सिद्धान्तों का नये युग में काफी प्रचार बढ़ा और प्रायः प्रत्येक देश में समाजवादी दल बन गए। परन्तु समाजवादी कहलाने वाले सभी लोग मार्क्स के अनुयायी नहीं थे। स्वयं मार्क्स के अनुयायियों में भी उसके मन्तव्यों की व्याख्या के सम्बन्ध में मतभेद रहा। सभी समाजवादी कहलाने वाले लोग पूँजीवाद की निन्दा करने, मज़दूरों के पक्ष का समर्थन करने तथा उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वाम्य के स्थान पर सामूहिक स्वाम्य स्थापित करने में तो एकमत हैं, परन्तु कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बड़ा मतभेद है। उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वाम्य राजनीतिक ढङ्गों से अर्थात् प्रजातन्त्रीय ढंग

---

* द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ३५४-३६७ देखिये। समाजवाद शब्द से विभिन्न प्रकार के लोग विभिन्न अर्थ लेते हैं। हमने यहाँ समाजवाद की जो व्याख्या की है उसे मोटे तौर से सब स्वीकार करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

नवीन जर्मनी

बिस्मार्क युग (१८७१-१८९०)

गृह्य नीति

जर्मनी के इतिहास में १८ जनवरी १८७१ की तिथि युगान्तरकारी तिथि है। उस दिन जर्मनी का कायाकल्प हुआ और नवीन जर्मनी का जन्म हुआ। नवीन जर्मनी का जन्मदाता, जैसा हम देख चुके हैं, बिस्मार्क था। १८६९ में उत्तरी जर्मन राज्य-संघ की धारासभा (Reichstag) के समक्ष भाषण देते हुए उसने कहा था—'आरम्भ से ही मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य जर्मनी को एकता के सूत्र में बाँधना और एकीकरण के पश्चात् उसे शक्तिशाली एवं पूर्ण बनाना तथा एकीकरण को ऐसा रूप देना रहा है, कि उससे सम्बन्धित समस्त लोगों की सद्भावना के साथ वह चिरस्थायी हो सके।'* उसके लक्ष्य का एक भाग पूर्ण हो चुका था और अब उसका काम जर्मनी के एकीकरण को संगठित कर उसे स्थायी बनाना रह गया था।

जर्मन साम्राज्य का विधान—सम्राट—

नवीन जर्मनी एक संघीय साम्राज्य था। उसका विधान १८६७ के उत्तरी जर्मन राज्य संघ के विधान का संशोधित रूप था। साम्राज्य में २५ राज्य तथा अल्सासलोरेन का राजकीय प्रदेश शामिल थे। साम्राज्य का प्रमुख सम्राट् था जिसके लिये यह व्यवस्था की गई थी कि प्रशा का राजा ही सम्राट हो। वैधानिक दृष्टि से सम्राट की स्थिति बड़ी विचित्र थी। वह साम्राज्य का प्रभुत्व-सम्पन्न अधिपति (Sovereign) नहीं था। विधान की ग्यारहवीं धारा के अनुसार वह केवल संघ का अध्यक्ष (President) था। उसके हाथों में प्रभुत्व-सत्ता नहीं थी। प्रभुत्व सत्ता जर्मनी के समस्त राज्यों की समष्टि में निहित थी जो उसका प्रयोग विधान-सभा के द्वितीय-भवन (साम्राज्य-परिषद्) में अपने प्रतिनिधियों द्वारा करते थे।† परन्तु उस भवन में प्रशा की स्थिति बड़ी प्रबल थी और प्रशा का राजा उसके द्वारा ही जर्मन सम्राट् के अधिकारों का प्रयोग करता था।

* Holland Rose : The Development of the European Nations, p. 153.

† Marriott : Europe and Beyond, p. 28.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्यक्ष की हैसियत से उसे तीन प्रकार के अधिकार थे। वह विदेशी राज्यों तथा संघ के विधायक राज्यों के समक्ष साम्राज्य का प्रतिनिधि था। उस भवन की एक समिति की सहायता से उसे विदेशी सम्बन्धों की व्याख्या करने, विदेशी राजदूतों का स्वागत करने और युद्ध की घोषणा तथा सन्धि करने का अधिकार था किन्तु प्रत्येक आक्रमणात्मक युद्ध की घोषणा के लिए साम्राज्य-परिषद् की अनुमति आवश्यक थी। उसे विधान-सभा के अधिवेशन आमंत्रित करने, स्थगित करने तथा साम्राज्य-परिषद् की अनुमति से प्रथम भवन को भंग कर, विधान के प्रतिकूल कार्य करने वाले राज्य को दन्ड देने तथा साम्राज्य के कानूनों की घोषणा करने और उन्हें कार्यान्वित करने का भी अधिकार था।

प्रधान मन्त्री—

साम्राज्य का प्रधान मन्त्री चान्सलर था जिसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट् करता था और जो स्वयं सम्राट् के प्रति उत्तरदायी था, विधान-सभा के प्रति नहीं। केवल सम्राट् ही उसे पदच्युत कर सकता था। साम्राज्य के लिए कोई मन्त्रिमण्डल नहीं था। चान्सलर एकमात्र संघीय मंत्री था। उसकी सहायता के लिए सचिव (Secretaries of State) होते थे जो विभिन्न विभागों का काम देखते थे। साम्राज्य के प्रधान मन्त्री की हैसियत से वह साम्राज्य-परिषद् का सभापति होता था। बिस्मार्क प्रथम चान्सलर बना और बीस वर्ष तक इस पद पर रहा।

प्रशासन की दृष्टि से साम्राज्य अत्यन्त निर्बल था क्योंकि संघीय कानूनों को कार्यान्वित करने के लिए कोई संघीय सेवा नहीं थी, इस कार्य के लिए उसे विधायक राज्यों के कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता था। केवल विदेशी, सैनिक और नाविक मामलों में ही साम्राज्य की कार्यपालिका का प्रभावकारी नियन्त्रण था। परन्तु क़ानून बनाने के कार्य में साम्राज्य काफी शक्तिशाली था।

विधान सभा—साम्राज्य-परिषद्—

साम्राज्य की विधान सभा के दो भवन थे—(१) साम्राज्य-परिषद् (Bundesrat) और (२) लोक-सभा (Reichstag)। साम्राज्य-परिषद् में राज्यों के, अर्थात् राजाओं के, प्रतिनिधि होते थे। विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि बराबर नहीं थे। प्रशा को १७, बेवेरिया को ६, सेक्सनी तथा वुर्टेमबुर्ग को ४-४, बादेन और हेस को ३-३ और शेष राज्यों को १-१ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि अपने राजा के आदेशानुसार मत दिया करते थे। उन्हें अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्र रूप से मत देने का अधिकार नहीं था। इस तरह साम्राज्य-परिषद् विचार करने वाली सभा नहीं थी परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसे बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त थे। वह व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्याय-पालिका सम्बन्धी सभी कार्य करती थी। वह क़ानून का मुख्य स्रोत थी। अधिकतर क़ानूनों का प्रथम प्रस्ताव उसी में होता था और लोक-सभा द्वारा स्वीकृत बिल उसकी स्वीकृति से ही क़ानून बन सकते थे। वह साम्राज्य के बजट को निश्चित करती थी, साम्राज्य तथा राज्यों के बीच के हिसाब की जाँच-पड़ताल करती थी, और राज्य की आमदनी की वसूली की देखभाल करती थी। सम्राट के साथ मिलकर उसे युद्ध की घोषणा करने तथा लोक-सभा को भंग करने का अधिकार था और सन्धि करने तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों एवं अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति में भी उसका हाथ रहता था। कई मामलों में वह प्रशासनीय (Administrative) न्यायालय की हैसियत से काम करती थी और उसे अध्यादेश जारी करने तथा क़ानूनों की त्रुटियों को दूर करने का भी अधिकार था। राज्यों के न्यायालयों के लिये वह अपील का सर्वोच्च न्यायालय भी थी और राज्य-राज्य के तथा साम्राज्य की सरकार और राज्य की सरकार के बीच के झगड़ों का भी वही निर्णय करती थी। विधान में संशोधन करने का अधिकार भी उसी को था और १४ मत विपक्ष में होने पर संशोधन नहीं हो सकता था। प्रशा को १७ मत प्राप्त थे और वह किसी भी अवांछनीय संशोधन को रद्द कर सकता था। वास्तव में उसकी अनुमति के बिना कोई संशोधन स्वीकृत नहीं हो सकता था। अन्य राज्य भी मिलकर किसी भी संशोधन का विरोध कर उसे रद्द कर सकते थे। इस परिषद् की रचना और कार्यपद्धति ही ऐसी थी कि वह प्रजातन्त्र की ओर प्रगति की सदा विरोधी बनी रहती थी। इस प्रकार साम्राज्य-परिषद् के अधिकार बड़े विस्तीर्ण थे परन्तु वह उन्हें कहाँ तक व्यवहार में ला सकती थी इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।* उसकी कार्यवाही गुप्त होती थी।

लोक-सभा—

साम्राज्य-परिषद् तो राजाओं के प्रतिनिधियों की सभा थी परन्तु लोक-सभा जनता की प्रतिनिधि सभा थी। इसमें कुल ३६७ सदस्य थे जिनका वितरण विभिन्न राज्यों में जन-संख्या के आधार पर था और जिनका निर्वाचन २५ वर्ष या इससे अधिक आयु वाले सभी पुरुष तीन वर्ष के लिये करते थे। सम्पूर्ण साम्राज्य में यही एक सभा ऐसी थी जो सच्चे अर्थ में प्रजातन्त्रीय कही जा सकती थी परन्तु उसे इङ्गलैण्ड या फ़्राँस की लोक-सभाओं के समान शक्ति प्राप्त नहीं थी। मन्त्रियों पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं था। उसे थल-सेना, नौ-सेना, व्यापार, आयात निर्यात कर, रेलवे, डाकखाना, तार, दीवानी तथा फ़ौजदारी क़ानून

*Marriott : Europe and Beyond, p. 30,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि साम्राज्य-विषयक मामलों में क़ानून बनाने का अधिकार था और क़ानूनों के प्रथम प्रस्ताव भी उसमें हो सकते थे। क़ानून बनने के लिये उसकी स्वीकृति आवश्यक थी और अवांछनीय क़ानून को वह अस्वीकार कर सकती थी। परन्तु क़ानून बनाने का उसको अन्तिम अधिकार प्राप्त नहीं था। उसके द्वारा स्वीकृत क़ानून को साम्राज्य-परिषद् की स्वीकृति की आवश्यकता रहती थी। साधारणतया सभी क़ानून के प्रथम प्रस्ताव साम्राज्य परिषद् में ही हुआ करते थे। बजट भी पहले वही पेश होता था। उसके समान लोक-सभा भी बजट पर मत देती थी परन्तु बजट की कुछ मदें ऐसी थीं, जिनमें सेना-सम्बन्धी मदें मुख्य थीं, जिन पर एक बार ही कई वर्षों के लिये मत ले लिये जाते थे, और जो प्रति वर्ष विधान सभा के मत के लिए पेश नहीं की जाती थीं। नये करों के लिए लोक-सभा की स्वीकृति आवश्यक थी परन्तु पुराने स्वीकृत करों की वसूली के लिए विधान-सभा की वार्षिक स्वीकृति आवश्यक नहीं थी। इस प्रकार साम्राज्य के आय-व्यय पर लोक-सभा का प्रभावकारी नियन्त्रण नहीं था। विदेशी नीति पर भी उसका कोई प्रभावकारी नियन्त्रण नहीं था, क्योंकि साधारणतया कूटनीतिक एवं व्यापारिक सन्धियाँ लोक-सभा की अवधि से अधिक के लिए की जाती थीं ताकि उनकी निर्वाचन के समय आलोचना न हो सके। जो कुछ शक्ति उसके हाथों में भी थी वह इस कारण व्यर्थ थी कि उसमें अनेक दल होते थे जिसके फल-स्वरूप सरकार का विरोध करना उसके लिए कठिन था। इस प्रकार जनता की प्रतिनिधि-सभा होते हुए भी वह निर्बल थी।* वास्तव में वह केवल एक परामर्शदात्री सभा थी जिसे नये क़ानूनों के सम्बन्ध में निषेधाधिकार प्राप्त था। वास्तविक सत्ता साम्राज्य-परिषद् तथा प्रशा के राज्य में निहित थी,† जैसा आगे प्रकट होगा।

न्याय-पालिका—

साम्राज्य के लिए न्यायपालिका की भी व्यवस्था की गई। न्याय-व्यवस्था में साम्राज्य-परिषद् का स्थान हम देख चुके हैं। १८७७ में एक संघीय सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया जो साम्राज्य के क़ानूनों के सम्बन्ध में राज्यों के न्यायालयों के लिये अपील का न्यायालय था। संघीय सर्वोच्च न्यायालय होते हुए भी उसे विधान-सभा के क़ानूनों की वैधानिकता अथवा अवैधानिकता का निर्णय करने का अधिकार नहीं था। एक सच्चे संघीय राज्य के लिये इस प्रकार की क्षमता से युक्त न्यायालय अत्यन्त आवश्यक होता है परन्तु इस दृष्टि से

---

* Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 279.

† Hazen : Modern European History, p. 364.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जर्मन संघीय साम्राज्य में बड़ी कमी थी। अन्य बातों में भी उसकी संघीयता अपूर्ण थी। उसके विधायक राज्य बराबर की कोटि के नहीं थे और उनका प्रतिनिधित्व बड़ा असमान था। विधान-सभा से अलग और स्वतन्त्र ऐसी कोई संस्था नहीं स्थापित की गई जो विधान की अधिकृत व्याख्या कर सकती। सारांश में, जर्मन साम्राज्य सच्चे अर्थ में संघीय नहीं था। वह पार्लामेण्टरी एवं उत्तरदायी भी नहीं था। वह वैधानिक था किन्तु केवल इस अर्थ में कि उसका एक लिखित विधान था। जहाँ तक जनता के स्वशासन से अभिप्राय था, वह विधान १८४८ के फ्रैंकफ़ोर्ट विधान से कहीं निम्न कोटि का था।*

विधान के उद्देश्य—

परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि इस विधान का निर्माण स्वयं बिस्मार्क ने किया था जिसे उत्तरदायी शासन अथवा जनता के अधिकारों से कोई मोह नहीं था। उसका उद्देश्य विधान में तीन आवश्यक बातों का समावेश करना था—(१) प्रशा की प्रधानता, (२) समस्त विधायक राज्यों का स्वशासन तथा (३) जर्मन जनता की राष्ट्रीय एकता।† इन तीनों बातों का समावेश उसने विधान में बड़ी अच्छी तरह से कर लिया था। प्रशा का राजा सम्राट् था और साम्राज्य-परिषद् में प्रशा की स्थिति प्रधान थी। प्रशा का प्रधान-मन्त्री साम्राज्य का भी प्रधान मन्त्री था और साम्राज्य-परिषद् का सभापति था। इस परिषद् में वैसे तो प्रशा के सदस्य ६२ में से कुल १७ ही थे परन्तु जैसा हम देख चुके हैं प्रशा की अनुमति के बिना विधान में कोई संशोधन नहीं हो सकता था। सामान्य कानून-निर्माण में भी प्रशा छोटे-छोटे राज्यों के, जो साधारणतया उसी का अनुकरण करते थे, मत प्राप्त करके अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता था।‡ इसके अतिरिक्त प्रशा साम्राज्य के अन्य समस्त राज्यों से प्रत्येक दृष्टि से—क्षेत्रफल, जन-संख्या, शक्ति, धन, प्रतिष्ठा आदि में—बड़ा था जिससे उसका प्राधान्य स्वाभाविक था। अन्य राज्यों की स्वशासन तथा प्रभुता की इच्छा उसने उनके हाथों में अपने अपने आन्तरिक एवं स्थानीय कामों में काफी शक्ति छोड़कर पूर्ण कर दी थी। राज्यों में विधान-सभाएँ थीं जिनका धर्म, शिक्षा, कर आदि पर अधिकार बना हुआ था। बेवेरिया, वुर्टेमबुर्ग तथा सेक्सनी को, जिनको साम्राज्य में शामिल होने के लिये बिस्मार्क बड़ी कठिनाई से मना सका था, अपनी-अपनी सेनाओं पर विशेष अधिकार प्राप्त था, साम्राज्य-परिषद् की विदेशी मामलों की समिति में प्रशा के साथ उनके सदस्य भी बैठते थे और

* Hazen : Modern European History, p. 366.

† Schevill : A History of Europe, p. 569,

‡ Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries p. 279.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार विदेशी मामलों पर भी उनका नियन्त्रण था।* जर्मन जनता को उसने वयस्क मताधिकार देकर तथा राष्ट्रीय लोकसभा का निर्माण कर अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्ति तथा अपनी राष्ट्रीय एकता की अनुभूति करने का अवसर दिया। बिस्मार्क को इन तीनों ऐतिहासिक शक्तियों को सम्हालना था परन्तु उसने उनके बीच समतोलन स्थापित नहीं किया। वह स्वयं प्रशा का अनन्य भक्त था और प्रशा की शक्ति से ही उसने अपने जीवन के महान् लक्ष्य की पूर्ति की थी। अतः अन्य दोनों शक्तियों के मुकाबले में प्रशा को प्राधान्य देना उसके लिये स्वाभाविक ही था। इससे भिन्न कोई दूसरी बात सम्भव भी नहीं थी क्योंकि क्षेत्रफल तथा जनसंख्या में प्रशा साम्राज्य के अन्य समस्त सम्मिलित राज्यों से दुगना था। वास्तव में बिस्मार्क ने समस्त जर्मनी को प्रशा में विलीन कर लिया था और नवीन जर्मनी प्रशा का ही परिवर्धित रूप था। प्रशा आरम्भ से ही कृषि-प्रधान था और सन् १८७१ के बाद भी औद्योगिक विकास होते हुये भी कृषि-प्रधान ही बना रहा जिसमें स्थितिपालक मनोवृत्ति के ज़मीदारों का प्राधान्य था। नवीन जर्मनी में भी प्रशा के प्राधान्य के कारण स्थितिपालकता का ज़ोर और जनतन्त्रीय प्रवृत्ति का विरोध बना रहा।†

कठिनाइयाँ—

बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण करके मध्य-योरोप में एक विशाल सैनिक एकतंत्र स्थापित तो कर लिया था परन्तु अभी उसे बहुत काम करना था। उसे नये राज्य में अनेक कमज़ोरियाँ दृष्टिगोचर हो रही थीं जिनका निराकरण आवश्यक था। जर्मनी में बड़ा मतभेद विद्यमान था। कुछ लोग साम्राज्य के विरोधी थे; कुछ उत्तरदायी शासन और पार्लामेण्टरी संस्थाओं का विकास चाहते थे; औद्योगिक नगरों में समाजवाद और उसके साथ सामाजिक जनतंत्र की माँग बढ़ रही थी, बहुत से राज्य प्रशा के प्राधान्य को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे। प्रशा का ज़मीदार-वर्ग (Junkers) प्रशा का अनन्य भक्त था और यह समझ कर असंतुष्ट था कि बिस्मार्क ने भी काबूर की तरह प्रशा को जर्मनी में विलीन कर दिया था। रोमन केथोलिक लोग जर्मनी में प्रोटेस्टेण्ट प्रशा के प्राधान्य से असंतुष्ट थे। साम्राज्य में पोल, श्लेस्विग के डेन लोग तथा अल्सास-लोरेन के फ्रेञ्च लोग असंतुष्ट थे।

लोक-सभा के दल—

साम्राज्य के ये सब भेद लोक-सभा में प्रतिबिम्बत थे जिनके कारण उसमें अनेक दल बन गये थे। मौटी तौर से ये समस्त दल दो भागों में विभक्त हो

* Holland Rose : The Development of the European Nations, vol I, p. 155.
† Schevill : A History of Europe, pp. 569-570.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकते थे—साम्राज्य के विरोधी और साम्राज्य के समर्थक। साम्राज्य के विरोधी दलों में पोल, डेन, फ्रेंच आदि दलित राष्ट्र के लोग तथा समाजवादी लोग थे यद्यपि आरम्भ में वे अपने दो नेताओं—कार्ल मार्क्स तथा फर्डिनेण्ड लासाल—के पारस्परिक मतभेद के कारण निर्बल थे। साम्राज्य के समर्थक दल अनेक थे। उनमें एक दल पुराने कंज़र्वेटिव लोगों (Old Conservatives) का था जिनमें पुराने ढंग के जमींदार लोग, ल्यूथर के अनुयायी पादरी, सेना के अफ़सर आदि थे। वे स्थितिपालक थे और राजा की सत्ता तथा कुलीन वर्ग के विशेषाधिकारों को कायम रखना चाहते थे। आरम्भ में तो वे बिस्मार्क के समर्थक बन रहे परन्तु बाद में उसकी चर्च को राज्य के आधीन करने तथा स्थानीय स्वराज्य स्थापित करने की नीति के कारण उसका विरोध करने लगे। इनके साथ ही एक दल स्वतन्त्र कंज़रवेटिव (Free Conservatives) लोगों का था जिसमें मुख्यकर प्रशा के जमींदार (Junkers) थे। ये पूर्णतया साम्राज्यवादी थे और सदा बिस्मार्क का समर्थन करते रहते थे। साम्राज्य के समर्थकों में दूसरा प्रधान दल राष्ट्रीय उदारवादियों (National Liberals) का था जो मध्यवर्गीय, पादरियों का विरोधी, तथा जर्मन राष्ट्रीयता का प्रतिनिधि था। वह राष्ट्रीय एकता का तो समर्थक था परन्तु इसके साथ ही वह प्रशा तथा जर्मन साम्राज्य दोनों में उत्तरदायी शासन स्थापित करना चाहता था। वह मुक्त व्यापार, प्रेस की स्वतन्त्रता, स्थानीय स्वशासन की उन्नति तथा शिक्षा पर से पादरियों के प्रभाव को हटाने के पक्ष में था। आरम्भ में लोक-सभा में इनकी संख्या १२० के लगभग थी। इन्हीं में कुछ प्रगतिशील लोग (Progressives) थे जो मुक्त व्यापार के समर्थन में राष्ट्रीय उदारवादियों से आगे बढ़े हुए थे, वास्तविक प्रजातन्त्रीय एवं उदारवादी शासन चाहते थे और नौकरशाही तथा सैनिकवाद के विरोधी थे।* उदारवादियों के अतिरिक्त साम्राज्य का समर्थन करने वाला एक दल और था जो 'केन्द्र' (Centre) कहलाता था, जिसमें उग्र रोमन केथोलिक लोग थे। लोक-सभा में इस दल के प्रतिनिधि ६० से कम थे परन्तु उसका संगठन बड़ा अच्छा था और उसके सदस्य बड़े कर्मठ थे। साम्राज्य के समर्थक होने के साथ ही वे पादरियों की सत्ता के समर्थक तथा चर्च को राज्य के आधीन बनाने की नीति के प्रबल विरोधी थे।

बिस्मार्क का स्वाभाविक आकर्षण स्थितिपालक दल की ओर था परन्तु वह दल प्रशा का अन्धभक्त था और जिस रूप में जर्मन एकता सम्पन्न हुई थी

*Hayes and Cole : History of Europe, vol. II, pp. 267-268.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे नहीं चाहता था। अतः वह आवश्यकतानुसार समय समय पर लोक-सभा में विभिन्न दलों के सहयोग से कार्य करता रहा। आरम्भ में उसे साम्राज्य को सुदृढ़ करना था, अतः उसने राष्ट्रीय उदारवादियों के साथ काम करना आरम्भ किया।*

बिस्मार्क का कार्य—

बिस्मार्क का मुख्य कार्य 'साम्राज्य को संगठित करना, छोटे-छोटे राज्यों को प्रशा के ढंग पर ले आना और केन्द्रीय नौकरशाही तथा समस्त साम्राज्य के लिए समान आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था की स्थापना द्वारा विभिन्न राज्यों विविधताओं, स्थानीय भक्ति एवं पार्थक्यवाद का अन्त करना'† और इन सब उपायों द्वारा एक सुसंगठित राष्ट्र का निर्माण करना था। समस्त साम्राज्य में भाषा, जाति तथा संस्कृति की दृष्टि से एकता विद्यमान् थी और जर्मन लोग वस्तुतः एक राष्ट्र थे, परन्तु प्राचीन इतिहास ने उस राष्ट्र को अनेक राज्यों में विभक्त कर दिया था जो एक दूसरे से सर्वथा पृथक थे, जिनके क़ानून भिन्न थे और जिनके आर्थिक हित भी परस्पर विरोधी थे। उनके राजाओं में भी स्वतन्त्रता तथा पार्थक्य की भावना विद्यमान् थी। उनकी स्वतन्त्रता की भावना को तो उसने साम्राज्य को संघीय रूप देकर संतुष्ट कर लिया परन्तु संगठित राष्ट्र के निर्माण के लिये इन अनेक विभिन्नताओं को नष्ट करना आवश्यक था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बिस्मार्क ने केन्द्रीय संस्थाओं का निर्माण आरम्भ किया और कुछ ही वर्षों में साम्राज्य की अनेक विभिन्नताओं को नष्ट कर उसमें एकता ला दी।

साम्राज्य के लिए सामान्य व्यवस्था—

समस्त साम्राज्य के लिये १८७१ में एक सामान्य मुद्रा-पद्धति जारी की गई और विभिन्न राज्यों की पृथक-पृथक मुद्राओं को हटा कर मार्क का सर्वत्र प्रचलन किया गया। बैंकों पर से राज्यों का नियन्त्रण हटाकर साम्राज्य-परिषद् के सुपुर्द किया गया और १८७३ में एक इम्पीरियल बैंक की स्थापना की गई। विभिन्न राज्यों के अलग-अलग क़ानूनों की जगह समस्त साम्राज्य के लिये समान कानूनों का निर्माण हुआ और कानूनी पद्धति भी सर्वत्र समान कर दी गई। समस्त राज्यों की रेलों पर केन्द्रीय अधिकार स्थापित किया गया, उनके लिये एक इम्पीरियल रेलवे ब्यूरो की स्थापना की गई और सेना, डाक तथा तार-सम्बन्धी सेवाओं के साथ उनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया। इन सब बातों से आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में बड़ी सरलता हो गई।

*Robertson : Bismarck, p. 302.

†Lodge and Horn : A History of Europe, p. 342

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने सेना की सहायता से ही जर्मन साम्राज्य की सृष्टि की थी और आगे भी एक शक्तिशाली सेना की आवश्यकता वह खूब समझता था। मोल्त्के (Moltke) ने १८७५ में लोक-सभा के समक्ष कहा था कि जर्मनी को जो कुछ उसने ६ महीने में प्राप्त कर लिया था उसे सुरक्षित रखने के लिए ५० वर्ष तक पूर्ण रूप से सशस्त्र रहना पड़ेगा।* बिस्मार्क ने अनिवार्य सैनिक सेवा का नियम, जो प्रशा में लागू था, समस्त साम्राज्य में लागू कर दिया और सर्वत्र सैनिक व्यवस्था एक सी कर दी। शान्ति-काल के लिए सेना की संख्या ४,००,००० नियत कर दी गई। वह सेना की संख्या और उसके लिए आवश्यक धनराशि सदा के लिए एक ही बार नियत कर देना चाहता था परन्तु लोक-सभा में इस प्रस्ताव का विरोध हुआ। बिस्मार्क को समझौता करना पड़ा और लोक सभा ने केवल सात वर्ष के लिए स्वीकृति दी। परन्तु वह बड़ा चतुर था। जब उसे सेना के लिए धनराशि की माँग करने की आवश्यकता होती थी उस समय अभीष्ट धनराशि प्राप्त करने के लिए वह लोक-सभा के सामने युद्ध की आशंका खड़ी कर देता था। १८७१ के बाद इस प्रकार वह सेना का विस्तार करता रहा।†

अ-जर्मन राष्ट्रों के जर्मनीकरण का प्रयत्न—

इन विविधताओं के साथ जर्मन राष्ट्रीय संगठन के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा अ-जर्मन राष्ट्रों के लोगों की ओर से थी जो ज़बरदस्ती जर्मन साम्राज्य में शामिल कर लिये गये थे। पूर्व की ओर पोसेन के प्रदेश में कोई ३५ लाख पोल थे, श्लेस्विग में कोई डेढ़ लाख डेन लोग थे और अल्सास-लोरेन में १८ लाख के लगभग फ्रेञ्च लोग थे। बिस्मार्क ने (और उसके बाद अन्य लोगों ने भी) उनकी राष्ट्रीयता को नष्ट कर उन्हें जर्मन बनाने का बहुत प्रयत्न किया। कभी दमन का आश्रय लिया गया और कभी अनुनय से काम लिया गया परन्तु ये लोग जर्मनी में घुलमिल कर एक न हो सके।‡ डेन लोग डेन्मार्क में वापस शामिल होना चाहते थे। प्राग की सन्धि के अनुसार बिस्मार्क ने जनमत संग्रह और डेन लोगों के जर्मनी में बने रहने के प्रतिकूल मत होने पर श्लेस्विग डेनमार्क को लौटाने का वचन दिया था परन्तु उसने वह वचन पूरा नहीं किया। इसके प्रतिकूल उसने डेनिस भाषा के स्थान पर उन पर जर्मन भाषा लादने तथा उनकी भूमि छीन जर्मनों को देने का प्रयत्न किया। परन्तु चूँकि वे संख्या में बहुत थोड़े थे, इस कारण विवश होकर परन्तु अत्यन्त असन्तुष्ट अवस्था में

* Robertson : Bismarck, p. 331.
† Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 267.
‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 257.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे जर्मनी में ही बने रहे। अल्सास-लोरेन के फ्रेंच लोगों को धीरे धीरे स्वशासन के अधिकार देने की नीति द्वारा मनाने और सन्तुष्ट रखने का बहुत प्रयत्न किया गया परन्तु वे भी किसी प्रकार सन्तुष्ट न हो सके।* पोल लोगों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया गया जैसा डेन लोगों के साथ किया जा रहा था परन्तु वे लोग भी निरंतर विरोध करते रहे। इन सब प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि वे लोग जर्मन राष्ट्र में घुलमिल कर एक तो हो ही न सके, उल्टे उनकी राष्ट्रीय चेतना उग्र होती गई।† उन लोगों की दृढ़ता ने बिस्मार्क को परास्त कर दिया।

अपनी आंतरिक नीति में बिस्मार्क की यही एक पराजय नहीं थी। उसे साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु केथोलिक लोग (Black International) तथा समाजवादी लोग (Red International) दिखाई देते थे। दोनों के सुसंगठित शक्तिशाली राजनैतिक दल थे और दोनों ही जर्मन साम्राज्य के विरोधी थे। बिस्मार्क ने दोनों को नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु दोनों से वह परास्त हुआ।

सभ्यता की रक्षा के लिए संघर्ष (Kulturkampf)

रोमन केथोलिक चर्च से बिस्मार्क की अप्रसन्नता—

जर्मनी में रोमन केथोलिक चर्च बड़ा शक्तिशाली था। वह राज्य के नियंत्रण से प्रायः मुक्त था और उसके कामों में राज्य बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं करता था। बिस्मार्क के राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयत्नों से वह बड़ा अप्रसन्न था क्योंकि उनसे उनकी स्वतंत्रता में बाधा पड़ती थी। जर्मनी को, विशेषकर प्रशा की अधिकांश जनता तो प्रोटेस्टेण्ट थी परन्तु जर्मनी में अनेक राज्य ऐसे थे जहाँ जनता का अधिकांश केथोलिक था। वह इसी में अपना हित समझता था कि केन्द्रीय सरकार निर्बल हो और विभिन्न राज्य शक्तिशाली हों ताकि केथोलिक राज्यों में उसकी मनमानी हो सके। परन्तु केन्द्रीय सरकार के शक्तिशाली होने से उसे सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रोटेस्टेण्ट हो जाने तथा अपना महत्व नष्ट हो जाने का डर था क्योंकि केन्द्रीय सरकार में प्रशा का जोर था और वह प्रोटेस्टेण्ट था। १८७१ के निर्वाचन में लोक-सभा के लिए ५८ रोमन केथोलिक सदस्य चुने गये थे जो सदा बिस्मार्क की नीति का विरोध करते रहते थे। बिस्मार्क को यह देखकर बड़ी चिन्ता हुई। वह १८६६ से ही रोमन केथोलिक चर्च से नाराज था क्योंकि वह सदा से ऑस्ट्रिया का समर्थक और प्रशा का कट्टर विरोधी था।‡ पोप ने उस वर्ष के युद्ध में ऑस्ट्रिया की विजय की प्रार्थना की

* Robertson : Bismark, pp. 392-393.
† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 351.
‡ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 352.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। जर्मनी के एकीकरण के बाद भी ऑस्ट्रिया के प्रति उसके मोह तथा नवीन जर्मनी के विरोध में, जिसमें प्रोस्टेटेण्ट प्रशा का प्राधान्य था, किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। केथोलिक दल केवल बिस्मार्क की नीति का ही विरोध नहीं करता था, वह अराष्ट्रीय था क्योंकि उसकी भक्ति राष्ट्र के प्रति नहीं, वरन् राष्ट्र के बाहर के अधिकारी पोप के प्रति थी। वह पोप की ऐहिक शक्ति को पुनः स्थापित करना चाहता था और राज्य को चर्च के अधीन करना चाहता था। ये दोनों बातें बिस्मार्क की दृष्टि में साम्राज्य के हितों के प्रतिकूल थीं। पोप की ऐहिक सत्ता के समर्थन का परिणाम था इटली के साथ जर्मनी के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध में विक्षेप। राज्य को चर्च के अधीन करने का अर्थ था अब तक किये हुए समस्त कार्य का विनाश। राज्य और चर्च के सम्बन्ध के विषय में बिस्मार्क की नीति स्पष्ट थी—'प्रशा का वैधानिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण केवल एक है—धार्मिक कार्यों में चर्च की पूर्ण स्वतन्त्रता तथा राज्य के अधिकार-क्षेत्र में उसके हस्तक्षेप का दृढ़ विरोध।' * कुछ वर्षों से पोप का प्रचार बढ़ रहा था और ऐसा मालूम होता था कि वह अपने मध्य-कालीन आधिपत्य को पुनः स्थापित करना चाहता था। १८६४ में पोप नवें पायस ने एक विज्ञप्ति द्वारा आधुनिक काल की भयंकर भूलों को प्रदर्शित करते हुए केथोलिक मत से भिन्न मतों के अनुयायियों के साथ सहिष्णुता तथा चर्च को राज्य के अधीन करने की प्रवृत्ति को धर्मविरुद्ध एवं अनुचित बतलाया था। १८७० में चर्च की एक कौंसिल (Vatican Council) ने पोप की अभ्रंशनीयता (Infallibility) की घोषणा की थी और चर्च के मामलों में सरकार के हस्तक्षेप का विरोध किया था तथा इसके साथ ही इस सिद्धान्त को समस्त विद्यालयों में शिक्षा देने का आदेश दिया था। ऑस्ट्रिया तथा फ्रांस में पोपभक्ति का राजनैतिक रूप प्रबल हो रहा था। फ्रेंच साम्राज्ञी का रोम से घनिष्ट सम्बन्ध था और जर्मनी के एकीकरण के प्रति पोप की शत्रुता स्पष्ट थी। इसके अतिरिक्त केथोलिक पादरी पोल लोगों में अपना प्रचार कार्य बड़े ज़ोर से कर रहे थे जो बिस्मार्क को अत्यन्त अरुचिकर हो रहा था। उसे सबसे अधिक बुरा तो उस समय लगा जब कि पोपभक्त पादरियों से १८७० के पोप के आदेश की विद्यालयों में शिक्षा देने की माँग की। जर्मन राष्ट्रीयता के लिये इस माँग से अधिक भयंकर कोई दूसरी बात नहीं हो सकती थी। इन्हीं विद्यालयों में जो जर्मन राष्ट्रीयता के जन्मस्थान थे और जहाँ उसका पोषण हुआ था पोप की अभ्रंशनीयता की शिक्षा देना जर्मन राष्ट्र को नष्ट करना था। इन सब बातों को देखकर बिस्मार्क ने चर्च की प्रतिक्रिया से 'सभ्यता की रक्षा के लिये' उसके विरुद्ध संघर्ष करने का निश्चय किया। यह संघर्ष राजनीतिक था।

*Marriott : Europe and Beyond, p. 33.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चर्च से संघर्ष—

इस संघर्ष के लिये अवसर बिस्मार्क को स्वयं केथोलिकों के पारस्परिक झगड़े से प्राप्त हो गया। केथोलिकों में कुछ लोग ऐसे थे जो साम्राजवादियों के समान ही पोप की अभ्रंशनीयता के सिद्धान्त तथा जर्मनी में शिक्षा को पादरियों के हाथों में सौंपने के विरोधी थे। वे 'पुराने केथोलिक' (Old Catholics) कहलाते थे। उनका नेता प्रसिद्ध विद्वान् एवं धर्मशास्त्री डॉक्टर डॉलिन्जर था। उन्होंने इन सिद्धान्त को गलत बतला कर मानने से इन्कार कर दिया और चर्च तथा पुराने केथौलिकों में संघर्ष आरम्भ हो गया। इसका सूत्रपात सर्वप्रथम प्रशा में हुआ। चर्च ने उन लोगों को धर्मबहिष्कृत कर दिया और सरकार से उन्हें विश्वविद्यालयों एवं विद्यालयों से निकाल देने की माँग की। प्रशा की सरकार ने उस मांग को ठुकरा दिया जिस पर चर्च ने सरकार पर आक्षेप करना आरम्भ किया और राज्य तथा चर्च का संघर्ष शुरू हो गया। बिस्मार्क को इस कार्य में राष्ट्रीय उदारवादियों का सहयोग प्राप्त था। उसने इस संघर्ष के संचालन का भार फ़ॉक (Falk) को सौंपा और चर्च के अधिकारों को सीमित करने के लिए चर्च के विरुद्ध क़ानून बनाये जाने लगे।

सर्व प्रथम साम्राज्य की पार्लामेंण्ट ने धार्मिक संस्थाओं को शिक्षा देने का निषेध कर दिया और १८७२ में जेसुइट लोगों को जर्मनी से निर्वासित करके पोप से कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ दिया। चर्च के विरुद्ध जितने क़ानून बने उनमें १८७३, १८७४ तथा १८७५ में मई के महीनों में बनाए गये क़ानून (May Law) अथवा (Falk Laws,) बड़े महत्वपूर्ण थे * जिनके द्वारा समस्त केथोलिक पादरियों के लिये जर्मन सार्वजनिक एवं विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षित तथा प्रशा की सरकार द्वारा अधिकृत जर्मन नागरिक होना अनिवार्य कर दिया गया। चर्च की पाठशालाओं पर सरकारी नियन्त्रण कर दिया और पादरियों के लिये प्राथमिक केथोलिक पाठशालाओं का निषेध कर दिया गया। धार्मिक शिक्षा जर्मन भाषा में देना अनिवार्य कर दिया गया और पादरियों को धार्मिक सज़ाओं (धर्म-वहिष्कार आदि) का दुरुपयोग करने से मना कर दिया गया। पोप ने इन क़ानूनों का विरोध किया और उसके प्रोत्साहन से केथोलिक पादरियों ने उनको तोड़ना आरम्भ किया। इस पर प्रशा की विधान-सभा ने अनधिकृत पादरियों को धार्मिक कार्य करने से मना कर दिया और जिन लोगों ने उस आदेश का उल्लंघन किया उन्हें नागरिकों के अधिकार से वंचित करना तथा जुर्माना, कारावास, निर्वासन आदि दण्ड देना आरम्भ किया। इन क़ानूनों का इतनी कठोरता से पालन किया गया कि अकेले १८७६ में ६

* Hazen : Modern European History, p. 367.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़े-बड़े पादरियों को कारागार में डाल दिया गया और १३०० स्थानों में सार्वजनिक केथोलिक धर्मकार्य बन्द हो गये। १८७७ में प्रशा का प्रत्येक केथोलिक बिशप तथा सैकड़ों पादरी कारागार में थे या देश से निर्वासित थे। केथोलिक गृहस्थी भी सरकार के कोप से नहीं बचे और बहुत से सरकारी नौकरी से हटा दिये गये।*

बिस्मार्क की पराजय—

इस प्रकार केथोलिकों का घोर दमन हो रहा था परन्तु इसका परिणाम उल्टा हो रहा था। केथोलिक लोग शहीदों की तरह इस अत्याचार को सह रहे थे और उनका आन्दोलन दबने की जगह अधिकाधिक प्रबल होता जा रहा था। १८७४ के निर्वाचन में केथोलिक दल के सदस्यों की संख्या ६३ से बढ़ कर ९१ हो गई और १८७७ के निर्वाचन में और भी बढ़ गई। जिस प्रकार सरकार दमन कर रही थी उससे अन्य लोग भी असन्तुष्ट थे और वे केथोलिकों के साथ सहानुभूति प्रकट करने लगे। कई प्रोटेस्टेण्ट कंज़र्वेटिव लोग इन कानूनों की धर्म-विरोधी प्रवृत्ति को देख कर सशङ्क हो गये और केथोलिकों का समर्थन करने लगे। मज़दूर लोगों की भी उनके साथ सहानुभूति होने लगी। साम्राज्ञी और राजदरबार के लोग बिस्मार्क की नीति के विरुद्ध थे और स्वयं सम्राट् जर्मनी के इस गृह-कलह को देखकर चिन्तित हो रहा था। बिस्मार्क को स्वप्न में भी इस प्रबल एवं व्यापक विरोध की आशंका नहीं थी। आरम्भ में (मई १८७२) उसने बड़े गर्व के साथ कहा था कि 'हम शरीर से या मन से केनोसा कभी नहीं जायेंगे‡ परन्तु उसका गर्व चूर्ण हो गया। वह केथोलिकों को कुचल न सका। इसके साथ ही इतने प्रकार के लोग उसके विरोधी हो गये थे। परन्तु उसे सबसे अधिक डर समाजवादियों का था जिनका प्रभाव साम्राज्य में बढ़ रहा था। उनके विरुद्ध उसे कंज़र्वेटिव लोगों के सहयोग की आवश्यकता थी। उसकी स्वाभाविक सहानुभूति कंज़र्वेटिव लोगों से थी। १८७८ तक कंज़र्वेटिव लोग, जिनमें १८७३ में फूट हो गई थी, फिर से एक हो गए थे और उनकी सहायता उसे प्राप्त हो सकती थी। उसने केथोलिकों से सन्धि कर लेना ही उचित समझा। सन्धि करना इस समय कुछ सरल भी होगया क्योंकि १८७८ में पोप नवें पायस की, जो अत्यन्त दृढ़ाग्रही था, मृत्यु हो गई और उसकी जगह

*Hayes and Cole : History of Europe, vol. II, p. 270.

‡ मध्य-काल में पोप तथा पवित्र रोमन सम्राटों में प्राय संघर्ष हुआ करता था। १०७७ में सम्राट् चतुर्थ हेनरी ने पोप सप्तम ग्रेगरी का विरोध किया परन्तु उसे दबना पड़ा और इटली के उत्तरी पर्वतीय भाग में स्थित केनोसा (Canossa) नामक स्थान में प्रायश्चित करके पोप से क्षमा की याचना करनी पड़ी। केनोसा जाने से बिस्मार्क का आशय पोप से पराजय मानना था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेरहवाँ लियो (Leo XIII) पोप निर्वाचित हुआ जो बड़ी नरम और शान्तिप्रिय प्रकृति का था। बिस्मार्क को 'केनोसा जाना पड़ा,' उसे पराजय स्वीकार करनी पड़ी परन्तु उसने उसे 'समझौते' का नाम देकर अपनी लाज बचाई। नये पोप से बातचीत शुरू हुई। फ़ॉक ने पद त्याग कर दिया और उसके स्थान पर एक कंज़र्वेटिव पुतकेमर (Puttkamer) नियुक्त हुआ। १८८१ में पार्लामेण्ट ने सरकार को केथोलिकों के विरुद्ध क़ानूनों को अमल में लाने में अपने विवेक के प्रयोग का अधिकार दे दिया। पोप से कूटनीतिक सम्बन्ध फिर स्थापित होगया। १८८६ में चर्च की पाठशालाओं पर से सरकारी नियन्त्रण हटा लिया गया और पादरियों की सरकारी शिक्षा भी बन्द कर दी गई। बिशपों की नियुक्ति के सम्बन्ध में पोप से समझौता हो गया और यह निर्णय हुआ कि ऐसी नियुक्तियाँ पोप तथा सम्राट दोनों की सहमति से हों। और भी कई समझौते हुए जिनके परिणाम-स्वरूप संघर्ष धीरे-धीरे समाप्त हो गया। इन सब रियायतों के बदले में बिस्मार्क को केथोलिक दल का सामान्य सहयोग प्राप्त होगया।* परन्तु इस संघर्ष का स्थायी परिणाम यह हुआ कि केथोलिक दल की शक्ति बढ़ गई और वह जर्मनी में सबसे प्रबल दल बन गया।‡

बिस्मार्क और समाजवाद—

रोमन केथोलिक चर्च से समझौता करने में बिस्मार्क का एक उद्देश्य उससे भी प्रबल एक दूसरे के शत्रु के मुकाबले के लिये अपनी शक्ति सुरक्षित रखना था। जर्मनी में बड़ी तीव्र गति से औद्योगिक विकास हो रहा था। उसके साथ-साथ समाजवाद भी प्रगति कर रहा था। औद्योगिक नगरों के कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों में उसका प्रभाव बढ़ रहा था। जर्मनी में समाजवाद का जन्मदाता तो मार्क्स था परन्तु उसे संगठित करके समाजवादी दल की स्थापना करने वाला फर्डिनेण्ड लासाल (Ferdinand Lasalle) था। मार्क्स के समाजवाद की अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति तथा क्रान्तिवादी पद्धति से लासाल सहमत नहीं था। अतः इन दोनों के मतभेद के कारण समाजवादी बहुत समय तक विभक्त और उसी कारण निर्बल रहे। परन्तु १८७५ में दोनों में समझौता हो गया और गोथा (Gotha) में दलीय कार्यक्रम निर्धारित करके सामाजिक प्रजातन्त्रीय दल (Social Democratic Party) की स्थापना की गई। यह दल तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था की, जिसमें उत्पादन के साधनों का स्वाम्य पूर्णतया पूँजीपतियों के हाथों में और उन्हीं के हितों में था, निन्दा करता था और माँग करता था कि उन साधनों पर राज्य अपना स्वाम्य स्थापित करके उद्योगों का समाज के हित में संचालन करे और श्रम के उत्पादन का न्यायपूर्ण

* Marriott : Europe and Beyond, p 34.
‡ Hazen : Modern European History, p. 368.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वितरण करे। उसका उद्देश्य स्वतन्त्र राज्य तथा समाजवादी आधार पर संगठित समाज की स्थापना करना था। जर्मनी को स्वतन्त्र राज्य बनाने के निमित्त वह वयस्क मताधिकार, गुप्त मतदान, प्रेस तथा सभा की स्वतन्त्रता और अन्य राजनीतिक अधिकारों के प्रजातन्त्रीय दिशा में अधिकतम विस्तार की माँग करता था। राजनीतिक प्रजातंत्र के अतिरिक्त वह निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, आय के साथ-साथ उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ आयकर तथा मजदूरों की दशा में उन्नति करने के लिये अनेक सुधारों की माँग भी करता था। इसके साथ ही वह सैनिकवाद का भी विरोधी था। बिस्मार्क ने पार्लिमेण्ट के हस्तक्षेप के विरुद्ध राजा की सत्ता तथा एकतंत्रीय संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने और सैनिकवाद के आधार पर जर्मन साम्राज्य का निर्माण करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी थी, परन्तु समाजवादी कार्यक्रम उसके इस जीवन-कार्य का विनाश चाहता था।* अतः वह उसे पनपने नहीं देना चाहता था। वह बहुत पहले से समाजवादियों से घृणा करता आ रहा था क्योंकि उनके नेताओं लीबनेक्ट (Liebknecht) तथा बेबेल (Bebel) ने उसके समस्त कामों—उत्तरी जर्मन संघ के निर्माण, फ्रांस के विरुद्ध युद्ध, अल्सास-लोरैन को जर्मनी में शामिल करने आदि का विरोध किया था और वे जर्मनी की तत्कालीन व्यवस्था का खुल्लमखुल्ला विरोध करते थे। वे प्रजातन्त्र के समर्थक और सैनिकवाद के विरोधी थे परन्तु बिस्मार्क प्रजातन्त्र का शत्रु और सैनिकवाद का पुजारी था। ऐसे विरोधों में संघर्ष होना स्वाभाविक था। बिस्मार्क ने उन्हें आरम्भ से ही दबाना शुरू किया। उसने १८७२ में लोक-सभा के उनके दोनों सदस्य—लीबनेक्ट तथा बेबेल गिरफ्तार कर लिये और उन्हें दो वर्ष के लिये कारागार भेज दिया। परन्तु इससे समाजवादी दबे नहीं, उल्टे वे ज़ोर पकड़ते गये। १८७४ के निर्वाचन में उनके ९ प्रतिनिधि चुने गये। जब १८७७ के निर्वाचन में सोश्यल डिमॉक्रेटिक पार्टी को पाँच लाख मत मिले और लोक-सभा के लिये उसके १२ प्रतिनिधि चुने गये तो बिस्मार्क को बड़ी चिन्ता हो गई। वह चर्च से होने वाले संघर्ष को बन्द करके समाजवाद को नष्ट करने पर कटिबद्ध हो गया।

समाजवाद का दमन—

उसे बहाना भी शीघ्र ही मिल गया। १८७८ में नोबिलिंग नामक एक व्यक्ति ने सम्राट की हत्या करने का प्रयत्न किया। समाजवादियों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु बिस्मार्क ने उसका दोष उन पर लगा कर कठोर दमन आरम्भ किया और लोक-सभा से उनका सर्वनाश करने के लिए एक अत्यन्त कठोर कानून बनवाया। उसके द्वारा ऐसी समस्त सभाएँ तथा संस्थाएँ निषिद्ध

*Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 260-261.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठहराई गई और ऐसे समस्त प्रकाशन का निषेध कर दिया गया जिनका उद्देश्य 'सामाजिक व्यवस्था को पलटना' था या जिनमें 'समाजवादी प्रवृत्तियाँ' दिखाई देती थीं। पुलिस को उन सब व्यक्तियों को गिरफ्तार करने तथा देश से निर्वासित करने का अधिकार मिल गया जिन पर उसे सन्देह हो और यह घोषणा की गई कि आवश्यकतानुसार फ़ौजी कानून की भी घोषणा की जा सकेगी जिसका अर्थ यह था कि समाजवादियों को सामान्य न्यायालयों की रक्षा भी प्राप्त नहीं हो सकेगी। यह कानून चार वर्ष के लिये बनाया गया था। बाद में दो बार उसकी पुनरावृत्ति हुई और १८९० तक वह काम में आता रहा। इन कानूनों के अनुसार इन बारह वर्षों में कोई ३५०० व्यक्ति गिरफ्तार किये गये, ९०० निर्वासित कर दिये गये और १४०० पत्र-पत्रिकाएँ आदि जब्त की गईं। किन्तु इस दमन से समाजवाद बिलकुल नहीं दब सका, वह और भी अधिक फैलता गया क्योंकि उसका बल सभा-सोसायटियों में नहीं वरन् सिद्धान्त एवं विचारों में और मजदूरों की आर्थिक दशा में था। वे पुलिस से बचने के लिये गुप्त रूप से काम करने लगे। उनके समाचार पत्र स्विट्ज़रलैण्ड में छपने लगे और गुप्त रूप से जर्मनी के मजदूरों में बाँटे जाने लगे। राजनीतिक सभाओं की जगह उन्होंने संगीत समाज क्लब आदि बनाकर अपना काम जारी रखा। चर्च के समान समाजवादियों ने भी बिस्मार्क को परास्त कर दिया। आरम्भ में तो ऐसा मालूम होता था कि बिस्मार्क का उद्देश्य पूरा हो गया क्योंकि १८८१ के निर्वाचन में उन्हें केवल ३,१२,००० मत ही मिले जबकि तीन वर्ष पहले उन्हें ४,९३,००० मत प्राप्त हुये थे। परन्तु वे शीघ्र ही सम्हल गये, १८८४ में उन्हें प्राप्त मतों की संख्या ५,४९,०००, १८८७ में ७,६३,००० और १८९० में १४,२७,००० हो गई और उस वर्ष उनके ३५ सदस्य लोक-सभा के लिये चुने गये।*

राज्य-समाजवाद—

समाजवादी आन्दोलन के दमन के लिये बिस्मार्क ने साथ ही साथ एक दूसरे शस्त्र का भी प्रयोग किया। वह अच्छी तरह समझता था कि समाजवादी दल की शक्ति मजदूरों की आर्थिक दुर्दशा में थी। अतः उसने कानून द्वारा उनकी दशा सुधारने की नीति का अवलम्बन करके उन्हें समाजवादियों के प्रभाव से बचाने तथा समाजवाद की जड़ पर आघात करने का प्रयत्न किया। वह इस प्रकार मजदूरों को बतला देना चाहता था कि राज्य उनकी ओर से उदासीन नहीं है, बल्कि उनका वास्तविक हितचिन्तक है। नवम्बर १८८१ में लोक-सभा के समक्ष सम्राट् के भाषण द्वारा उसने राज्य के कर्तव्य सम्बन्धी एक

*Hazen : Modern European History, pp. 370 371.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नये सिद्धान्त की घोषणा करवाई। अभी तक राज्य का कर्तव्य पुलिस का काम ही समझा जाता था परन्तु सम्राट् के भाषण में घोषणा की गई कि मजदूरों की दशा सुधारना, सामाजिक बुराइयों का निराकरण करना तथा राज्य की समस्त प्रजा, विशेषकर निर्बलों के कल्याण की वृद्धि करना राज्य का नैतिक कर्तव्य है।* इस नये सिद्धान्त के अनुसार बिस्मार्क ने मजदूरों की बीमारी के लिये (१८८३), आकस्मिक दुर्घटनाओं के लिए (१८८४) तथा वृद्धावस्था के लिए और अपाहिज हो जाने की अवस्था के लिए (१८८९) बीमे की व्यवस्था करने के लिए क़ानून बनाये। १८८७ में स्त्रियों तथा बच्चों के काम के घण्टों में भारी कमी की गई, अनेक उद्योगों में काम के घण्टे सीमित कर दिये गये, रविवार को छुट्टी रखी गई और खानों तथा कारखानों के निरीक्षण की व्यवस्था की गई। लोक-सभा में तथा उसके बाहर इनका विरोध तो बहुत हुआ परन्तु कंजरवेटिव दल (जो प्रशा की उदार पितृ-तुल्य शासन-नीति में विश्वास करता था) और केथोलिक दल (जो सामाजिक सुधार के लिए वचनबद्ध था) की सहायता से वह इस कार्य में सफलता प्राप्त कर सका।† समाजवादियों ने इस कार्य में बिस्मार्क से सहयोग नहीं किया। वह उनका सहयोग चाहता भी नहीं था क्योंकि उसकी इच्छा यह थी कि राज्य स्वयं अपनी ओर से मज़दूरों की दशा सुधारकर उन्हें यह प्रमाणित करदे कि राज्य एक बुरी वस्तु नहीं, बल्कि मज़दूरों का सच्चा हितैषी है और उनके प्रतिनिधियों की अपेक्षा उनका अधिक हित कर सकता है। यह नीति राज्य-समाजवाद (State Socialism) कहलाती है। सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए यह बिस्मार्क की मुख्य देन है। इस दिशा में बिस्मार्क मार्ग-प्रदर्शक था।‡ दूसरे देशों में उनके विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा और इँगलैण्ड तथा फ्रान्स ने उसका अनुकरण भी किया। परन्तु इन उपायों द्वारा मज़दूरों के असन्तोष को कम कर सकने तथा समाजवादी दल को नष्ट करने की उसकी आशा पूरी नहीं हुई। जर्मनी में इन सुधारों के होते हुए भी समाजवाद बड़ी तेजी से बढ़ता रहा।§

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 202.

† Hayes and Cole : History of Europe, vol. II, p. 272.

‡ Hazen : Modern European History, p. 371.

§ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 354. ये बीमा-क़ानून इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक आविष्कारों में समाज के रक्षण के दृष्टि से कोई आविष्कार इतना मूल्यवान नहीं हुआ जितना यह राज्य, स्वामी तथा मज़दूर, तीनों के सम्मिलित अंशदान पर आश्रित तथा औद्योगिक जीवन के घोरतम संकटों से मज़दूरों की रक्षा करने वाली बीमा-व्यवस्था का आविष्कार था। जर्मनी में क्रान्ति जो इतने दिनों तक टलती रही। उसका आंशिक कारण यह व्यवस्था थी जिसके द्वारा बिस्मार्क ने गरीबों पर से सामाजिक समाजवादी दल का प्रभाव बहुत कुछ कम कर दिया, यद्यपि वह दल दमन होते हुए भी निरन्तर बढ़ता जा रहा था। Fisher : A History of Europe' p. 1052.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संरक्षण—

बिस्मार्क ने एक दूसरी दिशा में भी मार्गदर्शक का काम किया। मुक्त व्यापार की नीति के, जो इंगलैंड में बड़ी सफलता प्राप्त कर चुकी थी, महाद्वीप में भी अनेक अनुयायी थे। जर्मनी में भी उसका काफी प्रचार था और बिस्मार्क भी उसमें विश्वास करता था परन्तु १८७८ के लगभग उसने उसका परित्याग करके संरक्षण-नीति को अपनाया। इसके तीन कारण थे। १८७७ में कृषि के क्षेत्र में मन्दी का ज़माना शुरू हुआ जिससे कृषि सम्बन्धी हितों, विशेषकर प्रशा के ज़मीदारों पर जिनके साथ उसे स्वाभाविक सहानुभूति थी, बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा। इन दिनों नई दुनिया की प्रतियोगिता बहुत बढ़ रही थी और उसके विरुद्ध संरक्षण की माँग उठी। कृषि के संरक्षण का अर्थ था उद्योग-धंधों का भी संरक्षण क्योंकि केवल कृषि के संरक्षण से औद्योगिक वर्गों की नाराज़ी का डर था। इसके अतिरिक्त वह जर्मनी को शक्तिशाली बनाना चाहता था जिसके लिए धन की आवश्यकता थी। धन उद्योगों से ही प्राप्त हो सकता था। जर्मनी के उद्योग-धन्धे विदेशी प्रतियोगिता के कारण बड़ी हानि उठा रहे थे। उनकी रक्षा तथा उन्नति मुक्त व्यापार की नीति को त्याग कर संरक्षण की नीति द्वारा ही हो सकती थी। इसके साथ ही साम्राज्य की आर्थिक स्थिति भी, जो केवल राज्यों की सहायता पर आश्रित थी, असन्तोषजनक थी जिसे सुधारने के लिए तीन साधन थे—(१) सीधे केन्द्रीय कर, (२) संघ के राज्यों द्वारा सहायता में वृद्धि और (३) राज्य की आमदनी बढ़ाने तथा राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण देने के लिए अप्रत्यक्ष केन्द्रीय कर। प्रथम दोनों साधनों में विरोध का डर था, प्रथम साधन का जनता की ओर से दूसरे साधन का राज्यों की ओर से। अतः बिस्मार्क ने तृतीय साधन पसन्द किया क्योंकि इसमें विरोध की न्यूनतम संभावना थी, इस स्रोत से आय भी काफी हो सकती थी, इससे संरक्षित हितों की मित्रता राज्य को प्राप्त हो सकती थी और बिस्मार्क जैसे चतुर राजनीतिज्ञ को राजनीतिक सौदे करने में अपूर्व अवसर भी प्राप्त हो सकते थे।* आयात-निर्यात कर के सम्बन्ध में उसका रूख अवसरवादी तथा यथार्थवादी था। वह कहा करता था कि 'इस विषय में मैं अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की किंचितमात्र भी परवाह नहीं करता। मैं देख रहा हूं कि संरक्षण-नीति का अवलम्बन करने वाले देश समृद्ध हो रहे हैं और मुक्त व्यापार के समर्थक अवनति कर रहे हैं।' वास्तव में बात यह थी कि १८७० के बाद जर्मनी में तथा अन्य देशों में भी प्रवृत्ति उदार अन्तर्राष्ट्रीयता से हटकर आर्थिक राष्ट्रीयता की ओर जा रही थी।† बिस्मार्क खाद्य पदार्थों के लिए जर्मनी को अन्य देशों पर आश्रित नहीं रखना

* Marriott : Europe and Beyond, p. 35.
† Slosson : Europe after 1870.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहता था और राष्ट्रीय उद्योगों की उन्नति करना चाहता था। १८७९ से उसने बाहर से आने वाले अन्न तथा अन्य माल पर भारी भारी कर लगाना शुरू किया। इन उपायों से जर्मनी का अपना बाज़ार तो जर्मनी के हाथों में बना ही रहा, इसके अतिरिक्त जो राज्य जर्मनी के माल के सम्बन्ध में रियायतें देते थे उन्हें अपनी ओर से भी रियायतें देकर उसने जर्मनी का व्यापार उन देशों से भी स्थापित कर लिया जिनके द्वार पहले उसके लिये बन्द थे। इस नीति से जर्मन उद्योग का बड़ा विस्तार हुआ और जर्मनी संसार के प्रमुख औद्योगिक देशों में गिना जाने लगा। बिस्मार्क से पहले १८७८ में ऑस्ट्रिया तथा इटली ने आयात कर में वृद्धि कर दी थी परन्तु बिस्मार्क की नीति का परिणाम यह हुआ कि इंगलैण्ड को छोड़ योरोप के समस्त देशों में संरक्षण की दिशा में प्रगति होने लगी।*

उपनिवेश-स्थापना—

औद्योगिक विकास तथा व्यापार की वृद्धि के साथ जर्मनी में बिस्मार्क के कार्यकाल के अन्तिम वर्षों में जर्मन औपनिवेशिक साम्राज्य का श्रीगणेश हुआ। आरम्भ में बिस्मार्क को उपनिवेश प्राप्त करने में जर्मनी का कोई हित नहीं दिखाई देता था। वह चाहता था कि जर्मनी अपना संगठन करके शक्तिशाली बने और औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा करके अन्य देशों की शत्रुता मोल न ले। १८७१ में उससे फ्रांस से अल्सास-लोरेन के बदले में फ्रेञ्च उपनिवेश स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। १८७३ में उसने कहा था कि 'उपनिवेश जर्मनी के लिये कमज़ोरी का एक कारण बन जायँगे क्योंकि उनकी रक्षा एक शक्तिशाली जहाज़ी बेड़े द्वारा ही हो सकेगी किन्तु जर्मनी की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उसे प्रथम कोटि की नाविक सत्ता बनने की आवश्यकता नहीं है। 'मुझे बहुत से उपनिवेश भेंट किये जा चुके हैं, परन्तु मैंने उन्हें स्वीकार नहीं किया'† यद्यपि वह स्वयं उपनिवेशों के पक्ष में नहीं था, फिर भी जर्मन व्यापारियों के व्यक्तिगत प्रयत्नों के फल-स्वरूप अफ्रिका तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपों में जर्मनी की व्यापारिक बस्तियां बसाई जा रही थीं। इन व्यापारिक कम्पनियों के प्रयत्नों से जर्मनी में उपनिवेशों की तरफ़ ध्यान दिया जाने लगा था और १८८० तक एक औपनिवेशिक दल तथा एक औपनिवेशिक सभा (Colonial Society) की स्थापना हो चुकी थी।

औपनिवेशिक व्यापारियों ने सरकार से सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न किये थे परन्तु बिस्मार्क ने उनके साथ कोई सहानुभूति प्रकट नहीं की थी। किन्तु

* Hayes and Cole : History of Europe, vol. II p. 273.

† Robertson : Bismarck, p. 420.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब उसने संरक्षण की नीति स्वीकार की और जर्मन उद्योग एवं व्यापार को सरकारी सहायता देना आरम्भ किया तो स्थिति बदल गई। बढ़ते हुए उद्योगों के लिये कच्चा माल प्राप्त करने और तैयार माल बेचने तथा बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए जर्मनी के बाहर बसने योग्य स्थान प्राप्त करने के लिए उसे उपनिवेशों की आवश्यकता नज़र आने लगी। उधर जर्मनी में इन दिनों राष्ट्रीयता उग्र रूप धारण करती जा रही थी और एक विश्व-शक्ति बनने की कामना बड़ी तेज़ी से जाग्रत हो रही थी जिसके लिये भी उपनिवेश स्थापित करने की मांग बढ़ रही थी। जब अफ्रिका तथा प्रशान्त महासागर के बटवारे के लिये योरोपीय राज्यों में प्रतिस्पर्धा होने लगी तो बिस्मार्क भी, जो अवसर-वादी एवं यथार्थवादी था, अपने व्यापार की रक्षा के लिये उपनिवेश प्राप्त करने के लिए तैयार हो गया। १८८४ से उसने व्यक्तिगत व्यापारियों तथा यात्रियों के कार्य को सहायता देना और उसका विस्तार करना आरम्भ किया। उस वर्ष जर्मनी ने दक्षिणी-पश्चिमी तथा पूर्वी अफ्रिका में कई स्थानों पर अधिकार कर लिया और अफ्रिका के बटवारे में अन्य राष्ट्रों के साथ सम्मिलित होकर जर्मनी के लिये एक विस्तृत परन्तु बिखरा हुआ साम्राज्य प्राप्त कर लिया जिसमें केमेरून, टोगोलैण्ड, जर्मन दक्षिणी-पश्चिमी तथा जर्मन पूर्वी अफ्रिका के प्रदेश सम्मिलित थे। प्रशान्त महासागर में भी उसने कुछ द्वीप प्राप्त कर लिये जिनमें न्यूगिनी का एक भाग भी था।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

नवीन जर्मनी

बिस्मार्क युग (१८७१-१८९०)

विदेश-नीति

बिस्मार्क की बाह्य नीति का मुख्य ध्येय योरोप में शान्ति क़ायम रखना था।* जर्मनी का निर्माण उसने सैनिकवाद के आधार पर किया था परन्तु सैनिकवाद उसके लिये साध्य नहीं, साधन था। उसका लक्ष्य पूरा हो चुका था; जर्मनी अब 'तृप्त' था; उसने योरोप में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था और वह उससे सन्तुष्ट था। वह जानता था कि अब युद्ध से जर्मनी को कोई लाभ नहीं था। इसके अतिरिक्त वह यह भी समझता था कि जर्मनी का अभी निर्माण ही हुआ था और उसे संगठित करने की आवश्यकता थी। देश के अन्दर धार्मिक एवं सामाजिक समस्याएँ भी थीं जिनका समाधान करना था। इसके अतिरिक्त जर्मनी का औद्योगिक विकास हो रहा था। इन सबके लिये शान्ति की आवश्यकता थी। अतः योरोपीय स्थिति को जैसी की तैसी ही बनाये रखना और शान्ति क़ायम रखना उसकी नीति के अनिवार्य उद्देश्य होना स्वाभाविक था।

योरोप की शान्ति दो प्रदेशों—अल्सास-लोरेन तथा बाल्कन प्रायद्वीप—के प्रश्नों पर ही भंग हो सकती थी। फ्रान्स अल्सास-लोरेन के प्रदेश छिन जाने से बड़ा असन्तुष्ट था। वह इस हानि तथा राष्ट्रीय अपमान को कभी नहीं भूल सकता था ‡ और उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। यह

* Brandenburg : From Bismark to the World War, p. 2.

‡ जब सन्धि की शर्तें राष्ट्रीय सभा के सामने पेश हुई थीं तो अल्सास-लोरेन के प्रतिनिधियों ने उसको अत्यन्त अन्यायपूर्ण और शक्ति का जघन्य दुरुपयोग कह कर उसका विरोध किया था। इस सन्धि को स्वीकार करने के कारण कई सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया था जिसमें से एक प्रख्यात विक्टर ह्यूगो था जिसने कहा था—'अब योरोप में दो राष्ट्र ऐसे हैं जो भयंकर प्रमाणित होंगे—एक (जर्मनी) इस कारण कि वह विजयी है और दूसरा (फ्रान्स) इस कारण कि वह पराजित है।' Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 281.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
निश्चित था कि वह इन प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने और जर्मनी के प्रतिकूल उत्पन्न होने वाली किसी भी परिस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न करेगा। अतः बिस्मार्क के लिये यह आवश्यक था कि फ्रान्स आन्तरिक दृष्टि से निर्बल रहे और योरोप में वह अकेला, मित्रहीन बना रहे ताकि वह प्रतिशोधात्मक युद्ध की बात ही न सोच सके। उसे अन्दर निर्बल बनाये रखने के लिये वह परोक्ष रूप से गणतन्त्री दल का समर्थन करता रहा क्योंकि उसके विचार में गणतन्त्र ही ऐसी वस्तु थी जिसके कारण फ्रान्स में अधिकतम मतभेद बना रह सकता था और वह सदा निर्बल रह सकता था। वह यह भी समझता था कि गणतंत्रीय फ्रान्स को बाहर से किसी बड़ी सत्ता की, जो सभी, एकतंत्रीय थीं, मित्रता प्राप्त नहीं होगी। इसके अतिरिक्त अल्सास-लोरेन की ओर से उसका ध्यान हटाने के उद्देश्य से वह उसकी औपनिवेशिक आकांक्षाओं को भी, विशेषकर उत्तरी अफ्रिका में, प्रोत्साहित करता रहा। इसमें एक अतिरिक्त लाभ भी था। इटली भी उत्तरी अफ्रिका में औपनिवेशक साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था और इस प्रकार दोनों में वैमनस्य बढ़ने की सम्भावना थी। योरोप में फ्रांस को एकाकी बनाये रखने के लिये ऐसा प्रयत्न करना आवश्यक था कि वह अन्य किसी भी देश से मित्रता न कर सके। जिन देशों से मित्रता हो सकती थी वे थे ऑस्ट्रिया-हंगरी, रूस, इटली तथा इंगलैण्ड। इंगलैण्ड तथा इटली से फ्रान्स की मित्रता की सम्भावना बहुत कम थी। इंगलैण्ड महाद्वीप के झमेलों से दूर रहना चाहता था, जर्मनी से उसका सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण था और औपनिवेशिक प्रश्नों पर फ्रान्स के साथ उसकी तनातनी भी चल रही थी। इटली की अभी बड़ी शक्तियों में गणना नहीं थी। इसके अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण बातों में (विशेषकर ट्यूनिस के विषय में) उन दोनों के हितों में परस्पर विरोध था। ऐसी दशा में फ्रान्स को यदि कोई शक्तिशाली मित्र प्राप्त हो सकते थे तो वे थे आस्ट्रिया और रूस।* इस कारण बिस्मार्क ने इन दोनों को फ्रान्स से दूर रखने और स्वयं उनको मित्र बनाने का प्रयत्न किया। ऑस्ट्रिया-हंगरी की मित्रता प्राप्त करना और उसे शक्तिशाली बनाये रखना उसकी नीति के आधार-स्तम्भों में से एक था क्योंकि उसके साम्राज्य में अ-जर्मन प्रजा अधिक थी और वह अधिकतर स्लाव थी जिसका स्वाभाविक आकर्षण रूस की ओर था। ऑस्ट्रिया-हंगरी के निर्बल हो जाने से उसके साम्राज्य के भंग तथा स्लाव प्रजा के रूस में शामिल हो जाने के फल-स्वरूप रूस की शक्ति की वृद्धि का भय था जो जर्मनी के लिये अनिष्टकारी होता।† ऑस्ट्रिया के साथ उसने प्राग की सन्धि में बड़ा उदार व्यवहार किया था जिससे उसे अपना राष्ट्रीय अपमान इतना अखर नहीं रहा था। जर्मन सम्राट

* Slosson : Europe after 1870, p. 74.
† Brandenburg : From Bismarck to World War, p. 3.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विलियम और ऑस्ट्रिया के सम्राट् फ्रान्सिस जोजेफ के पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छे थे। इसके साथ ही बिस्मार्क ने फ्रांसिस ज़ोज़ेफ़ के हृदय में अखिल-स्लाव आन्दोलन का भय भी बैठा कर उसे जर्मनी की मित्रता की आवश्यकता का विश्वास भी दिलाया और इस प्रकार ऑस्ट्रिया को फ्रांस से अलग रखने का प्रयत्न किया। रूस के साथ उसने पहले से ही अच्छे सम्बंध स्थापित कर रखे थे। रूस के ज़ार एलेक्ज़ेण्डर तथा जर्मन सम्राट् विलियम में परस्पर घनिष्ट मित्रता भी थी! इस मित्रता को उसने और भी दृढ़ करने का प्रयत्न किया। रूस तथा ऑस्ट्रिया को मित्र बनाने में उसका एक दूसरा उद्देश्य भी था। जैसा हम अभी कह चुके हैं, बिस्मार्क को अशांति का दूसरा स्रोत बाल्कन प्रायद्वीप में नज़र आता था जहाँ आस्ट्रिया तथा रूस दोनों के हित टकराते थे जिसके कारण दोनों में युद्ध छिड़ जाना और योरोप के शांति का भंग होना मामूली बात थी। दोनों को मित्र बनाकर वह युद्ध की आशंका को दूर रख सकता था। इसके साथ ही उसकी नीति का एक गौण उद्देश्य यह भी था कि वह स्वयं तो उन दोनों से घनिष्ट सम्बंध बनाये रहे, परंतु उन दोनों में पारस्परिक घनिष्ठता उत्पन्न न होने दे।*

तीन सम्राटों का संघ—

इस प्रकार बिस्मार्क ने अपनी बाह्य नीति के उद्देश्य निश्चित किये—जर्मनी की सहायता के लिए विभिन्न राष्ट्रों से सन्धियाँ करके गुट तैयार करना तथा विरोधी गुटों के निर्माण को रोकना और फ्रांस को एकाकी रखना। बिस्मार्क की बाह्य नीति में वास्तव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। १८७१ के पहले उसके लक्ष्य की प्राप्ति के लिए युद्ध आवश्यक था परन्तु शत्रु को एकाकी, मित्रहीन बनाना और विरोधी गुट न बनने देना उसकी नीति का मुख्य अंग थे। १८७१ के बाद भी उसकी नीति मुख्यतः विरोधी गुट न बनने देना ही रही। अब शत्रु केवल एक ही था—फ्राँस। अतः उसने फ्रांस को एकाकी रखना अपनी नीति का अतिरिक्त स्थायी अंग बना लिया† और शीघ्र ही उसके अनुसार कार्य आरम्भ किया। उसने १८७२ में जब कि ऑस्ट्रिया का सम्राट् फ्रांसिस जोज़ेफ और रूस का ज़ार द्वितीय एलेक्जेण्डर बर्लिन में सम्राट् विलियम से भेंट करने आये हुए थे, 'तीन सम्राटों के सघ' (Three Emperors' League--(Dreikaiserbund) का निर्माण किया। यह कोई निश्चित लिखित संधि या इक़रार नहीं था और न इसके द्वारा किसी ने कोई दायित्व ही स्वीकार किये थे। यह केवल कुछ महत्वपूर्ण बातों पर एक समझौता था, परन्तु समझौता पूर्ण था

* Marriott : Europe and Beyond, p. 36.
† Petrie : Diplomatic History (1713-1933), p. 229.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और जब तक कि बाल्कन प्रायद्वीप में ऑस्ट्रिया और रूस के हितों के संघर्ष से उसका भंग नहीं हुआ तब तक वह जर्मन कूटनीति की आधार शिला बना रहा। इस समझौते के द्वारा तीनों सम्राट् १८७१ में जो प्रादेशिक व्यवस्था हो चुकी थी उसे कायम रखने, निकट पूर्वीय (बाल्कन) समस्या का तीनों साम्राज्यों को मान्य समाधान ढूँढ़ निकालने तथा अपने-अपने देश में क्रान्तिकारी समाजवाद का दमन करने के लिए राजी हो गये। अगले तीन वर्षों में (१८७६ में वियना तथा सेंट पीटर्सबर्ग में १८७४ में इश्ल (Ishl) में और १८७५ में बर्लिन में) तीनों सम्राट् परस्पर मिलते रहे और समझौते की पुष्टि करते रहे।*

इस प्रकार तीनों सम्राटों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुए। १८७० के बाद यह बिस्मार्क की प्रथम कूटनीतिक विजय थी। ऊपर से देखने में तो यह समाजवाद के विरुद्ध तीन सम्राटों की व्यक्तिगत मैत्री थी परन्तु वास्तव में इसका गहरा राजनीतिक महत्व था। इसके द्वारा उसने फ्रांस के लिए आस्ट्रिया तथा रूस की मित्रता प्राप्त कर सकना कठिन कर दिया था, इसके साथ ही अपने शत्रु ऑस्ट्रिया को मित्र बना लिया था जिसका अर्थ यह था कि आस्ट्रिया सेडोवा के अपने अपमान को भूल कर जर्मनी को क्षमा कर चुका था, उसे प्रतिशोध की इच्छा नहीं थी और जर्मनी से अपने बहिष्कार को स्वीकार कर जर्मनी में अपने पूर्व प्राधान्य को पुनः प्राप्त करने की आशा का सदा के लिये परित्याग कर चुका था।† १८७३ में इटली के राजा विक्टर इमेन्युएल ने भी सम्राट् विलियम से बर्लिन में भेंट कर अपनी मित्रता का परिचय दिया और इस प्रकार फ्रांस का पृथक्करण पूर्ण हो गया।‡

त्रिदली मैत्री की निर्बलता—फ्रांस से युद्ध की आशंका—

किन्तु यह त्रिदली मैत्री अधिक दिनों तक कायम न रह सकी और शीघ्र ही इसकी आन्तरिक निर्बलता प्रकट हो गई। फ्रांस, जैसा हम आगे देखेंगे, बड़ी आश्चर्यजनक तेज़ी से उन्नति कर रहा था। जिसे देखकर बिस्मार्क को चिंता होने लगी थी। उसने युद्ध के हर्जाने की एक भारी रक़म फ्राँस पर लाद दी थी और उसको आशा थी कि उसके कारण फ्राँस एक पीढ़ी तक खड़ा न हो सकेगा। परंतु वह सारी रक़म उसने दो वर्ष में ही अदा कर दी थी। इसके अतिरिक्त वहाँ राज्यसत्तावादियों का ज़ोर बढ़ रहा था, सेना का पुनः सगठन हो रहा था और कुछ सैनिकवादी युद्ध तथा प्रतिशोध की बातें करने लगे थे। यह देखकर कुछ जर्मन अफ़सर-फ्रान्स अपनी पूर्व शक्ति को पुनः प्राप्त कर

* Marriott : Europe and Beyond, p. 37.
† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 376.
‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p 267.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सके उसके पहले ही, 'प्रतिकारात्मक युद्ध' की सलाह देने लगे। यह तो मालूम नहीं होता कि बिस्मार्क उनसे सहमत था परन्तु उसे यह विश्वास था कि समाचारपत्रों में युद्ध की आशंका की बातों से फ़्रान्स में डर बैठ जायगा और प्रतिशोध की भावना दब जायगी। * समाचारपत्रों में युद्ध की तात्कालिक आशंका पर लेख निकलने लगे। १५ अप्रेल को 'बर्लिन पोस्ट' नामक समाचार-पत्र में 'युद्ध की संभावना' नामक शीर्षक वाला एक स्पष्टतः प्रेरित लेख निकला। परन्तु इस बार बिस्मार्क ग़लती कर गया और फ़्रेंच प्रधान मंत्री देकाज़े (Duc Decazes) ने उसे कूटनीतिक खेल में पछाड़ दिया। ४ मई को लन्दन के टाइम्स पत्र के पेरिस में स्थित संवाददाता से भेंट करते हुए उसने बतलाया कि जर्मनी फ़्रांस से दस अरब फ़्रङ्क (४० करोड़ पौंड) २० किस्तों में वसूल करके उसे चूसना और इसकी अदायगी तक फ़्रांस के पूर्वी प्रदेशों में जर्मन सेना रखना चाहता है। इसी प्रकार के समाचार सेंटपीटर्सबर्ग में एलेक्ज़ेंडर के पास भी पहुँचे और महारानी विक्टोरिया को भी जर्मनी से उसकी कन्याओं ने इसी आशय के निजी पत्र भेजे। विक्टोरिया नें ज़ार को अपने प्रभाव से युद्ध रोकने का प्रयत्न करने के लिये लिखा और जून में स्वयं सम्राट् विलियम को अपनी मध्यस्थता का सुझाव देते हुए एक वैयक्तिक पत्र लिखा। ज़ार एलेक्ज़ेण्डर स्वयं अपने विदेश मन्त्री गोरचेकोव (Gorchakov) के साथ बर्लिन पहुचा। विलियम ने विक्टोरिया को पत्र लिख कर युद्ध की खबर को निराधार बतलाया और उसे शान्ति का आश्वासन दिया। युद्ध की आशंका तो मिट गई परन्तु इस घटना ने यह बतला दिया कि प्रत्येक दशा में जर्मनी फ़्रांस के विरुद्ध रूस की सहानुभूति पर निर्भर नहीं रह सकता। इस नगण्य सी घटना का महत्व इसी बात में है। †

ऑस्ट्रिया की तरफ़ झुकाव

सम्भवतः इसी समय से बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के साथ घनिष्टता बढ़ाने

---

* Slosson : Europe since 1870, p. 75. इस विषय पर मतभेद है। मेरियट के अनुसार इस बात में कोई संदेह नहीं है कि १८७४-७५ के शीतकाल में बिस्मार्क ने फ़्रांस से झगड़ा मोल लेने का प्रयत्न किया। स्वयं सम्राट् विलियम ने होहेनलोहे (Hohenlohe) से कहा था कि 'मैं फ़्रांस से युद्ध नहीं चाहता परंतु मुझे भय है कि धीरे-धीरे मुझे बिस्मार्क युद्ध में घसीट लेगा।' ब्रिटिश राजदूत लॉर्ड ऑडो रसेल ने भी बर्लिन से लॉर्ड डर्बी को लिखा था कि 'बिस्मार्क फिर पुरानी चालें चलने लगा है।' Marriott : Europe and Beyond, pp. 43-45.

† Slosson : Europe since 1870, p. 75.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का निश्चय कर लिया और जब १८७७ में रूस तथा टर्की में युद्ध छिड़ा (इसका वर्णन आप आगे पढ़ेंगे), टर्की को परास्त होकर सेन स्टिफ़ेनो की सन्धि स्वीकार करनी पड़ी और इंगलैण्ड के आग्रह पर इस प्रश्न पर विचार करने के लिये १८७८ में बर्लिन में योरोपीय काँग्रेस हुई तो बिस्मार्क ने 'निष्पक्ष दलाल' होने का दावा करते हुए भी अपना प्रभाव रूस के विरुद्ध ऑस्ट्रिया के पक्ष में डाला। बर्लिन की सन्धि पर अपने विचार प्रकट करते हुए द्वितीय एलेक्ज़ेण्डर ने कहा कि 'बिस्मार्क १८७० के अपने बचन भूल गया।' एक मित्र का पक्ष लेकर बिस्मार्क ने दूसरे मित्र को खो दिया। इस घटना ने भविष्य के उन दो महान अन्तर्राष्ट्रीय गुटों—त्रिगुट (Triple Alliance) तथा द्विगुट (Dual Alliance)—के बीज बोये जिनका योरोप के आधुनिक इतिहास में बड़ा महत्व है।*

त्रिदली मैत्री का भंग—द्विगुट का निर्माण—

इस पक्षपात से रुष्ट होकर एलेक्ज़ेन्डर त्रिदली मैत्री से अलग हो गया। इस मैत्री के भंग होने का कारण रूस तथा जर्मनी की यह क्षणिक फूट नहीं, बलिक रूस तथा ऑस्ट्रिया के हितों का स्थायी विरोध था। बर्लिन काँग्रेस से रूस को यह विश्वास हो गया कि आस्ट्रिया उसका शत्रु था और जर्मनी अविश्वसनीय मित्र। बिस्मार्क को अब बड़ा महत्वपूर्ण निश्चय करना था। उसे यह निश्चय करना था कि किसके साथ स्थायी मित्रता की जाय—रूस के साथ या ऑस्ट्रिया के साथ? उसने आस्ट्रिया के पक्ष में निश्चय किया, १८७९ में ऑस्ट्रिया के साथ सन्धि करके द्विगुट का निर्माण किया और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय गुट-निर्माण का वह सिलसिला शुरू किया जिसका प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ तक योरोपीय कूटनीति में प्राधान्य रहा। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि (१) यदि जर्मनी या ऑस्ट्रिया में से किसी पर रूस आक्रमण करे तो दोनों एक दूसरे को अपनी सम्पूर्ण सैनिक शक्ति से सहायता देंगे और दोनों मिलकर सन्धि करेंगे; (२) यदि जर्मनी या ऑस्ट्रिया में से किसी पर अन्य कोई शक्ति, उदाहरणार्थ फ़्रान्स, आक्रमण करे तो दूसरा मित्र तटस्थ रहेगा परन्तु यदि इस शत्रु को रूस की सहायता प्राप्त हुई तो दोनों मित्र अपनी पूरी सैनिक शक्ति के साथ मिलकर युद्ध करेंगे और मिलकर ही सन्धि करेंगे। यह संधि पाँच वर्ष के लिये तथा केवल रक्षात्मक थी और मुख्यकर रूस के विरुद्ध तथा गौण रूप से फ़्रान्स के विरुद्ध थी। इस संधि की शर्तें गुप्त रखी गईं और १८८७ तक प्रकाशित नहीं की गईं।

---

* Hazen : Modern European History, p. 375.

CC-0. Agamnigam Foundation, Chandigarh

सम्राट् विलियम को रूस की ओर से युद्ध की कोई आशंका नहीं थी उसने बड़ी कठिनाई से और बिस्मार्क के पदत्याग की धमकी देने पर ही इस सन्धि के लिये स्वीकृति दी।* उसे भय था कि जर्मनी द्वारा ठुकराया जाने पर रूस फ्रान्स की तरफ आकर्षित होगा। परन्तु बिस्मार्क ने कई कारणों से यह निर्णय किया था। सर्वप्रथम कारण तो यह था कि जर्मनी के समान ऑस्ट्रिया भी स्थितिपालक, तृप्त और शान्ति का इच्छुक था जबकि रूस को निकट पूर्व तथा सुदूर पूर्व में बड़ी बड़ी आकांक्षाएं थीं जिनके फलस्वरूप जर्मनी को युद्ध में शामिल होना पड़ता। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया का राजवंश जर्मन था और जर्मन लोकमत एक जर्मन सम्राट् के विरुद्ध एक अ-जर्मन सम्राट् से मित्रता पसन्द न करता। उस समय रूस नाराज़ भी था और ऑस्ट्रिया अपनी सुरक्षा के लिये जर्मनी से सन्धि करने के लिये तैयार था। इनके साथ ही इस निर्णय का एक व्यक्तिगत कारण भी था। बिस्मार्क रूसी विदेश मंत्री गोरचेकोव से अप्रसन्न था और उसे अविश्वनीय समझता था। इसके विपरीत वह समझता था कि ऑस्ट्रिया के मन्त्री एण्ड्रेसी (Andrassy) के साथ वह गुप्त मन्त्रणा कर सकता था और मिलकर काम कर सकता था। साथ ही उसे यह भी विश्वास था कि रूस की नाराजी अधिक दिनों नहीं रहेगी और शीघ्र ही त्रिदली मैत्री को पुनः स्थापित कर सकने की उसे आशा भी थी।

तीन सम्राटों के संघ की पुनः स्थापना—

बिस्मार्क की आशा व्यर्थ नहीं हुई। रूस फ्रान्स की तरफ नहीं झुका और जब बिस्मार्क ने तीनों सम्राटों की मैत्री को पुनः स्थापित करने का प्रस्ताव किया तो उसने उसका स्वागत किया। इसका कारण यह था कि द्वितीय एलेक्जेण्डर की १८८१ में मृत्यु हो चुकी थी और उसका उत्तराधिकारी तृतीय एलेक्जेण्डर (१८८१-१८९४) ऑस्ट्रिया से नया झगड़ा मोल लेने की जगह अपने राज्य में विद्रोह दमन के लिये अधिक चिन्तित था। उसे अराजकता की शक्तियों के विरुद्ध जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया के स्थितिपालक साम्राज्यों की सहायता की आवश्यकता दिखाई देती थी। बर्लिन, सेंटपीटर्सवर्ग तथा वियना इन तीनों राजधानियों में यह विश्वास जमा हुआ था कि यदि युद्ध छिड़ गया तो क्रान्ति हो जायगी।‡ अतः १८८१ में तीनों सम्राटों में तीन वर्ष के लिये समझौता हो गया जिसके द्वारा यह

---

*Gooch : History of Modern Europe, p. 45.

†जर्मन नीति के विशेषज्ञ डॉसन ने इस सन्धि को बिस्मार्क की महान् भूल बतलाया है। Slosson : Europe since 1870, p. 77.

‡Petrie : Diplomatic History (1713-1933), p. 232.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तै हुआ कि यदि तीनों में से किसी को एक चतुर्थ शक्ति में युद्ध करना पड़े तो शेष मित्र तटस्थ रहेंगे और युद्ध को सीमित करने का प्रयत्न करेंगे।

त्रिगुट—

इसके उपरान्त बिस्मार्क ने इटली से भी मित्रता कर ली। इससे कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि इटली की इच्छा योरोप की महान् शक्तियों में गिने जाने की थी और यह कार्य किसी महान् शक्ति से मित्रता किये बिना नहीं हो सकता था। फ्रान्स उसका स्वाभाविक मित्र बन सकता था परन्तु उन दिनों वहाँ रोमन केथोलिक दल का बड़ा ज़ोर था जो पोप को फिर से रोम दिलाना चाहता था और इस आन्दोलन से इटली बड़ा भयभीत था। इसके साथ ही उत्तरी अफ्रिका में स्थिति ट्यूनिस के प्रदेश पर दोनों के दाँत थे। बिस्मार्क ने इस स्थिति से लाभ उठाया। उसने रोमन केथोलिक भय को बढ़ाकर बतलाया और उधर फ्रान्स को ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिये प्रोत्साहित किया। १८८१ में फ्रान्स ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। इससे क्रुद्ध होकर और रोम हाथ से निकल जाने की सम्भावना से भयभीत होकर इटली जर्मनी तथा आस्ट्रिया की सन्धि में शामिल हो गया। २० मई १८८२ को इटली ने ५ वर्ष के लिये सन्धि कर ली।* इस सन्धि की शर्तें गुप्त थीं और बाद में भी प्रकाशित नहीं की गईं। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि उनके द्वारा यह निर्णय हुआ कि यदि इटली पर फ्रांस आक्रमण करे तो जर्मनी तथा आस्ट्रिया इटली की सहायता करेंगे और ऐसी ही अवस्था में इटली भी दोनों मित्रों की सहायता करेगा। यह सन्धि ५ वर्ष लिये हुई थी और बाद में समय समय पर कई बार उसकी पुनरावृत्ति हुई। इटली के शामिल हो जाने के साथ द्विगुट त्रिगुट में परिवर्तित हो गया। बिस्मार्क की यह बड़ी जबरदस्त कूटनीतिक सफलता थी क्योंकि इस सन्धि के द्वारा उसने दो परम्परागत शत्रुओं—ऑस्ट्रिया तथा इटली—को, जिनके बीच संघर्ष के कारण अब भी विद्यमान् थे, एक गुट में शामिल कर लिया था। वास्तव में इस सन्धि का कारण इटली का फ्रान्स के प्रति क्रोध था, जर्मन तथा आस्ट्रिया के प्रति सद्भावना नहीं।† आरम्भ में तो यह सन्धि रक्षात्मक थी परन्तु आगे चलकर जब इटली को पोप के पक्ष में फ्रान्स

---

*इटली फ्रान्स से इस कारण भी डरता था कि उसे उसके गणतंत्रीय प्रचार से अपने एकतंत्रीय शासन तथा सामाजिक व्यवस्था को भी भय मालूम होता था। Dickinson : International Anarchy, p. 81

†Holland Rose : The Development of the European Nations. vol. II, p. 15.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क हस्तक्षेप का भय न रहा और अपनी औपनिवेशिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये नये क्षेत्र प्राप्त हो गये तो उसने अपने मित्रों से बाल्कन प्रायद्वीप में इटली के हितों की स्वीकृति और भूमध्यसागर में उसकी आकांक्षाओं के समर्थन का वचन ले लिया।*

इस त्रिगुट के निर्माण के साथ बिस्मार्क की व्यवस्था पूर्ण हो गई। अब इस मैत्री के आधार पर मध्य-योरोप में जर्मनी का प्राधान्य सुरक्षित था। बिस्मार्क को आशा थी कि इटली के द्वारा इंगलैंड भी इस गुट में शामिल हो जायगा। उसकी यह आशा तो पूर्ण नहीं हुई परन्तु फ्रान्स अकेला पड़ गया। इस सन्धि से इटली को लाभ ऑस्ट्रिया से अधिक हुआ क्योंकि इसके अनुसार फ्रान्स का आक्रमण होने पर वह इटली की सहायता करने को वचनबद्ध था, परन्तु रूस के आक्रमण के विरुद्ध उसे ऑस्ट्रिया की सहायता करना आवश्यक नहीं था। इसके अतिरिक्त इस सन्धि से उसे ऑस्ट्रिया की ओर से कोई भय नहीं रहा। बिस्मार्क को कभी कभी भय होता था कि कहीं इटली फ्रांस के साथ जर्मनी पर आक्रमण करने में शामिल न हो जाय। उसका यह डर मिट गया और ऑस्ट्रिया को फ्रान्स तथा रूस से युद्ध छिड़ने पर पीछे से इटली के आक्रमण का भय न रहा।‡

रूस के साथ सुरक्षा सन्धि—

रूस के रुख का बिस्मार्क को सदा ध्यान रहता था और वह उसे किसी भी प्रकार से अपने साथ मिलाये रखना चाहता था। वह १८८१ के तीनों सम्राटों के संघ की पुनरावृत्ति करना चाहता था। इस प्रयत्न में उसे सफलता प्राप्त हुई और मार्च १८८४ में बर्लिन में एक सन्धि (Reinsurance Treaty) पर हस्ताक्षर हुए जिसकी पुष्टि सितम्बर में तीनों सम्राटों ने स्कियनविस (Skiernewice) की भेंट में की। इस सन्धि के द्वारा निम्नलिखित शर्तें तै हुईं। (१) यदि तीनों मित्रों में से कोई किसी चौथी शक्ति से युद्ध छेड़े तो शेष दोनों तटस्थ रहेंगे। (२) यदि बाल्कन प्रायद्वीप में कोई झगड़ा हो तो तीनों मित्र अपने अपने हितों का ध्यान रखेंगे और मतभेद की स्थिति में तीसरे मित्र का मत निर्णायक होगा। (इसी के साथ यह भी तै हुआ कि ऑस्ट्रिया यदि चाहे तो बॉस्निया और हर्ज़ीगोविना को अपने राज्य मे शामिल कर ले और नबीबाजार पर अधिकार कर ले।) (३) यदि 'परिस्थितिवश' बलगारिया तथा पूर्वी रूमानिया शामिल हो जाँय तो तीनों मित्रों में से कोई उसका विरोध नहीं करेगा। (४) तीनों मित्रों में से कोई भी बाल्कन प्रान्तों (Principalities) पर अधिकार नहीं करेगा। सन्धि तीन वर्ष के लिये थी।

* Slosson : Europe since 1870, p. 79.
‡ Petrie : Diplomatic History (1713-1933). pp. 234-235.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आश्चर्य की बात है कि इस संधि से जर्मनी और ऑस्ट्रिया को ही लाभ था, रूस को नहीं। फिर भी उसने संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। उसका कारण, जैसा हम अभी देख चुके हैं, शायद यही था कि अपने राज्य में क्रान्तिकारी आन्दोलन के विरुद्ध वह इन स्थितिपालक राज्यों की सहायता चाहता था।* इन दिनों योरोप में उदारवाद का ज़ोर बढ़ रहा था जिसका सबसे प्रबल समर्थक ग्लेड्स्टन था। मध्य-एशिया में इंगलैंड तथा रूस में तनातनी बढ़ रही थी और रूस को योरोप में मित्रों की आवश्यकता थी। बिस्मार्क भी औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की ओर झुक रहा था और उसे इस सम्बन्ध में इंगलैंड से संघर्ष होने का डर था। इन्हीं सब कारणों से संधि हो सकी। परन्तु रूस इस संधि के बंधनों को अधिक न सह सका और जैसा हम अभी देखेंगे, उसने शीघ्र ही उन्हें तोड़ फेंका।

रूस के साथ सुरक्षा सन्धि की पुनरावृत्ति—

त्रिगुट को पुनर्जीवित करके बिस्मार्क ने रूस की तरफ़ ध्यान दिया। सम्राट् विलियम तथा तृतीय एलेक्ज़ेण्डर के परिस्परिक सम्बन्ध अब भी अच्छे थे। जून १८८७ में एलेक्जेण्डर बर्लिन पहुँचा और बिस्मार्क ने उसे विश्वास दिलाया कि बल्गारिया के संबंध में जो पत्र आदि उसे बतलाये गये थे और जिनके कारण वह उससे अप्रसन्न था वे सब जाली थे। ज़ार भी मान गया। परन्तु तीनों सम्राटों के संघ को पुनर्जीवित करना असम्भव था क्योंकि रूस और ऑस्ट्रिया के बीच काफ़ी वैमनस्य पैदा हो चुका था। अतः बिस्मार्क ने केवल रूस के साथ ही तटस्थता की संधि का प्रस्ताव किया। दोनों ने तीन वर्ष के लिये एक गुप्त संधि कर ली जिसके द्वारा किसी देश से किसी एक का युद्ध छिड़ने पर दूसरे ने तटस्थ रहने का वचन दिया और यह भी तै हुआ कि यदि ऑस्ट्रिया अथवा फ़्रांस पर दोनों में से किसी ने आक्रमण किया तो यह तटस्थता बाध्य नहीं रहेगी। इसके साथ ही बिस्मार्क ने बल्गारिया तथा पूर्वी रूमानिया में रूस के प्राधान्य को और डार्डेनेलीज़ के जलसंयोजक के प्रश्न में रूस के हितों को स्वीकार किया।‡

बिस्मार्क का विसर्जन—

यह संधि बिस्मार्क की महान् कूटनीतिक रचनाओं में अंतिम थी और १८९० में उसके पदत्याग तक बनी रही। इन कूटनीतिक प्रबन्धों द्वारा बिस्मार्क अपनी बाह्य नीति के मुख्य उद्देश्यों—फ़्रान्स को अकेला रखने तथा ऑस्ट्रिया

---

* Holland Rose : The Developement of the European Nations, vol. II, p. 20.

‡ Slosson : Europe since 1870, p. 81.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और रूस को मित्र बनाये रखने—को पूर्ण कर सका। प्रथम उद्देश्य तो अच्छी तरह पूरा हो सका परन्तु दूसरा उद्देश्य पूरा करना इतना सरल नहीं था और अपने प्रधान मन्त्रित्व के अंतिम दो वर्षों में रूस तथा ऑस्ट्रिया के बीच समतोलन कायम रखने में उसे काफ़ी कठिनाई हुई। फिर भी जैसे-तैसे वह दोनों को जर्मनी के साथ बनाए रहा। परंतु १८८८ के बाद स्थिति उसके प्रतिकूल होने लगी। ९ मार्च १८८८ को सम्राट् विलियम का ९१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। उसके बाद उसका पुत्र तृतीय ,फ्रेडरिक सम्राट् बना परंतु वह गले के केन्सर से पीड़ित था। वह पूरे १०० दिन भी सम्राट् न रहा। १५ जून को उसकी मृत्यु हो गई और उसका द्वितीय पुत्र विलियम सम्राट् बना। वह जर्मनी का अंतिम सम्राट् था। प्रथम विलियम की बिस्मार्क से अच्छी तरह पटती थी, यद्यपि कभी कभी वह बिस्मार्क से बड़ा असंतुष्ट हो जाता था। परन्तु द्वितीय विलियम प्रथम विलियम के समान सहनशील नहीं था और उसकी तरह बिस्मार्क के हाथों में कठपुतली की तरह नहीं रहना चाहता था। वह स्वयं शासन करना चाहता था। उसका बिस्मार्क से कई बातों में मतभेद था। बिस्मार्क रूस के साथ सुरक्षा-संधि की पुनरावृत्ति करना चाहता था। परन्तु द्वितीय विलियम उसके लिये तैयार नहीं था क्योंकि तुर्की साम्राज्य के प्रति उसकी नीति भिन्न थी। वह कॉस्टेण्टीनोपल में रूस के प्रभाव के स्थान पर जर्मन प्रभाव और बल्गारिया के साथ जर्मनी का निकट सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। इस प्रकार उसकी नीति रूसी-विरोधी थी और उसमें उसे ऑस्ट्रिया, इटली और इंगलैंड के सहयोग की अधिक आवश्यकता थी। बिस्मार्क रूस से बिगाड़ करना नहीं चाहता था। बाह्य नीति के इस आधारभूत तत्व पर दोनों में समझौता असंभव था। * सम्राट् और प्रधान मंत्री के संघर्ष का मुख्य कारण यही था। इसके अतिरिक्त अन्य कई बातों पर दोनों मे तीव्र मतभेद था। बिस्मार्क समाजवादियों के विरुद्ध बने हुए क़ानूनों की पुनरावृत्ति चाहता था परंतु सम्राट् उनसे समझौता करना चाहता था। मंत्रियों के साथ सम्राट् के सम्बंध के विषय में भी दोनों में खटक गई। सम्राट अपने मंत्रियों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहता था प्रधान मंत्री के द्वारा नहीं, परन्तु बिस्मार्क इसके लिये तैयार नहीं था। अतः सम्राट् ने बिस्मार्क से इस्तीफा माँगा और उसे पद त्याग करना पड़ा। इन अनेक बातों पर मतभेद के कारण बिस्मार्क को हटना पड़ा परंतु वास्तविक कारण तो यह था कि जर्मनी में दो स्वामी नहीं हो सकते थे। अभी तक बिस्मार्क जर्मनी का वास्तविक शासक था परंतु अब द्वितीय बिलियम अपने पितामह की तरह कठपुतली बनने के लिये बिलकुल तैयार नहीं था। बिस्मार्क इतना बुड्ढा हो गया था कि सेवक बनना नहीं सीख सकता

* Robertson : Bismarck, p. 471.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था और द्वितीय विलियम इतना युवक था कि उसमें प्रतीक्षा करने के लिये धैर्य नहीं था। बिस्मार्क का पतन राजनीतिक कारणों से नहीं, व्यक्तिगत कारणों से हुआ।*

बिस्मार्क की बाह्य नीति की समीक्षा—

बिस्मार्क की बाह्य नीति के दो रूप थे। १८७१ तक प्रशा का प्रधान मन्त्री था और उसका उद्देश्य प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण, अथवा यों कहिये कि जर्मनी को प्रशा में विलीन करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ऑस्ट्रिया तथा फ्रान्स से युद्ध करना आवश्यक था और, जैसा हम देख चुके हैं, उसने दोनों को भड़का कर उन्हें युद्ध छिड़वाकर उन्हें परास्त कर दिया। उन दिनों उसकी नीति आक्रामक, 'रक्त-प्रवाह तथा शस्त्र प्रयोग' की थी। इस नीति में वह सफल हुआ और उसका उद्देश्य पूर्ण हुआ। १८७१ के बाद स्थिति बदल गई। अब उसे जर्मनी का संगठन करना था जिसके लिये शान्ति की आवश्यकता थी। अतः उसकी बाह्य नीति का रूप बदला और वह शान्ति-प्रिय हो गई और अन्त तक वैसी ही बनी रही। योरोप में शांति बनाये रखने के लिये वह जर्मनी के लिये अधिक से अधिक मित्र प्राप्त करना और जर्मनी के प्रधान शत्रु फ्रान्स को असहाय मित्रहीन अवस्था में बनाये रखना आवश्यक समझता था। इस दृष्टि से उसने अन्य देशों से संधियाँ करना और गुट बनाना शुरू किया और योरोप के कूटनीतिक इतिहास में एक नई बात आरम्भ की। पहले भी गुट बना करते थे परन्तु उनका निर्माण युद्ध-काल में होता था और वे युद्ध के लिए तथा प्रायः युद्ध काल तक ही रहते थे। परन्तु बिस्मार्क ने शांतिकाल में युद्ध रोकने और शांति बनाए रखने के लिए तथा आत्म रक्षा के निमित्त गुट बनाने की प्रथा शुरू की। उसने ऑस्ट्रिया से मिलकर द्विगुट बनाया और इसमें इटली को सम्मिलित कर उसे त्रिगुट का रूप दिया। रूस को भी उसने वर्षों तक 'तीन सम्राटों के संघ' में शामिल रखा। इन मुख्य संधियों के अतिरिक्त उसने योरोप में शाँति बनाए रखने के उद्देश्य से १८८१ में आस्ट्रिया और सर्बिया के बीच तथा १८८३ में आस्ट्रिया और रूमानिया के बीच भी संधियाँ करवाईं।† उसने इंगलैण्ड को भी गुट में शामिल करने का प्रयत्न किया। इसमें उसे सफलता तो नहीं मिली परंतु उसने इंगलैंड के साथ अच्छा सबंध रखा। १८८७ में उसने प्रोत्साहन देकर इंगलैण्ड आस्ट्रिया तथा इटली के बीच भूमध्यसागर में स्थिति को यथावत् कायम रखने तथा अन्य शक्तियों के अतिक्रमण को रोकने के लिए समझौते करवाए।‡ इस प्रकार उसने विभिन्न राज्यों से संधियाँ एवं समझौते करके जर्मनी के लिए एक बड़ी पेचीदा

*Gooch : History of Europe, p. 194.
†Petrie : Diplomatic History (1713-1933), p. 235.
‡Slosson : Europe since 1870, p. 80.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रक्षात्मक व्यवस्था की। इस व्यवस्था में बड़े पेच, अन्तर्विरोध और कमज़ोरियाँ थीं। ऑस्ट्रिया, रूस तथा इटली उसके मित्र थे। वस्तुतः आस्ट्रिया तथा रूस की मित्रता उसकी बाह्य नीति की आधार-शिला थी। परन्तु ऑस्ट्रिया और रूस के हित बाल्कन प्रायद्वीप में टकराये थे और वे दोनों कभी एक साथ एक गुट में नहीं रह सकते थे। उन दोनों को अपने साथ रखने में बिस्मार्क को अपनी समस्त कूटनीतिक चतुराई का प्रयोग करना पड़ा, फिर भी बीच-बीच में विक्षेप पड़ता ही रहा। इसी प्रकार इटली तथा ऑस्ट्रिया पुराने शत्रु थे। जब तक इटली को फ़्रान्स की ओर से भय रहा तब तक तो वह त्रिगुट में चुपचाप बना रहा परन्तु आगे चल कर उसका रुख अनिश्चित हो गया और जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा तो इटली तटस्थ रहा तथा बाद में जर्मनी के शत्रुओं से मिल गया। रूस तो बिस्मार्क के पतन के बाद ही अलग हो गया। इन कठिनाइयों के कारण उसने जो विभिन्न सन्धियाँ की उनका पालन भी बड़ा कठिन था, उदाहरणार्थ १८७९ की सन्धि के अनुसार यदि रूस ऑस्ट्रिया पर आक्रमण करता तो जर्मनी ऑस्ट्रिया की सहायता के लिये वचनबद्ध था। रूस के साथ १८८७ में जो सन्धि हुई उसके अनुसार यदि ऑस्ट्रिया तथा रूस में युद्ध छिड़ता तो जर्मनी को तटस्थ रहना पड़ता। इससे १८७९ की सन्धि का भंग तो नहीं होता परन्तु प्रायः यह निर्णय करना कि आक्रामक कौन है बड़ा कठिन होता। ऐसी अवस्था में सन्धि का यथोचित पालन करना अत्यन्त कठिन होता। यह सब अत्यन्त पेचीदा व्यवस्था थी और उसे कार्यान्वित करना बिस्मार्क जैसे चतुर बाजीगर का ही काम था। सम्राट् विलियम बिस्मार्क को एक ऐसा बाजीगर बतलाता था जो एक साथ ही पाँच गेंदों (आस्ट्रिया, रूस, इटली, फ्रान्स तथा इङ्गलैण्ड) से खेल सकता था जिनमें से कम से कम दो सदा हवा में रहती थीं। कुछ भी हो, इस व्यवस्था से वह अपना उद्देश्य पूर्ण कर सका। उसने अपने कार्यकाल में फ़्रान्स को कोई मित्र नहीं मिलने दिया और योरोप में शान्ति कायम रखी।

इतना होते हुए भी उसकी बाह्य नीति में अनेक दोष थे। सर्वप्रथम दोष तो यही था कि, जैसा हम अभी देख चुके हैं, उसका आधार—ऑस्ट्रिया तथा इटली की मित्रता—बड़ा कमज़ोर था। उसमें इङ्गलैण्ड या फ़्रान्स के लिये कोई स्थान नहीं था। इङ्गलैण्ड मित्र बन सकता था परन्तु रूस की मित्रता बनाये रखने के लिये उसने उसे मित्र बनाने के कई अवसर खो दिये।* यह सत्य है कि उसके पदत्याग के समय जर्मनी का इङ्गलैण्ड से सम्बन्ध अच्छा था। वास्तव में

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 378.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह तटस्थ और निष्पक्ष था परन्तु बिस्मार्क ने जो गुट-व्यवस्था की थी उसमें अधिक समय तक तटस्थता असम्भव ही नहीं, ख़तरनाक भी थी। फ़्रांस को उसने एकाकी अवश्य बनाये रखा परन्तु वह उसे न कमज़ोर कर सका और न उसके असन्तोष को मिटा ही सका। वास्तव में उसने उसके विरुद्ध एक विशाल गुट खड़ा कर दिया था जिससे डर कर उसे अन्त में अपने लिए मित्र ढूँढ़ना ही पड़ा। जब तक बिस्मार्क रहा तब तक तो फ़्रांस अकेला बना रहा परन्तु उसके पदत्याग के बाद उसने रूस से सन्धि करके एक जर्मन-विरोधी गुट बना लिया। बिस्मार्क ने एक बार कहा था कि जर्मन विरोधी 'गुटों की कल्पना मुझे विभीषिका प्रतीत होती है।'* वह उनसे बड़ा डरता था और जीवन भर उनके निर्माण को रोके रहा परन्तु उसके बाद विरोधी गुट का निर्माण हो ही गया। किन्तु यह उसकी नीति का ही परिणाम था। जिस वस्तु से वह डरता था उसे उसी ने जन्म दिया था। इसके अतिरिक्त, जैसा हम देख चुके हैं, यह व्यवस्था अत्यन्त पेचीदा थी। बिस्मार्क तो उसे सम्हाले रहा परन्तु उसके बाद वह कायम न रह सकी। अन्त में, यद्यपि यह व्यवस्था शान्ति के लिये की गई थी और इससे कुछ समय के लिए शान्ति स्थापित भी रही, तो भी अन्त में उसने योरोप को दो सशस्त्र शिविरों में विभिक्त कर दिया और यह अनिवार्य कर दिया कि भावी युद्ध एक साधारण स्थानीय युद्ध न होकर एक महायुद्ध हो।

चरित्र—

बिस्मार्क एक अलौकिक प्रतिभाशाली पुरुष था। उन्नीसवीं शताब्दी के इतिहास में उसका स्थान सदा प्रमुख रहेगा। अपनी शक्तियों की राजनीतिक अभिव्यक्तियों की दृष्टि से तथा अपने कार्यों से उसने संसार के इतिहास पर जो प्रभाव डाला उसकी दृष्टि से वह अपने युग के समस्त पुरुषों में महान् था।† उसका जन्म प्रशा में हुआ था और प्रशा की भक्ति उसके रोम-रोम में व्याप्त थी। १८५० में उसने कहा था कि 'हम प्रशा के हैं और प्रशा के ही रहेंगे।' प्रशा की भक्ति उसके जीवन का आदर्श रही और उसने अपना जीवन प्रशा की उन्नति में ही लगाया। जिस समय वह प्रशा का प्रधान मन्त्री बना उस समय प्रशा जर्मनी का एक मामूली राज्य था जिसकी योरोपीय राजनीति में कोई खास पूछ नहीं थी और जिसे सदा आस्ट्रिया की धमकियाँ सहनी पड़ती थीं। स्वयं जर्मनी भी शताब्दियों से विभक्त, निर्बल और असहाय था। परन्तु बिस्मार्क ने नौ वर्षों में ही जर्मनी का कायाकल्प कर दिया और उसे राष्ट्रीय एकता प्रदान की। जिस प्रशा को योरोपीय सत्ताएँ तुच्छ समझ कर अनुग्रह की दृष्टि से देखा

*Gooch : History of Modern Europe, p. 36.

†Ketelbey : A History of Modern Times, p. 234.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करती थीं उसे बिस्मार्क ने जर्मन-साम्राज्य का रूप देकर योरोप का सबसे शक्तिशाली और प्रमुख राज्य तथा योरोपीय राजनीति का केन्द्र बना दिया और योरोप की राजनीतिक राजधानी को वियना अथवा पेरिस से हटाकर बर्लिन पहुँचा दिया।

कुशल कूटनीतिज्ञ—

उन्नीसवीं शताब्दी के इस महान् कार्य का सम्पादन करने में बिस्मार्क ने अपनी अपूर्व कूटनीतिज्ञता एवं राजनीतिज्ञता का परिचय दिया। एक कुशल राजनीतिज्ञ के समान वह परिस्थिति को बड़ी अच्छी प्रकार समझता था और परिस्थिति के अनुकूल कार्य करने में बड़ा दक्ष था। वह जर्मनी का एकीकरण करना चाहता था परन्तु ऐसा करना योरोप के विभिन्न राज्यों द्वारा स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को मिटाकर नई व्यवस्था करना था जिसमें योरोपीय सत्ताओं के विरोध का भय था। उसे जर्मनी को केवल एक ही नहीं करना था, उसे प्रशा में विलीन भी करना था जो ऑस्ट्रिया की शक्ति, उसके विरोध तथा अन्य जर्मन राजाओं की मनोवृत्ति के कारण और भी कठिन कार्य था। १८५० तक जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण के कई प्रयत्न हो चुके थे। उनकी विफलता को देखकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जर्मनी की एकता जनता के प्रयत्नों तथा उदारवाद एवं पार्लामेण्टरी कार्य प्रणाली द्वारा नहीं बल्कि प्रशा के नेतृत्व में और प्रशा के परम्परागत शस्त्र—बल प्रयोग तथा कूटनीति—के द्वारा ही संभव हो सकेगी। वह यह भी जानता था कि इस कार्य को योरोप का कोई भी राज्य पसन्द नहीं करेगा। अतः उसे इस ढंग से काम करना था कि उसके कार्य में कहीं से कोई बाधा न आ सके। वह एक अत्यन्त कुशल कूटनीतिज्ञ था। एक चतुर कलाकार की भाँति वह उपयुक्त सामग्री पसन्द करना और उसका यथोचित प्रयोग करना जानता था। वह बड़ा दूरदर्शी था और बहुत पहले से जो कुछ करना था उसकी सांगोपांग योजना तैयार रखता था। कब कौनसा कदम उठाना है, किस प्रकार उठाना है, उसके लिये क्या क्या तैयारी करना है इन सब बातों को वह अच्छी प्रकार सोच रखता था और उपयुक्त अवसर आने पर वह अपनी पूरी शक्ति एवं मनोयोग से कार्य में जुट जाता था। वह पक्का अवसरवादी था। वह समझता था कि सच्ची अवसरवादिता केवल अवसर प्राप्त होने पर उसे न चूकने में ही नहीं, अवसर पैदा कर लेने में भी है।* वह अवसर पैदा करना भी जानता था। भविष्य को ध्यान में रखते हुए, १८६३ में पोलेण्ड में रूस को सहायता देना कील का बन्दरगाह प्राप्त करने तथा अपने स्वामी को ऑस्ट्रिया के सम्राट् और जर्मन राज्य-संघ से विलग करने के दोहरे उद्देश्य से

* Roberrson : Bismarck, p. 220.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डेन्मार्क से झगड़ा करना; श्लेस्विग-हॉल्स्टाइन की समस्या में पहले ऑस्ट्रिया का उपयोग करना और बाद में उसे भड़काकर उसे आक्रामक प्रकट करना तथा रक्षात्मक युद्ध के बहाने से उसे परास्त करना; परास्त करने के बाद उससे तुरन्त सन्धि कर लेना और प्रशा के राजा द्वारा उसे अपमानित होने से बचाना; इस युद्ध में रूस तथा फ्रान्स को चतुराई से तटस्थ रखना और बाद में नेपोलियन को मूर्ख बनाना; पुराने जर्मन राज्य-संघ को भङ्ग करके प्रशा के आधिपत्य में उत्तरी जर्मनी का नवनिर्माण करना; स्पेन के सिंहासन पर एक जर्मन राजकुमार को आसीन करने का प्रयत्न करके नेपोलियन को भड़काना, एम्स के तार का जर्मन तथा फ्रेञ्च जनता में युद्ध की मनोवृत्ति पैदा करने में उपयोग करना और नेपोलियन को उत्तेजित कर उससे युद्ध की घोषणा करवाना; युद्ध में रूस, ऑस्ट्रिया तथा इटली को तटस्थ रखना; दक्षिण जर्मनी के राज्यों को नेपोलियन का भय बतलाकर युद्ध में अपने साथ शामिल कर लेना; युद्ध के उपरान्त उन राज्यों को समझा-बुझाकर उत्तरी जर्मन राज्य-संघ में शामिल करके जर्मन साम्राज्य का निर्माण करना; उसके बाद फ्रान्स को एकाकी तथा निर्बल रखने के लिये ऑस्ट्रिया तथा इटली को, जिनमें परम्परागत शत्रुता चली आ रही थी; शामिल करके त्रिगुट बनाना; परस्पर विरोधी होते हुये भी ऑस्ट्रिया तथा रूस को मित्र बना कर अपने साथ रखना और दोनों में विक्षेप हो जाने पर भी सच-झूठ बोलकर रूस को मित्र बनाये रखना आदि सब बातें ऐसी हैं जो एक सूत्र में गुंथी हुई हैं और जिनमें बिस्मार्क की अद्वितीय कूटनीतिक प्रतिभा, दूरदर्शिता तथा कार्य-पटुता प्रकट होती है।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किसी प्रकार के भी साधन का प्रयोग करने में उसे लेशमात्र भी संकोच नहीं होता था। उसके लिए साध्य ही सब कुछ था। जिन साधनों से साध्य की प्राप्ति हो सकती थी वे सब उसके लिये सर्वथा उचित थे। आवश्यकता देखकर किसी राज्य से मित्रता कर लेने और किसी दूसरे अवसर पर उसके उपकार को भूलकर उसका शत्रु बन जाने में उसे कोई बुराई नहीं दिखाई देती थी। उसकी दृष्टि में राजनीति में स्थायी मित्रता अथवा चिर कृतज्ञता और स्थायी शत्रुता के लिये कोई स्थान नहीं था। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उसने साम, दाम, दण्ड, भेद—झूठ, कपट, छल, बल आदि सब प्रकार के साधनों का निसंकोच प्रयोग किया, विभिन्न योरोपीय राज्यों में फूट डाली, घृणा उत्पन्न की, संघर्ष कराने वाली नीतियाँ सुझाईं और झगड़े करवाये।* उसने फ्रान्स और रूस को परस्पर न मिलने देने की दृष्टि से फ्रान्स में गणतन्त्र का समर्थन किया जिससे रूस को घृणा थी, उससे इटली

* Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 272.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को नाराज़ करने के लिये उसे ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिये प्रोत्साहित किया और इङ्गलैण्ड से कहीं उसकी मित्रता न हो जाय इस भय से इङ्गलैंड को इजिप्ट पर अधिकार कर लेने के लिए प्रोत्साहन दिया। ऑस्ट्रिया को अपने साथ बनाये रखने के लिये उसे अखिल-स्लाव आन्दोलन का भय दिखाया। इन सब प्रकार के साधनों का प्रयोग करके उसने योरोपीय राज्यों के विरोध को दूर रखकर जर्मन साम्राज्य का निर्माण किया और उसके बाद फ्रांस को अकेला रखा,* जर्मनी के विरुद्ध कोई गुट नहीं बनने दिया और योरोप में शान्ति क़ायम रखी। इस प्रकार अपनी कूटनीति के बल पर उसने अपूर्व सफलता प्राप्त की।

बल प्रयोग—

परन्तु शायद वह अपनी कूटनीति के कारण ही इतनी सफलता प्राप्त न कर सकता, यदि उसके पीछे प्रशा और बाद में जर्मनी की शक्तिशाली सेना का बल न होता। उसकी नीति का अन्तिम आधार पाशविक बल था। वह कहता था कि नीति और कुछ नहीं, केवल शक्ति-विस्तार के लिये राष्ट्रीय इच्छा ही है जिसके लिये सब साधन उचित हैं, परन्तु उसी सीमा तक जहाँ तक न्यूनतम व्यय से लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। उसमें 'विजय करने की अदम्य इच्छा' थी, उसके चरित्र का यह मुख्य लक्षण था। काबूर से अपनी तुलना करते हुए उसने कहा था कि 'काबूर मुझसे अधिक महान् था। मेरे पीछे तो प्रशा का राज्य और

---

* फ़ान्स को अकेला बनाये रखने का उसने प्रयत्न तो किया परन्तु उसके प्रति उसकी नीति किसी प्रकार भी शत्रुतापूर्ण नहीं थी। उसका उद्देश्य केवल इतना ही था कि वह शान्ति-भग करके उसके काम को बिगाड़ न सके। फ्रेङ्कफोर्ट की सन्धि के बाद उसने फ्रान्स से अच्छा सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न किया और जहाँ उसके हितों का जर्मनी के हितों से कोई संघर्ष नहीं था वहाँ उसका पूर्ण समर्थन किया। ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिये प्रोत्साहित करने तथा मारेक्को की तरफ उसका ध्यान आकर्षित करने में उसे आशा थी कि फ्राँस अल्सास-लोरेन को भूल जायगा। यह जानते हुए भी कि यह बड़ी निर्बल आशा थी उसने उसके लिए काफी प्रयत्न किया। वह जानता था कि यदि जर्मनी ने फ्रांस का सर्वत्र विरोध किया तो उससे युद्ध अवश्य छिड़ जायगा। वह यह भी समझता था कि उस युद्ध में विजयी होने पर भी जर्मनी को कोई लाभ नहीं पहुँचेगा। उन दिनों मोरक्को पर इटली अधिकार करने का प्रयत्न कर रहा था। इस प्रयत्न में इटली का समर्थन करने से उसे फ्रांस से युद्ध छिड़ जाने का बड़ा भय था और उस आशंका को बढ़ाने की जिम्मेदारी वह अपने ऊपर नहीं लेना चाहता था। उसका भय सत्य ही निकला क्योंकि जब बाद में जर्मनी ने मोरक्को में फ्रांस का विरोध करना आरम्भ किया तो फ्रांस में प्रतिशोध की भावना पुनः जागृत हुई और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण अत्यन्त अशान्त हो गया। Brandenburg: From Bismarck to World War, pp. 9-10.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसकी प्रचण्ड सेना थी परन्तु उसके पास कुछ नहीं था।*' वास्तव में, इस दृष्टि से काबूर अधिक महान् सिद्ध होता है।† परन्तु इससे बिस्मार्क की कूटनीतिक प्रतिभा में कोई कमी नहीं आती। प्रशा का राज्य तथा उसकी सेना पहले भी थे परन्तु उसके पूर्वगामियों में से कोई कुछ नहीं कर पाया था। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी सफलता बहुत कुछ उसकी सैन्य-शक्ति के कारण थी। जब उसे आवश्यकता दिखाई देती थी तब वह अपनी पूरी शक्ति से बलप्रयोग करता था, परन्तु आवश्यकता से अधिक कभी नहीं।

गृह्य नीति—प्रजातन्त्र का विरोधी—

विदेशी मामलों में तो वह महान् कलाकार, राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ था, और वह पूर्णतया सफल भी हुआ परन्तु गृह्य मामलों में वह कलाकार की जगह अधिनायक था। वह शत्रुओं को तुच्छ समझता था और उन्हें समझा बुझाकर मिलाने की जगह कुचलना चाहता था। विदेशी मामलों में तो वह बहुत सोच विचार कर और बड़ी सावधानी से काम करता था परन्तु गृह्य मामलों में वह बिल्कुल उल्टी तरह बेपरवाही से काम किया करता था। अतः उसने अपनी गृह्य नीति में कई गलतियाँ कीं और वह सफल न हो सका। वह अजर्मन लोगों को सन्तुष्ट न कर सका और रोमन केथोलिक चर्च तथा समाजवादियों से उसे परास्त होना पड़ा। वह राजसत्ता तथा निरंकुश शासन का अनन्य भक्त और प्रजातन्त्र का घोर विरोधी था! लोक सभा में उसका सदा विरोध होता रहा परन्तु उसने उसकी जरा भी परवाह नहीं की। परन्तु आगे चलकर जब जर्मनी का शासन दूसरे लोगों के हाथ में पहुंच गया जो उसके समान कुशल नहीं थे तो प्रजातन्त्र के विषय में उसके विचार बदल गये। उसने एक समय कहा था कि 'लोग मुझे राजसत्तावादी समझते हैं। यदि मुझे फिर से अपना जीवन आरम्भ करना पड़े तो मैं प्रजातन्त्रीय तथा गणतन्त्रीय बनूंगा।§ लोक सभा को उसने जानबूझकर निर्बल रखा था परन्तु बाद में जब वह जर्मन

---

* Robertson : Bismarck, p. 486.

† काबूर का काम तो उसकी मृत्यु के समय प्रायः पूर्ण हो चुका था परन्तु बिस्मार्क ने अपने पीछे कई ऐसी समस्यायें छोड़ीं जिनके कारण जो विशाल भवन उसने खड़ा किया था उसके भाग्य के विषय में अनिश्चितता उत्पन्न हो गई। बिस्मार्क के बाद घटनाओं का जो तारतम्य रहा उससे यही निष्कर्ष निकलता हुआ मालूम होता है कि जिस भावना से उसने कार्य किया और जिन तरीकों का उसने प्रयोग किया उनके कारण जर्मन राजनीतिक विकास ग़लत दिशा में हुआ। Lipson; Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 80.

§ Robertson : Bismarck, p. 302.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सरकार को गलतियाँ करते हुए देखने लगा तो उसे उसके दो कारण नज़र आये—सम्राट् का निरंकुश शासन और लोक-सभा की असमर्थता। उसने कहा कि 'जिस बात को देखकर मुझे सबसे अधिक दुःख होता है वह यह है कि लोक-सभा ने अपने अधिकार छोड़ दिये हैं। हम हर जगह नौकरशाही के कारण परेशान हैं....यदि लोक-सभा का अधिकार क्षीण हो जायगा तो जर्मनी की एकता के सूत्र निर्बल पड़ जायेंगे।' अन्य किसी अवसर पर उसने अपनी यह सम्मति प्रकट की कि 'लोक-सभा को मज़बूत बनाने के लिये मन्त्रियों का उत्तरदायित्व बढ़ाना चाहिये .. जब मैं चान्सलर था, उस समय राजसत्ता को जनसत्ता का भय था और इसी कारण मैंने पार्लामेण्ट के विरुद्ध राजसत्ता का समर्थन किया। परन्तु उस दिशा में शायद मैं बहुत आगे बढ़ गया था। अब जर्मनी में शक्तिसमतोलन की आवश्यकता है और मुझे विश्वास है कि एकतंत्र के लिये स्वतन्त्र आलोचना अनिवार्य है। यदि पार्लामेण्ट अशक्त हो गई तो जर्मनी में निरंकुश शासन हो जायगा।'*

सम्राट् का समर्थन—

बिस्मार्क की सफलता की चर्चा करते हुए हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसकी सफलता का कारण बहुत कुछ अंश तक सम्राट् विलियम का समर्थन था। उसकी समझदारी तथा अडिग धैर्य ने जर्मनी को कई बार खतरे से बचाकर सुरक्षा मार्ग पर रखा। १८६० के सेना-बिल की नीति, जिसके कारण जर्मनी का एकीकरण संभव हो सका, स्वयं प्रथम विलियम की थी।† सेना पर बिस्मार्क का अधिकार नहीं था। सैनिक विभाग सीधे सम्राट् के नियंत्रण में था और सैनिक अधिकारी प्रायः विस्मार्क की नीति से सहमत नहीं होते थे।‡ परन्तु प्रायः स्वयं असहमत होते हुये भी सम्राट् सदा उसका समर्थन करता रहता था। उसके समर्थन के बिना विस्मार्क को इतनी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती थी।

---

* Robertson : Bismarck, p. 486.

† Holland Rose : The Development of the European Nations, vol. I, p. 154.

‡ उदाहरणार्थ बिस्मार्क फ्रांस के साथ उसी तरह नरमी का बर्ताव करना चाहता था जैसा उसने सेडोवा के युद्ध के बाद ऑस्ट्रिया से किया था। वह उससे मेत्स का नगर और किला भी नहीं लेना चाहता था परन्तु मोल्के अड़ गया। सम्राट् ने भी मोल्के का समर्थन किया और विस्मार्क को दबना पड़ा। Holland Rose: The Devlapemen of the Europern Nations, Vol. I, p. 122.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीमित-सफलता—

इतनी सफलता प्राप्त कर लेने पर भी हम उसे पूर्ण सफलता के लिये बधाई नहीं दे सकते। साम्राज्य के अन्दर तो अनेक समस्याओं के सामने वह परास्त हुआ ही था; उसके साथ ही, जैसा हम देख चुके हैं, उसकी विदेशी नीति में भी कमियाँ थीं। फ्रान्स अन्त तक असन्तुष्ट बना रहा और उसकी नीति के कारण योरोप दो विरोधी शिविरों में विभक्त हो गया। ज़माना बदल रहा था और एक नया युग—साम्राज्य तथा विश्व-राजनीति का युग—आ रहा था। १८९५ में हेम्बर्ग में एक विशाल जहाज़ का निरीक्षण करते हुए उसने स्वयं कहा था कि 'यह वास्तव में नया युग, नया संसार है।'* अपने समय में वह यह सब देखते हुए भी नहीं देख पाया और अपनी नीति को नये युग के अनुकूल नहीं पाया। उसकी नीति अन्त तक महाद्वीपीय ही बनी रही, जो नई परिस्थिति में जिसके लिये विश्व-राजनीति तथा एक अच्छी नौ-सेना की आवश्यकता थी, अपर्याप्त थी, वह साम्राज्य के प्रति उदासीन ही बना रहा। अपने पदत्याग के एक वर्ष पहले तक वह कहता रहा कि 'मैं अब भी उपनिवेशों के पक्ष में नहीं हूँ।' उसकी आकांक्षा योरोपीय महाद्वीप को ही अपने वश में रखने की थी, समुद्र पार साम्राज्य स्थापित करने की नहीं। परन्तु जर्मनी में साम्राज्यवाद की लहर आचुकी थी और उसके बाद साम्राज्य की नीति बदल गई। यह बिस्मार्क की नीति का परित्याग था। वह जानता था कि यदि इस नई 'विश्वनीति' के अनुसार कार्य हुआ तो उससे इङ्गलैण्ड अवश्य जर्मनी का शत्रु बन जायगा जो उसकी व्यवस्था के लिये घातक सिद्ध होगा। अभी तक तो जर्मनी अपने शत्रुओं तथा मित्रों को अलग-अलग किये हुए था परन्तु नई नीति के कारण जर्मनी-विरोधी गुट बन जायगा और जर्मनी अकेला पड़ जायगा।† उसका डर ठीक ही निकला। जर्मनी-विरोधी गुट बन गया। इङ्गलैण्ड भी शत्रु बन गया। किन्तु यह कहना शायद ग़लत नहीं होगा कि नई नीति उसकी नीति का विकसित रूप थी। बिस्मार्क ने प्रशा को जर्मनी में और जर्मनी को योरोप में प्रधान बना दिया था। नया सम्राट् जर्मनी को विश्व-राजनीति में प्रधान बनाने पर तुला हुआ था।

इतिहास में इतना उच्च स्थान रखते हुए भी बिस्मार्क के चरित्र में कुछ बड़ी ज़बरदस्त कमियाँ थीं। 'उसमें महत्ता, उदारता, मौन, दयालुता अथवा आत्मसम्मान का अंश लेशमात्र भी नहीं था। ऐसा मालूम होता था कि उसे संसार

*Robertson : Bismarck, p. 489.
†Robertson : Bismarck. p. 469.
§ Marriott : Europe and Beyond, p. 90.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के सामने अपनी प्रत्येक भद्दी कमज़ोरी तथा त्रुटि को प्रकट करने में आनन्द आता था और वह यह सिद्ध करना चाहता था कि वह केवल घृणा ही करना ही जानता था, क्षमा करना और भूलना नहीं।* रोगी सम्राट् तृतीय फ्रेडरिक की मृत्यु के समय उसने उसके साथ जो व्यवहार किया वह अत्यन्त क्षुद्र था।† पदत्याग के उपरान्त चिढ़ कर वह सम्राट् द्वितीय विलियम, उसके मन्त्रियों तथा शासन की बड़ी कड़ी आलोचना किया करता था जिसमें संयम का अंश लेशमात्र भी नहीं होता था। सम्राट् इस पर कहा करता था कि 'मुझे यह सोचकर बड़ा दुःख होता है कि ऐसा आदमी भी इतना नीचे गिर सकता है।' किन्तु इन सब दोषों के होते हुए भी बिस्मार्क का स्थान उन्नीसवीं शताब्दी के योरोपीय इतिहास में अद्वितीय रहेगा।

———

*Robertson : Bismarck, 490.

† Robertson : Bismark, pp. 457-458.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

नवीन फ्रान्स

तृतीय गणतन्त्र के प्रथम बीस वर्ष

सीडान के अनर्थ की सूचना पेरिस में पहुँचने के बाद ही ४ सितम्बर १८७० को तृतीय गणतंत्र की घोषणा हुई और राष्ट्र की रक्षा के लिये तीन सदस्यों—जूल्स फ़ेवर, गेम्बेता तथा जनरल त्रोचू—की एक अस्थायी सरकार नियुक्त हुई जिसने फ्रान्स को पराजय से बचाने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु जैसा हम पिछले खण्ड में देख चुके हैं, उसके प्रयत्न व्यर्थ गये, फ्रान्स परास्त हुआ, पेरिस का जर्मन सेना ने घेरा डाला और उसे जर्मन सेना के प्रवेश का अपमान सहन करना पड़ा। सन्धि की शर्तें तय करने के लिये राष्ट्रीय सभा का निर्वाचन हुआ जिसका प्रथम अधिवेशन १२ फरवरी १८७१ को बोर्दो (Bordeaux) में हुआ। परन्तु स्थायी सन्धि होने के पहले ही फ्रान्स में एक भीषण गृह कलह हो गया और पेरिस को रक्त-स्नान करना पड़ा।

दियर (Thiers)—कार्यपालिका का अध्यक्ष—

राष्ट्रीय सभा के अधिकांश सदस्य राजसत्तावादी थे। राजसत्तावादी उम्मेदवार शान्ति के इच्छुक थे और युद्ध बन्द करना चाहते थे किन्तु गणतंत्रीय लोग, जिनका नेता गेम्बेता था, युद्ध जारी रखना चाहते थे। अतः फ्रान्स की कृषक जनता ने, जो शान्ति की इच्छुक थी, शान्तिवादी उम्मेदवारों के लिये मत दिये और इस प्रकार राष्ट्रीय सभा में उनका बहुमत हो गया। राष्ट्रीय सभा का निर्वाचन केवल जर्मनी के साथ सन्धि करके शान्ति स्थापित करने के लिये ही हुआ था और बहुत से लोग समझते थे कि सन्धि के उपरान्त उसका विसर्जन हो जाना चाहिये। परन्तु उस समय फ्रान्स के सामने अनेक समस्या थी जिनका समाधान तुरन्त होना आवश्यक था और इतनी शीघ्र ही फिर से सामान्य निर्वाचन कराना खतरनाक मालूम होता था। राष्ट्रीय सभा अपने आपको प्रभुत्वसम्पन्न तथा प्रत्येक प्रश्न का निर्णय करने की क्षमता से युक्त समझती थी।* जिनमें से सबसे मुख्य प्रश्न फ्रान्स के लिये नवीन विधान का निर्माण करने का था।

*Grant and Temperley: Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 281.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रीय सभा में राजसत्तावादियों का बहुमत था और यदि वे चाहते तो फ्रान्स में फिर एकतंत्र स्थापित कर सकते थे परन्तु ऐसे संकटापन्न समय में, जब कि शत्रु देश के अन्दर विद्यमान् था, वे शक्तिशाली गणतंत्रीय अल्पमत की अवहेलना नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त वे जानते थे कि बिस्मार्क केवल अल्सास-लोरेन के समर्पण की शर्त पर ही युद्ध बन्द करने को तैयार हुआ था।* वे एक राजा से ऐसी अपमानजनक सन्धि करवाकर उसका पक्ष आरम्भ से ही निर्बल करना नहीं चाहते थे। उनके लिये यही अच्छा था कि ऐसी अपमानजनक सन्धि गणतन्त्र द्वारा ही हो। इन्हीं कारणों से उसने विधान-निर्माण के प्रश्न को सर्वसम्मति से (Compact of Bordeaux) स्थगित करके दियर (Thiers) को 'कार्यपालिका का अध्यक्ष' (Chief of Executive Power) नियुक्त किया।† उसकी नियुक्ति किसी निश्चित अवधि के लिये नहीं की गई और उसका कार्य केवल राष्ट्रीय सभा के आदेशों का पालन करना रहा।

पेरिस का असन्तोष—

राष्ट्रीय सभा की सरकार तथा पेरिस में शीघ्र ही मतभेद हो गया। १७८९ से ही पेरिस के लोग प्रान्तों की जनता की अपेक्षा अधिक उग्र बने हुए थे और प्रत्येक क्रान्ति में वे ही आगे रहे थे। इस समय भी युद्ध के कारण उन्हीं ने सबसे अधिक कष्ट उठाये थे और उन्हीं ने गणतंत्र की घोषणा की थी। फ्रान्स में इस समय गणतंत्र तो था, परन्तु देश ने अभी उसे स्वीकार नहीं किया था। राष्ट्रीय सभा में राजसत्तावादियों के बहुमत को देखकर वे अप्रसन्न थे और जब उसने विधान-निर्माण के प्रश्न को स्थगित कर दिया तो उन्हें यह डर हुआ कि सभा गणतंत्र को रद्द करके एकतंत्र स्थापित करना चाहती है। आगे चल कर जो भीषण गृह-कलह पेरिस में हुआ उसका मुख्य कारण यही भय था।§ पेरिस की शंका तथा असन्तोष के कई और कारण भी थे। राष्ट्रीय सभा ने मार्च १८७१ में अपना स्थान बोर्दो से हटाकर वार्साइ निश्चित किया जिसका स्पष्ट अर्थ यह था कि फ्रान्स की राजधानी पेरिस न होकर वार्साइ होगा। वार्साइ शताब्दियों से बूर्बों राजाओं की राजधानी रहा था। इससे पेरिस वालों की केवल एकतन्त्र स्थापित होने की आशंका ही पुष्ट नहीं हुई, उनके अभिमान को भी चोट पहुँची। वे इस कल्पना पर बड़े क्रुद्ध हुए कि पेरिस, जिसने अपने महान् बलिदान से

---

* Holland Rose : The Development of the European Nations, p. 110.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 253.

§ Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 282.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राष्ट्र का मस्तक ऊँचा रखा था, अब राजधानी नहीं रहेगा और एक साधारण नगर की तरह इस पर एक सभा शासन करेगी जो प्रान्तों के प्रतिनिधियों की होगी। इसके अतिरिक्त उन दिनों पेरिस की जनता बड़ी कठिनाई में थी। युद्ध के कारण वहाँ का कारोबार सब नष्ट हो गया था और बेकारी बहुत बढ़ गई थी। इस समय वहाँ सेना से हटाये हुए हज़ारों बेकार सिपाही भी मौजूद थे। लोगों पर ऋण चढ़ गया था और वे अपने मकान का किराया तक नहीं दे सकते थे। सरकार ने कुछ समय के लिये ऋण और किराये की अदायगी स्थगित करदी थी परन्तु शान्ति स्थापित हो जानेपर यह रियायत हटाली गई और जनता में बड़ा असन्तोष फ़ैला। इस असंतोष से लाभ उठाने वाले कई प्रकार के क्रान्तिवादी प्रवृत्तियोंवाले लोग—अराजकतावादी, ज़ेकेवें, समाजवादी आदि—पेरिस में थे जिन्होंने लोगों को सरकार के विरुद्ध भड़काना शुरू किया।

कम्यूनार्ड दल से संघर्ष—

सरकार इस बढ़ते हुए असन्तोष को देखकर बोर्दों से वार्साई पहुँच गई थी। उसने २८ मार्च को पेरिस से तोपें हटा लेने की आज्ञा दी। पेरिसवालों ने सरकार के इस कार्य का विरोध किया और सरकार से पेरिस का संघर्ष शुरू हो गया। उन्होंने २६ मार्च को नगर के शासन के लिये एक क्रान्तिकारी नगरपालिका (Commune) स्थापित करली और उसकी सत्ता के प्रयोग के लिये पाँच सदस्यों की एक सार्वजनिक सुरक्षा समिति नियुक्त की। उन्होंने लाल साम्यवादी झण्डा फहराया और समस्त फ़्रान्सवासियों को पेरिस के कम्यून के समान अपने-अपने यहाँ कम्यून स्थापित करने के लिये प्रेरित किया। उन्होंने एकतंत्र तथा केन्द्रीकृत शासन को रद्द करके फ़्रान्स की राजनीतिक व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन की माँग की। उनकी दृष्टि में केन्द्रीकरण का अर्थ निरंकुश शासन था। वे चाहते थे कि समस्त फ़्रान्स में नगरपालिकाएँ स्थापित हों जो जनता द्वारा निर्वाचित हों और जिन्हें स्थानीय शासन के मामलों में यहाँ तक कि रक्षा के मामलों में भी, पूर्ण अधिकार हों। केन्द्रीय शासन का आधार नगरपालिकाएँ हों और समस्त राज्य समष्टिवाद के आधार पर संगठित नगर-पालिकाओं का संघ हो।* नगरपालिका अथवा कम्यून का समर्थन करने वाले लोग कम्यूनार्ड (Communards) कहलाते थे। उन्हें अपनी विजय की पूर्ण आशा थी परन्तु कम्यून के अतिरिक्त पेरिस में एक स्वतन्त्र सत्ता राष्ट्रीय रक्षा दल की भी थी जो कम्यून के आदेशों का पालन नहीं करती थी। इस कमजोरी के कारण पेरिसवाले सरकार की सेनाओं के सामने अधिक न टिक सके।

---

‡ Grant and Temperley: Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries p. 282.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पेरिसवालों के विरोध को देखकर दियर ने पहले तो अपनी सेना हटाली और फिर यथोचित व्यवस्था करके पेरिस का घेरा डाला। अभागे पेरिस का यह एक ही वर्ष के अन्दर दूसरा घेरा था परन्तु इस बार घेरा डालने वाले स्वयं फ्रान्सवासी थे। जर्मन सेना पेरिस के उत्तर की ओर के किलों में पड़ी हुई यह सब देख रही थी। घेरा २ अप्रेल से २१ मई तक रहा। अन्त में सरकारी सेना पेरिस में घुस गई, सात दिन तक पेरिस में दोनों ओर से भयंकर मारकाट होती रही और पेरिस की सड़कें लाशों से पट गईं। अन्त में यह वीभत्स गृह-युद्ध समाप्त हुआ। सरकार ने बड़ा भयंकर बदला लिया। सैकड़ों गोली से उड़ा दिये गये और हज़ारों को कठिन कारावास या निर्वासन का दण्ड मिला। वर्षों तक गिरफ़्तारी और मुकद्दमे होते रहे और दण्ड दिया जाता रहा। इस प्रकार पेरिस परास्त हुआ, समाजवाद को ऐसी घातक चोट पहुँची कि वह शताब्दी के अन्त तक अपना सर न उठा सका और वर्षों तक पूँजीपतियों तथा मज़दूरों के बीच कम्यून की स्मृतियों और कम्यूनार्डों के रक्त की खाई बनी रही।* इस रक्तरञ्जित आन्दोलन का सच्चा रूप बतलाना कठिन है। उत्पत्ति में तो यह 'मध्यवर्गीय गणतंत्र' की कायरता अथवा देशद्रोह के विरुद्ध राष्ट्रभक्ति से प्रेरित आन्दोलन था परन्तु बाद में वह अधिकाधिक कट्टर क्रान्तिकारियों के प्रभाव में आता गया। उनमें से कुछ तो १८४८ के सिद्धान्तों के अनुयायी थे और कुछ उन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करना चाहते थे जिनका अनुकरण आगे चलकर १९१७ में रूसी साम्यवादियों ने किया।$

---

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 358. इस घटना ने उच्च तथा मध्यम वर्गीय लोगों और कृषकों के दिलों में समाजवाद और अराजकतावाद का भय बैठाकर तथा नगरों के मजदूरों में से क्रांतिकारी हिंसा के मुख्य समर्थकों को हटाकर उग्रवाद को निर्बल कर दिया। इसके साथ ही इससे राजसत्तावादियों का पक्ष भी निर्बल पड़ गया क्योंकि कम्यून के दमन में जो कठोरता बरती गई उसकी प्रतिक्रिया लोगों के दिलों में उनके प्रतिकूल हुई। इसके विपरीत गणतन्त्रीय पक्ष को इससे काफी लाभ पहुँचा। उसके उग्र तत्त्वों के निकल जाने से वह मर्यादित हो गया। Hayes. Political and Cultural History of Modern Europe, vol. II, p. 390-391.

$ Marriot : A Short History of France, p. 238. १८४८ की क्रान्ति के समान १८७० का कम्यून किसी हद तक १७९८, १८३० तथा १८४८ की क्रान्तियों में कृषकों तथा नगरों के मध्यम वर्गीय लोगों को जो विशेषाधिकार प्राप्त हो चुके थे उनके विरुद्ध नगरों के शिल्पियों का विद्रोह था। Ketelbey : A History of Modern Times, p. 358. footnote. यह विद्रोह राज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण—

कम्यून के दमन के पश्चात् राष्ट्रीय सभा ने अपने सामने उपस्थित समस्याओं को ओर ध्यान दिया। सबसे पहला कार्य जर्मनी से सन्धि करना पहले ही हो चुके थे। सन्धि की शर्तें तै हो चुकी थीं और १० मई १८७१ को सन्धि पर हस्ताक्षर भी हो चुके थे। सन्धि तो हो गई थी परन्तु जर्मनी की सेनायें अब भी फ्रान्स में बनी हुई थीं। अतः दूसरा जरूरी काम जितनी जल्दी हो सके युद्ध का हर्जाना अदा करना था ताकि फ्रांस की भूमि जर्मन सेनाओं से मुक्त की जा सके। इस कार्य में दियर बड़ा सहायक हुआ। उसे अर्थशास्त्र का बड़ा अच्छा ज्ञान था और देश के धनिकों में उसकी साख भी अच्छी थी। उसने देश से ऋण की माँग की। उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई और दो वर्ष से कुछ ही अधिक समय में उसने युद्ध का सारा हर्जाना अदा कर दिया। सितम्बर १८७३ में अन्तिम किश्त अदा कर दी गई और फ्रान्स की भूमि पर एक भी जर्मन सैनिक न रहा। समस्त फ्रेञ्च राष्ट्र ने दियर को 'राष्ट्र के मुक्तिदाता' की उपाधि देकर अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित की। इस अत्यन्त आवश्यक कार्य के साथ वह अन्य आवश्यक बातों की ओर ध्यान दे रहा था। उसने रेलें, पुल, सरकारी तथा निजी इमारतों एवं किलों की मरम्मत करवाई और जर्मनी की तरफ की नई सीमा की किलेबन्दी की। इस कार्य में काफी धन व्यय हुआ परन्तु फ्रांस उद्योग-धन्धों तथा व्यापार में आश्चर्यजनक तेज़ी से उन्नति कर रहा था जिससे दियर को अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था द्वारा राज्य के खर्चे के लिये आवश्यक धन प्राप्त करने में सुविधा हो गई। राष्ट्रीय पुनर्निमाण के कार्य का एक आवश्यक अंग सेना का पुनः संगठन भी था। १८७२ में एक क़ानून के द्वारा सेना का प्रशा के ढंग पर नये सिरे से संगठन किया गया और सबके लिये पाँच वर्ष की अनिवार्य सैनिक सेवा सेना की पद्धति शुरू की गई।*

दियर—गणतन्त्र का राष्ट्रपति—

वह सब कार्य तो हुआ परन्तु विधान निर्माण के कार्य में अभी कोई विशेष

सत्ता विरोधी था। उसमें कुछ साम्यवादी (Communist) अवश्य थे और उसके नाम का कम्यूनिज्म के नाम से सादृश्य भी है परन्तु इन बातों से इस आन्दोलन को साम्यवादी नहीं समझना चाहिये। उनके कार्यक्रम तथा साम्यवादी आर्थिक कार्यक्रम को एक नहीं समझना चाहिए। Slosson : Europe since 1870, p. 143.

* यह सिद्धान्त पूर्णतया लागू न हो सका। पाँच वर्ष की अवधि को कार्यान्वित करना दुष्कर हो गया और कई लोगों के लिये नियम शिथिल करना पड़ा। Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol II, p. 391. footnote.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रगति नहीं हुई थी। केवल १८७१ के अगस्त तथा सितम्बर के वैधानिक क़ानूनों द्वारा एक अस्थायी विधान की स्थापना की गई थी जिसके द्वारा कार्यपालिका शक्ति 'गणतन्त्र के राष्ट्रपति' के हाथों में रखी गई जिसे अपने मन्त्रियों को नियुक्त करने तथा विसर्जित करने का अधिकार रहा परन्तु मन्त्री लोक सभा के प्रति उत्तरदायी रखे गये। इस प्रकार गणतन्त्र की दिशा में एक और क़दम उठाया गया, परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, राष्ट्रीय सभा में राजसत्तावादियों का बहुमत था और एकतन्त्र पुनः स्थापित करने के प्रयत्न हो रहे थे। किन्तु राजसत्तावादियों में मतभेद था। इस समय सिंहासन के लिये तीन उम्मेदवार थे—बूर्बों वंशीय दशम चार्ल्स का पोता शाम्बोर्द का काउण्ट (Comte de Chambord), ओर्लिअॉ वंशीय लुई फ़िलिप का पोता पेरिस का काउण्ट (Comte de Paris) तथा तृतीय नेपोलियन का पुत्र (Prince Imperial) और राष्ट्रीय सभा में तीनों के समर्थक विद्यमान् थे। नेपोलियन का वंश बदनाम हो चुका था और उसके समर्थक बहुत थोड़े व्यक्ति थे। शाम्बोर्द के काउण्ट तथा पेरिस के काउण्ट के समर्थकों में कोई समझौता न हो सकने के कारण एकतन्त्र की स्थापना न हो सकी परन्तु राजसत्तावादी लोग गणतन्त्र का विरोध करते रहे। दियर स्वयं ओर्लिअॉ वंश का समर्थक था और फ़्रान्स में गणतन्त्र की अपेक्षा इङ्गलैण्ड की तरह वैधानिक एकतन्त्र स्थापित करने के पक्ष में था।* परन्तु वह बड़ा चतुर था। उसने देख लिया कि राजसत्तावादियों में मतैक्य होना असम्भव है। देश भी गेम्बेता के प्रभाव में धीरे-धीरे गणतन्त्रीय होता जा रहा था और जुलाई १८७१ के उपनिर्वाचनों में गणतन्त्रीय उम्मीदवार ही मुख्यतः निर्वाचित हो रहे थे। इस कारण धीरे-धीरे वह 'वाम' पक्ष की ओर झुकता गया और केसिमिर-पेरिए (Casimir Perier) जैसे व्यक्तियों की सहायता से उसने 'रूप में गणतन्त्रीय परन्तु नीति में रूढ़िवादी' शासन के समर्थन के लिये एक 'वाम केन्द्रीय दल' (Left Centre Party) का निर्माण कर लिया † क्योंकि वह समझता था कि तत्कालीन परिस्थिति में 'गणतन्त्र ही ऐसा था जिस पर फ़्रेञ्च लोगों में कम से कम मतभेद था।' उसकी सहायता से उसने पुनर्निर्माण का कार्य करने में सफलता प्राप्त की।

दियर का त्याग-पत्र—

पुनर्निर्माण के कार्य में तो दियर को राष्ट्रीय सभा के सभी दलों का सहयोग प्राप्त हो सका परन्तु वैधानिक प्रश्नों में राजसत्तावादी उसके विरोधी रहे।

---

*Grant and Temperley: Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 285.

† Marriott: Europe and Beyond, p. 39.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उग्र गणतन्त्रीय लोग भी, जिनका नेता गेम्बेता था, उस पर आक्रमण करते रहते थे। ऐसी अवस्था में उसकी स्थिति बड़ी कठिन थी। मई १८७३ में राजसत्तावादियों ने उसके गणतन्त्रीय विचारों से रुष्ट होकर उसमें अविश्वास का प्रस्ताव पास किया जिस पर दियर ने अपने मंत्रियों को बरखास्त करने की जगह स्वयं त्यागपत्र दे दिया। उसकी जगह मार्शल मेकमेहॉ (MacMahon) राष्ट्रपति चुना गया जो पक्का राजसत्तावादी था।

दियर का चरित्र—

दियर (१७९८-१८७७) अपने समय के फ्रान्स के राजनीतिज्ञों में अग्रगण्य था। राष्ट्रपति नियुक्त होने के समय उसकी अवस्था ७३ वर्ष की थी। वह बड़ा योग्य पत्रकार, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ था। १८३० में दसवें चार्ल्स के पतन में उसका हाथ था; वह लुई फ़िलिप का मन्त्री रह चुका था; नेपोलियन-गाथा के निर्माण में उसका भाग था और द्वितीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति पद के निर्वाचन में उसने लुई नेपोलियन का पक्ष लिया था। उसके उपरान्त कुछ दिनों के लिये वह राजनीति से अलग रहा परन्तु १८६३ में फिर लौट आया और नेपोलियन की विदेशी नीति की कड़ी आलोचना करता रहा। जिस युद्ध भावना के कारण १८७० का युद्ध हुआ उसको प्रोत्साहित करने का तथा द्वितीय साम्राज्य के विनाश का बहुत कुछ दायित्व उस पर था। किन्तु वह स्वयं युद्ध के विरुद्ध था और इस कारण कुछ दिनों तक जनता में बड़ा अप्रिय रहा।* परन्तु कठिनाई के समय राष्ट्र ने उसी की सहायता चाही और उसने भी यथा शक्ति उसकी सेवा की। सीडान की पराजय के बाद जब नई अस्थायी सरकार का निर्माण हुआ तो वह जर्मनी के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिये योरोप की कई राजधानियों में भटका, बिस्मार्क से सन्धि की शर्तें तै करने का भार भी उसी ने उठाया। सन्धि की शर्तें बड़ी अपमानजनक थीं परन्तु उस कारण उसकी लोकप्रियता में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। तृतीय गणतन्त्र की उसने बड़ी सेवा की; उसने कम्यूनार्ड-विद्रोह का दमन किया, युद्ध का हर्जाना जर्मनी को जल्दी से जल्दी देकर फ्रांस को जर्मन सेनाओं से मुक्त किया और अनेक सुधार करके फ्रास को पुनः अपने पैरों पर खड़ा कर दिया। विधान-निर्माण के प्रश्न में बड़ी चतुराई से मध्यवर्ती मार्ग पर चल कर उसने फ्रांस को प्रतिक्रिया तथा क्रांति दोनों से बचा कर उसका महान् उपकार किया। वास्तव में फ्रांस पर उसके बड़े ज़बरदस्त उपकार थे। वह तृतीय गणतन्त्र का सच्चा संस्थापक था।†

---

* Ketelbey : History of Modern Times, p. 360.

† Morriott : A Short History of France, p. 240.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्शल मेकमेहाँ—

मेकमेहाँ ने समस्त राजसत्तावादी दलों के प्रतिनिधियों का मंत्रिमण्डल बनाया और ब्रॉग्ली के ड्यूक (Duc de Broglie) को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। अब राजसत्तावादियों में परस्पर समझौते के प्रयत्न आरम्भ हुए। यह तै हुआ कि शाम्बोर्द का काउण्ट, जो सन्तानहीन था, पंचम हेनरी के नाम से राजा बने और उसकी मृत्यु के बाद पेरिस का काउण्ट सिंहासन पर आसीन हो। परन्तु यह समझौता राष्ट्रध्वजा के प्रश्न पर रद्द हो गया। वह तिरंगे झंडे को अस्वीकार करके बूर्बों वंश के सफ़ेद झंडे को ही फ्रान्स का राष्ट्रीय झंडा बनाने पर अड़ गया।* समझौता टूट गया और गणतन्त्र पर से तत्कालीन संकट टल गया।

पार्लामेण्टरी गणतन्त्र की स्थापना—

परन्तु राजसत्तावादियों ने एकतन्त्र स्थापित करने की आशा नहीं छोड़ी। उनको आशा थी कि शायद हेनरी के विचार बदल जायँ और यदि उसके विचार न बदले तो उसके बाद पेरिस के काउण्ट को, जिसे तिरङ्गा झण्डा स्वीकार था, राजा बनाना सरल होगा। अतः वे समय बिताने का प्रयत्न करने लगे। उन्हें विश्वास था कि ज्योंही कोई राजा चुन लिया जायगा, मेकमेहाँ त्यागपत्र दे देगा। अतः उन्होंने उसे सात वर्ष के लिए पुनः राष्ट्रपति चुन लिया। तभी से फ्रेञ्च राष्ट्रपति का कार्यकाल सात वर्ष का चला आ रहा है।† परन्तु विधान-निर्माण का कार्य अनिश्चित काल के लिये रुक नहीं सकता था। बहुत से राजसत्तावादी भी एकतन्त्र की पुनः स्थापना को असम्भव समझकर गणतन्त्रीय दल में शामिल हो गये और १८७५ में राष्ट्रीय सत्ता ने, जिसमें राजसत्तावादियों का बहुमत था, राजसत्तावादी राष्ट्रपति के कार्यकाल में, फ्रान्स

---

* इस समय तक तिरंगे झण्डे को समस्त राष्ट्र ने स्वीकार कर लिया था और कोई उसे छोड़ने को तैयार नहीं था। स्वयं मार्शल मेकमेहाँ ने कहा था कि यदि सफ़ेद झण्डा फिर से आया तो तुरन्त विद्रोह हो जायगा। (Grant and Temperley, p. 286. हेनरी ने यह भी घोषणा की कि यदि मैं राजा बना तो पोप को उसकी एहिक सत्ता पुनः दिलवाने का प्रयत्न करूँगा। बिस्मार्क भी अपने राजदूत द्वारा एकतंत्र की स्थापना को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। फ्रान्स में एकतन्त्र की स्थापना का वह इतना विरोधी था कि जब उसके राजदूत काउण्ट आर्निम ने उसकी इच्छा का विरोध किया तो वह वापस बुला लिया गया और उस पर राज्य की ओर से मुकद्दमा चलाया गया। Holland Rose : The Development of the European Nation pp. 145-146.

† Hazen : Modern European History, p. 389.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में गणतन्त्र की स्थापना का निर्णय किया। गणतन्त्र के पक्ष में विरोधी मतों से केवल एक मत अधिक था। उस वर्ष उसने तीन अलग-अलग कानून बनाये (दो फरवरी में और तीसरा जुलाई में) जिनके द्वारा गणतन्त्रीय विधान की रूपरेखा निर्धारित हुई।

नया विधान—विधान-सभा—

नये विधान के अनुसार विधान-सभा के दो भवन रहे—सीनेट और प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies)। सीनेट की सदस्य संख्या ३०० निश्चित हुई जिनमें से ७५ का निर्वाचन तो जीवन भर के लिये स्वयं राष्ट्रीय सभा ने किया और शेष २२५ के लिये डिपार्टमेण्टों तथा उपनिवेशों में निर्वाचक-मण्डलों द्वारा ९ वर्ष के लिये अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गई। प्रतिनिधि सभा ६१० सदस्यों की रही जिनका निर्वाचन प्रायः (पुरुष) वयस्क मताधिकार के आधार पर चार वर्ष के लिये होना निश्चित किया गया। राष्ट्रपति को सीनेट की अनुमति से चार वर्ष की अवधि समाप्त होने के पहले भी प्रतिनिधि सभा को भंग करने का अधिकार रहा। सीनेट और प्रतिनिधि-सभा दोनों की सम्मिलित सभा को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) का नाम देकर राष्ट्रपति के निर्वाचन तथा विधान में संशोधन करने का अधिकार दिया गया।

राष्ट्रपति—

राष्ट्रपति का पद इङ्गलैण्ड के राजा के समान वैधानिक रखा गया। उसे विधान-सभा में क़ानून के प्रस्ताव पेश करने, अपराधियों को क्षमा करने, थल-सेना तथा नौ-सेना का निर्देशन करने तथा समस्त सैनिक एवं असैनिक अधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार रहा। समस्त क़ानूनों की घोषणा करने तथा उन्हें कार्यान्वित करने का दायित्व भी उसी का था। वह सीनेट की अनुमति से प्रतिनिधि-सभा को भंग भी कर सकता था और नये निर्वाचन करा सकता था। परन्तु ये सब अधिकार नाम मात्र के थे क्योंकि उसके प्रत्येक आदेश पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर आवश्यक थे जिनके द्वारा उसकी जिम्मेदारी मंत्री की हो जाती थी। राष्ट्रपति केवल देशद्रोह को छोड़ किसी कार्य के लिये उत्तरदायी नहीं था। उसकी सहायता के लिये एक मंत्रिमण्डल की व्यवस्था हुई जिसकी नियुक्ति तो राष्ट्रपति स्वयं करता था परन्तु जो विधान-सभा, मुख्यकर प्रतिनिधि सभा, के प्रति उत्तरदायी था।

नया विधान समझौते के रूप में—

इस प्रकार १८७५ के वैधानिक क़ानूनों द्वारा फ़्रान्स में पार्लामेण्टरी गणतन्त्र की स्थापना हुई। यह विधान एक प्रकार से राजसत्तावादियों तथा गणतंत्रवादियों के बीच एक समझौता था। दोनों ने मिलकर एक सरल विधान का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण इस आशा में किया था कि वह अल्पकालीन रहेगा।* राजसत्तावादी समझते थे कि विधान में प्रजातंत्र पर अंकुश लगाये रखने के लिये और भविष्य में किसी उपयुक्त अवसर पर एकतंत्र के पुनः स्थापन को सरल बनाने के लिये काफ़ी एकतन्त्रीय तत्वों का समावेश कर दिया गया था। उनका विश्वास था कि सीनेट में राजसत्तावादियों का ज़ोर रहेगा और राष्ट्रपति तथा सीनेट दोनों मिलकर अपनी विसर्जन-सत्ता के द्वारा प्रतिनिधि-सभा पर नियंत्रण रख सकेंगे।† उग्र गणतन्त्रीय लोगों को उसे शीघ्र ही बदलकर उग्र गणतन्त्रीय बना लेने की आशा थी। इस प्रकार सभी लोग समझते थे कि यह विधान अधिक दिनों तक नहीं चलेगा परन्तु फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति के बाद जितने विधान बने उनमें वह सब से अधिक स्थायी निकला और ७० वर्ष तक चला। इसका कारण शायद यह था कि उस समय तक समस्त देश में गणतन्त्रीय प्रवृत्ति जड़ पकड़ गई थी। फ्रान्स में प्रत्येक क्रान्ति गणतन्त्रियों ने की थी परन्तु उनका प्रभाव पेरिस तथा कुछ बड़े नगरों तक ही सीमित था और इसी कारण प्रत्येक क्रान्ति के बाद राजसत्तावादी प्रतिक्रिया हो जाती थी। परन्तु अब यह बात नहीं रही थी।‡

जर्मनी से युद्ध की आशंका—

फ्रान्स की प्रगति को बिस्मार्क बड़ी सतर्कता से देख रहा था। विधान तो उसकी इच्छा के अनुकूल गणतंत्रीय ही बना था परन्तु जिस आश्चर्यजनक तेजी से फ्रान्स ने उन्नति की थी उसको देखकर वह बहुत चिन्तित हो रहा था। जर्मनी की ओर से इस समय (१८७५) युद्ध की आशंका हो रही थी परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, मेकमेहाँ के परराष्ट्र-मन्त्री देकाज़े ने बिस्मार्क को उसके ही कूटनीतिक खेल में परास्त कर दिया और युद्ध का संकट टल गया।

---

* Marriott : Europe and Beyond, p. 42.

† Hazen : Modern European History, pp. 390-391. विधान को रूढ़िवादी रूप देने का काफ़ी प्रयत्न किया गया था। सीनेट का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रखा गया था और निर्वाचक-मंडलों में प्रतिनिधि-सभा के स्थानीय सदस्य भी रहा करते थे। राष्ट्रपति का निर्वाचन दोनों भवनों द्वारा और सात वर्ष के लिये रखा गया जिससे जनमत संग्रह का खतरा न रहा और राष्ट्रपति के लिये जनमत पर प्रभाव डाल कर समस्त सत्ता अपने हाथ में ले लेना, जैसा १८४८ में नेपोलियन ने किया था, असंभव हो गया। Phillips : Modern Europe, p. 489.

‡ Lipson : Europe in the Nineteenth & Twentieth Centuries, p. 255.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजसत्तावादियों की पराजय—

विधान राजसत्तावादियों तथा गणतंत्रवादियों के बीच एक समझौता होने के कारण शासन के प्रजातन्त्रीय तथा निरंकुश सिद्धान्तों के बीच भी एक समझौता था। वयस्क (पुरुष) मताधिकार पर स्थिर होते हुए भी उसमें राज्य के प्रमुख को बड़े व्यापक अधिकार दिये गये थे और भूतकालीन निरंकुश शासन की परम्पराओं को उसमें स्थान देने का प्रयत्न किया गया था।* मार्शल मेकमेहाँ ने इस व्यवस्था से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। नये विधान के अनुसार १८७६ में निर्वाचन हुए जिनके परिणाम-स्वरूप प्रतिनिधि सभा में गणतंत्रवादियों का विशाल बहुमत रहा और सीनेट में भी वे काफी संख्या में पहुँच गये। मेकमेहाँ को प्रजातन्त्र से लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं थी। वह पक्का राजसत्तावादी था और अपने वैधानिक अधिकारों का पूर्ण प्रयोग करके नाममात्र का गणतन्त्र बना देना चाहता था। इसमें उसे समस्त राजसत्तावादियों तथा चर्च का समर्थन प्राप्त था। गेम्बेता उसका विरोधी था और वह इस पर ज़ोर दे रहा था कि सच्ची पार्लामेण्टरी पद्धति के अनुसार राष्ट्रपति अपना मन्त्रिमण्डल प्रतिनिधि सभा के बहुमत दल में से बनावे। परन्तु मेकमेहाँ 'प्रतिनिधि सभा की सत्ता' के इस सिद्धान्त को मानने के लिये तैयार नहीं था और कहता था कि 'विधान की सीमाओं के अन्दर राष्ट्रपति की स्वतन्त्रता क़ायम रहनी चाहिये।' उसने १८७७ में प्रतिनिधि-सभा को भंग कर दिया और इसी प्रश्न पर नया निर्वाचन करवाया। उसने निर्वाचन पर सब प्रकार से प्रभाव डालने का प्रयत्न किया और पादरियों के दल ने भी गणतंत्र के विरुद्ध बड़ा प्रचार किया परन्तु देश ने गेम्बेता के सिद्धान्त के पक्ष में मत दिया। कुछ दिनों तक तो मेकमेहाँ ने जनता के निर्णय को नहीं माना और न इस्तीफ़ा ही दिया परन्तु उसकी स्थिति असम्भव हो गई। १८७८ में सीनेट में भी गणतंत्रियों का बहुमत हो गया। अन्त में १८७९ में उसने अपना पद त्याग दिया।† राजसत्तावादी तथा पादरी लोग परास्त हो गये। दोनों भवनों ने मिलकर गेम्बेता के पक्के गणतंत्रवादी मित्र जूल्स ग्रेवी (Jules Grevy) को राष्ट्रपति चुना। १८७१ के बाद यह पहला अवसर था जबकि राष्ट्रपति, सीनेट तथा प्रतिनिधि-सभा सब गणतन्त्रवादी थे। उस समय से गणतंत्र गणतन्त्रवादियों के हाथों में ही बना रहा है।

गणतन्त्र का संगठन—

पूर्ण विजयी होकर अब गणतन्त्रियों ने उपयुक्त कानूनों द्वारा गणतंत्र को

* Holland Rose : The Developement of the European Nations, p 148.

† Grant and Temperly : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 289,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुसंगठित एवं सशक्त बनाने का प्रयत्न आरम्भ किया। इस कार्य में दो व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय हैं—गेम्बेता जो इन दिनों प्रतिनिधि सभा का सभापति था और जूल्सि फ़ेरी (Jules Ferry) जो कई मन्त्रिमण्डलों में रहा और दो बार प्रधान मन्त्री भी बना। उन्होंने फ्रान्स की संस्थाओं को गणतन्त्रीय तथा धर्मनिरपेक्ष बनाकर राजसत्तावादियों तथा पादरी वर्ग पर जो विजय उन्हें प्राप्त हुई थी उसे पूर्ण कर लिया। राजधानी वार्साई से हटाकर पेरिस में स्थापित की गई (१८८०), १४ जुलाई का दिन राष्ट्रीय पर्व घोषित किया गया और १८८० में प्रथम बार बड़े उत्साह से मनाया गया। नागरिकों को बिना किसी शर्त के सार्वजनिक सभा करने का अधिकार प्राप्त हो गया और प्रेस को भी प्रायः असीमित स्वतन्त्रता दे दी गई (१८८१)। १८८३ में एक क़ानून द्वारा घोषणा की गई कि विधान का गणतन्त्रीय रूप कभी नहीं बदला जायगा। इसके साथ ही उन परिवारों के सदस्य जो किसी समय फ्रान्स में शासन कर चुके थे, राष्ट्रपति के पद के लिये अयोग्य घोषित कर दिये गये। मजदूरों को प्रथम बार स्वतन्त्रतापूर्वक अपने ट्रेड यूनियन स्थापित करने की अनुमति प्राप्त हो गई (१८८४)। उन्होंने शिक्षा को गणतन्त्र का प्रधान स्तम्भ मान कर उसकी उन्नति के लिये भी पूर्ण प्रयत्न किये। शिक्षा के सभी स्तरों के लिये क़ानून बनाये गये जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी क़ानून थे। १८८१ के एक क़ानून द्वारा प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क कर दी गई और १८८२ में ६ और १३ वर्ष के बीच समस्त बच्चों के लिये अनिवार्य कर दी गई। शिक्षा का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया, पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा बन्द कर दी गई और अध्यापकों की नियुक्ति भी गृहस्थों में से की जाने लगी। सार्वजनिक शिक्षा की यह व्यवस्था गणतन्त्र के महान् एवं सफल रचनात्मक कार्यों में से एक है।* इस कार्य में सरकार को चर्च से, जिसका शिक्षा पर अधिकार था, संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष का वर्णन आगे किया जायगा।

साम्राज्यवाद—

इन दिनों फ्रान्स औद्योगिक तथा व्यापारिक दृष्टि से बड़ी उन्नति कर रहा था और 'आधुनिक फ्रेन्च साम्राज्यवाद का जन्मदाता' जूल्स फ़ेरी, जो १८८१ में और १८८३-१८८५ तक प्रधान मन्त्री रहा, उसे औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी योजनाओं में बड़ी तत्परता के साथ आगे बढ़ाने लगा। १८७८ में बर्लिन काँग्रेस में बिस्मार्क ने इंगलैण्ड के विदेशी मन्त्री लॉर्ड सेलिसबरी के द्वारा फ्रान्स को उत्तरी अफ्रिका में स्थित ट्यूनिस प्रदेश पर अधिकार कर लेने का सुझाव दिया था † और वह अल्सास-लोरेन की तरफ से फ्रांस का

* Hazen : Modern European History, p. 393.
† Marriott : Europe and Beyond, p. 76

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ध्यान हटाने की दृष्टि से उसे इस दिशा में प्रोत्साहन भी दे रहा था। जूल्स फ़ेरी ने १८८१ में ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया और १८८४ में मेडेगास्कर पर फ्रेञ्च संरक्षण स्थापित किया। १८८२ में पूर्वी एशिया में स्थित टॉङ्किंग को वहाँ रहने वाले फ्रेञ्च व्यापारियों की सहायता करने के लिये चीन के विरुद्ध एक सेना भेजी जिसने अन्त में सम्पूर्ण अनाम प्रदेश पर अधिकार कर लिया। सैगौन, कोचिन-चीन तथा कम्बोडिया पर पहले से ही फ्रेञ्च अधिकार था। १८८७ में इन चारों प्रदेशों को शामिल करके फ्रेञ्च इन्डो-चीन के नाम से फ्रेञ्च अधीनता में एक राज्य बना दिया गया। * इस नीति का आरम्भ से ही बड़ा विरोध था। इसमें बड़ा खर्च हो रहा था और फ्रेञ्च जनता डर रही थी कि इस नीति से कहीं फ्रांस को उसी प्रकार अपमानित न होना पड़े जैसे तृतीय नेपोलियन के समय में मेक्सिको के मामले में होना पड़ा था। ‡ परन्तु फ़ेरी विरोध की बिल्कुल परवाह न करके अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करता रहा। इसके कई कारण थे। एक कारण तो आर्थिक था क्योंकि इस समय व्यापार के क्षेत्र में उसे जर्मनी तथा इटली की प्रतिस्पर्धा का मुक़ाबला करना पड़ रहा था और जो बाज़ार उसके हाथ से निकलते जा रहे थे उनकी जगह नये बाज़ारों की आवश्यकता थी। साम्राज्यवाद का युग भी आ गया था। राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की दृष्टि से जब कि सभी राष्ट्र उपनिवेश प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे, फ्रांस के लिये चुप बैठना कठिन था। इस प्रकार राष्ट्र की प्रतिष्ठा की वृद्धि से फ्रेञ्च जनता को गौरवपूर्ण सन्तोष होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त वह यह भी समझता था कि साम्राज्य-निर्माण की ओर ध्यान देने से फ्रेञ्च जनता का ध्यान अल्सास-लोरेन की क्षति की ओर से हट जायगा और

---

*Marriott : A Short History of France, p. 248.

‡ फ़ेरी की औपनिवेशिक नीति का सबसे बड़ा विरोधी क्लीमेन्सो था। वह कई प्रकार से बिस्मार्क की तरह था परन्तु राजनीतिक सिद्धांत में उसके विपरीत था। वह रूढ़िवादी तो कभी नहीं रहा उसमें उग्रवाद, प्रतिक्रिया, तथा अवसरवादिता का बड़ा विचित्र समिश्रण था। वर्षों तक वह प्रतिनिधि-सभा में उग्र वामपक्ष का नेता रहा और मंत्रिमण्डलों का विभिन्न-कारणों से विरोध करता रहा। वह फ़ेरी का घोर शत्रु था। दोनों ही बड़े देशभक्त थे परन्तु क्लीमेंसो को डर था कि साम्राज्य-निर्माण की नीति से फ्राँस अल्सास-लोरेन को भूल जायगा। बाद में उसका उग्रवाद कम हो गया। वह साम्राज्यवादियों में सम्मिलित हो गया और १९०६ से १९१७ तक उसने कई सुदृढ़ मंत्रि-मण्डलों का निर्माण किया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद शांति-सम्मेलन का सभापति बनने का सम्मान भी उसे प्राप्त हुआ। Slosson : Europe since 1870, pp. 150-151.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिशोध की भावना शान्त रह सकेगी। फ़ेरी के नेतृत्व में फ्रेंच साम्राज्य का काफ़ी विस्तार हुआ परन्तु एशिया में फ्रेञ्च सेना की एक जरा सी हार के कारण यह बड़ा अप्रिय हो गया और १८८५ में उसके मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया।*

संकटमय राजनीतिक स्थिति—

फ़ेरी के पतन के बाद फ्रान्स की राजनीतिक स्थिति कुछ दिनों के लिए बड़ी संकटापन्न और अनिश्चित रही। वह अपनी लोकप्रियता पुनः प्राप्त न कर सका। फ्रेंच गणतन्त्र के रक्षक और उसके प्रधान आधार-स्तम्भ गेम्बेता का १८८२ में ही देहान्त हो चुका था। अब ऐसा कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं रहा था जो राजनीति को ऊँचे स्तर पर रख कर देश को उन्नति के मार्ग पर बढ़ाता। राजनीति में स्वार्थियों की भरमार हो गई, गणतन्त्रीय दल में भी फूट पड़ गई और मन्त्रिमण्डल बड़ी जल्दी-जल्दी बनने बिगड़ने लगे। राष्ट्रपति ग्रेवी को, यद्यपि स्वयं उसका चरित्र निर्मल था, अपने जामातृ विल्सन के कारण, जिस पर राजकीय सम्मान बेचने का दोष लगाया गया था, पद त्याग करना पड़ा (१८८७)। इससे गणतंत्र की बड़ी बदनामी हुई। सरकार की शिक्षा-सम्बन्धी, चर्च-विरोधी तथा औपनिवेशिक नीतियों के कारण भी देश में गणतन्त्र के शत्रु बढ़ रहे थे। राजनीति की इस डाँवाडोल स्थित में गणतन्त्र के शत्रु उसे नष्ट करने का उद्योग करने लगे।

गेम्बेता—

गेम्बेता उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फ्रान्स के अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तियों में से था। उसके विचार गणतन्त्रीय थे। तृतीय नेपोलियन के समय में वह सदा उसके शासन का विरोध करता रहता था। उसके पतन के बाद गणतन्त्र की घोषणा करनेवालों में वह प्रमुख था। युद्ध जारी रखने के लिये जो अस्थायी सरकार बनाई गयी थी उसमें वह युद्ध-मन्त्री था। जब जर्मन सेना पेरिस में प्रवेश करने लगी तो वह एक गुब्बारे में बैठकर पेरिस से निकल भागा और उसने राष्ट्र की रक्षा के लिये युद्ध जारी रखने का यथाशक्ति प्रयत्न तथा फ्रांस के मस्तक को ऊँचा रखा। वह जर्मनी से अपमानपूर्ण शर्तों पर सन्धि करने के लिये तैयार नहीं था और युद्ध जारी रखना चाहता था। सन्धि हो जाने के बाद वह राजसत्तावादियों के विरुद्ध गणतन्त्र के पक्ष में लोकमत तैयार करने का प्रयत्न करता रहा और अन्त में सुरक्षित रूप में गणतन्त्र की स्थापना कर सका। वह प्रतिनिधि-सभा में गणतन्त्रीय दल का नेता था और प्रतिनिधि-सभा की सर्वोच्च सत्ता तथा उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल के सिद्धान्त का समर्थक था।

* Slosson : Enrope since 1870, p. 151.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसने मार्शल मेकमेहाँ के गणतन्त्र को एकतन्त्र में परिवर्तित करने के प्रयत्नों का विरोध किया, १८७७ के महत्वपूर्ण निर्वाचन में अपनी प्रभावशाली वक्तृता से उसे परास्त कर गणतन्त्रीय दल को विजयी बनाया और तृतीय गणतन्त्र को सुरक्षित कर दिया। वह पादरी-वर्ग का बड़ा विरोधी था और उसे गणतन्त्र का प्रधान शत्रु समझता था।* वह बड़ा निस्वार्थ था। उसने राष्ट्रपति का पद अस्वीकार कर दिया। प्रधान मन्त्री भी वह केवल एक बार और वह भी केवल तीन महीनों के लिये रहा (१८८१-१८८२)। फिर भी दियर के बाद समस्त फ्रेञ्च राजनीतिज्ञों में उसका प्रभाव सर्वोपरि था।† निस्सन्देह वह तृतीय गणतन्त्र का वास्तविक जन्मदाता और संरक्षक था। राजसत्तावादियों तथा पादरी-वर्ग के कुचक्रों से उसकी रक्षा उसी की सेवाओं के कारण हो सकी।

गणतन्त्र संकट में—बूलॉजे—

गणतन्त्र के शत्रुओं में कई प्रकार के लोग थे। राजसत्तावादियों के अतिरिक्त पादरी-वर्ग, सेना के कई अधिकारी, कृषक, दूकानदार, जो अभी तक कम्यून की स्मृति से काँपते थे, उग्र देशभक्त, जो समझते थे कि अगले युद्ध में निरंकुश जर्मन साम्राज्य के सामने गणतन्त्र अत्यन्त निर्बल प्रमाणित होगा; आदि सभी प्रकार के लोग उसके शत्रु थे और उसका अन्त करना चाहते थे। उन लोगों को एक नेता भी मिल गया। वह था जनरल बूलाँजे (Boulanger) वह एक अच्छा सैनिक अफ़सर था और १८८६ में युद्ध मन्त्री बन गया था। आरम्भ में वह गणतंत्रीय था परन्तु वह बड़ा उच्चाकाँक्षी था और उसे भले-बुरे का विचार बिलकुल नहीं था। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था और वह बड़ा प्रभावशाली वक्ता था। उसने बारकों में सैनिकों की रहने की अवस्थाओं में सुधार करके और अनिवार्य सैनिक सेवा की अवधि को कम करने की योजना सामने रख कर सेना को प्रसन्न कर लिया और जर्मनी से राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने की बातें करके जनता में अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया। उसका अनेक समाचार-पत्रों पर अधिकार था जो उसके नेतृत्व में जर्मनी से बदला ले सकने की सम्भावना की चर्चा करने लगे। जनता के सामने गणतन्त्र के संरक्षक की तरह खड़े होकर उसने विधान को पूरी तरह से बदल देने की माँग की। उसका कार्यक्रम तो अस्पष्ट था परन्तु शायद उसका उद्देश्य विधान सभा के महत्व को कम करना, राष्ट्रपति के अधिकारों का विस्तार करना, और उसका जनता द्वारा निर्वाचन कराने की व्यवस्था करना था। शीघ्र ही राजसत्तावादी, पादरी, बोनापार्टिस्ट, उग्र गणतन्त्रीय, समाजवादी

* Marriott : A Short History of France, p. 245.
† Marriott : A Short History of France, p. 247.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आदि अनेक प्रकार के लोग जो सरकार के विरोधी थे उसके साथ हो गये। पेरिस का काउण्ट उसका समर्थक था और क्लीमेन्सो जैसे उग्र गणतन्त्री भी उसके साथ थे। उन सबका एक 'राष्ट्रीय दल' (National Party) बन गया और उन्होंने शासन का रूप निर्धारित करने के लिये जनमत संग्रह की माँग की। उन्हें आशा थी कि इस प्रकार बूलाँजे को अधिनायक बना कर पेरिस के काउण्ट को राजा बनाने के लिए मार्ग तैयार किया जा सकेगा।* १८८८ में सरकार के पतन के बाद वह पेरिस से बाहर प्रान्तों में सेना की कमाण्ड के लिये भेजा गया परन्तु वह शीघ्र ही बिना छुट्टी के पेरिस लौट गया और बरखास्त कर दिया गया। इस पर उसने प्रतिनिधि-सभा के लिये कई डिपार्टमेंटों से उम्मेदवार बनकर निर्वाचन के लिए खड़ा होना शुरू किया और पाँच महीने में ६ बार निर्वाचित हुआ। अन्त में १८८९ की जनवरी में वह पेरिस के निर्वाचन-क्षेत्र से खड़ा हुआ और उससे भी विशाल बहुमत से निर्वाचित हो गया। गणतन्त्र के लिए इस तरह एक महान् संकट खड़ा हो गया। यदि इस समय वह नेपोलियन के समान सत्ता हस्तगत करने का प्रयत्न करता तो सफल हो सकता था परन्तु उसमें इतना साहस नहीं था। गणतंत्री लोग भी इस संकट को देखकर चिन्तत हो उठे। सरकार ने उस पर राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने का दोष लगाया और सीनेट के समक्ष उपस्थित होने का आदेश दिया। परन्तु वह फ्रान्स से भाग कर बेल्जियम पहुँच गया। उसकी अनुपस्थिति में उस पर मुकदमा चला और उसे आजन्म कारावास का दण्ड मिला। उसके पलायन से उसका दल छिन्न-भिन्न हो गया, कुछ महीनों में उसने भी ब्रसेल्ज़ में आत्महत्या कर ली (१८९१) और इस प्रकार गणतन्त्र पर से एक महान् संकट टल गया। उसके शत्रु कलंकित हो गये और इस अग्नि-परीक्षा में से वह और भी सशक्त होकर निकला।

इस घटना के कई उल्लेखनीय परिणाम हुए। अब सरकार ने सेना तथा विदेशी मामलों के सम्बन्ध में नई नीतियों पर कार्य करना आरम्भ किया। उसने सैनिक सेवा की अवधि ५ वर्ष से घटा कर ३ वर्ष करदी (१८८९) और सेना के प्रतिक्रियावादी अधिकारियों को बरखास्त कर दिया। राष्ट्रीय लोग गणतन्त्र पर मित्रहीन होने तथा विदेशीनीति में भीरू होने का दोष लगाते थे। इस शिकायत को दूर करने के लिये सरकार ने रूस के साथ घनिष्ठता बढ़ाने का प्रयत्न शुरू किया। इस घटना से एकतन्त्र के पुनः स्थापन की आशा मिट गई। यह अवसर सबसे अनुकूल था। अब ऐसा अवसर प्राप्त होना कठिन था क्योंकि सेना से राजसत्तावादी लोग हटा दिये गये थे और एकतन्त्र

* Halland Rose : The Development of the European Nations, Vol. I, p. 149.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के पक्के समर्थक पादरी दल में भी फूट पड़ गई थी। पोप तेरहवाँ लियो समझ रहा था कि फ्रेञ्च केथोलिक लोग अपने धर्म को राजसत्तावादी राजनीति से अभिन्न समझ कर ग़लती कर रहे थे। अतः उसने १८९२ में उन्हें वर्त्तमान शासन को स्वीकार करने तथा गणतन्त्र पर आक्रमण न करने का आदेश दिया। इस आदेश से केथोलिक दल में फूट पड़ गई। कई लोगों ने उसे अस्वीकार कर दिया और कई लोग उसके अनुसार आचरण करने लगे।*

जिन दिनों बूलाँजे की ओर से गणतन्त्र का जीवन संकट में पड़ा हुआ था उन्हीं दिनों उसके शत्रुओं ने पनामा नहर खोदने के लिये बनाई हुई पनामा कम्पनी के गोलमाल का उपयोग करके सरकार को बदनाम और निर्बल करने का भी प्रयत्न किया।† परन्तु सरकार इस आक्रमण को भी सहन कर गई। गणतन्त्र ने फ्रान्स की काफ़ी सेवा की थी। उसने उद्योग-धन्धों तथा व्यापार की उन्नति की थी, सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था की थी, एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था जो विस्तार में केवल इङ्गलैंड के साम्राज्य से ही छोटा था, और अन्तर्राष्ट्रीय संसार में फ्रान्स को पुनः प्रतिष्ठित पद पर आसीन कर दिया था। इन सब सेवाओं के कारण गणतन्त्र की नींव मज़बूत हो गई थी और वह इन धक्कों को सफलतापूर्वक सह सका।‡ इसके बाद भी, जैसा हम आगे देखेंगे, गणतन्त्र पर संकट आये परन्तु वे उसका कुछ बिगाड़ नहीं सके।

विदेश नीति—

तृतीय गणतन्त्र का जन्म राष्ट्रीय संकट-काल में हुआ था। फ्रान्स से युद्ध छेड़ने के पहले बिस्मार्क ने उसे बिल्कुल मित्रहीन बना दिया था। बाद में भी, जैसा हम देख चुके हैं, बिस्मार्क की नीति के कारण फ्रान्स अकेला बना रहा।

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, pp. 408-409.

† पनामा कम्पनी के डाइरक्टरों ने लोगों को प्रलोभन देकर फँसा लिया था और उसमें करोड़ों रुपयों के शेयर लगे हुए थे। १८८८ में उसका दीवाला निकल गया जिससे साझेदारों की अपार हानि (६ करोड़ पौंड) हुई। जाँच करने पर इस बात का पता चला कि इस भ्रष्टाचार में कई मंत्री और पार्लामैण्ट के सदस्य शामिल थे। सरकार ने सच-झूठ बोल कर इस मामले को दबाने का प्रयत्न किया। बूलाँजे के संकट की समाप्ति तक तो मामला दबा रहा परन्तु अन्त में सत्य प्रकट हो गया और गणतन्त्र की काफी बदनामी हुई। Brogan : The Development of Modern France (1870-1939), p. 272.

‡ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 363.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जर्मनी से सन्धि हो चुकी थी और ऊपर से बिस्मार्क का व्यवहार भी मित्रतापूर्ण था परन्तु फ्रेञ्च जनता राष्ट्रीय अपमान और अल्लास-लोरेन की क्षति को भूल नहीं सकती थी और उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला निरन्तर धधकती रही। परन्तु अकेला फ्रांस जर्मनी से बदला नहीं ले सकता था। इसके लिये उसे मित्रों की आवश्यकता थी। किन्तु बिस्मार्क की कूटनीति के कारण उसे कोई मित्र नहीं मिल सका। फिर भी कुछ राज्यों की सहानुभूति उसे अवश्य प्राप्त रही और जब १८७५ में जर्मनी से युद्ध की आशंका दिखाई देने लगी तो रूस के ज़ार तथा इंगलैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने बीचबचाव करके फ्रान्स की रक्षा की। रूस के साथ मैत्री स्थापित करने का अवसर फ्रान्स को १८७८ में भी मिला जब कि सेन स्टिफेनों की सन्धि पर विचार करने के लिए बर्लिन में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें इंगलैण्ड और ऑस्ट्रिया-हंगरी रूस का विरोध कर रहे थे और बिस्मार्क भी ऑस्ट्रिया की ओर झुका हुआ था। इस समय तक फ्रांस ने अपनी आन्तरिक स्थिति सुधार ली थी और वह सम्मेलन में एक महान् शक्ति की हैसियत से भाग ले सका था। रूस और फ्रांस के बीच इस समय सन्धि हो जाने की सम्भावना थी परन्तु बिस्मार्क ने ऐसा नहीं होने दिया और उसने स्वयं १८८१ में रूस से सन्धि कर ली।

फ्रांस और रूस—

फ्रांस के एकाकी बने रहने का मुख्य कारण तो बिस्मार्क की कूटनीति ही थी परन्तु उसका गणतन्त्रीय विधान भी उसके मार्ग में बाधक था। उस समय योरोप की अन्य महान सत्ताएं एकतंत्रीय थीं जो या तो इसे एक खतरनाक उग्रवादी प्रयोग या निर्बल अस्थिर सरकार समझकर उसे मित्रता के अयोग्य समझती थी।* योरोप के महान् राज्यों में रूस ही ऐसा था जो फ्रांस के साथ मैत्री कर सकता था क्योंकि उसकी ऑस्ट्रिया से नहीं बनती थी और ऑस्ट्रिया जर्मनी का मित्र था। परन्तु उससे मैत्री न हो सकने का कारण केवल बिस्मार्क की कूटनीति ही नहीं था। फ्रान्स के गणतंत्रवादी ज़ार के निरंकुश शासन को घृणा की दृष्टि से देखते थे। उधर स्वयं ज़ार को गणतंत्रवाद से घृणा थी और फ्रांस के अस्थिर मंत्रिमन्डलों को देखकर भी वह उसकी मैत्री व्यर्थ समझता था। १८८५ में फ्रान्स की सरकार ने महान् रूसी अराजकतावादी क्रोपॉटकिन को, जो फ्रांस की जेल में बन्द था, उसकी सज़ा समाप्त होने के पहले ही मुक्त करके ज़ार को नाराज़ कर दिया था। इस पर ज़ार ने नये फ्रेञ्च राजदूत को स्वीकार करने तक से इन्कार कर दिया था। बिस्मार्क ने इन सब बातों का पूरा-पूरा लाभ उठाया था और रूस को फ्रांस से मिलने नहीं दिया था।

* Slosson : Europe since 1870, p. 152.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु धीरे-धीरे ज़ार को बिस्मार्क की मैत्री में सन्देह होने लग गया था और वह फ्रांस की ओर झुकने लग गया था। यह बात अप्रैल १८८७ में स्पष्ट प्रगट हो गई। २० अप्रैल १८८७ को अल्सास के सीमान्त पर जर्मन अधिकारियों ने बड़े अपमान और निर्दय ढंग से फ्रांस के एक पुलिस कमिश्नर श्नीवेल (Schnaebele) को गिरफ्तार करके कारागार में डाल दिया। इस घटना से फ्रांस में बड़ी उत्तेजना फैली। जब यह समाचार सेंट पीटर्सबर्ग पहुँचा तो तृतीय एलेक्ज़ेण्डर ने स्वहस्तलिखित पत्र क़ैसर को लिखा और उसमें यह स्पष्ट कर दिया कि यदि फ्रांस और जर्मनी में युद्ध छिड़ा तो १८८४ की सन्धि के अनुसार वह तटस्थ नहीं रह सकेगा। इस पत्र को पाकर क़ैसर ने बिस्मार्क से पूछे बिना ही श्नीवेल को तुरन्त मुक्त कर दिया।* १८८७ में आर्थिक स्थिति कठिन होने के कारण ज़ार जर्मनी से ऋण लेना चाहता था परन्तु बिस्मार्क ने इन्कार कर दिया। इस पर १८७८ में फ्रांस ने रूस को एक भारी ऋण दिया और १८९१ तक दो बार और ऋण दिये। इस सहायता से ज़ार का रुख फ्रांस के अनुकूल हो गया। इन्हीं दिनों फ्रांस बूलाँजे के संकट पर विजय प्राप्त करके अपनी शक्ति एवं स्थिरता का प्रमाण दे चुका था। १८९० के मई मास में ९ रूसी अराजकतावादियों को गिरफ़्तार करके भी उसने ज़ार की कृतज्ञता प्राप्त करली थी। १८९० में बिस्मार्क के पतन के बाद रूस अकेला पड़ गया और इंगलैण्ड से भी मध्य-एशिया में तनातनी बढ़ने लगी। ऐसी दशा में उसे किसी शक्ति से मैत्री स्थापित करना आवश्यक था। फ्रांस के भी इंगलैण्ड के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। अतः दोनों में मैत्री स्थापित होने के लिये अनुकूल वातावरण तैयार हो गया। जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, १८९३ में रूस तथा फ्रान्स की सन्धि हो गई और फ्रांस की एकाकिता मिट गई परन्तु यह सब बिस्मार्क के पतन के बाद ही सम्भव हो सका।

औपनिवेशिक नीति—

इंगलैण्ड से फ्रांस की शत्रुता औपनिवेशिक मामलों पर थी। फ्रान्स की मित्रहीन अवस्था का एक अतिरिक्त कारण उसकी औपनिवेशिक नीति भी थी। अल्सास-लोरेन को भुलाने के लिये बिस्मार्क फ्रांस का ध्यान साम्राज्य-निर्माण की ओर लगाने का प्रयत्न कर रहा था और कई कारणों से, जिनमें एक कारण यह भी था, फ्रांस के राजनीतिज्ञ, मुख्यकर जूल्स फ़ेरी, साम्राज्य-विस्तार की ओर ध्यान दे रहे थे। इस प्रयत्न में फ्रांस का इँगलैण्ड तथा इटली से मनमुटाव हो गया और बिस्मार्क ने इस वैमनस्य को बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

---

* Marriott : Europe and Beyond, p. 155.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ्रान्स और इटली—

फ्रान्स का इन दोनों देशों से झगड़ा मुख्य कर अफ्रिका में था। उत्तरी अफ्रिका में ट्यूनिस के प्रदेश पर फ्रान्स तथा इटली दोनों की आँखें लगी हुई थीं। १७७८ में बिस्मार्क ने इटली को ट्यूनिस पर अधिकार कर लेने के लिये संकेत किया था परन्तु फ्रान्स को अप्रसन्न करने के भय से उसने उस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। किन्तु बिस्मार्क को तो दोनों में वैमनस्य उत्पन्न करना था। जब उसने देखा कि इटली फ्रान्स को नाराज़ नहीं करना चाहता तो उसने फ्रान्स को उत्तेजित किया और फ़ेरी ने १८८१ में ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। इससे इटली बहुत नाराज़ हो गया और उसने जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया से फ्रान्स के विरुद्ध सन्धि कर ली। इटली फ्रान्स का मित्र बन सकता था परन्तु ट्यूनिस के मामले ने उसे शत्रु बना दिया।

फ्रान्स और इंगलैण्ड—

इंगलैण्ड से तनातनी इजिप्ट के मामले में उत्पन्न हुई, यद्यपि आरम्भ में दोनों वहाँ परस्पर सहयोग करते रहे। इजिप्ट पर नाम मात्र को टर्की के सुल्तान का प्रभुत्व था। वहाँ का शासक इस्माइल पाशा था। वह सुधारप्रिय होने के साथ ही बड़ा फ़ुज़ूलख़र्च था और अपने अनापशनाप ख़र्च के लिये उसने बाहर से बहुत सा कर्ज़ ले लिया था। उन पर अधिकांश कर्ज़ अंग्रेजों तथा फ्रान्सवासियों का था। जब उसे धन की कमी से कठिनाई होने लगी तो उसने स्वेज़ नहर कम्पनी के अपने सारे हिस्से इंगलैण्ड को बेच डाले (१८७५)। स्वेज़ नहर के बन जाने के बाद (१८६९) से ही इंगलैंड को इजिप्ट से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक हो गया था क्योंकि उसके साम्राज्य की सुरक्षा के लिये इजिप्ट तथा स्वेज़ नहर की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। स्वेज़ नहर कम्पनी के हिस्से खरीद लेने के बाद उस नहर की व्यवस्था में इंगलैण्ड का बहुत बड़ा भाग था और इज़िप्ट से उसका सम्पर्क बढ़ा। जब इस्माइल पाशा की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई तो १८७६ में उसने अपने समस्त ऋण चुकाने से इंकार कर दिया। इस पर फ्रान्स और इंगलैंड के पूंजीपतियों ने, जिन्होंने कर्ज़ दिया था, अपनी-अपनी सरकार पर अपने हितों की रक्षा के लिए दबाव डाला। फ्रान्स की सरकार ने इस्माइल पाशा पर ज़ोर डाला और इंगलैंड ने भी उसके साथ सहयोग किया। अन्त में १८७९ में दोनों ने मिलकर इजिप्ट पर अपना संयुक्त आर्थिक नियंत्रण स्थापित किया। उन्होंने इस्माइल पाशा पर राज्य त्याग करने के लिये दबाव भी डाला परन्तु जब उसने इन्कार कर दिया तो उन्होंने टर्की के सुल्तान से कह कर उसे पदच्युत करवा दिया। उसके बाद तौफ़ीक पाशा इजिप्ट का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेदीव (शासक) बना। इजिप्ट पर इंगलैंड तथा फ्रांस का आर्थिक नियंत्रण स्थापित हो जाने के परिणाम-स्वरूप धीरे-धीरे उसकी शासन व्यवस्था पर भी उनका अधिकार बढ़ने लगा। यह स्थिति इजिप्ट के राष्ट्रीयतावादियों को अखरने लगी और वहाँ विदेशियों के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा हो गया जिसका नेता एक सैनिक अफसर अरबी पाशा था। अब तक तो इंगलैंड और फ्रान्स दोनों सहयोग करते रहे थे परन्तु अब उनमें मतभेद होना शुरू हुआ। इस समय गेम्बेता फ्रान्स का प्रधान मन्त्री था। वह इंगलैंड के साथ मिल कर खेदीव को इस आन्दोलन का दमन करने में पूरी सहायता करना चाहता था परन्तु इंगलैंड झिझक रहा था। उधर बिस्मार्क इंगलैंड और फ्रान्स के इस सहयोग को नहीं चाहता था। उसने भी अपना प्रभाव डाला। इंगलैंड इस आन्दोलन को टर्की के सुल्तान की सहायता से दबाना चाहता था परन्तु फ्रान्स टर्की की सहायता लेने के विरुद्ध था। १८८२ के जून में एलेक्ज़ेण्ड्रिया में विद्रोह हो गया जिसमें कोई ५० योरोपियन मारे गये। इस पर इंगलैंड कड़ा क़दम उठाने के लिये तैयार हो गया। उसने फ्रान्स के सहयोग की माँग की परन्तु फ्रेञ्च औपनिवेशिक नीति के विरोधी क्लीमेन्सो के प्रस्ताव पर प्रतिनिधि-सभा ने सहयोग करने से इन्कार कर दिया और विद्रोह-दमन का भार अकेले इंगलैंड पर पड़ा। * आन्दोलन के दमन के बाद इजिप्ट वस्तुतः इंगलैंड के अधिकार में पहुँच गया, हालाँकि नाम के लिये वह अब भी टर्की के साम्राज्य का एक भाग था परन्तु फ्रान्स इस स्थिति से बड़ा असन्तुष्ट था। इसी समय सूडान (इजिप्ट के दक्षिण में) भी विद्रोह हो गया जिसका दमन आवश्यक था। उसमें धन की आवश्यकता थी। इजिप्ट की आमदनी के प्रबन्ध के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन था जो राष्ट्रीय-ऋण की अदायगी का प्रबन्ध कर रहा था। उस कमीशन की स्वीकृति के बिना सूडान के दमन पर धन व्यय नहीं किया जा सकता था। उस कमीशन में फ्रान्स का प्रतिनिधि भी था इजिप्ट में इंगलैंड के प्राधान्य के प्रति अपना असन्तोष इस कमीशन में फ्रान्स इंगलैण्ड की नीति का विरोध करके प्रकट किया करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों में मनोमालिन्य बढ़ता गया और अपनी इजिप्ट सम्बन्धी नीति में समर्थन प्राप्त करने के लिये इङ्गलैण्ड जर्मनी का मुँह ताकने लगा। बिस्मार्क का कथन था कि 'इजिप्ट के भाग्य से कहीं अधिक महत्त्व की वस्तु हमारे लिये ब्रिटिश साम्राज्य की मित्रता है'। उसने इंगलैण्ड का पूर्ण कूटनीतिक समर्थन दिया। इंगलैण्ड और फ्रान्स का वैमनस्य बढ़ता गया और फ्रान्स अकेला बना रहा किन्तु इस स्थिति के लिये फ्रान्स स्वयं उत्तरदायी था।

* Brogan : The Development of Modern France, pp, 259-230.
Petrie : Diplomatic History (1713-1933). p. 257.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ५

नवीन इटली

वैधानिक एकतन्त्र—

नवीन इटली की सृष्टि साण्डीनिया पायडमॉण्ट के नेतृत्व में प्रजातांत्रिक ढंग से हुई थी। उसका निर्माता काबूर हृदय से प्रजातन्त्रीय था और जहाँ जर्मनी के एकीकरण की दिशा में प्रत्येक कदम उठाने में बिस्मार्क ने छल बल का प्रयोग किया था वहाँ काबूर ने आवश्यकता पड़ने पर छल-बल का प्रयोग करते हुए भी प्रत्येक कदम जनमत के बल पर उठाया था। द्वितीय विक्टर इमेन्युएल स्वयं एक वैधानिक राज्य का वैधानिक राजा था और संयुक्त इटली का राजा बनने पर भी उसी रूप में बना रहा। अतः नवीन राज्य का रूप उसके निर्माताओं की मनोवृत्तियों के अनुकूल ही बना रहा। संयुक्त इटली का विधान कुछ थोड़े से परिवर्तनों के साथ सार्डिनिया-पायडमॉण्ट का पुराना विधान ही था जो इङ्गलैंड के विधान के समान पार्लामेण्टरी था। इङ्गलैंड के समान इटली में भी दो भवनों—सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा—की विधान-सभा थी। सीनेट के सदस्य कुछ तो वंशपरम्परागत कुलीन थे और कुछ राजा द्वारा नियुक्त। प्रतिनिधि-सभा के सदस्य जनता द्वारा पाँच वर्ष के लिये निर्वाचित होते थे। शासन का प्रमुख राजा था जो विधान सभा तथा उसके प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमंडल की सहायता से शासन करता था। मंत्रियों की नियुक्ति तो राजा द्वारा होती थी परन्तु वे प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी थे। इसी प्रकार राजा वैधानिक था और प्रतिनिधि-सभा भी जनता द्वारा निर्वाचित थी परन्तु शासन वास्तव में प्रजातन्त्रीय नहीं था क्योंकि मत देने तथा पदग्रहण करने का अधिकार उन्हीं लोगों को था जिनके पास कुछ सम्पत्ति होती थी और जो लिख पढ़ सकते थे। विशाल कृषक जनता तथा नगरों के मज़दूर इन अधिकारों से वंचित थे। इस प्रकार शासन उच्च तथा मध्यम वर्ग का कुलीनतंत्र था।* परन्तु यह इटली की ही विशेषता नहीं थी। फ्रान्स का गणतंत्र भी मध्यमवर्गीय था और इङ्गलैंड का शासन भी उस समय तक पूरी तरह से प्रजातन्त्रीय नहीं बन पाया था।

*Hayes: A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol II, p. 420.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ—

इटली राजनीतिक दृष्टि से तो एक हो चुका था परन्तु अभी उसमें वास्तविक राष्ट्रीय एकता नहीं आ पाई थी। कुछ तो भौगोलिक कारणों से तथा कुछ शताब्दियों की पृथक्ता और प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न ऐतिहासिक परम्पराओं के कारण इटली के लोगों में अध्यात्मिक एकता उत्पन्न नहीं हो पाई थी और प्रादेशिकता तथा संकीर्णता की भावनाओं का ज़ोर था। 'वास्तव में ऐसे लोगों पर, जो शताब्दियों से अलग-अलग थे और जिनके बीच समान सामाजिक एवं राजनीतिक हितों का नितान्त अभाव था, एकता ऊपर से एकदम लाद दी गई थी। स्वतन्त्रता, जिसकी ज्योति पायडमॉण्ट के छोटे से देश ने प्रज्वलित रखी थी, लोगों को दान रूप में मिली थी, उन्होंने उसका स्वयं अपने प्रयत्नों से उपार्जन नहीं किया था। राष्ट्रीयता का आत्मनिर्णय तथा स्वशासन के रूप में कुछ शिक्षित व्यक्तियों ने ही दावा किया था, जनता की चेतना में उसकी कोई प्रतिध्वनि नहीं उठी थी।'* इटली में कई प्रकार के भेद विद्यमान् थे। उसके उत्तरी तथा दक्षिणी भाग परस्पर सर्वथा भिन्न थे। वैसे तो समस्त इटली कृषि-प्रधान था परन्तु वहाँ जो कुछ भी औद्योगिक उन्नति हुई थी वह केवल उत्तरी इटली तक ही सीमित थी। दक्षिणी इटली पूर्णतया कृषि-प्रदेश था। आर्थिक भेद के अतिरिक्त राजनीतिक प्रगति की दृष्टि से भी इटली के विभिन्न भाग परस्पर भिन्न थे। पायडमॉण्ट के राज्य में जनता वर्षों से वैधानिक शासन में थी और उसे स्वशासन का अनुभव था परन्तु दक्षिणी इटली पर वर्षों से बूर्बों राजाओं का निरंकुश शासन चला आ रहा था और वहाँ के लोगों को स्वशासन का अनुभव लेशमात्र भी नहीं था। इटली की अधिकांश जनसंख्या (७० प्रतिशत) निरक्षर थी परन्तु दक्षिण में निरक्षरता उत्तर की अपेक्षा तिगुनी थी।† विभिन्न प्रदेशों के पुराने ईर्ष्या-द्वेष बने हुए थे। लोम्बार्डी पायडमॉण्ट की तरफ से सशंक रहता था; टुस्कनी को सिसिली की समस्याओं से कोई सहानुभूति नहीं थी। विभिन्न प्रदेशों के प्रतिनिधि पार्लामेण्ट में राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करके अपने-अपने प्रादेशिक हितों पर ज़ोर देते थे और उन्हीं का विचार रखते थे।‡ इस दिशा में इटली की प्रमुख राष्ट्रीय समस्या इस कृत्रिम राजनीतिक एकता के स्थान पर वास्तविक आध्यात्मिकता एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित

---

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 379. में Luigi Sturzo : Italy and Fascismo. p. 13 से उद्धृत।

† Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 420.

‡ Schevevill : A History of Europe, p, 553.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करना और उसका राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन करना थी। यह समस्या बहुत कुछ वैसी ही थी जैसी जर्मनी में और उसका समाधान भी प्रायः उसी ढंग पर हुआ।

पोप की स्थिति की समस्या—

परन्तु एक अत्यन्त विकट समस्या—पोप की स्थिति की—जिस ढंग से संयुक्त इटली के निर्माण का अन्तिम क़दम उठाया गया था उससे खड़ी हो गई थी जिसका तात्कालिक समाधान अत्यन्त आवश्यक था। विक्टर इमेन्युएल ने रोम को, जिस पर पोप सैकड़ों वर्षों से राज्य करता आ रहा था, ज़बरदस्ती छीन लिया था। रोम साधारण नगर नहीं था, वह समस्त केथोलिक संसार की धार्मिक राजधानी था। अब उसकी द्विविधि स्थिति थी। उसमें दो राजाओं–एक धार्मिक तथा दूसरा लौकिक—का निवास था। यह बड़ी विचित्र तथा कठिन स्थिति थी। पोप को रोम से निकालने या उसे इटली के राजा की अधीनता में लाने का प्रयत्न करने से केवल इटली के ही नहीं, समस्त संसार के पोपभक्त केथोलिकों की, जो पहले से ही शिकायत कर रहे थे, नाराज़ी का भय था और साथ ही साथ यह भी भय था कि कहीं कोई राज्य पोप को उसकी लौकिक सत्ता पुनः दिलाने के लिये हस्तक्षेप न कर बैठे। विक्टर इमेन्युएल ने पोप नवें पायस से समझौता करने का प्रयत्न किया परन्तु व्यर्थ। अतः १३ मई १८७१ को पार्लामेण्ट ने अपनी ओर से ही इस समस्या का समाधान करने के लिये काबूर के 'स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र चर्च'* के सिद्धान्त के अनुकूल एक कानून (Law of Papal Guarantees) बनाया जिसके द्वारा राज्य ने पोप को इटली के राजा के समान ही प्रभुता के विशेषाधिकारों का आश्वासन दिया और केथोलिकों को यह विश्वास दिलाया कि इटली की सरकार का पोप के धार्मिक कर्तव्यों पर किसी प्रकार के भी नियन्त्रण लगाने का विचार नहीं है। उसे अन्य राज्यों तथा अन्य राज्यों की प्रजा से सीधा सम्बन्ध रखने का अधिकार रहा, वह अन्य राज्यों में अपने दूत रख सकता था और उनके दूत भी स्वीकार कर सकता था। उसके प्रासाद (Vatican and Lateran Palaces) तथा उन प्रासादों की भूमि (The Vatican) पर उसका प्रभुत्वसम्पन्न अधिकार रहा और इटली के कानूनों के क्षेत्र से बाहर रहा। उसका राज्य छिन जाने से उसकी जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति के लिये ३२,५०,००० लिरा (Lira)† वार्षिक पेन्शन देने की व्यवस्था की गई। पोप ने इस क़ानून को यह कह कर

* Hazen : Modern European History, p. 410.

† पाँच लाख डॉलर से कुछ अधिक; २० लाख रुपये से कुछ कम।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्वीकार कर दिया कि उसे स्वीकार करने का अर्थ विक्टर इमेन्युएल के अन्यायपूर्ण अपहरणों को स्वीकार करना होगा। उसने पेन्शन लेने से भी इंकार कर दिया और स्वेच्छा से 'वेटिकन का बन्दी' बन कर रहने लगा। इसके साथ ही उसने एक आदेश (Encyclical Non-expedit) द्वारा समस्त केथोलिकों को इटली की सरकार से सहयोग करने—पार्लामेण्ट के निर्वाचनों में भाग लेने तथा पद ग्रहण करने—से मना कर दिया। उसने अन्य राष्ट्रों से उसे कैद से मुक्त कर उसकी ऐहिक सत्ता वापस दिलाने की अपील भी की।* पोप और राज्य के इस संघर्ष का इटली पर बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा। उसके आदेश ने देशभक्तों तथा केथोलिकों के बीच खाई खोदकर इटली की जनता को विभक्त कर दिया। इससे राज्य उन लोगों की सेवा से वंचित हो गया जो पक्के पोपभक्त केथोलिक थे। इसके साथ ही कई देशभक्त लोग चर्च से अलग हो गये। इतना ही नहीं, पोप के इस विरोधी रुख के कारण इटली के सामने वर्षों तक यह भय बना रहा कि कहीं केथोलिक शक्तियाँ पोप का पक्ष लेकर आक्रमण न कर दें। नवें पायस के बाद तेरहवें लियो (१८७८-१९०३) का रुख भी विरोधी बना रहा। किन्तु शताब्दी के अन्त तक दोनों पक्षों का वैमनस्य कम होने लगा और समाजवाद के बढ़ते हुए भय ने दोनों में समझौता करा दिया। केथोलिक लोग धीरे-धीरे राजनीति में भाग लेने लगे और १९०५ में नये पोप—दसवें पायस—ने नवें पायस का निषेधात्मक आदेश आंशिक रूप से स्थगित कर दिया। १९१९ में पन्द्रहवें बेनेडिक्ट ने उस आदेश को बिल्कुल रद्द कर दिया और १९२२ में मुसोलिनी के साथ उसने पूर्ण समझौता करके इस संघर्ष का अन्त कर दिया।

विभिन्नताओं का निराकरण—

अनेक प्रकार की विविधताओं को दूर करने के लिये सरकार ने देश में सर्वत्र समान व्यवस्था करना शुरू किया। विभिन्न राज्यों की पृथक् शासन-प्रणालियों को अलग करके केन्द्रीकृत प्रशासन तथा न्याय-व्यवस्था की गई और फ्रान्स के समान स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का निर्माण किया गया जिनके लिये प्रिफ़ेक्टों (Prefects) की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। इस प्रकार विधान की दृष्टि से इङ्गलैण्ड के समान होते हुए भी प्रशासन में फ्रान्स का अनुकरण किया गया। रेलों का राष्ट्रीयकरण किया गया और विभिन्न राज्यों की पृथक् सेनाओं के स्थान पर थल-सेना तथा नौ-सेना का अनिवार्य सैनिक सेवा के आधार पर पुनः संगठन करके तथा नये प्रकार के अस्त्रशस्त्रों से

* Hayes : A Political and Culural History of Modern Europe, Vol. II, p. 421.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्हें सुसज्जित करके एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सेना का निर्माण किया गया। दक्षिणी इटली में उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित किया गया और कारखाने खोले जाने लगे। १८७७ में अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा के लिये क़ानून बनाकर शिक्षा प्रसार का भी प्रयत्न किया गया परन्तु धनाभाव के कारण यह क़ानून अच्छी तरह कार्यान्वित न हो सका और शताब्दी के अन्त तक निरक्षरता ६० प्रतिशत के लगभग बनी रही। दक्षिणी इटली में बूर्बों राजाओं के अत्याचारी परन्तु निर्बल शासन के कारण डाकुओं और लुटेरों तथा गुप्त अपराधपरायण समितियों (नेपिल्स में 'केमोरा' तथा सिसली में मेफ़िया) का बड़ा जोर था। सरकार ने बड़ी सावधानी के साथ धीरे-धीरे उनका दमन करके सामाजिक जीवन को सुरक्षित बनाने का प्रयत्न किया।*

आर्थिक कठिनाइयाँ—

नई इटली की अनेक कठिनाइयों में आर्थिक कठिनाई भी बहुत बड़ी थी। सर्डिनिया ने सभी राज्यों के ऋण अपने ऊपर ले लिये थे और यह ऋण-राशि बहुत भारी थी इसके अतिरिक्त सरकार को सेना तथा नौ-सेना के पुनः संगठन, किलेबन्दी, रेलें, सड़कें, बन्दरगाह बनाने आदि में बड़ा भारी खर्च करना पड़ रहा था जो राष्ट्र की सुरक्षा तथा आर्थिक प्रगति के लिये अनिवार्य था। राज्य की आय कम थी और प्रति वर्ष खर्च अधिक होता था जिसकी पूर्ति के लिये नये नये कर लगाये गये और ऋण लिये गये। राज्य ने मठों की भूमि भी छीनकर बेच डाली। सरकार ने इन उपायों से आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया और आठ वर्ष में जाकर उसे सफलता प्राप्त हुई। १८७९ में प्रथम बार राज्य की आय व्यय से ज्यादा रही।† योरोप के किसी भी राज्य में उस समय तक जनता पर इतने भारी और नाना प्रकार के कर शायद ही लगाये गये हों।‡

औद्योगिक उन्नति—

करों का भार जनता पर अत्यधिक था परन्तु करों में यह वृद्धि देश की औद्योगिक उन्नति के कारण संभव हो सकी। इटली में उद्योग के उपयुक्त प्राकृतिक साधनों की बड़ी कमी है। १८७० तक वह मुख्यतः कृषिप्रधान था परन्तु उसके बाद सरकार ने देश की औद्योगिक उन्नति के लिए प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सभी प्रकार के प्रयत्न करना शुरू किया। हजारों मील लम्बी रेलवे बनाई गई, पुरानी सड़कों की मरम्मत की गई और नई सड़कों का निर्माण हुआ। बन्दर-

* Schevill : A History of Europe, p. 555,
† Hazen : Modern European History, p. 410.
‡ Schevill : A History of Europe, p. 556.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गाहों की भी उन्नति की गई। व्यापारी जहाजी कम्पनियों को सरकारी सहायता दी गई और राष्ट्रीय उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिये संरक्षण-नीति का आश्रय लिया गया। कोयले की कमी पर्वतों से निकलने वाली नदियों के जल से बिजली बनाकर पूरी की गई। इस तरह अनेक प्रकार के उपायों से देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया गया और शताब्दी के अन्त तक इस दिशा में काफी सफलता प्राप्त हुई।

समाजवाद—

उद्योग-धन्धों में काफी उन्नति होने पर भी वह देश की बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये काफ़ी नहीं थी। बढ़ते हुए उद्योग-धन्धे बढ़ती हुई जनसंख्या को काम देने में असमर्थ थे। अतः देश में बेकारी बहुत थी और बहुत से लोग देश को छोड़कर अन्य देशों को, विशेषकर अमेरिका को, चले जाते थे। बेकारी के साथ उद्योग-धन्धों की उन्नति के फलस्वरूप कारखानों के मज़दूरों की समस्या भी खड़ी हो रही थी और मज़दूरों में विशेषकर उत्तरी इटली के नगरों के मज़दूरों में, समाजवाद तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों का जोर बढ़ने लगा। १८९१ में मिलान में समाजवादी दल का निर्माण हुआ जिसने समाजवादी प्रचार आरंभ करके राजनीति में भाग लेना शुरू किया। मजदूरों के असन्तोष से लाभ उठाने वाले अनेक उग्रपन्थी लोग—अराजकतावादी, क्रान्तिवादी, सिण्डिकेलिस्ट आदि—भी मैदान में उतर आए और शताब्दी की अन्तिम दशाब्दि में कई स्थानों पर दंगे हुए। १८९३-९४ में सिसिली में मज़दूरों ने कई जगह भयंकर विद्रोह किये। इसी प्रकार १८९८ में मिलान में भी मज़दूरों ने भीषण दंगा किया। १९०० में एक अराजकतावादी ने राजा हम्बर्ट की, जो १८७८ में द्वितीय विक्टर इमेन्युएल की मृत्यु के बाद राजा बना था, हत्या कर दी। इन हिंसात्मक कार्रवाहियों का सरकार ने बड़ी कठोरता के साथ दमन किया। १९०४ में मिलान में स्पष्टतः क्रान्तिकारी उद्देश्य से एक हिंसात्मक आम हड़ताल हुई जिसका दमन करने में नये राजा विक्टर इमेन्युएल को सेना की सहायता लेनी पड़ी।

मज़दूरों की दशा सुधारने के प्रयत्न—

परन्तु सरकार ने दमन से ही काम नहीं लिया। तृतीय विक्टर इमेन्युएल का रूख सहानुभूतिपूर्ण था और उसकी मनोवृत्ति भी प्रजातंत्रीय थी। उसने मजदूरों की शिकायतों को दूर करने की दृष्टि से अनेक सुधार भी किये। १८९८ में बुढ़ापे के दिनों के लिये पेन्शन तथा दुर्घटनाओं एवं बीमारी के दिनों के लिये मजदूरों के अनिवार्य बीमे की व्यवस्था की गई। १९०२ में एक फ़ेक्टरी-क़ानून द्वारा कारखानों में काम की अवस्थाओं में सुधार किया गया। १९०८ में सप्ताह में एक दिन की छुट्टी की व्यवस्था की गई। इस प्रकार अन्य कई सुधार किये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये। ट्रेड यूनियनों को क़ानूनी स्थिति प्रदान की गई और मज़दूरों के झगड़ों का मध्यस्थ द्वारा निर्णय कराने की दिशा में भी क़दम उठाया गया।* इन बातों से मज़दूरों की दशा में सुधार होने लगा। देश से बाहर जानेवालों ने भी देश के अन्दर बेकारी कम करके तथा अपने सम्बन्धियों को बाहर से धन भेज कर ग़रीबी की समस्या का समाधान करने में काफ़ी सहायता की। देश के उद्योग-धन्धे भी उन्नति करने लगे और विदेशी पूँजीपतियों ने भी आर्थिक उन्नति में सहायता की। इस प्रकार नई शताब्दी के आरम्भ में इटली की कठिनाइयाँ कम होने लगीं। फिर भी समाजवादी दल अन्य देशों की तरह उन्नति करता रहा और फ़्रान्स के प्रभाव में मार्क्सवाद की जगह सिन्डीकेलिज़्म की तरफ़ झुकने लगा। हड़तालों तथा मशीनों की तोड़-फोड़ तथा उन्हें अन्य प्रकार से हानि पहुँचाने के ढंगों का रिवाज़ बढ़ा। १९१४ में एक आम हड़ताल हुई जिससे ४८ घण्टों के लिये देश का समस्त औद्योगिक जीवन स्थगित हो गया। इसके नेताओं में इटली का भावी अधिनायक मुसोलिनी भी था।

मताधिकार का विस्तार—

इन्हीं दिनों संकीर्ण उच्च तथा मध्यमवर्गीय शासन के विरुद्ध भी आवाज उठाई जा रही थी और मताधिकार के विस्तार द्वारा पूर्ण राजनीतिक प्रजातंत्र की स्थापना की माँग उठ रही थी। सरकार को उस तरफ भी ध्यान देना पड़ा। १८८२ में सम्पत्ति की योग्यता कम करके मताधिकार का विस्तार किया गया परन्तु साक्षरता की आवश्यकता बनी रही और इस कारण मताधिकार का अधिक विस्तार न हो सका। १९१२ में साक्षरता की योग्यता भी हटा दी गई और जनता को वस्तुतः (पुरुष) वयस्क मताधिकार प्राप्त हो गया।

राजनीतिक जीवन—

इस प्रकार इटली ने प्रजातांत्रिक दिशा में उन्नति की परन्तु शिक्षा की प्रगति, जो प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है, उतनी नहीं हुई। इस कारण पार्लामेण्टरी प्रजातन्त्र को कार्यान्वित करने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार न हो सका। इसके अतिरिक्त जनता की संकीर्ण प्रादेशिक भावनाओं के कारण पार्लामेण्टरी प्रजातंत्र के लिए अत्यन्त आवश्यक स्वस्थ राजनीतिक दलों का निर्माण भी नहीं हो सका। जिन दलों का निर्माण हुआ वे वास्तव में राजनीतिक दल नहीं, गुट थे और उनका आधार कोई सिद्धान्त या नीति नहीं, बल्कि व्यक्ति का प्रभाव था। प्रभावशाली व्यक्ति अपने अपने अनु-

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II. p. 456.

† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 372,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यायियों का एक गुट बना लिया करते थे और वे अनेक थे। राजनीतिक जीवन में भ्रष्टाचार व्याप्त था और राजनीति स्वार्थी तथा बड़े निम्न स्तर की थी। ये गुट मोटी तौर से दो भागों में विभक्त किये जा सकते थे—दक्षिण-पक्षीय (Right) तथा वामपक्षीय (Left)। दक्षिणपक्षीय गुट वामपक्षीय गुटों की अपेक्षा कुछ अधिक उच्चवर्गीय और कुछ कम पादरी-विरोधी थी परन्तु उनके मुख्य भेद प्रादेशिक तथा व्यावसासिक थे। दक्षिणपक्षीय दल के नेता मुख्यतः पायडमॉण्ट, लोम्बार्डी तथा टुस्कनी के औद्योगिक, उच्च एवं मध्यम वर्गों के होते थे और वामपक्षीय नेता प्रायः सिसिली तथा नेपिल्स के विभिन्न व्यवसाय करने वाले तथा बुद्धिजीवी मध्यमवर्गीय थे।

आरम्भ में १८७० से १८७६ तक शासन दक्षिणपक्षीय गुटों के हाथ में रहा। इसके बाद के बीस वर्षों में वामपक्षीय दलों के हाथ में शक्ति रही। इस अवधि में डेप्रेटिस (Depretis) जो दक्षिणी इटली का न होकर लोम्बार्डी का था, १८७६ से १८८७ तक अधिकतर प्रधान मन्त्री रहा और १८८७ से १८९६ तक शासन की बागडोर प्रायः सिसिली के क्रिस्पी (Crispi) के हाथों में रही। अगले सात वर्षों में सत्ता फिर दक्षिणपक्षीय दलों के हाथ में पहुँच गई परन्तु १९०३ के बाद प्रथम महायुद्ध के आरम्भ तक शासन जियालिटी (Giolitti) के नेतृत्व में वामपक्षीय दलों के हाथों में बना रहा। वामपक्ष के ये तीनों नेता बड़े प्रभावशाली थे। उन्होंने वामपक्षीय गुटों को एक दल के रूप में संगठित करने में काफ़ी सफलता प्राप्त की। शासन का भार अधिकतर इन्हीं लोगों के हाथों में रहा और राष्ट्र की नीतियों के निर्धारण में इनका बहुत बड़ा भाग रहा। राष्ट्रीय नीतियों के सम्बन्ध में वास्तव में इन दोनों पक्षों में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं था और जब शासन भिन्न पक्ष के हाथ में चला जाता था तो राजनीतिक पदाधिकारी के परिवर्तन के अतिरिक्त शासन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता था। राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में दोनों प्रायः एकमत थे। दोनों को देश की औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति की चिन्ता थी। दोनों ही राष्ट्रीयतावादी थे और इटली को अन्य महान् राष्ट्रों के समकक्ष बनाना चाहते थे।* अतः दोनों की विदेश-नीति भी प्रायः एक ही थी।

विदेश-नीति—

अन्य योरोपीय देशों की विदेशी नीति के समान इटली की विदेश-नीति भी १८८० के बाद राष्ट्रीयता तथा साम्राज्यवाद की संयुक्त शक्तियों द्वारा प्रेरित

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 423.

† Schevill : A History of Europe, p. 558.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। राष्ट्रीयता की भावना अभी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हुई थी। अभी कुछ प्रदेश—ट्रेन्टिनों, ट्रीस्ट तथा उसके आसपास का समुद्र तट—इनमें इटालियन लोग रहते थे, ऑस्ट्रिया के अधिकार में थे और राष्ट्रीयता का तकाज़ा था कि इन प्रदेशों का उद्धार करके उन्हें मातृभूमि में सम्मिलित किया जाय। राष्ट्रीयता का दूसरा तकाज़ा यह था कि इटली की गणना अन्य महान् राष्ट्रों के साथ हो और उन्हीं के समान उसका भी साम्राज्य हो।

ये दोनों भावनाएँ काफ़ी प्रबल थीं परन्तु आरम्भ में सरकार को उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए प्रयत्न करने का साहस नहीं था। सैनिक शक्ति की दृष्टि से इटली बड़ा निर्बल था, आन्तरिक दृष्टि से उसमें कई कमज़ोरियाँ थीं, उसका कोई मित्र नहीं था, उसकी सेवा के लिये कावूर जैसा कोई कूटनीतिज्ञ भी नहीं था और इन सब बातों के साथ ही उन दिनों योरोपीय राजनीति में जर्मनी के महान् अद्वितीय कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क का प्राधान्य था। राष्ट्रीयता की मांग को पूरी करने का प्रयत्न करने से ऑस्ट्रिया से युद्ध छिड़ता, परन्तु जर्मनी उसके पक्ष पर था। साम्राज्य-निर्माण के लिये उसकी आँखें भूमध्यसागर के दक्षिणी तट पर लगी हुई थीं परन्तु उसमें इङ्गलैण्ड तथा फ़्रान्स से संघर्ष होने का डर था। सबसे बड़ा डर उसे पोप की ओर से था। वह योरोपीय राज्यों से सहायता की प्रार्थना कर रहा था और यह सम्भव था कि ऑस्ट्रिया तथा फ़्रान्स (जहाँ आरम्भ में केथोलिक दल का ज़ोर और पोप के साथ सहानुभूति थी) इटली पर आक्रमण कर दें।

इन सब कारणों से इटली आरम्भ में डरता था और उसने किसी दिशा में कोई क़दम नहीं उठाया। सबसे अधिक डर फ़्रांस की ओर से होने के कारण वह जर्मनी से अच्छे सम्बंध बनाये रखना चाहता था और इसी दृष्टि से 'तीन सम्राटों के संघ' के निर्माण के बाद १८७३ में विक्टर इमेन्युएल ने बर्लिन में सम्राट् विलियम से भेंट करके अपनी मित्रता का परिचय दिया। इटली फ़्रान्स से बिगाड़ नहीं करना चाहता था परन्तु बिस्मार्क की कूटनीति ने दोनों में मन-मुटाव करा दिया। बिस्मार्क का प्रोत्साहन पाकर फ़्रान्स ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार इटली को उस प्रदेश से वंचित कर दिया जिस पर भौगोलिक कारणों से वह अपना अधिकार समझता था। फ़्रान्स की इस कार्य-वाही से रुष्ट होकर उसने, जैसा हम देख चुके हैं, जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया से संधि करके त्रिगुट बना लिया। बिस्मार्क ने उसे फ़्रांस के विरुद्ध सहायता का वचन दिया और पोप की समस्या को कभी न उठाने देने का आश्वासन भी दिया। परन्तु यह मित्रता अस्वाभाविक थी और उसका मुख्य कारण फ़्रान्स से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिढ़ तथा केथोलिकों का भय था जिसे बिस्मार्क ने उसके सामने अतिरंजित रुप में प्रकट किया था। ऑस्ट्रिया से सन्धि करने का अर्थ था ट्रेन्टिनो तथा ट्रीस्ट के उद्धार की इच्छा का त्याग जो असम्भव था। जब तक पोप की समस्या बनी रही तब तक सरकार इस राष्ट्रीय इच्छा को दबाये रही परन्तु जब वह विभीषिका कमज़ोर पड़ गई तो उसे यह अनुभव होने लगा कि उसने एक झूठे भय के कारण अपने अधिकारों का बलिदान कर दिया है। इसके साथ ही जब उसने देखा कि त्रिगुट से उसे कोई विशिष्ट लाभ नहीं प्राप्त हुये तो उसका रुख बदलने लगा और वह बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे इंगलैण्ड से, और बाद में फ्रान्स से भी, सीमित समझौते की नीति पर चलने लगा।* जब १८८७ में त्रिदली सन्धि की पुनरावृत्ति हुई तो उसने ट्रेन्टिनो तथा ट्रीस्टका प्रश्न तो नहीं उठाया परन्तु बाल्कन प्रायद्वीप तथा अफ्रिका के उत्तरी तट पर अपने हितों पर ज़ोर दिया और ऑस्ट्रिया को बाल्कन प्रायद्वीप में इटली के हितों को तथा टर्की के साम्राज्य के बटवारा होने की सम्भावना उपस्थित होने पर इटली के हर्जाने की मांग को स्वीकार करना पड़ा। बिस्मार्क को भी उत्तरी अफ्रिका में इटली को सहायता देने का वचन देना पड़ा। उसी वर्ष उसने इङ्गलैण्ड से भी अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिये और भूमध्यसागरीय व्यवस्था को यथावत् बनाये रखने और यदि यह सम्भव न हो तो परिवर्तन करने में दोनों की सम्मति से काम करने के लिए एक समझौता कर लिया।† बिस्मार्क की चाल को समझ कर उसने फ्रान्स से भी अपने सम्बन्ध सुधारना आरम्भ किया। फ्रान्स भी यही चाहता था। अतः यह काम सरल हो गया। १८९६ में ट्यूनिस पर फ्रान्स का अधिकार इटली ने भी स्वीकार कर लिया और १८९८ में उसके साथ एक व्यापारिक तथा नाविक सन्धि कर ली। १९०० और १९०२ में दो समझौते हुए जिनके द्वारा फ्रान्स ने ट्रिपोली में उसकी कार्रवाइयों में हस्तक्षेप न करने का इस शर्त पर वचन दिया कि इटली भी मोरक्को में फ्रान्स के मामलों में हस्तक्षेप न करे।‡ जून १९०२ में फ्रान्स को अपनी सद्भावना का आश्वासन देने के लिये उसने घोषणा की कि त्रिदली सन्धि फ्रान्स के विरुद्ध नहीं है और आगे चल कर नवम्बर में एक गुप्त समझौते द्वारा उसे वचन दिया कि यदि फ्रांस का किसी देश से युद्ध हुआ तो इटली तटस्थ रहेगा।§ इस प्रकार इटली के सम्बन्ध फ्रांस

---

* Ketelbey : A History of the Modern Times, p. 373.

† Petrie : Dipolamatic History (1713-1933), p. 236.

‡ Marriott : Europe and Beyond, p. 197.

§ Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 336.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ सुधारने लगे और जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया के साथ उसके सम्बन्धों में शिथिलता आने लगी। इतने दिनों तक तो ट्रेन्टिनों तथा ट्रीस्ट का प्रश्न स्थगित रहा था परन्तु अब देश में उनके उद्धार की माँग फिर ज़ोर पकड़ने लगी। जब १९१४ में प्रथम युद्ध का आरम्भ हुआ तो अपनी आन्तरिक कठिनाइयों के कारण उसने अपनी तटस्थता की घोषणा की परन्तु उन प्रदेशों को प्राप्त करने के लिये उसने दोनों पक्षों से बातचीत शुरू की और अन्त में मई १९१५ में लन्दन की सन्धि के द्वारा उन प्रदेशों को प्राप्त कर सकने का आश्वासन पाकर उसने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करके विपक्षियों की ओर से युद्ध में प्रवेश किया।*

औपनिवेशिक नीति—

हमने ऊपर राष्ट्रीयता की भावना के दो रूपों का उल्लेख किया है—एक तो पराधीन इटालियन प्रदेशों के उद्धार की कामना तथा दूसरा साम्राज्य-निर्माण की आकांक्षा। १८८२ तक तो, जैसा हम देख चुके हैं, उसने अपनी कठिनाइयों के कारण किसी भी दिशा में कोई क़दम नहीं उठाया परन्तु उस वर्ष जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया से सन्धि हो जाने से पराधीन प्रदेशों के उद्धार के प्रयत्नों को तो स्थगित करना पड़ा परन्तु दो सशक्त देशों से मित्रता हो जाने पर उसे साहस आया और उसने साम्राज्य-निर्माण के प्रयत्न शुरू किये। इस नीति का श्रीगणेश डेप्रेटिस के प्रधान मंत्रित्व-काल में हुआ। उसे इस योजना में क्रिस्पी का भी पूरा सहयोग प्राप्त था। उत्तरी अफ़्रिका के अच्छे-अच्छे भाग पर तो इङ्गलैण्ड (इजिप्ट) और फ़्रांस (एल्जीरिया तथा ट्यूनिस) अधिकार कर चुके थे। अतः उसने लाल सागर के पश्चिमी तट की ओर ध्यान दिया और कुछ तटीय स्थान छीन लिये (१८८५) जिनमें मसावा (Massawa) का बन्दरगाह मुख्य था। १८८७ में डेप्रेटिस की मृत्यु के बाद क्रिस्पी ने बड़े उत्साह से इस योजना को आगे बढ़ाना शुरू किया और स्थानीय शासकों को आपस में लड़वा कर लाल सागर के तटीय प्रदेश पर अपना अधिकार बढ़ाना शुरू किया। इस प्रदेश का नाम इरीट्रिया (Eritrea) रखा गया। इसके साथ ही इङ्गलैंड तथा स्थानीय सुल्तानों से समझौते करके उसने सुमालीलैंड के एक भाग पर इटली का संरक्षण स्थापित कर लिया। परन्तु ये प्रदेश उजाड़ थे। अतः इटली भीतर की ओर बढ़ने का प्रयत्न करने लगा परन्तु इसमें उसे एबीसीनिया तथा स्थानीय सुल्तानों के विरोध का मुकाबला करना पड़ा। आरम्भ में तो इटली की सेनाओं को कुछ सफलता प्राप्त हुई परन्तु १८९६ में एडोवा (Adowa) के स्थान पर एबीसीनियावालों ने उन्हें बुरी तरह से परास्त कर दिया। इस दुर्घटना से क्रिस्पी

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 374.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मंत्रिमण्डल का पतन हो गया और साम्राज्यवादी जोश कुछ दिनों के लिये ठंडा पड़ गया। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, इसके बाद उसने फ्रान्स से ट्रिपोली के सम्बन्ध में समझौता कर लिया। कुछ दिनों तक तो वह चुप रहा परन्तु जब उसने टर्की के साम्राज्य में उथल-पुथल होती देखी तो १९११ में ट्रिपोली पर आक्रमण कर दिया। टर्की को सन्धि करके ट्रिपोली तथा इजियन सागर के कुछ द्वीपों पर इटली का अधिकार स्वीकार करना पड़ा (१९१२)। ट्रिपोली का नाम बदल कर लिबिया (Libya) रखा गया। इस प्रकार अफ्रिका में ईरीट्रिया, इटालियन सुमालीलैंड तथा लिबिया के उजाड़ प्रदेशों पर अधिकार करके इटली ने अपनी साम्राज्य-लिप्सा सन्तुष्ट की।

———.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

क्रीमियन युद्ध के बाद रूस

'यदि रूस के उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों के इतिहास को एक रेखा (ग्राफ़) द्वारा व्यक्त किया जाय तो हमें उसके उतार-चढ़ाव में देश के हर्ष और विषाद, प्रगति और प्रतिक्रिया की क्रमिक अवस्थाओं के अनुकूल चोटियाँ और घाटियाँ दृष्टिगोचर होंगी और सबसे ऊँची चोटियाँ उन चार महान् युद्धों को प्रकट करेंगी जिनमें रूस को भाग लेना पड़ा—नेपोलियनकालीन युद्ध, क्रीमियन युद्ध, रूस जापान का युद्ध तथा प्रथम विश्वयुद्ध। प्रथम युद्ध के फल स्वरूप उसे अपूर्व योरोपीय ख्याति तथा प्रथम एलेक्ज़ेन्डर के शासन में, सुधार की प्रेरणा प्राप्त हुई; द्वितीय युद्ध से उसे दासों की मुक्ति तथा अन्य सुधार प्राप्त हुए; तृतीय युद्ध के कारण प्रथम पार्लामेंट का निर्माण हुआ और अन्तिम युद्ध ने ज़ारशाही का अन्त कर समाजवादी गणतंत्र को जन्म दिया। इनमें से प्रत्येक दो के बीच प्रतिक्रिया तथा राष्ट्रीय विषाद की अवस्था दिखाई देती है।'*

प्रथम दो युद्धों के बीच का इतिहास हम देख चुके हैं। इस काल में प्रथम एलेक्ज़ेन्डर तथा प्रथम निकोलस के शासन रहे। निकोलस अपनी आन्तरिक तथा बाह्य दोनों नीतियों में घोर प्रतिक्रियावादी तथा निरंकुशता का समर्थक था। उसकी वाह्य नीति के परिणाम-स्वरूप क्रीमियन युद्ध हुआ और रूस पराजित हुआ। निकोलस का देहान्त युद्ध काल में ही (१८५५) में हो गया था। युद्ध को समाप्त करने तथा टर्की, इङ्गलैंड और फ्रान्स से अपमानजनक सन्धि करने का भार उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी द्वितीय एलेक्ज़ेंडर (१८५५-८१) पर पड़ा।

द्वितीय एलेक्ज़ेण्डर—

निकोलस को उदारवाद से घृणा थी और उसने उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति का बड़ी कठोरतापूर्वक दमन किया था परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि उदारवाद तथा सुधार के लिये आन्दोलन मज़बूत होते गये और जहाँ पहले उदारवादी विचार उच्च कुलीनवर्गीय लोगों तक ही सीमित थे वहाँ अब उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी और बुद्धिजीवी तथा मध्यमवर्गीय लोगों में भी उनका प्रचार बढ़ा। उदारवाद के साथ ही राष्ट्रीयता की भावना का भी प्रवेश

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 366.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूस में हो चुका था। पोल तथा फ़िन जैसे दलित राष्ट्रों में तो उस भावना ने स्वतन्त्रता की कामना जागृत की थी परन्तु विशुद्ध रूसियों पर उसने दो प्रकार से प्रभाव डाला था और फलतः रूसी राष्ट्रीयतावादी दो भागों में विभक्त थे। एक ओर तो वे लोग थे जिन पर उदारवाद का प्रभाव पड़ चुका था और जो पश्चिमी योरोप के देशों के समान रूस में भी निरंकुश शासन के स्थान पर उदार, वैधानिक शासन की स्थापना करना चाहते थे और अपने देश में पाश्चात्य विज्ञान, क़ानून, शिक्षा तथा उद्योग-धन्धों को लाकर आधुनिक बनाना चाहते थे। ये पाश्चात्य प्रेमी (Westernizers) थे। इन से भिन्न एक दूसरा वर्ग स्लाव सभ्यता के भक्तों (Slavophiles) का था जो पाश्चात्य विचारों का शत्रु था और स्लाव सभ्यता की विशिष्ट बातों अर्थात् निरंकुश ज़ारशाही, ऑर्थाडॉक्स चर्च और रूसी जनता (कृषकों) के सामाजिक रीति रिवाज तथा संस्थाओं को सुरक्षित रखना चाहते थे।*

सुधार का आरम्भ—

प्रथम निकोलस को 'स्लावप्रेमियों' से सहानुभूति थी और पाश्चात्य-प्रेमियों का उसने दमन किया था। परन्तु क्रीमियन युद्ध ने निरंकुश शासन की अयोग्यता तथा उसके भ्रष्टाचार का भण्डाफोड़ कर उसे कलंकित कर दिया था और अब उदारवादियों की मांगों की अवहेलना करना असम्भव था। द्वितीय एलेक्जेण्डर स्वयं भी समझदार एवं उदारचित्त था और रूसी जीवन की आवश्यकताओं में सुधार करने का इच्छुक था। उसके शासन का आरम्भ सुधारों से ही हुआ।

दास-प्रथा का अन्त—

उसका सबसे महत्वपूर्ण सुधार 'भूमि-दास-प्रथा का अन्त' था। रूस में भूमिदासों की अवस्था का वर्णन आप पढ़ चुके हैं।‡ उनकी संख्या साढ़े चार करोड़ अर्थात् रूस की जनसंख्या की आधी थी जिसमें दो करोड़ तीस लाख दास तो राजकीय परिवार के अधीन थे और शेष रईसों, चर्च तथा अन्य संस्थाओं के थे। राजकीय परिवार के दासों की दशा अन्य दासों की अपेक्षा कुछ अच्छी थी परन्तु समष्टि रूप से वे बड़ी दुर्दशा में थे। इस प्रथा के स्वाभाविक परिणाम थे-दासों के स्वामियों का नैतिक पतन, आर्थिक निश्चलता, तथा विद्रोह

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 183.

‡ द्वितीय खण्ड, अध्याय २२ पृष्ठ ३२७-२७ देखिये।
Ketelbey : A History of Modern Times, p. 288.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का निरंतर भय। निकोलस के समय में दास कई बार विद्रोह कर चुके थे जिनका उसने बड़ा भीषण दमन किया था। द्वितीय एलेक्ज़ेन्डर ने इस समस्या की तरफ़ ध्यान दिया। उसने सर्वप्रथम राजपरिवार के दासों को मुक्त कर दिया और बाद में रईसों से इस सम्बन्ध में परामर्श करके और उन्हें समझा बुझाकर इस प्रथा का अन्त करने के लिये राज़ी कर लिया। ४ मार्च १८६१ को एक उद्घोषणा द्वारा अपने साम्राज्य में भूमि-दास प्रथा का अन्त कर दिया* और जनता ने उसे 'मुक्तिदाता ज़ार' की उपाधि देकर उसका अभिनन्दन किया। घोषणा तो कर दी गई थी परन्तु उसे कार्यान्वित करने में लगभग ६ वर्ष लग गये।† यह आदेश तीन सिद्धान्तों पर आधारित था। प्रथम, नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करना; द्वितीय, भूमि का नव-वितरण तथा तृतीय, राज्य की सहायता। सर्वप्रथम, इस आदेश के द्वारा दासों को नागरिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। दासों को केवल मुक्त कर देना और उन्हें स्वतन्त्र कृषक बना देना ही पर्याप्त नहीं था। भूमि-विहीन कृषकों की दशा पहले से भी अधिक बुरी हो जाती। अतः उन्हें भूमि देने की व्यवस्था की गई। स्वामियों को भूमि के दो भाग किये गये जिनमें से एक भाग उन्हीं के पास छोड़ दिया गया और दूसरे भाग का स्वाम्य कृषकों को प्राप्त हुआ। परन्तु यह स्वाम्य पश्चिमी रूस को छोड़ कर और कहीं वैयक्तिक स्वाम्य नहीं था। किसान स्वयं अपने हिस्से का मालिक नहीं बना। स्वाम्य सामूहिक था और एक गाँव की भूमि व्यक्तिगत कृषकों को न देकर गाँव की पंचायत (मीर) को दी गई जो अपनी ओर से कृषक को भूमि देती थी और उससे मालगुज़ारी वसूल करती थी। इस प्रकार इस आदेश के द्वारा ज़मीदारों के 'सम्पत्ति के पवित्र अधिकार' पर आघात हुआ, उनकी कुछ भूमि छीन ली गई। परन्तु इसके साथ ही उन्हें उसका मुआविज़ा दिया गया। कृषकों या गाँव-पंचायतों के पास भूमि की कीमत अदा करने को कुछ नहीं था इसलिए सरकार ने अपनी ओर से ज़मीदारों को भूमि की क़ीमत दे दी और उसको ६ प्रतिशत ब्याज के साथ ४९ किश्तों में वसूल करने की व्यवस्था की। इन किश्तों को अदा करने का भार मीर पर था जो मालगुज़ारी के साथ भूमि की क़ीमत भी कृषक से वसूल करती थी।‡

---

* इन्हीं दिनों दास-प्रथा के प्रश्न पर अमेरिका में गृह-कलह हो रहा था जिसके अन्त में (१६५५) राष्ट्रपति अब्राहम लिकन ने इस प्रथा को समाप्त कर दिया। जो कार्य अमेरिका में लिकन ने किया वही उसके चार वर्ष पहले एलेक्ज़ेण्डर ने रूस में किया।

† Grant and Temperley : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 294.

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 94. यह भूमि की व्यवस्था वास्तव में अच्छी नहीं थी और शताब्दी के अन्त तक उसे रद्द करना पड़ा। Grant and Tempreley, p. 295.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऊपर से देखने में तो ऐसा मालूम होता था मानों कृषक इस व्यवस्था से सुखी हो गये, परन्तु वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं हुई। इससे किसानों के केवल स्वामी बदल गये। अभी तक ज़मीदार उनका स्वामी था परन्तु अब उसकी जगह मीर ने ले ली जिसका अधिकार उन्हें उतना ही अखरता था जितना ज़मींदारों का। उन्हें मालगुज़ारी तो देनी ही पड़ती थी, इसके साथ ही अपनी भूमि की क़ीमत की वार्षिक किश्त भी देनी पड़ती थी। उसके ऊपर नये करों का भार आ पड़ा जो उनकी मालगुज़ारी से प्रायः अधिक होता था और जो उन्हें अन्याय प्रतीत होता था। वे भूमि पर अपना अधिकार समझने लगे थे और ज़मीदारों को उसका मुआविज़ा देना अर्थात् अपनी स्वतंत्रता की कीमत अदा करना अन्याय समझते थे। इस नई व्यवस्था का ज़मीदारों पर प्रभाव अच्छा ही पड़ा। उन्होंने भूमि छीनने का विरोध तो किया परन्तु अब वे मितव्ययी हो गये और अपनी भूमि का प्रबन्ध स्वयं देखने लगे और अच्छी तरह करने लगे।

अन्य सुधार—न्याय-व्यवस्था—

इस महान् सुधार के साथ एलेक्ज़ेण्डर ने अन्य सुधार भी किये। विश्व-विद्यालयों तथा यात्रा पर जो नियंत्रण थे वे हटा लिये गये और प्रेस पर जो कठोर निरीक्षण था वह ढीला कर दिया गया। सेना तथा नौ सेना का नये सिरे से संगठन किया गया, राज्य का बजट प्रकाशित होने लगा और न्याय-व्यवस्था में भी इङ्गलैण्ड तथा फ्रांस की न्याय-व्यवस्था के आधारभूत सिद्धांतों—न्याय तथा प्रशासन का पृथक्करण, मौखिक प्रक्रिया (Oral procedure) तथा जूरी द्वारा जाँच—का प्रचार करके सुधार किया गया। नये दण्ड विधान का निर्माण किया गया और दीवानी तथा फ़ौजदारी प्रतिक्रियाओं में भी सुधार हुआ। न्यायालयों की नई, व्यवस्था की गई और छोटे-छोटे मामलों के लिये निर्वाचित न्यायाधीशों की प्रथा आरम्भ की गई (१८६२)। परन्तु इस नई व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिये सुयोग्य कर्मचारियों का अभाव था। इस कारण आरम्भ में तो इससे कोई विशेष सुधार नहीं हो सका, फिर भी भ्रष्टाचार में कुछ कमी अवश्य हुई और धीरे-धीरे न्यायिक सेवाओं तथा राष्ट्र में न्याय-भावना बढ़ने लगी।*

स्थानीय स्व-शासन—

क्रीमियन युद्ध ने प्रशासन की अयोग्यता प्रकट कर दी थी और उसमें भी सुधार अत्यन्त आवश्यक था। अतः १८६४ में साम्राज्य के मध्य के प्रान्तों में विकेन्द्रीयकरण तथा प्रान्तीय स्वराज्य के सिद्धांतों के आधार पर स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था की गई। दो नई प्रकार की समितियां (Zesmtvo—भूमि-समिति)—ज़िलों के लिये तथा प्रांतों के लिये—स्थापित की गई जिनमें

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 292.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाज के सभी वर्गों—रईस, कृषक तथा मध्यम वर्ग—को प्रतिनिधित्व मिला। ज़िला-समितियों का जनता निर्वाचन करती थी और प्रान्तीय समितियों का निर्वाचन जिला-समितियाँ करती थीं। इन्हें स्थानीय कर वसूल करने का अधिकार दिया गया और उनका काम सड़कों तथा पुलों, गिरजाघरों, पाठशालाओं, कारागारों, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा गरीबों की सहायता की व्यवस्था करना रहा।* इनके कामों पर दो प्रकार के प्रतिबन्ध थे। प्रान्तीय गर्वनरों को उनके निर्णय रद्द कर देने का अधिकार था और अपने कामों को सुचारु रूप से करने के लिए उनके पास पर्याप्त आर्थिक साधनों का अभाव था। रूसी जीवन का पश्चिमी योरोप की अवस्थाओं के साथ इन तीनों सुधारों द्वारा साम्य स्थापित करने के प्रयत्नों के कारण एलेक्ज़ेण्डर के शासन के आरम्भिक वर्ष युगान्तरकारी हैं।†

प्रतिक्रिया—

परन्तु एलेक्ज़ेण्डर की यह उदार एवं प्रगतिशील नीति अधिक दिनों तक नहीं चली। सुधारों की एक दशाब्दि के बाद रूस में फिर प्रतिक्रिया शुरू हो गई और प्रथम निकोलस का ज़माना लौट आया। इसके कई कारण थे। ये सब सुधार कागज़ पर ही आकर्षक थे परन्तु व्यवहार में सन्तोषप्रद सिद्ध न हो सके। जैसा हम देख चुके हैं, कृषकों की आर्थिक दशा में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ और सुयोग्य कर्मचारियों के अभाव में न्यायिका तथा प्रशासनीय सुधारों से भी अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हुए। इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण भी था। लोग समझते थे, यद्यपि ऐसा समझने के लिए कोई कारण नहीं था, कि इन सुधारों से पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयगा परन्तु जब उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई तो प्रतिक्रिया हुई और असीम आशा का स्थान घोर निराशा ने ले लिया। इन धारणों के साथ ही स्वयं एलेक्जेण्डर का चरित्र ही उसके लिये उत्तरदायी था। उसे उदारवाद में विश्वास नहीं था। उसने जो सुधार किये थे वे इसी कारण किये थे कि वे आवश्यक थे और वह समझता था कि यदि सुधार होना ही है तो वे राजा की तरफ से ही हों, जनता द्वारा नहीं। उसे स्वयं अपने निर्णय में बहुत कम विश्वास था और इस कारण वह अपने सलाहकारों पर निर्भर था। उसके सलाहकार सभी निकोलस के मत के घोर प्रतिक्रियावादी थे वे कुछ दिनों तक तो चुप रहे परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने साम्राट् पर फिर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया और १८६४ के बाद उसका सुधारवादी जोश कुछ तो

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 181.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 89.

CC-0. Agamnigam Digital Presevetion Foundation, Chandigarh

इस भय के कारण कि अधिक रियायतें देने से उसके स्वच्छंद शासन में निर्बलता आ जायगी और कुछ पोलेण्ड में विद्रोह हो जाने के कारण ठंडा पड़ गया।*

पोलेण्ड का विद्रोह—

रूस के समान पोलेण्ड के प्रान्त में भी एलेक्ज़ेन्डर ने काफी सुधार किए थे। निकोलस की दमन-व्यवस्था को हटा कर उसने उनके लिये पृथक् प्रशासन की व्यवस्था कर दी थी, असैनिक विभाग सब पोल लोगों के हाथों में दे दिए थे, स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था की गई थी, पोलिश शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया था और पाठशालाओं में शिक्षा भी पोलिश भाषा में देने का अधिकार दे दिया गया था। परन्तु पोल लोग इन सुधारों से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए गुप्त समितियों का संगठन करना और आन्दोलन करना शुरू कर दिया। १८६३ में उन्होंने रूस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अन्य राज्यों से, मुख्यकर तृतीय नेपोलियन से, भी सहायता माँगी। मौखिक सहानुभूति के अतिरिक्त उन्हें कहीं से कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। इसके साथ ही उन्होंने पोलेण्ड के साथ लिथुएनिया को शामिल करने की माँग करके प्रतिक्रियावादी रूसियों के साथ साथ उदारवादी रूसियों को भी नाराज़ कर लिया।† बिस्मार्क रूस से मित्रता स्थापित करना चाहता था। इस कारण उसने उसका ही साथ दिया। नेपोलियन ने एक योरोपीय कांग्रेस का प्रस्ताव किया परंतु प्रशा तो रूस का साथी था ही, इङ्गलैण्ड और ऑस्ट्रिया भी राज़ी नहीं हुए। उन्होंने रूस को अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए कुछ पत्र लिखने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। बेचारे पोल लोग असहाय अवस्था में लड़ते रहे और मार्च १८६४ तक एलेक्ज़ेण्डर ने उन्हें पूरी तरह से दबा दिया। उन्हें जो स्वशासन प्राप्त हुआ था वह छिन गया और पोलेण्ड रूस का एक प्रांत बना दिया गया। इतना ही नहीं, पोलेण्ड का बड़े जोरों से रूसीकरण भी किया जाने लगा। गिरजाघरों, पाठशालाओं, अखबारों, नाटकघरों आदि सब जगह पोलिश भाषा के प्रयोग का निषेध कर दिया गया और सरकारी पत्रव्यवहार तथा विश्वविद्यालयों, कॉलेजों आदि में रूसी भाषा का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया। गुप्तचरों का फिर ज़ोर बढ़ा; अखबारों, पाठशालाओं, पुस्तकों आदि पर फिर कड़ा निरीक्षण शुरू हुआ और जिन लोगों पर राजनैतिक आन्दोलन में सम्मिलित होने का संदेह होता था वे गिरफ़्तार किये जाने लगे। सारांश में, पोलेण्ड में फिर से प्रतिक्रिया तथा दमन का चक्र चलने लगा।

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 100.

† Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 189.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापक असन्तोष

पोलेण्ड के विद्रोह ने एलेक्जेण्डर को कट्टर प्रतिक्रियावादी बना दिया जिसके परिणाम-स्वरूप विचारवान् पुरुषों में तीव्र असंतोष उत्पन्न हुआ। यह असंतोष जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, समाज के सभी वर्गों में व्याप्त था। सम्राट् ने अधूरे सुधारों द्वारा राष्ट्र को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया था—कृषकों को अपर्याप्त मुक्ति द्वारा और रईसों तथा मध्यम वर्ग को केवल स्थानीय स्वशासन द्वारा। यह स्पष्ट था कि जब तक केन्द्रीय शासन में जनता का हाथ नहीं होगा तब तक वास्तविक सुधार होना असम्भव था। रईस लोग समझते थे कि भूमिदासों को क़ानूनी स्वतंत्रता प्राप्त होने के साथ उन्हें भी राजनीतिक स्वतंत्रता मिलेगी और वे राजनीतिक सत्ता में भाग बंटा सकेंगे। १८६५ में उन्होंने सम्राट् से प्रतिनिधिक संस्थाएँ स्थापित करने की प्रार्थना भी की परन्तु वह उसका अंत तक विरोध करता रहा। इस प्रकार यह असंतोष व्यापक था और उसने एक नये सर्वसत्ताद्रोही अथवा शून्यवादी (Nihilist) आन्दोलन को जन्म दिया।*

शून्यवाद—

यह आन्दोलन रूस के शिक्षित व्यक्तियों का था। वे लोग पश्चिमी योरोप के उग्र दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों के विचारों के प्रभाव में आ चुके थे और उग्र व्यक्तिवादी थे। वे प्रत्येक संस्था, प्रत्येक रीति-रिवाजों तथा प्रत्येक वस्तु को बुद्धि की कसौटी पर कसते थे और चूँकि रूस की कोई भी संस्था इस कसौटी पर पूरी नहीं उतरती थीं; इस कारण वे सबका विरोध करते थे। सम्राट का स्वेच्छाचारी शासन, राज्य की सत्ता, चर्च की पवित्रता तथा उसका सत्य, सामाजिक बन्धन, पारिवारिक जीवन, वैयक्तिक सम्पत्ति, क़ानूनी इक़रारों का बन्धन आदि सब उन्हें दूषित दिखाई देते थे। वे पक्के यथार्थवादी तथा उपयोगितावादी होने का दावा करते थे और इन सब बातों का विनाश करके समाज का नवनिर्माण करना चाहते थे।

शून्यवाद की प्रगति—

आरम्भ में (१८६०-१८७०) तो यह शून्यवाद प्रधानतः दार्शनिक तथा साहित्यिक था और उसका उद्देश्य अन्धविश्वास, पुरानी परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि का विनाश था, परन्तु १८७१ के लगभग इसका रूप बदला।

---

* निहिलिज़्म शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम रूस के प्रख्यात उपन्यासकार तुर्गनेव ने अपनी कृति 'फादर्स एण्ड सन्स' में किया था, जिसमें एक निहिलिस्ट का चरित्र-चित्रण करते हुए बतलाया है कि वह 'किसी भी सत्ता के सामने नहीं झुकता और किसी भी सिद्धान्त को विश्वासमात्र पर ग्रहण नहीं करता, चाहे वह कितना ही आदरणीय क्यों न हो।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
१८६६ में सम्राट् की हत्या का प्रयत्न हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप उस पर प्रतिक्रियावादियों का प्रभाव हो गया और सरकार दमन करने लगी। इसी समय उस पर समाजवाद का भी प्रभाव पड़ा और वैयक्तिक स्वतंत्रता की भावना सामाजिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता की व्यापक भावना में विलीन हो गई। बहुत से विचारकों का बाकूनिन तथा पश्चिमी योरोप के उसके अनुयायियों के क्रान्तिवादी तथा अराजकतावादी विचारों से सम्पर्क था। इन प्रभावों के फल-स्वरूप रूस में दो मुख्य विचारधाराएँ—'समाजवादी' तथा 'अराजकतावादी'—चल पड़ीं। आरम्भ में समाजवादियों का विशेष प्रभाव रहा, वे समाजवादी विचारों का प्रचार करने लगे और शून्यवाद का रूप दार्शनिक तथा साहित्यिक से बदल कर प्रचारमूलक हो गया। १८७२ से १८७५ तक शान्तिपूर्ण प्रचार का काम होता रहा। इन प्रचारकों में प्रिन्स क्रोपॉटकिन भी था, जो सेंट पीटर्स वर्ग के मजदूरों में काम करता था। परन्तु पुलिस ने यह प्रचार कार्य असम्भव कर दिया और प्रचारकों का कठोर दमन होने लगा। कोई डेढ़ लाख व्यक्ति साइबेरिया को निर्वासित कर दिये गये। इस कठोर दमन ने आन्दोलन को क्रान्तिवादी दिशा में जाने को विवश कर दिया और उसने राजनीतिक आतंक-वाद का रूप धारण कर लिया। बातों का स्थान अब काम ने ले लिया। शक्ति का मुकाबला शक्ति से होने लगा और शान्तिपूर्ण आन्दोलन के स्थान पर सशस्त्र विरोध होने लगा। १८७६ से १८७८ तक प्रदर्शन और दंगों का ज़माना रहा। परन्तु सरकार ने आन्दोलनकारियों का कठोर दमन किया। विद्यार्थी विश्व-विद्यालयों से निकाल दिए गये; स्वशासन संस्थाओं तथा न्यायालयों पर कठोर नियंत्रण हो गया और जरा-जरा से अपराधों के लिये कड़े दण्ड दिये जाने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षित वर्ग अधिकाधिक क्राँतिवादी होता गया और गुप्त षड़यंत्रों तथा हत्याओं पर उतर आया। उन्होंने बड़े-बड़े सरकारी अधिकारियों, पुलिस के अफसरों की हत्याएँ करना आरम्भ किया। इसके बदले में सरकार क्राँतिकारियों को मृत्युदंड देने लगी और देश भर में फौजी शासन कायम कर दिया गया। परन्तु इससे क्राँतिकारी दबे नहीं, उनके प्रयत्न बढ़ते ही गये। सम्राट् की हत्या के भी प्रयत्न होने लगे। तीसरी बार के प्रयत्न में एक क्राँतिकारी ने, जो राजमहल में नौकरी करता था, मौका पाकर महल को बारूद से उड़ा दिया (फ़र्वरी १८८०)। जब सम्राट् ने घोर दमन से भी आंदोलन दबता हुआ नहीं देखा तो उसने समझौते की नीति पर काम करना आरम्भ किया। उसने लॉरिस-मेलिकॉफ को डिक्टेटर नियुक्त किया; जिसने ऐसा प्रकट किया, मानो दमन-नीति का परित्याग कर सरकार सुधार करने वाली है परन्तु यह भ्रम शीघ्र ही दूर हो गया। उसका शासन-व्यवस्था में कोई बड़ा परिवर्तन करने का इरादा नहीं था। उसने सैकड़ों बंदी छोड़ दिये और नरम शासन आरम्भ किया तथा ज़ार को समझा-बुझाकर एक जनरल कमीशन की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नियुक्ति की स्वीकृति ले ली। इसमें कुछ सदस्य स्वशासन संस्थाओं तथा मुख्य नगरों द्वारा निर्वाचित होते थे और उसका काम केवल परामर्श देना था।* १३ मार्च १८८१ को ज़ार ने मेलिकॉफ की योजना को सरकारी गजट में प्रकाशित करने का आदेश दिया, परन्तु उसी दिन उस पर बम फेंका गया और उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार 'मुक्तिदाता ज़ार' का अंत हुआ और उसके साथ ही उदारवादियों की आशाएँ भी नष्ट हो गईं।†

तृतीय एलेक्जेण्डर (१८८१-१८९४)—

द्वितीय एलेक्जेण्डर की हत्या के बाद उसका पुत्र तृतीय एलेक्जेंडर सम्राट् बना। वह बड़ा दृढ़ निश्चय, निरंकुशता का उपासक और घोर प्रतिक्रियावादी था। सिंहासन पर बैठते ही उसने घोषणा की कि 'ईश्वर की वाणी ने हमको आदेश दिया है कि हम निरंकुश सत्ता के सत्य तथा उसकी शक्ति में जिसको जनता के हित के लिये हमें प्रत्येक अतिक्रमण से सुरक्षित रखना है, पूर्ण विश्वास रखते हुए शासन के कर्णधार बने रहें।' इस घोषणा द्वारा उसने अपनी नीति प्रकाशित की और कठोर प्रतिक्रियावादी एवं दमनकारी शासन आरम्भ किया। वह प्रथम निकोलस के समान पक्का स्लाव-राष्ट्रीयता का भक्त था। वह रूस को नवजीवन प्रदान करना चाहता था, परन्तु उसके विचार में नवजीवन पाश्चात्य योरोप के उदारवाद तथा उसकी पार्लामेण्टरी संस्थाओं द्वारा नहीं, बल्कि स्वयं रूस के स्वदेशीय विशिष्ट सिद्धान्तों—निरंकुश शासन, धर्मान्ध चर्च तथा स्लाव-राष्ट्रीयता—के पालन द्वारा ही प्राप्त हो सकता था। अपनी इस नीति में रूस की ऑर्थाडॉक्स चर्च के सरकारी अध्यक्ष (Procurator of the Holy Synod) पोबीदोनोस्तेव (Pobiedonostev) का उसे पूर्ण समर्थन प्राप्त था। वह उदारवाद तथा पश्चिमी योरोप की पार्लामेण्टरी संस्थाओं का घोर शत्रु था और उन्हें रूस के लिये नितान्त अनुपयुक्त बतलाता था। उसका कथन था कि पश्चिमी योरोप के अराजकतावाद तथा नास्तिकवाद से रूस की रक्षा करने का एक ही मंत्र था—'एक ज़ार, एक चर्च और रूस'।§

पुनः प्रतिक्रिया—

उसने अपने शासन का आरम्भ मेलिकॉफ की योजना को रद्द कर अपने पिता के हत्यारों के विनाश से किया। उसकी हत्या में भाग लेनेवालों का ढूँढ़ ढूँढ़ कर पता लगाया गया और उन्हें या तो मृत्युदण्ड दिया गया या साइबेरिया को निर्वासित कर दिया गया। अन्य निहिलिस्ट तथा आतंकवादी भी कारागार

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 106.
† Hazen : Modern European History, p. 567.
‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 107,
§ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 366.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में डाल दिये गये या साइबेरिया भेज दिये गए। प्रेस तथा विश्वविद्यालयों के मुँह बन्द कर दिये गए, स्वशासन संस्थाओं (Zemstvos) की सत्ताएँ कम करदी गईं। देश भर में फ़ौजी क़ानून लागू कर दिया गया और गुप्त पुलिस (The Third Section) में वृद्धि की गई। इस प्रकार देश में कठोर दमन-चक्र चलने लगा और ऐसा मालूम होने लगा मानो आन्दोलन दब गया, परन्तु वास्तव में आन्दोलन दबा नहीं था, उसने अपना प्रकट रूप छोड़कर गुप्त रूप धारण कर लिया था।

फ़िन, पोल आदि अधीन अ-रूसी लोगों का रूसीकरण भी बड़े जोरों से आरम्भ हुआ। सब लोगों पर समान रूप से रूसी भाषा तथा रूसी कानून लाद दिए गये और अन्य प्रकार से भी समान व्यवस्थाएँ करके उनकी विशिष्टताओं तथा विविधताओं को मिटाने का प्रयत्न किया गया। सबसे अधिक अत्याचार यहूदियों पर हुआ। उन्हें केवल कुछ नगरों में ही रहने की आज्ञा दी गई, स्वशासन-व्यवस्था से अलग कर दिया गया और आंशिक रूप से शिक्षा से भी वंचित कर दिया गया। उनके लिये कृषि करने या जिस क्षेत्र में वे रखे गये थे उससे बाहर सम्पत्ति रखने का निषेध कर दिया गया। सरकार उन्हें क्रांतिकारी तथा धर्म एवं सम्राट् के शत्रु कह कर उनकी निन्दा करती थी और जनता की भीड़ भी उन्हें सब प्रकार से सताती थी, उनके मकानों में घुस जाती थी, माल-असबाब लूट लेती थी, मकानों में आग लगा देती थी, उनसे मारपीट करती थी और कभी-कभी उनकी हत्या भी कर देती थी।* सरकार यह सब चुपचाप देखती रहती थी। इस यहूदी-विरोधी नीति के तीन परिणाम हुए—(१) बड़े नगरों में गरीब, असंतुष्ट यहूदियों ने अपनी अलग बस्तियाँ बसा लीं, (२) यहूदी लोग इस अत्याचार से दुःखी होकर हजारों की संख्या में रूस छोड़कर जाने लगे। १८८० और १९०० के बीच में कोई १५ लाख यहूदी रूस छोड़ कर अन्यत्र, मुख्यकर अमेरिका में जा बसे, और (३) यहूदियों में राष्ट्रीय (Zionist) आन्दोलन आरम्भ हुआ; जिसका उद्देश्य अपनी खोई हुई मातृ-भूमि पेलेस्टाइन को पुनः प्राप्त करना था। अ-रूसी लोगों के रूसीकरण के साथ ही रूसी चर्च में भिन्न धर्मावलम्बियों, केथोलिकों, प्रोटेस्टेण्टों आदि का भी दमन आरम्भ हुआ। दक्षिणी रूस के प्रोटेस्टेण्ट स्टण्डिस्ट लोग (Stundists) तो निर्मूल कर दिए गये।$ अपने जीवन के अंत (१८९४) तक एलेक्जेण्डर इसी नीति पर दृढ़ बना रहा और उसमें उसने बिल्कुल ढील नहीं आने दी।

औद्योगिक उन्नति—

इस व्यापक अन्धकार में केवल एक ही दिशा में प्रकाश दिखाई देता था। रूस शताब्दियों से कृषि-प्रधान था। उसके प्राकृतिक साधन तो अपार थे, परन्तु

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 367.
$ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 367.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनका उपयोग नहीं हुआ था। जो थोड़े-बहुत उद्योग वहाँ थे वे केवल कुटीर-उद्योगों के ढंग के थे। द्वितीय एलेक्ज़ेण्डर ने देश की औद्योगिक उन्नति की ओर ध्यान दिया था और संरक्षण-नीति के द्वारा उद्योगों को प्रोत्साहन देना आरम्भ किया था। इस प्रकार उसके शासनकाल में रूस में औद्योगिक क्रान्ति का श्रीगणेश हो चुका था। तृतीय एलेक्ज़ेण्डर ने भी अपने पिता की नीति पर कार्य जारी रखा और आधुनिक ढंग के कारखानों की उन्नति होने लगी। उसने १८९२ में सर्जियस-डी-विट (Sergius de Witte) को अपना अर्थ एवं वाणिज्य मंत्री नियुक्त किया जिसने संरक्षण-नीति का अवलम्बन करके और विदेशी पूँजीपतियों को समुचित संरक्षण एवं लाभ का आश्वासन देकर उन्हें रूस में पूँजी लगाने के लिये प्रोत्साहित किया। दासों की मुक्ति के बाद से देश में काम करने वालों की कोई कमी नहीं थी। अब विदेशों से पूंजी भी आने लगी और देश के उद्योग-धन्धे बड़ी तेज़ी से उन्नति करने लगे। औद्योगिक उन्नति के लिए यातायात के अच्छे साधनों की आवश्यकता होती है। परन्तु रूस में उनका अभाव था। विट ने इस ओर भी ध्यान दिया और पश्चिमी योरोप के देशों से, मुख्य कर फ्रांस से भारी-भारी ऋण लेकर रेल मार्गों के विस्तार का काम शुरू किया। जहाँ उसके पहले वर्ष में ४०० मील लम्बी रेल की लाइनें डाली जाती थीं, वहां उसने प्रतिवर्ष १४०० मील लम्बी लाइनों का निर्माण आरम्भ किया। इन लाइनों में सबसे विशाल और महत्वपूर्ण लाइनें 'ट्रान्स-साईबेरियन' रेल थी जो मॉस्को से चलकर पूर्व की ओर प्रशान्त महासागर पर स्थित ब्लेडीवॉस्टॉक पहुँचती है। उसका आरम्भ १८९१ में हुआ था और ग्यारह वर्ष बाद १९०२ में उसका उद्घाटन हुआ। रेलों की उन्नति से उद्योगों का भी विस्तार हुआ, खानों से खनिज पदार्थ निकाले जाने लगे और तरह तरह के कारखाने खुलने लगे। रेलों के निर्माण से केवल औद्योगिक उन्नति में ही सहायता नहीं मिली, उससे रूस के सैनिक उत्कर्ष के मार्ग की बाधाएँ भी हट गई। क्रीमियन युद्ध में रूस की पराजय के अनेक कारणों में से एक यातायात के साधनों का अभाव भी था, जिसके कारण सेनाओं को रसद पहुँचाने में बड़ी कठिनाई होती थी।

इस औद्योगिक विकास के साथ उसके स्वाभाविक परिणाम भी शीघ्र ही दृष्टिगोचर होने लगे। नगरों की संख्या बढ़ने लगी एक बड़ा मज़दूर वर्ग तैयार हो गया और उसकी स्वाभाविक समस्याएं भी उपस्थित होने लगीं। मज़दूरों में समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार होने लगा। पूँजीपतियों तथा व्यवसायियों का एक नया मध्यम वर्ग बन कर तैयार हो गया जिसने शीघ्र ही राजनीतिक अधिकारों की मांग शुरू की।*

*Hazen : Modern European History, pp. 567-569.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३६

रूस की विदेश-नीति

पूर्वीय समस्या (१८५६-१८९०)

योरोपीय राज्यों ने क्रीमियन युद्ध की समाप्ति के उपरान्त पेरिस के शान्ति-सम्मेलन (१८५६) में रूस की बाल्कन प्रायद्वीप-सम्बन्धी आकांक्षाओं पर नियंत्रण लगाने और मृतप्राय टर्किश साम्राज्य को जीवित रखने का प्रयत्न किया था। परन्तु यह प्रयत्न व्यर्थ था। वे रूस की प्रगति को रोक सके थे, परन्तु टर्की के साम्राज्य में बसी हुई ईसाई जातियों की राष्ट्रीयता की भावना तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षाओं पर रोक नहीं लगा सके। पूर्वीय समस्या जो पहले से ही बड़ी पेचीदा थी, १८५६ के बाद इसी कारण अधिक जटिल हो गई और टर्की के साम्राज्य के विभिन्न अंग, योरोपीय राज्यों के संरक्षण में रहते हुए भी धीरे-धीरे टूट-टूटकर अलग होने लगे।

स्वतंत्र रूमानिया का निर्माण—

ग्रीस पहले ही स्वतंत्र हो चुका था, सर्बिया को अर्द्ध-स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी और पेरिस की संधि (१८५६) के अनुसार मोल्डेविया तथा वालेशिया के प्रदेशों को भी टर्की के प्रभुत्व के अन्तर्गत आन्तरिक स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी। मोल्डेविया और वालेशिया के निवासी एक ही जाति के थे और एक ही भाषा बोलते थे और वे अपने आप को रूमानियन कहते थे। उन्हें अपना विभाजन तथा टर्की का प्रभुत्व अखरता था और वे टर्की के प्रभुत्व का अन्त करके अपनी स्वतंत्र एकता स्थापित करना चाहते थे। पेरिस की संधि के अनुसार उन्हें अपनी-अपनी राष्ट्रीय सभाओं में अपने 'भावी निश्चित संगठन' के निर्माण का अधिकार प्राप्त हुआ था।* इसी अस्पष्ट अधिकार का आश्रय लेकर दोनों प्रदेशों ने १८५९ में एक ही व्यक्ति एलेक्जेण्डर कूज़ा (Alexander Couza) को अपना शासक चुन लिया। यह पेरिस की संधि का अंग था। ऑस्ट्रिया, टर्की तथा इङ्गलैण्ड ने इसका विरोध किया, परन्तु नेपोलियन को रूमानियन लोगों के साथ सहानुभूति थी। उसने रूस को अपनी तरफ़ करके टर्की, इङ्गलैण्ड और ऑस्ट्रिया को भी यह कहकर समझा लिया कि उन दोनों प्रदेशों का एक संयुक्त राज्य रूस के मार्ग में अधिक प्रभावकारी बाधक बन सकेगा।† इस प्रकार

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 302.

†Marriott : The Eastern Question, p. 298.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नेपोलियन के कहने-सुनने से योरोपीय राज्यों ने इन दोनों प्रदेशों के एकीकरण को स्वीकार कर लिया और २३ दिसम्बर १८६१ को दोनों प्रदेशों की एकता घोषित हुई। नये राज्य का नाम रूमानिया रहा और उसकी राजधानी बुखारेस्ट में स्थापित हुई। इस प्रकार टर्की के साम्राज्य का एक प्रदेश और निकल गया; योरोपीय राज्यों का संरक्षण व्यर्थ प्रमाणित हुआ और उनकी व्यवस्था का भंग होना आरम्भ हुआ। १८६७ में सर्बिया ने भी टर्की को समझा-बुझाकर तथा इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, रूस और ऑस्ट्रिया की अनुमति प्राप्त कर अपने क़िलों को टर्की की सेनाओं से मुक्त करने में सफलता प्राप्त की। टर्की की सेनाएँ वहाँ से हट गईं और सर्बिया वस्तुतः स्वतंत्र हो गया। केवल टर्की की नाममात्र प्रभुता बनी रही।

रूस की नई नीति—

पेरिस में की हुई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था भंग करने की ओर अगला कदम रूस ने उठाया। द्वितीय एलेक्जेण्डर को क्रीमियन युद्ध के बाद से विदेश-नीति के सम्बन्ध में एक नया विचार सूझा। सर्ब और बलगार लोग स्लाव थे। रूसी लोग भी स्लाव थे। ऑस्ट्रिया-हंगरी में भी अनेक स्लाव जातियाँ थीं। इन दिनों जैसा हम देख चुके हैं, बाल्कन प्रायद्वीप में राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ रही थी। उधर कुछ वर्षों से समस्त स्लाव लोगों को एक करने के उद्देश्य से अखिल-स्लाव आन्दोलन चल रहा था, जिसका जन्म, ऑस्ट्रिया-हंगरी में १८२४ में हुआ था। अब तक रूस की सरकार ने इस आन्दोलन को बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखा था। प्रथम एलेक्जेंडर जातीय पक्षपात से रहित था। निकोलस रूसी था, परन्तु वह रूसी सेना पर ही कॉन्स्टेन्टीनोपल पर अधिकार कर सकने के विश्वास में रहा। परन्तु क्रीमियन युद्ध ने उसके विश्वास की निराधारता प्रगट कर दी, जिसका द्वितीय एलेक्जेण्डर तथा रूस की नौकरशाही पर काफी प्रभाव पड़ा और उन्होंने अखिल-स्लाव-आन्दोलन का समर्थन करके अपनी टर्की-संबंधी आकांक्षाओं को पूर्ण करने का निश्चय किया। क्रीमियन युद्ध के बाद से ही अखिल-स्लाववाद के प्रचारक बाल्कन प्रायद्वीप में प्रचार करने लगे थे जिनमें अधिकांश रूसी थे। १८६७ में मॉस्को में वैज्ञानिक सम्मेलन के रूप में एक अखिल-स्लाव कांग्रेस हुई, जिसने मॉस्को में एक केन्द्रीय समिति नियुक्त की। बाल्कन प्रायद्वीप में पुस्तकों और पुस्तिकाओं का प्रचार होने लगा, स्लाव युवक रूस के विद्यालयों में अध्ययन के लिये जाने लगे और सर्बिया, मॉण्टीनीग्रो,

---

The Eastern Question, p. 317.

Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, pp. 295-297.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बॉस्निया तथा बल्गारिया में अनेक गुप्त समितियाँ बन गईं। रूस की सरकार भी इस आन्दोलन की सहायता करने लगी। प्रायद्वीप के विभिन्न भागों में तथा कॉन्स्टेन्टीनोपल में स्थित रूसी राजदूत सभी अखिल-स्लाव मनोवृत्ति के थे।*

काले सागर-सम्बन्धी शर्तों का भंग—

रूस ने बाल्कन प्रायद्वीप के विभिन्न लोगों के साथ क्रियात्मक सहानुभूति प्रगट करना भी शुरू किया। उसने टर्की के विरुद्ध मॉन्टीनीग्रो को सहायता दी और १८६१ में रूमानिया को स्वतंत्र होने में मदद दी। १८६७ में सर्बिया के गढ़ों से टर्की की सेनाओं को हटाने के संबंध में भी उसने हस्तक्षेप किया और टर्की के साम्राज्य में स्लाव लोगों की स्थिति को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से उनके लिये ग्रीक चर्च के स्थान पर स्लाव चर्च तथा स्लाव धर्मगुरु की मांग की (१८७०)। टर्की के सुल्तान ने भी इस मांग में ईसाइयों में फूट डालने और और कमज़ोर करने की सम्भावना देखकर उसे स्वीकार कर लिया और मार्च १८७० में स्लाव चर्च की स्थापना करके उसके लिये एक बल्गार धर्मगुरु (Exarch) की नियुक्ति स्वीकार करली।‡ उसी वर्ष उसने पेरिस की संधि की काले सागर से सम्बन्ध रखने वाली शर्तों को भंग कर दिया और सीवेस्टोपील के गढ़ की मरम्मत करने तथा काले सागर में फ़ौजी बेड़ा फिर से रखने और इस प्रकार काले सागर की तटस्थता को भंग करने की घोषणा की। काले सागर की तटस्थता को डिज़रेली 'पेरिस की संधि का सार तथा आधार' समझता था।§ इङ्गलैण्ड को रूस की इस कार्रवाई से बहुत बुरा लगा, परन्तु रूस को बिस्मार्क का समर्थन प्राप्त था, फ्रांस बुरी तरह फँसा हुआ था और स्वयं इङ्गलैण्ड का प्रधान मंत्री ग्लेडस्टन युद्ध करना नहीं चाहता था। अतः वह केवल अपना विरोध प्रगट करके ही चुप हो गया। रूस की इस घोषणा का बाल्कन प्रायद्वीप के स्लाव लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्हें टर्की के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस प्राप्त हुआ।

बाल्कन लोगों में असन्तोष—

विद्रोह शीघ्र ही हुआ। १८५६ में टर्की के सुल्तान ने अपनी ईसाई प्रजा को सुशासन का वचन दिया था। उसके व्यक्तिगत स्वतंत्रता कानून के सामने समानता, पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता, करों की समानता, सम्पत्ति की सुरक्षा आदि

---

* Marriott : The Eastern Question, pp. 319-320.

‡ Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 297.

§ Marriott : Europe and Beyond, p. 51.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकारों की अपनी समस्त प्रजा के लिये घोषणा की थी। परंतु ये सब सुधार केवल काग़ज़ पर ही रहे, सरकारी कर्मचारियों के कारण वे कार्यान्वित न हो सके। लोग पूर्णतया सरकारी कर्मचारियों की दया पर निर्भर थे और उनकी सुननेवाला कोई न था। स्वयं सुल्तान बड़ा फ़ुज़ूल खर्च था जिसके खर्च की पूर्ति के लिये प्रजा से हर प्रकार धन चूँसा जाता था और वह बड़ी दुःखी थी। इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक सभी दृष्टि से प्रजा बड़ी असंतुष्ट थी। इसके साथ ही जातीय भावना से मिश्रित राष्ट्रीय भावना उनके असंतोष को बढ़ा रही थी। बाल्कन प्रायद्वीप बारूद के महान् ढेर की तरह था और जरासी चिनगारी से उसमें विस्फोट हो सकता था।

बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना में विद्रोह—

१८७४ में फ़सल खराब हो जाने से सर्बिया के पश्चिम में स्थित बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना प्रदेशों के किसानों की दशा बड़ी खराब हो गई। उन्होंने कर देने से इन्कार करके विद्रोह कर दिया (जुलाई १८७५) और जो सेना उनके विरुद्ध भेजी गई उसे उन्होंने हरा दिया। वे लोग स्लाव थे और पड़ौसी प्रदेशों (सर्बिया, मॉण्टीनीग्रो और बल्गारिया) के स्लाव लोग उनकी सहायता कर रहे थे। विद्रोह के अधिक विस्तृत हो जाने का डर था। विद्रोहियों ने, योरोपीय राज्यों के जो दूत बॉस्निया में रहते थे, उनके सामने अपनी शिकायतें रखीं। असंतोष को कम करने के लिये सुल्तान ने कुछ सुधारों की घोषणा भी की परंतु इससे विद्रोही संतुष्ट न हुए। विद्रोह जारी रहा और टर्की की सेनाएँ हारती रहीं। योरोपीय सत्ताओं को हस्तक्षेप करना आवश्यक दिखाई दिया। इसी समय सुल्तान ने अपने ऋण पर ब्याज देने की असमर्थता की घोषणा की। इन घटनाओं से चिन्तित होकर जर्मनी, ऑस्ट्रिया तथा रूस के सम्राट् परस्पर मिले और ऑस्ट्रिया के प्रधान मंत्री एण्ड्रेसी (Andrassy) ने उनके आदेशानुसार ३० दिसम्बर १८७५ को एक पत्र (Andrassy note) सुल्तान के पास भेजा जिसमें विद्रोह को सीमित रखने तथा योरोप की शान्ति कायम रखने की चिन्ता प्रकट की गई, सुधार की ओर सुल्तान की उपेक्षा की शिकायत की गई, कुछ सुधारों का उल्लेख किया गया और उन्हें कार्यान्वित करने के लिये एक मिश्रित कमीशन की नियुक्ति की माँग की गई।* इस पत्र के साथ उन्होंने सुल्तान को हल्की-सी धमकी भी दी। इङ्गलैण्ड ने पत्र की समस्त बातों का अनुमोदन किया, परंतु वह सुल्तान पर दबाव डालने के लिये तैयार नहीं हुआ।† सुल्तान ने पत्र की प्रायः सभी मांगें स्वीकार कर लीं, परन्तु विद्रोही खाली वायदों से संतुष्ट होने

---

* Marriott : The Eastern Question, pp. 322-323.

† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 307.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाले नहीं थे। वे उन सुधारों के कार्यान्वित होने की ठोस गारण्टी चाहते थे। विद्रोह जारी रहा।

बल्गारिया का विद्रोह—

अप्रेल में बल्गारिया में भी विद्रोह हो गया। सेलोनिका में फ्रेञ्च तथा जर्मन राजदूतों की हत्या कर दी गई। यह दशा देख कर रूस तथा ऑस्ट्रिया के विदेश-मंत्री बर्लिन में बिस्मार्क से मिले और उन्होंने विद्रोह को बन्द करने की दृष्टि से एक स्मृति-पत्र (Berlin Memorandum) तैयार किया। जिसमें सुल्तान से दो महीने के लिये युद्ध बन्द करने तथा उस अवधि में योरोपीय सत्ताओं के प्रतिनिधियों के निरीक्षण में कुछ सुधार तत्काल करने का आग्रह किया गया और यह भी चेतावनी दी गई कि यदि इस अवधि में सुधार-कार्य नहीं हुआ तो दूसरी कार्रवाई करनी पड़ेगी। फ्रान्स और इटली ने तो इस स्मृति-पत्र का अनुमोदन किया, परंतु इङ्गलैण्ड ने तीनों सम्राटों के स्वतंत्र रूप से कार्य करने का विरोध किया और स्मृति-पत्र का अनुमोदन करने से इन्कार कर दिया।* इतना ही नहीं, अपना विरोध प्रकट करने के लिए उसने कुछ जहाज बेसिका की खाड़ी में भेज दिये। इस पर योरोपीय राज्यों का हस्तक्षेप रुक गया।

बल्गारिया में हत्याकांड—

इङ्गलैंड के रुख से टर्की का साहस बढ़ा और उसने योरोपीय विरोध की परवाह नहीं की। तुर्क देशभक्तों ने ईसाइयों की धमकियों का उत्तर बल्गारिया में कत्ले-आम बोलकर दिया। उन्होंने सुल्तान अब्दुल अजीज़ को निर्बल समझ कर सिंहासन से उतार दिया (३० मई १८७६)। कहा जाता है कि ४ जून को उसने आत्म-हत्या कर ली। उसके बाद मुराद को सुल्तान बनाया गया परन्तु वह भी पदच्युत कर दिया गया और अब्दुल हमीद को सिंहासन पर बिठलाया गया।

सर्बिया का विद्रोह—

उधर ३० जून को सर्बिया ने भी टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और १ जुलाई को मॉण्टीनीग्रो ने भी उसका साथ दिया। स्थिति बड़ी कठिन होती जा रही थी। बल्गारिया में टर्की के अत्याचार बढ़ रहे थे और उसके समाचार योरोप में बड़ी बेचैनी और क्रोध पैदा कर रहे थे। इङ्गलैंड में ग्लेड्स्टन तुर्कों को बल्गारिया से निकाल देने पर जोर दे रहा था। परन्तु इस समय वहाँ प्रधान मंत्री डिज़रेली था जो टर्की को इतना बुरा नहीं समझता था। उसके रुख के कारण योरोपीय सत्ताओं के लिये मिल कर टर्की पर दबाव डालना असम्भव हो रहा था। उसने सुल्तान को सर्बिया तथा मॉन्टीनीग्रो से

* Marriott : The Eastern Question, pp. 324-325.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संधि कर लेने की सलाह दी, योरोपीय सत्ताओं से कह सुनकर कॉन्स्टेन्टीनोपल में एक सम्मेलन करके सुधार के लिये कुछ सुझाव भी पेश किये, परन्तु सुल्तान यह जानता था कि इङ्गलैण्ड उस पर दबाव डालने में योरोपीय सत्ताओं का साथ नहीं देगा। वह यह भी आशा करता था कि पहले की तरह वह रूस के विरुद्ध टर्की की सहायता करेगा।* और इस विश्वास में वह हीलाहवाला करता रहा। रूस को यह देरी असह्य हो रही थी। अन्त में उसका धैर्य टूट गया और उसने ऑस्ट्रिया से तटस्थता का वचन लेकर १४ अप्रेल १८७७ को अकेले ही टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।†

रूस-टर्की का युद्ध—

बेड़ा निर्बल होने के कारण रूस समुद्र की राह से टर्की पर आक्रमण नहीं कर सकता था और थल-मार्ग से आक्रमण करने में बीच रुमानिया पड़ता था। अतः उसने रुमानिया से संधि कर ली और जून में रूसी सेना ने डेन्यूब नदी को पार कर टर्की के साम्राज्य में प्रवेश किया। रास्ते में टर्की का सुदृढ़ दुर्ग प्लेव्ना (Plevna) पड़ता था। उसका घेरा डाला गया परन्तु पाँच महीने तक रूसी सेनाएँ उसे न ले सकीं। अंत में रूस को रुमानिया की सहायता लेनी पड़ी और दिसम्बर में गढ़ का पतन हुआ। अब रूसी सेनाएँ कॉन्टेन्टीनोपल की तरफ बढ़ीं। ५ जनवरी को वे सोफ़िया पहुँच गईं और २० जनवरी को एड्रियानोपल में प्रवेश कर गईं। कॉन्स्टेन्टोनोपल अब केवल डेढ़-सौ मील रह गया था। उधर टर्किश साम्राज्य के काकेशस प्रान्त में भी रूसी सेनाओं ने १८ नवम्बर को कार्स (Kars) का सुदृढ़ दुर्ग ले लिया था। इस प्रकार टर्की की निरन्तर हार होने लगी और मार्च १८७८ में उसे सेनस्टीफ़ेनों (San Stefano) के स्थान पर रूस की शर्तों को स्वीकार कर संधि करनी पड़ी।

सेनस्टीफ़ेनो की सन्धि—

संधि के अनुसार (१) मॉण्टीनीग्रो तथा सर्बिया को कुछ प्रदेश मिले और टर्की ने उनकी स्वतंत्रता स्वीकार कर ली। (२) उसने बॉस्निया और हर्ज़गोविना में कॉन्स्टेन्टीनोपल के सम्मेलन द्वारा सुझाये हुए सुधारों को तत्काल रूस और ऑस्ट्रिया के संयुक्त निरीक्षण में कार्यान्वित करने का वचन दिया, (३) डेन्यूब नदी पर स्थित अपने क़िलों को गिराना और (४) आर्मेनियन

---

* Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 300.

† Marriott : Europe and Beyond, pp. 54-56.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोगों को सुधार प्रदान करना भी स्वीकार किया। (५) रूस को एशिया में बाटूम, क़ार्स तथा कुछ अन्य प्रदेश और योरोप में वेहरेबिया (जो पेरिस की संधि के अनुसार रुमानिया को मिला था) तथा डोब्रूजा का एक भाग मिला। (६) रुमानिया की स्वतंत्रता टर्की ने स्वीकार कर ली और उसे डोब्रूजा का शेष भाग वेसरेबिया के बदले में प्राप्त हुआ। (७) संधि की सबसे मुख्य बात 'बृहद बल्गारिया' (Big Bulgaria) की सृष्टि थी। बल्गारिया तथा पूर्वी रूमीलिया के प्रदेश दोनों मिला दिये गए और उनका बल्गारिया के नाम से एक स्वतंत्र राज्य बनाया गया। उस पर टर्की की केवल प्रभुता और वार्षिक भेंट प्राप्त करने का अधिकार रहा। इस नये राज्य का विस्तार डेन्यूब नदी से लेकर ईजियन सागर तक और पूर्व में काले सागर से पश्चिम में मोनेस्टिक तक था।। इस प्रकार योरोप में टर्की का साम्राज्य वस्तुतः नष्ट हो गया।*

सन्धि का विरोध—

इस प्रकार रूस ने शानदार विजय प्राप्त करके पेरिस की संधि का अपमान धो दिया और बाल्कन प्रायद्वीप में अपना प्राधान्य एक बार फिर स्थापित कर लिया। परन्तु इस संधि से रूस और बल्गारिया को छोड़ कर कोई सन्तुष्ट नहीं था। रुमानिया को जो प्रदेश मिला था, वह ऊसर था सर्बिया, मान्टीनीग्रो और ग्रीस बल्गारिया के उत्कर्ष से अप्रसन्न थे। ग्रीस तो इतना अप्रसन्न हुआ कि उसने थिसेली पर आक्रमण ही कर दिया। ऑस्ट्रिया को भी अपने हितों के लिए चिन्ता हो गई। बिस्मार्क को बाल्कन प्रायद्वीप में कोई दिलचस्पी नहीं थी, परन्तु वह आस्ट्रिया का समर्थक था। सबसे अधिक चिंता इंगलैंड को हुई। डेन्यूब नदी को पार करने के पहले रूस ने इङ्गलैंड को कॉन्सटेन्टीनोपल या जलसंयोजक पर अधिकार न करने और इजिप्ट तथा स्वेज़ नहर में इङ्गलैंड के हितों का पूरा ध्यान रखने का बचन दिया था। परंतु १८७७ के अंत की ओर रूस की विजयों को देखकर इङ्गलैंड को शंका हो गई थी कि शायद रूस अपने वचन का पालन न करे। इसीलिये उसके विदेश मंत्री लॉर्ड डर्बी ने जनवरी १८७८ में रूस को अपने वचनों का स्मरण कराया था और उसे स्पष्ट चेतावनी दी थी कि रूस और टर्की के बीच होने वाली ऐसी कोई संधि, जिससे १८५६ तथा १८७१ में की हुई व्यवस्थाएँ भंग हों, उन सत्ताओं की अनुमति के बिना मान्य नहीं होगी जिन्होंने उन संधियों में भाग लिया था। इङ्गलैंड इस चेतावनी से ही संतुष्ट नहीं हुआ था; उसने वेसिका की खाड़ी में स्थित अपने बेड़े को डार्डेनेलीज़ के जलसंयोजक को पार करके काले सागर में घुस जाने का आदेश भी दिया था (२३ जनवरी)।

*Marriott : Europe and Beyond, p. 58

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेनस्टीफेनो की सन्धि से इङ्गलैण्ड का प्रधान मंत्री डिज़रेली बहुत चिन्तित हो गया। ऑस्ट्रिया भी इस समस्त प्रश्न पर एक अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा पुनः विचार करवाना चाहता था। उसने ऐसा प्रस्ताव किया और इङ्गलैंड ने भी इस शर्त पर उसे स्वीकार कर लिया कि काँग्रेस में उन सब बातों पर पुनः विचार हो जो सेनस्टीफेनो की सन्धि द्वारा तय हुई हैं।* रूस ने इस शर्त का विरोध किया परन्तु इङ्गलैंड अड़ गया। ६ सप्ताह तक ऐसा मालूम होता रहा मानो युद्ध छिड़ जायगा। डिज़रेली ने १७ अप्रेल को १७,००० भारतीय सैनिक माल्टा में बुलाने की घोषणा करके रूस को धमकी दी। यह धमकी काम कर गई। रूस की स्थिति इस समय बड़ी निर्बल थी। उसकी सेना में काफी कमी हो चुकी थी, आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि बिस्मार्क ऑस्ट्रिया का समर्थक था। ऑस्ट्रिया कड़ा पड़ा रहा था। उसने कार्पेथियन पर्वत में अपनी सेना तैयार रख छोड़ी थी और सम्राट् फ्रान्सिस जोज़ेफ ने वियना में एक काँग्रेस आमन्त्रित करने तथा उसके सामने संधि की शर्तें प्रस्तुत करने की मांग भी की थी। इन सब बातों को देखकर रूस बड़ी अनिच्छा से सेनस्टीफेनो की सन्धि के एक योरोपीय कांग्रेस द्वारा पुनर्विचार के लिये सहमत हो गया।

बर्लिन कांग्रेस—

कांग्रेस का सम्मेलन बर्लिन में बिस्मार्क की अध्यक्षता में १३ जून १८७८ को आरम्भ हुआ परन्तु मुख्य प्रश्नों पर रूस के विदेश मंत्री काउण्ट शुवेलॉफ़ तथा इंगलैंड के विदेश-मंत्री लॉर्ड सेलिसबरी में ३० मई को ही समझौता हो चुका था।† अतः वादविवाद में अधिक समय नहीं लगा और १३ जुलाई को सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। इस सन्धि के अनुसार (१) रूस को योरोप में बेसरेबिया और ऐशिया में बाटूम, कार्स तथा आर्मेनिया का एक भाग मिला। (२) रूमानिया को डोब्रूजा का भाग प्राप्त हुआ। (३) बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना के प्रदेश टर्की के पास ही रहे परन्तु उनका शासन अनिश्चित काल के लिये ऑस्ट्रिया को सौंप दिया गया। ऑस्ट्रिया को सर्बिया और माण्टीनीग्रो के बीच में स्थिति नबीबाज़ार के प्रदेश (Sanjak) में अपनी सेना रखने का अधिकार भी मिला (४) सर्बिया और मान्टीनीग्रो के पास सेनस्टीफ़ेनो की संधि से प्राप्त प्रदेश तथा उनकी स्वतंत्रता बनी रही। (५) वृहद् बल्गारिया के तीन भाग कर दिये गये। बल्गारिया डेन्यूब तथा बाल्कन पर्वत के बीच के प्रदेश तक ही सीमित कर दिया गया और उसे स्वतंत्रता प्रदान करदी गई; उसके लिये केवल टर्की

---

* Ketelbey : A History of Modern Times, pp. 304-310.
† Marriott : Europe and Beyond, p. 60.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को वार्षिक भेंट देना आवश्यक रह गया। बाल्गारिया के दक्षिण का प्रदेश पूर्वी रूमीलिया पुनः टर्की को प्राप्त हो गया परन्तु उसे उसके लिये योरोपीय सत्ताओं द्वारा अनुमोदित ईसाई गवर्नर नियुक्त करने का बचन देना पड़ा। पूर्वी रूमीलिया के दक्षिण का भाग (मेसिडोनिया) टर्की को वापस मिल गया। इस प्रकार बल्गारिया का क्षेत्रफल सेनस्टीफ़ेनो की संधि के द्वारा स्वीकृत क्षेत्रफल का एक तिहाई रह गया। (६) इङ्गलैंड ने टर्की से अलग समझौता (Convention of Cyprus) करके जब तक रूस के पास कार्स और बाटूम रहे तब तक के लिये साइप्रस द्वीप को अपने पास रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस कांग्रेस में फ्रांस ने भविष्य में ट्यूनिस प्राप्त करने का अधिकार मांगा। इटली ने भी अल्वानिया तथा ट्रिपोली पर अपने दावे की ओर संकेत किया। ग्रीस ने क्रीट, थिसेली, एपिरस तथा मेसिडोनिया का एक भाग मांगा पर उस समय उसे कुछ नहीं मिला।* जर्मनी ने कुछ नहीं माँगा परन्तु बदले में उसे टर्की की कृतज्ञतापूर्ण मैत्री का बड़ा भारी लाभ हो गया।

समीक्षा—

बर्लिन की संधि एक प्रकार का समझौता थी और समस्त समझौतों के समान उसमें कई कठिनाइयों के बीज विद्यमान् थे।† सेनस्टीफ़ेनो की संधि को योरोपीय कांग्रेस के समक्ष पुनर्विचार के लिए प्रस्तुत करने का आग्रह इंङ्गलैंड तथा ऑस्ट्रिया का था जिनका मूल उद्देश्य बाल्कन प्रायद्वीप में रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना और एक ओर रूस तथा दूसरी ओर इंगलैंड एवं ऑस्ट्रिया के हितों में समतोलन स्थापित करना तथा इसके साथ ही पूर्वीय समस्या के संतोषजनक समाधानपूर्वक टर्की के साम्राज्य की रक्षा करना था। उस समय तो ऐसा मालूम होता था कि बर्लिन की सन्धि के द्वारा सभी उद्देश्य पूर्ण हो गये थे। रूस का टर्की के मामले में अकेले ही हस्तक्षेप करने का दावा रद्द कर दिया गया था और उसे इस संबंध में योरोपीय राज्यों की सामूहिक सत्ता को स्वीकार करना पड़ा था। वृहद् बल्गारिया को छिन्न भिन्न करके तथा रुमानिया और बल्गारिया के दो स्वतंत्र राज्यों को मार्ग में स्थापित करके रूस की कॉन्सटेन्टीनोपल की ओर प्रगति भी रोक दी गई थी। सेनस्टीफ़ेनो की संधि के अनुसार योरोप में टर्की का साम्राज्य प्रायः समाप्त हो चुका था परन्तु इस सन्धि के अनुसार उसे बहुतसा

---

* बर्लिन-कांग्रेस ने केवल भविष्य में ग्रीस की सीमा का संशोधन करने का वचन दिया। इसके अनुसार इंगलैंड ने १८९१ में टर्की को समझाकर थिसेली का प्रदेश ग्रीस को दिलवा दिया। Hazen : Modern European History, p. 555.

† Phillips : Modern Europe, p. 518.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

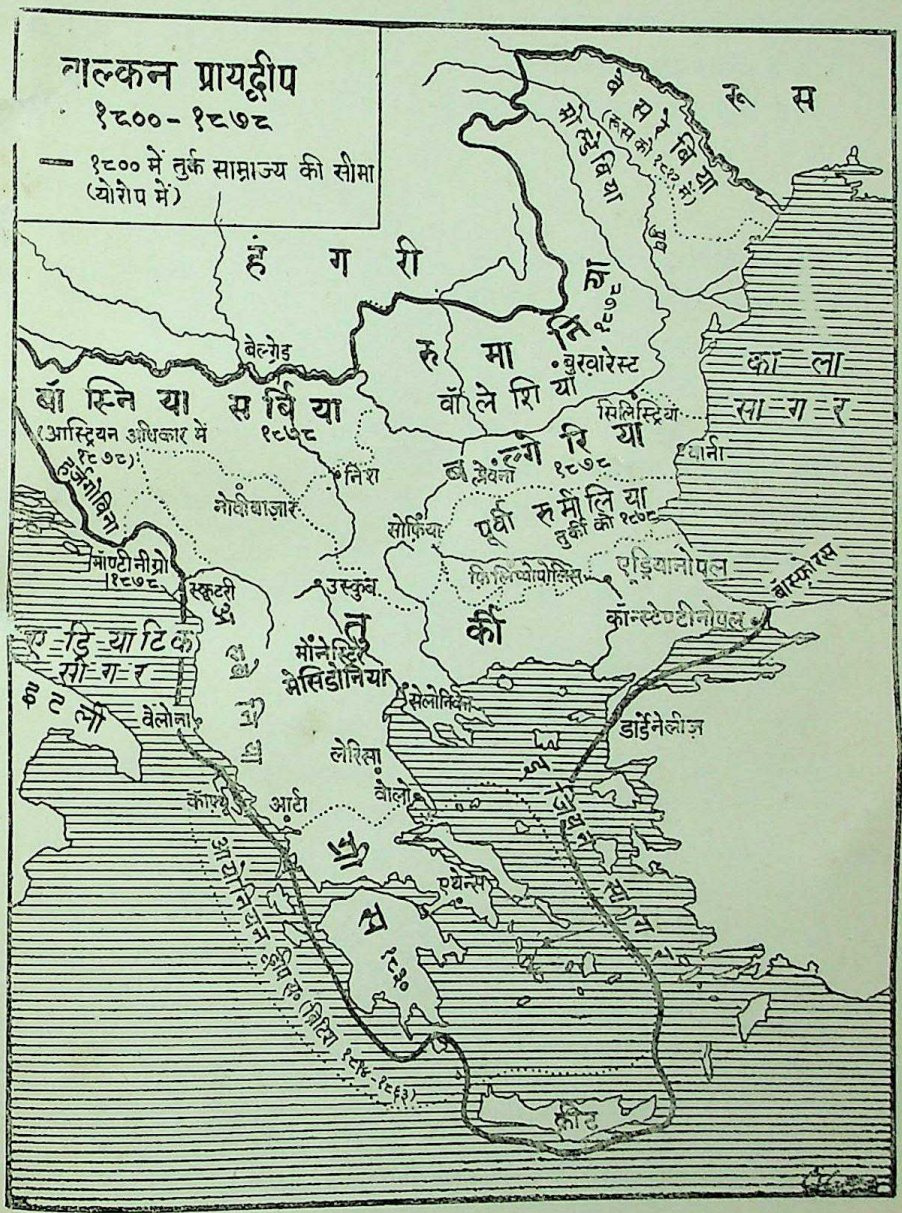

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेश वापस मिल गया और उसका जीवन बढ़ गया। सर्बिया, मॉन्टीनीग्रो तथा रुमानिया की पूर्ण स्वतंत्रता स्वीकार करके और बल्गारिया के नये राज्य की सृष्टि करके राष्ट्रीयता की समस्या का समाधान भी किया गया। इस प्रकार यह संधि रूस की पराजय तथा इङ्गलैंड की विजय की परिचायक थी बर्लिन से लौट कर डिज़रेली ने इङ्गलैंड में बड़े गर्व से कहा था कि हम 'गौरवपूर्ण शान्ति' को लेकर लौटे हैं।

सन्धि के दोष—

परंतु यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो प्रकट होगा कि यह विजय निरर्थक थी। इसके फलस्वरूप बाल्कन प्रायद्वीप में कुछ वर्षों तक युद्ध तो नहीं हुआ परंतु उससे न टर्की की रक्षा हो सकी, न पूर्वीय समस्या का सन्तोषजनक समाधान ही हो सका और न रूस ही निर्बल हुआ। इसका कारण यह था कि इस संधि का आधार न्याय नहीं, विभिन्न योरोपीय राष्ट्रों का, मुख्यकर इङ्गलैंड तथा आस्ट्रिया का, स्वार्थ था। बाल्कन प्रायद्वीप में रूस के प्राधान्य से इङ्गलैंड और ऑस्ट्रिया को अपने हितों के लिये खतरा दिखाई देता था। ऑस्ट्रिया दक्षिण-पूर्व में सेलोनिका तक पहुँचने अर्थात् ईजियन सागर तक अपना विस्तार करने का स्वप्न देख रहा था परन्तु रूस के प्रभाव में वृहद बल्गारिया के निर्माण से उसका स्वप्न भङ्ग हो रहा था। इङ्गलैंड को स्वेज़ नहर तथा अपने पूर्वीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिये संकट दिखाई देता था अतः उन्होंने सेनस्टीफेनों की संधि की पुनरावृत्ति केवल रूस के विरुद्ध और अपने ही हित में की। यदि रूस को टर्की से कुछ प्रदेश मिले तो इङ्गलैंड और ऑस्ट्रिया ने भी कुछ प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। उन्होंने न टर्की का, न टर्की की अभागी ईसाई प्रजा का और न अन्य बाल्कन राष्ट्रों की आकांक्षाओं का ही कोई विचार रखा। पेरिस में इन्हीं सत्ताओं ने टर्की के साम्राज्य को अखंड बनाये रखने की गारंटी दी थी परन्तु उन्हीं ने बर्लिन में उसमें से अनेक स्वतंत्र राज्यों का निर्माण करके और स्वयं उसकी लूट में अपना हिस्सा लेकर उसके विघटन पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। टर्की की ईसाई प्रजा में से सबसे अधिक अत्याचार मेसिडोनिया की प्रजा के साथ हुआ। मेसिडोनिया की प्रजा पर फिर से टर्की का कुशासन लाद देना एक महान् भूल थी। वे लोग बल्गारिया में कहीं अधिक सुखी रहते परन्तु महान् राष्ट्रों के स्वार्थ के कारण उन्हें वर्षों तक टर्की का अत्याचार सहना पड़ा।* इस व्यवस्था के लिये मुख्यकर डिज़रेली उत्तरदायी था। उसकी नीति उस समय तो सफल रही, परन्तु उसकी नीति ने १९१२ और १९१३ के बाल्कन युद्धों तथा १९१४ के महायुद्ध के अधिकांश कारणों को जन्म

*Hazen : Modern European History, p. 548.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया। मेसिडोनिया को टर्की को वापस दे देने से १९१२ में बाल्कन युद्ध हुआ और बल्गारिया की सीमाओं को संकीर्ण कर देने के कारण १९१३ का युद्ध हुआ।* डिज़रेली ने बाल्कन प्रायद्वीप में रूस की प्रगति तो रोक दी थी परन्तु उसकी जगह ऑस्ट्रिया को बढ़ा दिया था। उसे बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना के स्लाव प्रदेश दिये गए थे जिन पर सर्बिया अपना अधिकार समझता था और जो स्वयं सर्बिया के साथ शामिल होना चाहते थे। इस प्रकार व्यवस्था ने सर्बिया को अप्रसन्न कर और उसके तथा ऑस्ट्रिया के बीच भयंकर मनोमालिन्य और ईर्ष्या पैदा करके एक नई समस्या पैदा कर दी थी जिसका परिणाम १९१४ का महायुद्ध हुआ। इस व्यवस्था से बाल्कन प्रायद्वीप के लोगों में केवल सर्बिया के तथा मेसिडोनिया के लोग ही असन्तुष्ट नहीं थे, रूमानिया भी असन्तुष्ट था और बल्गार लोग तो अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं की हत्या से बड़े रुष्ट थे। ग्रीस की कामनाएँ अपूर्ण रहीं। स्वयं टर्की भी, जिसके हित में व्यवस्था करने का दावा किया जा रहा था, बड़ा अप्रसन्न था। सर्बिया, मॉन्टोनीग्रो तथा बल्गारिया की स्वतंत्रता को तो वह स्वाभाविक एवं अनिवार्य समझ रहा था परन्तु मित्र होने का दावा करने वाले राज्यों द्वारा ही अपने प्रदेशों (साइप्रस,) बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना) का छीना जाना किसी प्रकार भी वह उचित नहीं समझ सकता था। इस विचित्र मैत्री से उसे बड़ा क्षोभ हुआ। परन्तु डिज़रेली को यह कार्य गौरवपूर्ण मालूम होता था। सम्भवतः उसका नैतिक कोष सामान्य लोगों के नैतिक कोष से भिन्न था।

रूस की बाल्कन प्रायद्वीप की ओर प्रगति रुक अवश्य गई थी परंतु उसकी कोई विशेष हानि नहीं हुई थी। क्रीमियन युद्ध में उसकी जितनी क्षति हुई थी उसकी पूर्ति उसने इस युद्ध के द्वारा कर ली थी। सीवेस्टोपोल की मरम्मत उसने शुरू कर दी थी और काले सागर में युद्ध के जहाज़ रखने पर जो प्रतिबन्ध था उसे भी उसने तोड़ दिया था। बेसरेबिया उसके पास बना रहा और काकेशस प्रान्त में जो प्रदेश उसने विजय कर लिये थे वे भी उसके पास सुरक्षित थे। बाल्कन प्रायद्वीप में भी, जैसा हम आगे देखेंगे, वह हस्तक्षेप करने से न रुका। इसके साथ ही बाल्कन प्रायद्वीप की ओर बढ़ने से रोके जाने पर उसने मध्य-एशिया की ओर बढ़ाना शुरू किया और अफ़ग़ानिस्तान तथा तिब्बत की सीमाओं तक बढ़ कर इंगलैंड के लिये परेशानी का कारण बन गया।

पूर्वीय समस्या की जटिलता में वृद्धि—

इस प्रकार इस सन्धि से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। १८१५ की वियना-

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 312.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कांग्रेस के समान १८७८ की बर्लिन-कांग्रेस भी दलित राष्ट्रों की उचित राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति उदासीन अथवा उनके प्रतिकूल थी और इस कारण इस काँग्रेस द्वारा की हुई व्यवस्था की भी वही गति हुई जो वियना-व्यवस्था की हुई थी।* इस व्यवस्था का भंग शीघ्र ही आरम्भ हो गया। उस समय तक टर्की के साम्राज्य में से पाँच स्वाधीन राज्यों का निर्माण हो चुका था--ग्रीस, रुमानिया, सर्बिया, मॉन्टीनीग्रो तथा बल्गारिया। परन्तु इन स्वाधीन राज्यों के निर्माण से शान्ति स्थापित न हो सकी, बल्कि जिस रूप में उनका निर्माण हुआ था उसके कारण बाल्कन प्रायद्वीप अत्यन्त अशान्त हो गया। ग्रीस मेसिडोनिया, एपिरस, थिसेली आदि प्राप्त न होने के कारण असन्तुष्ट था; बल्गार लोग अपने राष्ट्र के पुनः छिन्न-भिन्न हो जाने से बड़े अप्रसन्न थे; सर्बिया बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना के प्रदेश ऑस्ट्रिया के अधिकार में चले जाने से बड़ा नाराज़ था। झगड़े की जड़ मेसिडोनिया था क्योंकि उसमें सभी राष्ट्रों के लोग रहते थे और प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र अपने अपने लोगों को टर्की के राज्य में से निकाल कर अपने राज्य में लाने का प्रयत्न करने लगा।† इस कारण से तो पूर्वीय समस्या अधिक जटिल हो ही रही थी, इसके साथ ही आस्ट्रिया भी अब जर्मनी के समर्थन का बल पाकर ऐसी रीति से काम करने लगा जिससे सर्बिया तथा रूस की नाराज़ी बढ़ने लगी और वातावरण अधिकाधिक अशांत एवं क्षुब्ध होने लगा। अगले वर्षों में कई जगह छोटे-मोटे उपद्रव हुए परंतु पूर्वीय समस्या को जीवित रखनेवाला मुख्य राष्ट्र बल्गारिया था।‡

बल्गारिया का असन्तोष—

बल्गारिया को दोहरी शिकायत थी। सबसे बड़ी शिकायत तो बृहद् बल्गारिया के विभाजन की थी। दूसरी शिकायत यह थी कि अपनी संकीर्ण अवस्था में उसे भी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई थी। उस पर टर्की का प्रभुत्व बना हुआ था और उसे वार्षिक भेंट देनी पड़ती थी। बृहद् बल्गारिया का विभाजन बिलकुल अस्वाभाविक था क्योंकि बल्गारिया तथा पूर्वी रूमीलिया के लोग एक

*Hazen : Modern European History, p. 543.

† डिज़रेली का उद्देश्य बाल्कन राष्ट्रों की सहायता करना तो नहीं था परन्तु अप्रत्यक्षरूप से उसने सर्ब तथा ग्रीक राष्ट्रों के विकास में काफ़ी सहायता दी। यदि बृहद बल्गारिया बना रहता तो शायद मेसिडोनिया में बसे हुए अपने लोगों को अपने साथ शामिल करने की आकांक्षाओं का उन्हें परित्याग करना पड़ता। Marriott : Europe and Beyond, p. 63.

‡ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 313.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही राष्ट्र के थे। इसी कारण दोनों प्रदेशों में शीघ्र ही एक हो जाने की बड़ी तीव्र लालसा उत्पन्न हो गई और वे शीघ्र ही शामिल हो गये।

बल्गारिया और रूस—

स्वतन्त्र बल्गारिया का निर्माण रूस के अनुग्रह से हुआ था और इसी कारण कुछ वर्षों तक वहाँ रूस का प्रभाव बना रहा। उसकी प्रारम्भिक व्यवस्था रूसी कर्मचारियों की सहायता से ही हुई। १८७९ में एक विधान का निर्माण किया गया जिसके द्वारा एक भवन वाली विधान-सभा (Sobranje) तथा उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई। विधान-सभा ने रूस के ज़ार द्वितीय एलेक्जेण्डर के निर्देशानुसार बेटनबर्ग के एक जर्मन राजकुमार एलेक्जेण्डर को, जो ज़ार का भतीजा था, अपना राजा निर्वाचित किया। दो तीन वर्षों तक बल्गारिया और रूस के सम्बन्ध बड़े अच्छे रहे परन्तु १८८१ में तृतीय एलेक्जेण्डर के ज़ार बनने पर स्थिति बदल गई। रूसवाले समझते थे कि बल्गारिया रूस का उपकार मानकर उनके हाथों में एक कठपुतली की तरह बना रहेगा। बड़े-बड़े रूसी पदाधिकारियों का व्यवहार धीरे-धीरे बड़ा उद्धत होता गया। वे अपने आपको बल्गारिया के राजा की जगह रूस के ज़ार के अधीन समझते थे और बल्गारिया को रूस का एक प्रान्त समझ कर उसका शासन रूस की नीति के अनुसार तथा उसी के हित में करते थे।* यह स्थिति बल्गारियावालों के लिये असह्य थी और शीघ्र ही दोनों में मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया यहाँ तक कि १८८३ में रूसी पदाधिकारियों से ज़बरदस्ती त्यागपत्र लेकर उन्हें बिदा कर दिया गया।

संयुक्त बल्गारिया का निर्माण—

इसी समय एक महान् बल्गार देशभक्त स्टीफ़ेन स्टेम्बुलॉफ़ (Stephen Stambuloff) राजनीतिक मञ्च पर आ गया और १८८४ में विधान-सभा का सभापति बन गया जिसके कारण दोनों देशों में तनातनी बढ़ने लगी। उधर पूर्वी रूमीलिया में बल्गारिया के साथ शामिल होने की इच्छा बढ़ रही थी। स्टेम्बुलॉफ़ ने उसे प्रोत्साहन देना आरम्भ किया। उससे प्रोत्साहन पाकर सितम्बर १८८५ में वहाँ वालों ने अपने तुर्की गवर्नर को निकाल कर बल्गारिया के साथ शामिल होने की घोषणा कर दी। एलेक्जेंडर बड़े असमंजस में पड़ा। उसे योरोपीय सत्ताओं के विरोध का डर था। विशेषकर रूस इन दिनों बड़ा नाराज़ था। परन्तु इस समय तक कूटनीतिक स्थिति बदल गई थी। आरम्भ में रूस बल्गारिया का समर्थक था परन्तु अब वही उसका विरोधी बन गया था। पहले इङ्गलैंड बल्गारिया का विरोधी था परन्तु अब वह उसका समर्थक था।

* Hazen : Modern European History, p. 550.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इङ्गलैंड की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उसकी नीति का मुख्य अंग रूस का विरोध था। १८७८ का बल्गारिया रूस का आज्ञाकारी सेवक होता और उससे कॉन्स्टेन्टीनोपल को बड़ा खतरा रहा। इस कारण इङ्गलैंड उसका विरोधी था। परन्तु अब बल्गारिया रूस के मार्ग में बहुत बड़ा बाधक था, अतः वह इस समय उसका समर्थन कर रहा था। परन्तु एलेक्जेंडर के सामने जनता की इच्छा के सामने झुकने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय ही नहीं था क्योंकि स्टेम्बुलॉफ ने उससे स्पष्ट कह दिया था कि 'आपके सामने केवल दो मार्ग हैं—संयुक्त बल्गारिया का सिंहासन स्वीकार करना या राज्यत्याग।'* निदान एलेक्जेन्डर ने दोनों प्रदेशों के एकीकरण को स्वीकार करके संयुक्त बल्गारिया के राजा की पदवी धारण की (२० सितम्बर १८८५)। इङ्गलैंड ने इसका अनुमोदन किया परन्तु टर्की के सुल्तान ने विरोध किया और रूस ने भी अपनी नाराज़ी प्रकट की। उन्होंने इस परिवर्तन को स्वीकार तो नहीं किया परन्तु आगे कोई कार्रवाई नहीं की।

केवल सर्बिया चुप न बैठ सका जो बल्गारिया के उत्कर्ष को सहन नहीं कर सकता था। उसने यह कह कर कि संयुक्त बल्गारिया से बाल्कन प्रदेश का शक्ति-समतोलन बिगड़ता है, बल्गारिया पर आक्रमण कर दिया। इसमें सर्बिया को ऑस्ट्रिया का प्रोत्साहन प्राप्त था या नहीं, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।§ परन्तु ऑस्ट्रिया भी बल्गारिया के उत्कर्ष से असंतुष्ट था क्योंकि वह ईजियन सागर तक अपना विस्तार चाहता था और बल्गारिया उसके मार्ग में एक शक्तिशाली बाधा बनता जा रहा था। सर्बिया की तरफ उसका रुख भी सहानुभूतिपूर्ण था। बल्गारिया ने सर्बिया की सेना को परास्त करके स्वयं सर्बिया पर आक्रमण कर दिया। इस पर आस्ट्रिया ने बल्गारिया को धमकी दी। युद्ध बन्द हो गया, दोनों में सन्धि हो गई और सर्बिया की रक्षा हो गई। परन्तु इसके साथ ही संयुक्त बल्गारिया भी बच गया। १८८६ के आरम्भ में टर्की ने दोनों प्रदेशों के संयोग को स्वीकार कर लिया और एलेक्जेंडर को अपनी ओर से पूर्वी रुमीलिया का गवर्नर-जनरल नियुक्त कर दिया।

रूस की अप्रसन्नता—

परन्तु इन घटनाओं से रूस की नाराज़ी बढ़ रही थी। कुछ रूसी अफ़सर २१ अगस्त १८८६ को एलेक्जेन्डर को जबरदस्ती पकड़ कर उड़ा ले गये। यह देखकर विधान-सभा ने स्टेम्बुलॉफ के नेतृत्व में एक अस्थायी सरकार नियुक्त की

* Marriott : Europe and Beyond, p. 65.
§ Marriott : Europe and Beyond, p. 65.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसने उसे तुरन्त वापस लौटने का आदेश दिया। उसे वापस लौटने की अनुमति मिल गई। वह बल्गारिया वापस लौट आया और उसका बड़ा स्वागत हुआ परन्तु वह ज़ार तृतीय एलेक्जेंडर के निरन्तर दबाव को न सह सका और लाचार होकर सितम्बर १८८६ में सिंहासन त्याग कर सदा के लिये बल्गारिया छोड़ गया। इस पर कुछ कठिनाइयों के बाद सेक्स कोबुर्ग-गोथा (Saxe-Coburg-Gotha) का राजकुमार फ़र्डिनेंड राजा चुना गया। रूस ने उसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया परन्तु बिस्मार्क तथा ऑस्ट्रिया के सम्राट् फ़्रान्सिस जोजेफ का समर्थन पाकर उसने रूस के विरोध की परवाह न करके १४ अगस्त १८८७ को सिंहासन स्वीकार कर लिया। अगले सात वर्षों में बल्गारिया का वास्तविक शासन स्टेम्बुलॉफ के हाथों में रहा जिसने देश की कई प्रकार से उन्नति की और उसे दूसरे राष्ट्रों के प्रभाव से मुक्त किया। १८९४ में फ़र्डिनेंड ने, जो अब स्वयं शासन की बागडोर अपने हाथों में ले लेना चाहता था, उसे बरखास्त कर दिया। जुलाई १८९५ में किसी ने उसकी हत्या भी कर दी। उससे मुक्त हो कर जो पहला काम फर्डिनेन्ड ने किया वह रूस के साथ समझौता करना था। १८९४ में तृतीय एलेक्ज़ेन्डर की मृत्यु हो जाने के कारण समझौता करने में सरलता हो गई। १८९६ में टर्की के सुल्तान ने फर्डिनेंड को स्वीकार कर लिया और योरोपीय सत्ताओं ने भी उसका अनुमोदन कर लिया।*

इस प्रकार रूस की बाल्कन-नीति इंगलैंड तथा ऑस्ट्रिया के विरोध के कारण असफल हुई और अखिल-स्लाव आन्दोलन की आड़ में बाल्कन प्रायद्वीप में अपना प्राधान्य स्थापित करने का उद्देश्य पूर्ण नहीं हुआ।

रूस के परराष्ट्र सम्बन्ध

बाल्कन प्रायद्वीप में ऑस्ट्रिया धीरे-धीरे रूस का प्रबल प्रतिस्पर्धी बन गया था और बिस्मार्क भी उसके पक्ष में था। फिर भी, जैसा हम देख चुके हैं कई वर्षों तक इन लोगों में मैत्री बनी रही। किन्तु यह मैत्री ऑस्ट्रिया तथा रूस के परस्पर विरोधी हितों को देखते हुए अस्वाभाविक थी। जर्मनी के साथ तो रूस का संबंध बहुत पहले से अच्छा चला आ रहा था। १८३३ में बिस्मार्क ने पोल लोगों के विरुद्ध रूस की सहायता की थी और रूस ने १८७० में फ़्रान्स तथा जर्मनी के युद्ध में ऑस्ट्रिया को फ़्रान्स की सहायता करने में रोक कर उसका बदला दिया था। बिस्मार्क ने भी उसी समय रूस को पेरिस की सन्धि की काले सागर सम्बन्धी शर्तों का उल्लंघन करने के लिये प्रोत्साहित किया था। उन्हीं दिनों रूस में शून्यवाद तथा जर्मनी में समाजवाद के बढ़ते हुए खतरे का मुकाबला करने की आवश्यकता ने भी दोनों को परस्पर सहयोग के लिये प्रेरित किया। १८७० के सितम्बर में

* Hazen : Modern European History, p. 552.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिस्मार्क के रूस तथा ऑस्ट्रिया से क्रान्ति के विरुद्ध एक गुट निर्माण करने के विषय में परामर्श भी किया था* जिसका परिणाम १८७२ के 'त्रि-सम्राट् संघ' में प्रगट हुआ था। इस मैत्री के होते हुए भी रूस के सम्बन्ध जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया के साथ घनिष्ट एवं विश्वासनीय न बन सके। ऑस्ट्रिया से तो उसका बाल्कन प्रायद्वीप में विरोध था ही जर्मनी को भी वह अधिक शक्तिशाली बनते हुए नहीं देख सकता था और जब १८७५ में फ्रान्स पर जर्मनी के आक्रमण की संभावना दिखाई दी तो उसने अपना प्रभाव फ्रान्स के पक्ष में डाला।

इसी समय रूस में अखिल स्लाव आन्दोलन की प्रगति के कारण भी तीनों राज्यों की अस्वाभाविक मैत्री में शिथिलता आने लगी। रूस को आशा थी कि जर्मनी उसके पहले अहसानों का विचार करके उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक नहीं बनेगा। बिस्मार्क इस बात के लिये उसी समय तक तैयार था जब तक जर्मनी के हितों को कोई आघात नहीं पहुँचता था। परन्तु अखिल-स्लाव आन्दोलन स्पष्टतः जर्मनी के लिये भयावह था और इस सम्बन्ध में आस्ट्रिया तथा जर्मनी के हित समान थे। बिस्मार्क स्पष्ट देख रहा था कि इस आन्दोलन से पोसेन में जर्मनी की सत्ता को और बोहीमिया, गेलिशिया क्रोटिया तथा स्लोवोनिया में ऑस्ट्रिया की सत्ता को बड़ा भयानक खतरा था † क्योंकि उन प्रदेशों में स्लाव लोग काफ़ी संख्या में थे। इस कारण से जर्मनी धीरे-धीरे ऑस्ट्रिया के अधिक निकट होता गया और रूस के प्रति उसका अविश्वास बढ़ता गया।

रूस जानता था कि उसका आस्ट्रिया से युद्ध छिड़ा तो जर्मनी ऑस्ट्रिया का साथ देगा। अतः परस्पर अविश्वास एवं वैमनस्य होते हुए भी उसने १८७५ में बाल्कन प्रायद्वीप के झगड़े में ऑस्ट्रिया तथा जर्मनी के साथ सहयोग किया और कुछ महिनों तक करता भी रहा। § परन्तु जब अकेले ही युद्ध छेड़ कर टर्की

---

*Philips : Modern Europe, p. 489,

†Hearnshaw : Main Currents of Europe History, p. 275.

§रूस १८७६ मे पूर्वी गेलिशिया पर आक्रमण करना चाहता था और उसने बिस्मार्क से पूछा भी था कि यदि ऑस्ट्रिया तथा रूस में युद्ध हुआ तो जर्मनी का क्या रुख होगा। इसके उत्तर मे बिस्मार्क ने कहा था कि ऐसी दशा में यदि उसे दोनों मे से किसी एक की एक महान् सत्ता की हैसियत से स्थिति खतरे में पड़ती हुई दिखाई दी तो जर्मनी तटस्थ नहीं रह सकेगा। बिस्मार्क की इस स्पष्टवादिता का यह परिणाम हुआ कि 'रूसी तूफान पूर्वी गेलिशिया से बाल्कन प्रायद्वीप की ओर निकल गया।' Phillips: Modern Europe, p. 494. में Bismarck : Memoirs II , p, 228 से उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को परास्त कर दिया और सेनस्टीफ़ेनों की सन्धि का ऑस्ट्रिया ने विरोध किया तथा उस पर पुनर्विचार करने के लिये बर्लिन में कांग्रेस हुई तो निष्पक्षता का अभिमान करते हुए भी बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया का पक्ष लिया और युद्ध में बिल्कुल भाग न लेने पर भी उसे बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना के प्रदेश दिलवाये। बिस्मार्क के इस व्यवहार से रूस अत्यन्त रुष्ट हो गया। द्वितीय एलेक्ज़ेण्डर ने सम्राट् विलियम को अप्रेल १८७९ में एक निजी पत्र द्वारा संकेत भी किया कि इस प्रकार एक पुराने मित्र को अप्रसन्न करने का परिणाम युद्ध हो सकता है।* इस पर, जैसा हम देख चुके हैं, बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया से सन्धि करके द्विदलीय मैत्री (Dual Alliance) की स्थापना की। इससे रूस चुप तो हो गया परन्तु वह सदा के लिये नाराज़ हो गया।

फिर भी रूस ने जर्मनी से बिगाड़ करना उचित न समझ कर बिस्मार्क के अनुरोध पर जर्मनी से सम्बन्ध क़ायम रखा और १८८१ में 'त्रि सम्राट्-संघ' का पुनर्निर्माण किया जिसकी तीन वर्ष बाद १८८४ में पुनरावृत्ति हुई। परन्तु यह मैत्री निस्सार थी। १८८५ में बल्गारिया तथा पूर्वी रूमीलिया के संयोग से उत्पन्न स्थिति में उसकी निर्बलता प्रगट हो गई और रूस ने उस स्थिति के लिये बिस्मार्क की कपटनीति को ही उत्तरदायी ठहराया।† इसका तृतीय एक्लेज़ेण्डर पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। बिस्मार्क की मैत्री की व्यर्थता का उसे पूर्ण प्रमाण मिल गया और १८८६ की शरद ऋतु में रूस के समाचारपत्रों में फ़्रान्स के साथ मैत्री करने की माँग जोरों से की जाने लगी। एलेक्ज़ेण्डर ने भी उसे रोकने का प्रयत्न नहीं किया। परन्तु वह बिस्मार्क के बहकावे में फिर आ गया और उसने बल्गारिया में अपने प्रभाव के प्रधान्य की उससे स्वीकृति लेकर सन्धि कर ली।

किन्तु इस सन्धि के बाद भी रूस फ़्रान्स की ओर झुकता रहा। उन दिनों रूस अकेला पड़ रहा था, मध्य-एशिया में, जैसा हम आगे देखेंगे, इंगलैण्ड के साथ तनातनी बढ़ रही थी और जर्मनी के नये सम्राट् का रुख भी प्रतिकूल था। तृतीय एलेक्ज़ेण्डर तो संकल्प विकल्प में पड़ा रहा परन्तु उसके मंत्री और संबंधी उस दिशा में बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ने लगे। नवम्बर १८८८ में ग्राण्ड ड्यूक निकोलस पेरिस गया और रूस को शस्त्रास्त्र देने के लिये उसने फ़्रान्स को राज़ी कर लिया। अगले वर्ष ग्राण्डड्यूक ने फ़्रान्स के प्रधान मंत्री को आश्वासन दिया कि यदि भविष्य में युद्ध छिड़ा तो रूसी सेनाएँ फ़्रान्स का साथ देंगी।‡ इस प्रकार

* Grant and Temperly: Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 323,

† Grant and Temperley, p. 325,

$Grant and Temperley, 326.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों देशों के बीच सम्पर्क तथा सद्भावना की वृद्धि होने लगी। इन्हीं दिनों फ्रांस ने रूस को तीन बार भारी ऋण देकर उसकी औद्योगिक उन्नति में सहायता की। इस प्रकार दोनों देशों में मैत्री के लिये अनुकूल वातावरण तैयार हो गया और आगे चल कर दोनों में सन्धि हो गई।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

इंगलैण्ड

साम्राज्यवाद और योरोप का विस्तार

इस खण्ड में योरोपीय इतिहास के जिस युग की प्रधान घटनाओं का वर्णन हम पढ़ रहे हैं उसमें, जैसा हम देखते आ रहे हैं, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जर्मनी का प्रमुख स्थान था। महाद्वीप के विभिन्न राष्ट्रों की पर राष्ट्र नीतियाँ बहुत कुछ अंश तक जर्मनी की नीति द्वारा निर्धारित थीं। परन्तु इंगलैण्ड एक ऐसा देश था जो महाद्वीपीय कूटनीतिक झमेलों से दूर 'वैभवशाली एकांत' में वास कर रहा था और दृढ़ता के साथ अपने राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के मार्ग पर आगे बढ़ रहा था।

इंगलैण्ड का आदर्श—

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंगलैण्ड योरोप के अधिकांश देशों के लिये आदर्श रूप था और वे उसी का अनुकरण करने का प्रयत्न करते रहे। वे उसके विस्तृत साम्राज्य, शक्तिशाली बेड़े, अतुलनीय व्यवसाय एवं व्यापार आदि की ओर ईर्ष्यापूर्ण स्पर्धा की दृष्टि से देखते थे और किसी प्रकार उन्हें यह विश्वास हो गया था कि इस सर्वतोमुखी प्रगति का सम्बन्ध उसकी उत्तरदायी (पार्लामेण्टरी) शासन-प्रणाली से था जिसके कारण उसके लिये क्रांति के भय का सामना किये बिना आर्थिक उदारवाद की ओर प्रगति कर सकना तथा बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना संभव हो रहा था।*

योरोप में प्रजातन्त्र की प्रगति—

हम पिछले खण्ड में बतला चुके हैं कि योरोप के देशों ने वैधानिक प्रगति में इङ्गलैंड का अनुकरण किया। १८७० के बाद फ्रान्स ने एकतन्त्र का परित्याग करके गणतंत्रीय पद्धति तो स्वीकार की परंतु इङ्गलैंड के समान उत्तरदायी शासन की स्थापना की। इटली ने भी उत्तरदायी शासनपद्धति तथा वैधानिक एकतंत्र को अपनाया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बेल्जियम तथा हॉलैण्ड भी उदार, वैधानिक एकतन्त्र हो चुके थे। स्विट्ज़रलैण्ड तो काफी आगे बढ़कर अधिक पूर्ण प्रजातंत्र बन चुका था। वहाँ १८७४ में जनता को विधान-सभा द्वारा स्वीकृत बिलों पर मत देने का तथा १८९१ में कुछ विशिष्ट प्रकार के क़ानूनों का प्रस्ताव करने और उन पर कुछ शर्तों के अनुकूल जनता का मत प्राप्त करने के लिये

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 275.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरकार को बाध्य करने का अधिकार प्राप्त हो चुका था। डेनमार्क में राजा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक विधान-सभा के लोकप्रिय सदन से अपने विशेषाधिकारों के लिये संघर्ष करता रहा परन्तु १९०१ में उसे भी लोक-सभा के विश्वासपात्र मंत्रिमंडल की नियुक्ति करनी पड़ी। स्पेन तथा पोर्तुगाल में भी उदारवाद की कुछ प्रगति हुई। १८६८ में स्पेन के उदारवादियों ने अपनी निरंकुश रानी द्वितीय इसाबेला को पदच्युत करके वैधानिक एकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न किया परन्तु गणतंत्री लोग उसके विरुद्ध गणतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। कुछ वर्षों तक देश में गड़बड़ मची रही परन्तु १८७५ में इसाबेला के पुत्र बारहवें अलफ़ान्सों के राज्याभिषेक के साथ उदार, वैधानिक एकतंत्र की स्थापना हुई। परन्तु यह वैधानिक एकतन्त्र नाम मात्र का रहा, वास्तविक शक्ति सैनिक तथा राजनीतिक व्यक्तियों के एक गुट के हाथों में बनी रही। गणतंत्रीय लोग इस स्थिति से असन्तुष्ट थे। उन्होंने अपने प्रयत्न जारी रखे। वे गणतन्त्र की स्थापना तो नहीं कर पाये परन्तु अपने प्रयत्नों के फलस्वरूप १८९० में वे सार्वभौम (पुरुष) वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करा सके। पोर्तुगाल का हाल भी बहुत कुछ ऐसा ही था। नॉर्वे तथा स्वीडन में भी वैधानिक एकतन्त्र था। दोनों का राजा तो एक था परन्तु विधान-सभाएँ तथा मंत्रिमंडल दोनों के अलग-अलग थे। इस संयुक्त राज्य में स्वीडेनवालों को अधिक लाभ प्राप्त थे जिससे नॉर्वेवालों को असन्तोष रहा और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना उनमें ज़ोर पकड़ने लगी जिसका परिणाम आगे चलकर यह हुआ कि १९०५ में नार्वे स्वीडेन से पृथक् होकर स्वतन्त्र हो गया। जर्मनी में राजनीतिक प्रजातंत्र का आरम्भ हो चुका था हालाँकि यहाँ उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं हुई। बाल्कन प्रायद्वीप में भी टर्की के साम्राज्य से स्वतन्त्र होकर जो नये राज्य बने उन्होंने भी इङ्गलैण्ड का अनुकरण करके वैधानिक एकतन्त्र ही स्वीकार किया। केवल रूस ही बचा था जहाँ उदारवाद की प्रगति आंशिक स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था तक ही हो पाई थी। प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ तक पश्चिमी योरोप के सभी देशों में राजनीतिक प्रजातन्त्र की दिशा में और भी प्रगति हुई। लगभग सभी देशों में प्रायः वयस्क (पुरुष) मताधिकार की स्थापना हो गई। प्रायः सभी देशों में विधान थे और अधिकांश देशों में उत्तरदायी शासन स्थापित हो चुका था। जर्मनी के सम्बन्ध में तो यह बात नहीं कही जा सकती और स्पेन तथा पोर्तुगाल में उत्तरदायी शासन का आडम्बरमात्र था परन्तु सभी देशों में जनता को भाषण, धर्म, सभा-सोसायटी का निर्माण करने तथा प्रेस की स्वतन्त्रताएँ प्राप्त हो गई थीं।*

---

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, pp. 283-285.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इंगलैण्ड आदर्श होते हुए भी कई बातों में अन्य देशों के पीछे था। बेल्जियम या हॉलैण्ड या फ्रान्स जैसे देशों के प्रतिकूल इंलैण्ड में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भी अठारहवीं शताब्दी की सामाजिक वर्ग-रचना बहुत कुछ विद्यमान रहीं। निःशुल्क सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था करने में उसकी प्रगति बहुत धीमी थी। सामाजिक क़ानूनों के क्षेत्रों में वह जर्मनी से पीछे था। परन्तु ये सब बातें उसके विकास की क्रमिकता के उदाहरण हैं जिससे हमें उसकी सफलता के रहस्य की कुञ्जी प्राप्त होती है।

इङ्गलैण्ड में प्रजातन्त्र की प्रगति—प्रजातन्त्र की दिशा में इंगलैण्ड १८३२ से ही धीरे-धीरे प्रगति कर रहा था। हम देख चुके हैं कि १८३२ के क़ानून के द्वारा मध्यम वर्ग को मताधिकार प्राप्त हुआ और १८६७ में डिज़रेली ने नगरों के शिल्पियों के अधिकांश भांग को मताधिकार प्रदान कर मतदाताओं की तत्कालीन संख्या दुगनी कर दी थी। इस सुधार के पाँच वर्ष बाद लिबरल दल के नेता ग्लेड्स्टन ने गुप्त मतदान (Secret Ballot) की व्यवस्था की और अपने द्वितीय प्रधान-मन्त्रित्वकाल में तीसरे सुधार-क़ानून के द्वारा कृषकों और खेतों में कार्य करनेवालों को मताधिकार देकर इंगलैण्ड को वयस्क (पुरुष) मताधिकार के बहुत निकट पहुँचा दिया (१८८४)। इसके अगले वर्ष में लगभग प्रति ५०,००० मनुष्यों के लिये एक निर्वाचन-क्षेत्र का निर्माण करके निर्वाचन-प्रथा के दोषों का निवारण किया गया। इस प्रकार धीरे-धीरे इंलैण्ड में प्रायः वे सब बातें हो गईं जिनकी माँग ४० वर्ष पहले चार्टिस्ट लोगों ने की थी।* इन सुधारों के परिणाम-स्वरूप मताधिकार तो प्रायः सभी वर्गों को प्राप्त हो गया परन्तु राजनीतिक जीवन में प्राधान्य उच्च तथा धनी वर्गों के हाथों में ही बना रहा। लॉर्ड-भवन तो पूर्णतया उन्हीं का था, लोक-सभा में कई सदस्य उन वर्गों के होते थे और मन्त्रिमंडलों में भी प्रायः वे ही लोग हुआ करते थे। फिर भी वे पारस्परिक दलीय प्रतिस्पर्धा में निम्न वर्गों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते थे और इस दृष्टि से उन्हें अनेक प्रकार के सामाजिक सुधार करने पड़ते थे। इस प्रकार लिबरल अथवा कंज़रवेटिव दोनों प्रकार की सरकारें समाज-सुधार की ओर बढ़ती रहीं और आर्थिक उदारवाद के सिद्धान्त का ज़ोर होते हुए भी मज़दूरों के हित की दृष्टि से आर्थिक मामलों में सरकार का हस्तक्षेप बढ़ता रहा।

ग्लेड्स्टन और डिज़रेली—इस युग में इंगलैंड के राजनीतिक मंच के प्रधान व्यक्ति ग्लेड्स्टन तथा डिज़रेली थे। ग्लेड्स्टन चार बार (१८६८-७४, १८८०-८५, १८८६ तथा १८९२-९४) प्रधान मन्त्री रहा और डिज़रेली दो बार

* द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ३०६ पर देखिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८६८ और १८७४-८०)। ग्लेड्स्टन लिबरल दल का नेता था और शान्ति, वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा मानवतावाद के उदारवादी सिद्धान्तों का समर्थक था। वह शासन के व्यय में कमी चाहता था और साम्राज्यवाद का विरोधी था। डिज़रेली नये टोरी (कंज़रवेटिव) दल का नेता था। वह मध्यम वर्ग के प्राधान्य को कम करने तथा इङ्गलैंड की परम्परागत संस्थाओं—एकतन्त्र, एंग्लिकन चर्च तथा भूमिपति कुलीनवर्ग—को क़ायम रखने के लिये उच्च तथा निम्न वर्गों का सहयोग चाहता था। ग्लेड्स्टन के प्रतिकूल वह साम्राज्यवाद का बड़ा ज़बरदस्त समर्थक था और अपने प्रधान मंत्रित्वकाल में उसने इङ्गलैंड के साम्राज्य का बड़ा विस्तार किया।

यद्यपि इस युग में इन दोनों नेताओं में बड़ी प्रतिस्पर्धा रही, तो भी इन दोनों में कोई अत्यन्त गहरा मतभेद नहीं था। दोनों ही अनन्य देशभक्त थे। लिबरल तथा कंज़रवेटिव दोनों ही दल स्थिति को यथावत् रखना चाहते थे परन्तु साथ ही आवश्यकतानुसार अथवा दलीय लाभ की दृष्टि से परिवर्तन करने के लिये प्रस्तुत भी रहते थे। जिन प्रश्नों पर सबसे अधिक मतभेद था वे थे आयर्लैंड की समस्या तथा साम्राज्यवाद था।

आयर्लैंड की समस्या—

आयर्लैंडवालों की शिकायतें मुख्य कर धर्म तथा भूमि-सम्बन्धी थीं। हम देख चुके हैं कि १८६९ में ग्लेडस्टन ने आयरलैंड में एंग्लिकन चर्च के विशेषाधिकारों तथा सरकारी समर्थन को हटाकर आयर्लैंड की विशाल केथोलिक जनता की एक शिकायत को दूर करने का प्रयत्न किया था। १८७० के भूमि-कानून के अनुसार कृषकों की बेदखली से या लगान बढ़ाये जाने से रक्षा करने का भी प्रयत्न किया गया था। परन्तु १८८० के बाद से आयर्लैंड की समस्या बड़ी विकट हो गई। अपनी शिकायतों की ओर सरकार को पूरी तरह से ध्यान न देते हुए देखकर आयर्लैन्डवाले बिगड़ रहे थे। हिंसात्मक कार्रवाइयों तथा कृषि-सम्बन्धी आन्दोलन के अतिरिक्त अब उन्होंने राजनीतिक उपायों का प्रयोग भी आरम्भ कर दिया था और चार्ल्स स्टीवार्ट पार्नेल के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय दल (Irish National Party) का संगठन कर लिया था। पार्लामेंट में उन्होंने स्वराज्य पार्टी (Home Rule Party) का निर्माण कर लिया था और १८८० में पार्नेल को अपनी पार्टी का नेता चुन लिया था। उसने आयर्लैंड के अन्य दलों से समझौता करके पार्लामेंट में अड़ंगा-नीति के अनुसार काम करना और इस प्रकार सरकार पर दबाव डाल कर आयर्लैंड के लिये स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न शुरू किया।* ग्लेड्स्टन ने हिंसात्मक कार्रवाइयों के साथ

* Muir : A Short History of the British Commonwealth, Vol. I, pp. 643-645.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८८१ में दूसरा भूमि-कानून बना कर उनकी मुख्य माँगों को पूरी करने का उद्योग किया। इस कानून के अनुसार भूमि-न्यायालय के द्वारा उचित लगान स्थिर किया गया, किसानों की भूमि उनके पास जब तक वे लगान देते रहे स्थायी रूप से रहने की व्यवस्था हुई और भूमि की स्वतंत्र बिक्री की भी व्यवस्था की गई। १८८५ के सामान्य निर्वाचन में लिबरल दल को कंज़र्वेटिव दल से कुल ८६ स्थान ही अधिक मिले थे और आयरिश स्वराज्य दल को ८६ स्थान प्राप्त हुए थे। अतः उसकी ऐसी स्थिति हो गई कि यदि वह चाहता तो पार्लामेंट का काम असम्भव कर देता। उसके दल का समर्थन प्राप्त करने के लिये ग्लेड्स्टन ने उसकी स्वराज्य की माँग को स्वीकार कर लिया और १८८६ में पार्लामेंट में एक आयरिश होमरूल बिल प्रस्तुत किया। परन्तु इस विषय में स्वयं लिबरल दल में ही मतभेद था। जोज़ेफ चेम्बरलेन (Joseph Chamberlain) के नेतृत्व में कई लिबरल लोग आयर्लैंड को इंगलैंड के साथ ही रखना चाहते थे और उसे स्वराज्य प्रदान करने के विरोधी थे। कंज़र्वेटिव दल भी आयर्लैंड के स्वराज्य का विरोधी था। अतः जोजेफ़ चेम्बरलैन तथा उसके साथियों (Liberal Unionists) ने कंज़र्वेटिव दल के साथ मिलकर होमरूल बिल का विरोध किया और बिल अस्वीकृत हुआ। इस प्रश्न पर लिबरल दल में उसी प्रकार फूट पड़ गई जैसे मुक्त व्यापार के प्रश्न पर पील के कंज़र्वेटिव दल में फूट पड़ी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि लिबरल दल के प्राधान्य का अन्त हो गया, अगले २० वर्ष तक, बीच के केवल चार वर्ष (१८९२-१८९५) को छोड़, कंज़र्वेटिव दल का शासन रहा और आयर्लैंड की स्वराज्य-प्राप्ति की संभावना दूर हट गई।* १८९२ में शासन में कंज़र्वेटिव दल की पारस्परिक फूट के कारण ग्लेड्स्टन अपना चतुर्थ एवं अन्तिम मंत्रिमंडल बना सका और उसने फिर एक आयरिश होमरूल बिल लोक-सभा के सामने प्रस्तुत किया। लोक-सभा में तो वह स्वीकृत हो गया परन्तु लॉर्ड-सभा में, जहाँ कंज़र्वेटिव लोगों का प्राधान्य था, वह गिर गया। कंज़र्वेटिव लोग आयर्लैंड के स्वराज्य के तो विरोधी थे परन्तु वे उसे अन्य सुधारों द्वारा सन्तुष्ट करके स्वराज्य की माँग को समाप्त कर देना चाहते थे। अतः उन्होंने १८९६ और १९०३ में बड़े महत्वपूर्ण कानून बनाये जिनके अनुसार सरकार ने बड़ी सुविधापूर्ण शर्तों पर किसानों को ऋण देकर उन्हें भूमिपतियों से अपनी भूमि खरीदने तथा इस प्रकार भूमि के स्वामी बनने में सहायता दी और इस तरह वे आयर्लैंड में महान् सामाजिक परिवर्तन करने के श्रेय के भागी बने।†

* Muir : A Short History of the British Commonwealth, Vol. II, pp. 647-648.
† Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 277.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन्हीं दिनों इंगलैन्ड में अन्य सुधार भी हुए। १८८० की शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का वर्णन पहले हम कर चुके हैं। १८७१ में मज़दूरों के संघों (Labour Union) को पूर्ण क़ानूनी स्वीकृति प्राप्त हो गई और धीरे-धीरे सभी प्रकार के मज़दूरों के संघ बनने लगे। अपने संगठनों द्वारा मजदूरों का तथा निम्नवर्गीय मतदाताओं का प्रभाव बढ़ने लगा। सामाजिक सुधारक भी प्रयत्न करने लगे और कंज़र्वेटिव दल में लार्ड रेन्डाल्फ़ चर्चिल (Lord Randolph Churchill) के नेतृत्व में एक छोटा सा समूह टोरी प्रजातन्त्रवादियों (Tory Democrats) का बन गया जो सामाजिक सुधार-सम्बन्धी क़ानूनों का समर्थन करने लगे।

साम्राज्य विस्तार –

इंगलैन्ड के इतिहास में राजनीतिक एवं सामाजिक प्रगति तथा आयर्लैण्ड की समस्या के अतिरिक्त इस युग की प्रमुख घटना है—साम्राज्य विस्तार। औपनिवेशिक इतिहास में १८१५ से १८८० तक का काल शिथिलता का काल था इसके कई कारण थे। आर्थिक क्षेत्र में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त उपनिवेशवाद का विरोधी था। इसके साथ ही अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र और अमेरिका में स्थित स्पेन तथा पोर्तुगाल के उपनिवेशों की स्वतन्त्रता से भी यह धारणा बन गई थी कि उपनिवेश सदा ही मूल भूमि के अधीन नहीं रह सकते। इंगलैन्ड के महान साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञ डिज़रेली ने १८५२ में नैराश्य भावना को व्यक्त करते हुए कहा था—ये अभागे उपनिवेश कुछ ही वर्षों में स्वतन्त्र हो जायेंगे। ये हमारे गले में चक्की के पाट की तरह हैं।' इंगलैंड को अपने विस्तृत साम्राज्य के कारण कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। १८३७ में इंगलैंड से भेजे हुए गवर्नरों तथा प्रान्तीय सभाओं के बीच संघर्ष होने के कारण कनाडा में विद्रोह हो गया। विद्रोह तो दबा दिया गया परन्तु कनाडावालों की शिकायतों को दूर करने के निमित्त कुछ सुझाव प्रस्तुत करने के लिये इंगलैन्ड की सरकार ने लार्ड डरहम की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया जिसने १८३९ में एक विस्तृत रिपोर्ट पेश की। लॉर्ड डरहम ने उसमें कनाडा के समस्त उपनिवेशों के संयोग तथा उन्हें इंगलैंड के राजा के समान वैधानिक गवर्नर के अधीन उत्तरदायी शासन प्रदान करने की सिफारिश की। पार्लामेन्ट ने इस सिद्धान्त को स्वीकार करके १८४९ में कनाडा को स्वशासन प्रदान किया और अन्य गोरे निवासियोंवाले बड़े उपनिवेशों को भी इसी सिद्धान्त के अनुसार १८५० से १८७५ तक उत्तरदायी स्व-शासन प्रदान कर दिया। भारतवर्ष के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त की उपेक्षा की गई परन्तु १८५७ के विप्लव के परिणामस्वरूप इंगलैंड की सरकार

* Hayes and Cole : A History of Europe, vol. II. p. 295.
‡ Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 258.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने ईस्ट इंडिया कम्पनी से शासन अपने हाथ में ले लिया। भारतवर्ष को स्वशासन नहीं मिला, न उसको कोई वचन ही दिया गया परन्तु इस परिवर्तन में सुदूर भविष्य में भारतवर्ष की स्वतन्त्रता की सम्भावना अन्तर्हित थी। उपनिवेशों के प्रति इस नवीन नीति को अंगीकार करते हुए तथा उपनिवेशों की ओर लोकरुचि में शिथिलता आ जाने पर भी इंगलैन्ड कुछ तो सरलता के कारण और कुछ साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से नये-नये प्रदेशों पर अधिकार करता रहा और इस सिलसिले में उसने न्यूज़ीलैण्ड (१८४०, हाँगकाँग १८४२), नेटाल (१८४३), मलय प्रायद्वीप के राज्य (१८७४) तथा फ़िजी द्वीप (१८७४) अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिये। इस विस्तार के साथ ब्रिटिश द्वीपों से बहुत बड़ी सख्या में अंग्रेज तथा स्कॉट लोग (औद्योगीकरण से उत्पन्न दुर्दशा से बचने के लिये) और आयरिश लोग (अकाल से पीड़ित होकर) कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूज़ीलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया में जाकर बसने लगे। १८५० के लगभग आस्ट्रेलिया में तथा कनाडा के पश्चिमी प्रदेश ब्रिटिश कोलम्बिया में सोने का पता चलने से भी बड़ी संख्या में लोग पहुँचने लगे।

नये साम्राज्यों का निर्माण—

इस प्रकार इस उपनिवेश-सम्बन्धी उदासीनता के युग में भी इंगलैंड के साम्राज्य का विस्तार होता रहा। यह युग साम्राज्य निर्माण के क्षेत्र में 'ब्रिटिश एकाधिकार' का युग कहा जाता है। किन्तु वास्तव में यह उक्ति सर्वथा सत्य नहीं है। उन्हीं दिनों में तीन बड़े महत्वपूर्ण साम्राज्यों का निर्माण हो रहा था।* नई दुनिया में संयुक्त राष्ट्र अटलांटिक से प्रशान्त महासागर तक अपना विस्तार कर रहा था। पूर्व की ओर रूस योरोप तथा एशिया में अनेकानेक प्रदेश अपने राज्य में शामिल करके एक विशाल स्थल-साम्राज्य का निर्माण कर रहा था। इनके अतिरिक्त फ्रांस भी नये फ्रेञ्च साम्राज्य का श्रीगणेश कर रहा था।

उपनिवेशों के प्रति नई मनोवृत्ति—

यह युग ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार का ही नहीं था, इस युग में उपनिवेशों के प्रति मूल देश की जो इस समय तक मनोवृत्ति रही थी उसमें परिवर्तन हो रहा था और साम्राज्य के संगठन में नये सिद्धान्तों का प्रयोग होने लगा था। इंगलैंड के उपनिवेश-सम्बन्धी विचारों, नीतियों तथा कार्यों में कोई क्रमिकता अथवा संगति तो कभी नहीं रही, फिर भी धीरे-धीरे इस युग में कई विभिन्न बातों के कारण साम्राज्यों की एक नवीन कल्पना का जन्म हुआ और एक नई साम्राज्य-नीति का निर्माण होने लगा।†

---

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 478.
† Ketelbey : A History of Modern Times, p 474.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नई मनोवृत्ति के आधार—

इस नवीन कल्पना के निर्माण में चार बातों ने भाग लिया। प्रथम, स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त ने पुराने 'व्यापारिक सिद्धान्त' का अन्त कर दिया जिसके अनुसार यह समझा जाता था कि उपनिवेश मूल-देश के लिये थे, उनका कोई अपना स्वतंत्र हित नहीं था। इस सिद्धान्त के अनुसार उपनिवेशों के स्वतंत्र विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था और उनके व्यापार पर 'नाविक (Navigation) क़ानूनों' के द्वारा अनेक प्रकार के नियन्त्रण लगाये गये थे किन्तु उपनिवेशवासी इन नियन्त्रणों को न सह सके। अमेरिकन उपनिवेशों के विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया कि उपनिवेशों के व्यापार पर लगाये हुए नियन्त्रण अनिष्टकारी थे। उधर तुर्गों, एडमस्मिथ आदि अर्थशास्त्रियों ने सैद्धान्तिक दृष्टि से भी आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप को अनिष्टकारी बतला कर मुक्त व्यापार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन दोनों बातों का परिणाम यह हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य (१८४९) तक इंगलैण्ड ने नाविक क़ानूनों को रद्द करके उपनिवेशों पर से व्यापारिक नियन्त्रण हटा लिये और अपना स्वार्थी रुख त्याग दिया। द्वितीय, इन दिनों, जैसा हम अभी बतला चुके हैं, मूल देश से हज़ारों की संख्या में लोग बाहर चले जा रहे थे। उपर्युक्त कारण से उपनिवेशों का आर्थिक महत्व तो कम हो गया तो परन्तु मूल देश से बाहर जाने वाले लोगों को बसाने की दृष्टि से उनका मूल्य बढ़ा। वहाँ प्रतिवर्ष लोग जाकर बसते जा रहे थे परन्तु यह कार्य किसी योजना के अनुसार नहीं हो रहा था। परन्तु अब उन प्रदेशों में लोगों को बसाने की ओर सरकार ध्यान देने लगी। इस कार्य के लिये योजनायें बनने लगीं और कनाडा, दक्षिणी अफ्रिका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्ड में बड़ी सफल बस्तियाँ बसाई गईं। इस सम्बन्ध में एडवर्ड गिबन वेकफील्ड का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिसने इन योजनाओं के सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण काम किया। तृतीय, इस काल में जिस मानवता तथा परोपकार-भावना का इंगलैण्ड के गृह मामलों में प्रवेश हो रहा था उसने साम्राज्य के शासन पर भी प्रभाव डाला। आधीन लोगों के साथ सद्व्यवहार करने तथा उसके हितों का ध्यान रखने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और उपनिवेशवासियों की ओर मूल देश की मनोवृत्ति में परिवर्तन होने लगा। अन्त में, ये दिन उदारवाद के थे। जिन उपनिवेशों में गोरे लोग बसे हुए थे उनमें असन्तोष व्याप्त था। उसे देखकर यह उचित मालूम हुआ कि उन्हें स्वायत्त शासन प्रदान कर दिया जाय जिससे उसमें मूल देश के प्रति सद्भावना बनी रहे और वे उसके साथ-साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखें।

इंङ्गलड की नई औपनिवेशिक नीति का विकास—

इस विचार के साथ इंगलैंड की औपनिवेशिक नीति में महान् परिवर्तन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गया। परन्तु यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि यह परिवर्तन उन्हीं उपनिवेशों के सम्बन्ध में हुआ जहाँ गोरी जातियाँ बसती थीं। अन्य उपनिवेशों के प्रति इस युग में इंगलैण्ड की नीति शोषणमूलक ही बनी रही। इस नई नीति का विकास कनाडा में हुआ। उसका मुख्य कारण अनुत्तरदायी शासन और लोअर कनाडा में बसे हुए फ्रेञ्च तथा अपर कनाडा के अंग्रेजी जातीय विद्वेष तथा मनोमालिन्य से उत्पन्न १८३७ का विद्रोह था। जैसा हम देख चुके हैं, उस विद्रोह के दमन के बाद डरहम रिपोर्ट के अनुसार अपर तथा लोअर कनाडा को शामिल करके उसे स्वायत्त शासन दिया गया (१८४०) और दस वर्ष के अन्दर कनाडा के अन्य प्रान्तों को भी स्वायत्त शासन प्रदान कर दिया गया। यही सिद्धान्त आस्ट्रेलिया (१८५२), केप कॉलोनी (१८५३) और न्यूज़ीलैंड (१८५४) के उपनिवेशों के साथ भी लागू किया गया।

यह नई नीति के विकास की प्रथम सीढ़ी थी। अपर तथा लोअर कनाडा का संयोग सफल नहीं हुआ। फ्रेञ्च लोग संयुक्त कनाडा में अपना अस्तित्व मिटता हुआ देख रहे थे। वे बिलकुल स्वतंत्र होना तो नहीं चाहते थे; उनकी इच्छा सामान्य मामलों में साथ रहते हुये अपने आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र रहने की थी। साथ बने रहने की इच्छा का कारण दक्षिण की ओर संयुक्त राष्ट्र के निरन्तर विस्तार से उत्पन्न भय था। इस परिस्थिति में संघीय व्यवस्था पर विचार किया जाने लगा और अन्त में ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट (१८६७) के द्वारा ओण्टेरिया (अपर कनाडा), क्यूबेक (लोअर कनाडा), न्यूब्रन्स्विक तथा नोवा स्कोशिया को सम्मिलित करके 'डॉमिनियन आफ़ कनाडा' के नाम से ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत प्रथम संघशासन का निर्माण किया गया और उसे वस्तुतः इंगलैंड के नियन्त्रण से स्वतन्त्र कर दिया गया। आगे चल कर ऑस्ट्रिया (१९०१) और दक्षिणी अफ्रीका (१९०९) के विभिन्न उपनिवेश इसी प्रकार सम्मिलित होकर संघ बन गये।*

जिस युग में इंगलैंड की औपनिवेशिक नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ वह 'औपनिवेशिक उदासीनता' का युग था। परन्तु १८७० के बाद, उसी डिज़रेली के प्रधान-मन्त्रित्वकाल (१८७४-८०) में, जो उपनिवेशों को मूल देश के लिये भाररूप समझता था, उनकी ओर रुख बदला। पहले तो यातायात के साधन धीमे और समाचार प्राप्त करने के साधन असन्तोष जनक होने के कारण मूल देश तथा उपनिवेशों में अधिक घनिष्ट सम्पर्क स्थापित नहीं हो सकता था, दोनों एक दूसरे के प्रति सशंक रहते थे और उपनिवेशों के मूल से स्वतन्त्र होने की सम्भावना भी दिखाई देती थी। परन्तु अब यातायात के तथा समाचार प्राप्त करने के साधनों में आश्चर्यजनक उन्नति हो जाने से सम्पर्क बढ़ने लगा,

* Ketelbey : A History of Modern Times, pp. 475-478.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारस्परिक शंका दूर होने लगी और अलग होने की संभावना भी निर्बल होने लगी। इसका एक कारण संसार का बढ़ता हुआ सैनिकवाद तथा सबल राष्ट्रों द्वारा निर्बल राष्ट्रों के हड़प लिये जाने का डर भी था। इन बातों को देखकर इंगलैण्ड तथा उसके उपनिवेशों में यह भावना उत्पन्न होने लगी कि अलग होना विनाश को निमंत्रण देना है और वे परस्पर अधिक निकट आने के लिये किसी प्रकार की संघीय व्यवस्था स्थापित करने का विचार करने लगे। १८८४ में इंगलैंड में एक इम्पीरियल फ़ेडरेशन लीग की स्थापना हुई और इंगलैंड के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर जाने लगा।*

औपनिवेशिक उदासीनता का अन्त—

परन्तु इंगलैंड के सामने इस समय केवल यही एक प्रश्न नहीं था। जिस युग का इतिहास हम पढ़ रहे हैं उसके आरम्भिक वर्षों में कई कारणों से औपनिवेशिक उदासीनता का अन्त हो गया। उपनिवेशों के प्रति योरोपीय सत्ताओं का रुख बदला और साम्राज्यवाद ने नया रूप धारण किया। फलतः इंगलैंड के रुख में भी परिवर्तन हुआ। १८८० तक नये साम्राज्यवाद ने काफ़ी ज़ोर पकड़ लिया और अगले २५ वर्षों में संसार के अनधिकृत अथवा पिछड़े हुए प्रदेशों पर अधिकार करने के लिये योरोप की महान् सत्ताओं में भयंकर प्रतिस्पर्धा रही जिसके फल-स्वरूप उन्होंने समस्त अफ़्रिका को आपस में बाँट लिया और एशिया में कई प्रदेशों तथा प्रशान्त महासागर के अनेक द्वीपों पर अधिकार कर लिया। इस औपनिवेशिक दौड़ में मुख्य प्रतिस्पर्धी तो इंगलैंड, फ़्रान्स तथा जर्मनी थे, परन्तु अन्य छोटे देश भी उपनिवेशों के लोभ को संवरण न कर सके और उन्होंने भी कुछ प्रदेश हस्तगत कर लिये।

साम्राज्यवाद की नव जागृति के कारण आर्थिक कारण—

इस औपनिवेशिक लूट के कई कारण थे। एक कारण आर्थिक था। १८७५ के बाद ठीक ऐसे समय, जब कि फ़्रांस, जर्मनी, इटली तथा अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र का औद्योगीकरण हो रहा था और उन देशों में उत्पादन बढ़ रहा था तथा औद्योगिक प्रतिस्पर्धियों के उत्पन्न हो जाने से इंगलैंड को अपने माल को बेचने की चिन्ता हो रही थी, योरोपीय देशों ने संरक्षण-नीति को अपनाकर अपने यहाँ बाहर से आने वाले माल पर भारी कर लगाना आरम्भ किया जिससे विभिन्न देशों के बाजार अन्य देशों के माल के लिये बन्द हो गये और औद्योगिक देशों को अपना माल बेचने के लिये नये बाजार ढूँढने की आवश्यकता दिखाई देने लगी। यह आवश्यकता अधीनस्थ उपनिवेशों द्वारा अच्छी प्रकार पूर्ण हो सकती थी क्योंकि उनमें शत्रु देशों द्वारा किसी प्रकार की

* Hearnshaw : Main Currents of European History, pp. 258-259.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रुकावट के लगाये जाने का कोई डर नहीं था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण जिस में योरोप में सर्वत्र संरक्षण की नीति जारी थी, औपनिवेशिक विस्तार का काल था। उधर १८७३ से संसार भर में कीमतें गिरने लगी थीं जिससे नये उद्योगपतियों के मुनाफे कम हो रहे थे और वे अधिक लाभ की दृष्टि से अपनी पूँजी अन्यत्र लगाना चाहते थे। १८७० के पहले बहुत सी पूँजी ब्याज की ऊँची दर पर स्पेनिश अमेरिका के तथा अन्य पिछड़े हुए देशों को ऋण के रूप में दी जाती थी परन्तु ये ऋण प्रायः मारे जाते थे। यह देखकर वे यह अच्छा समझते थे कि पूँजी अपने ही देश के उपनिवेशों में रेलों, खानों आदि में लगाई जावे जिससे उन्हें मुनाफा भी पर्याप्त मिले और पूँजी मारी भी न जा सके।* सामुद्रिक यातायात के साधनों की उन्नति के साथ दूरस्थ उपनिवेशों का भी सस्ते भोज्य पदार्थ, उष्णकटिबन्धीय वस्तुओं तथा कारखानों के लिये आवश्यक कच्चे माल के प्राप्ति-स्थानों की हैसियत से महत्व बढ़ा। भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों तथा तार और समुद्री तार के आविष्कार के फल-स्वरूप दूर-दूर के प्रदेशों पर अधिकार करना और उन पर शासन करना भी सरल हो गया था।

सामाजिक कारण—

इंगलैंड तथा कुछ अंश तक जर्मनी में औद्योगिक व्यवस्था पूर्णता को प्राप्त हो जाने के कारण अच्छे परिवारों के तथा सुरक्षित महत्वाकांक्षी युवकों के लिये अपने ही देश में शीघ्र उन्नति करने के अवसर कम होते जा रहे थे। उन्हें उपनिवेशों की सेनाओं, उनके शासनों तथा व्यवसायों में उन्नति करने तथा सफलता प्राप्त करने के अवसर प्राप्त हो सकते थे।

राजनीतिक तथा सैनिक—

इंगलैंड के लिये तो किसी नये स्थान पर अधिकार करने के लिये जहाज़ों के लिये कोयला लेने के स्थान या बन्दरगाह या नाविक अड्डों की आवश्यकता का बहाना सदा मौजूद रहता था। जर्मनी ने भी व्यापारिक तथा सामरिक बेड़े के निर्माण के बाद इसी प्रकार के बहानों का उपयोग किया। फ्रान्स के लिये भी जहाँ जनसंख्या जर्मनी की तुलना में बहुत ही शिथिल गति से बढ़ रही थी, अपने उपनिवेशों से सैनिक भरती करके अपनी सैन्यशक्ति के विस्तार का प्रलोभन था। इंगलैण्ड को अपनी भारतीय सेना का बड़ा गर्व ही नहीं, भरोसा भी था। इस प्रकार सैनिकवाद के ज़माने में सैन्यशक्ति के विस्तार की दृष्टि से उपनिवेश बड़े मूल्यवान् थे। इसके अतिरिक्त वे जर्मनी, इटली आदि देशों के लिये, जहाँ से प्रतिवर्ष हजारों आदमी अमेरिका, ब्राज़ील,

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 29 .

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्जेन्टाइना तथा अन्य देशों में बस कर अपनी मातृभूमि से सदा के लिये अलग होते जा रहे थे, इस दृष्टि से भी बड़े मूल्यवान् हो सकते थे कि वहाँ मातृभूमि से बाहर जाने वाले लोग बसाये जा सकें ताकि उनका उससे सम्बन्ध न टूटे और वे आवश्यकता के समय उसकी सहायता कर सकें।

उग्र राष्ट्रीयता—उपनिवेशों से प्राप्त होने वाले ये उपर्युक्त लाभ बहुत कुछ अंश तक काल्पनिक थे क्योंकि उनसे जो लाभ आपेक्षित थे वे सन्तोषजनक मात्रा में प्राप्त नहीं हुए। वास्तव में नये साम्राज्यवाद की मुख्य प्रेरक शक्ति उग्र राष्ट्रीयता से प्राप्त हुई थी।* इन दिनों राष्ट्रीयतावाद प्रतिक्रिया के विरुद्ध संघर्ष करके विजयी हो चुका था और जर्मनी में तथा उसका अनुकरण करके अन्य देशों में भी उग्र रूप धारण करता जा रहा था। इंगलैंड के और हॉलैंड जैसे छोटे से देश के आधीन विशाल साम्राज्य देखकर अन्य देशों में, विशेषकर जर्मनी, फ्रान्स तथा इटली में भी साम्राज्य की इच्छा जागृत हुई। राष्ट्र के गौरव तथा राष्ट्रीय अभिमान की भावना के सन्तोष के लिये यह आवश्यक मालूम होने लगा कि उनके पास भी साम्राज्य हों। उनकी राष्ट्रीय अभिमान की भावना में अपनी सभ्यता तथा अपने धर्म के उच्च होने का अभिमान भी शामिल था और उन लोगों में यह भावना ज़ोर पकड़ने लगी कि पृथ्वी के विभिन्न भागों में बसे हुए 'पथभ्रष्ट' तथा 'पिछड़े हुए' लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करके तथा उनमें अपनी उत्कृष्ट सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार कर उनका उद्धार करना तथा उन्हें ऊँचा उठाना उनका कर्त्तव्य था। इस दृष्टि से असंख्य ईसाई पादरी अफ्रिका तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपों को अपने धर्म तथा अपनी सभ्यता के प्रचार के लिए जाने लगे। ये पादरी लोग प्रायः नये साम्राज्यवाद के अग्रदूत बने। पहले वे लोग नये नये प्रदेशों में पहुँचे और उनके पीछे-पीछे व्यापारी भी पहुँचने लगे। बाद में व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए सेना पहुँचने लगी और इस प्रकार साम्राज्य का विस्तार होने लगा। इन प्रचारकों में कुछ लोग तो सच्चे धार्मिक तथा मानव प्रेमी लोग थे और उन्होंने वास्तविक सेवा भी की परन्तु उपनिवेशों के लोगों को व्यापारियों तथा सरकारी कर्मचारियों के अमानुषिक अत्याचारों का शिकार बनना पड़ा। कुछ भी हो, साम्राज्यवाद के विस्तार में इन धार्मिक तथा मानवतावादी प्रयत्नों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इन सब कारणों से नये साम्राज्यवाद की भावना समस्त योरोप में व्याप्त हो गई और भीषण औपनिवेशिक स्पर्धा का श्रीगणेश हुआ।

अफ्रिका में साम्राज्यवाद—

इस समय योरोपीय लोगों के लिये दो विशाल प्रदेश खुले हुए थे—

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 298.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अफ़्रिका तथा प्रशान्त महासागर के असंख्य द्वीप। अफ़्रिका का बटवारा इस युग की एक अत्यन्त असाधारण घटना है।* इसकी असाधारणता दो बातों में दिखाई देती है। प्रथम, इतना बड़ा काम बिना युद्ध के ही हो गया। समय-समय पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच तनातनी हुई, कटुता भी उत्पन्न हुई, संघर्ष की सम्भावनाएँ भी दिखाई दीं, परन्तु सभी संकटों का कूटनीति द्वारा निवारण हो गया और युद्ध नहीं हुआ। द्वितीय, यह बटवारा धीरे-धीरे क्रमिक रूप से नहीं, वरन् बड़ी तीव्रता से हुआ और पच्चीस-तीस वर्ष में समाप्त हो गया। इसका कारण यह था कि इस समय जर्मनी तथा इटली के नये साम्राज्यहीन किन्तु उग्र राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण राज्य मैदान में आ गये थे जो जल्दी से जल्दी अपने लिये साम्राज्य की स्थापना करने के लिये लालायित थे। इन नवागन्तुकों को देखकर इंगलैंड और फ़्रांस चौंके, अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा तीव्र हुई, प्रत्येक राज्य जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक प्रदेश हस्तगत करने का प्रयत्न करने लगा और इस प्रकार अफ़्रिका का विभाजन बड़ी तेजी से समाप्त हो गया।

योरोप के बिल्कुल निकट होते हुए भी अफ़्रिका प्रायः अज्ञात प्रदेश था और 'अन्धकारमय महाद्वीप' कहलाता था। योरोपीय लोग, जो संसार भर में फैल चुके थे, उसके केवल तटीय भाग को ही स्पर्श कर सके थे। इसके मुख्य कारण भौगोलिक थे। १८७५ के पहले तक उसका केवल दशमांश ही योरोपीय राष्ट्रों के अधिकार में था। उत्तरी तट पर १८३० में फ़्रान्स ने एल्जीयर्स पर अधिकार करके उसके आसपास के प्रदेश को भी अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था। दक्षिण में इंगलैंड ने १८०६ में हॉलैंड से केप कॉलोनी का प्रदेश छीन लिया था और १८४३ में नेटाल पर अधिकार कर लिया था। पोर्तुगाल के पास पूर्वी तट पर मोज़ाम्बिक तथा पश्चिमी तट पर अंगोला के तटीय प्रदेश थे जिनकी भीतर की ओर सीमाएँ अस्पष्ट थीं। उन प्रदेशों के अतिरिक्त पश्चिमी तट पर भी कुछ स्थल फ़्रान्स (सेनोगाल, गेबून तथा आइवरी कोस्ट), इंगलैंड (गोम्बिया, सियरा लिओन, गोल्ड कोस्ट, लेगॉस तथा नाइजर नदी का मुहाना), पोर्तुगाल (पोर्तुगीज़) तथा दो एक द्वीप और स्पेन (रायो डी ओरो तथा स्पेनिश गिनी) के अधिकार में थे।†

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक तीन चार दशाब्दियों तक अफ़्रिका का मूल्य इतना ही था कि गोरे दास-व्यापारी वहाँ से हज़ारों हब्शियों को पकड़-पकड़ कर दास बना लेते थे और उन्हें अमेरिका के किसानों को बेचकर खूब लाभ उठाते थे। अफ़्रिका की अपार प्राकृतिक सम्पत्ति के विषय में योरोपीय

* Ketelbey : A History of Modern Times, pp. 481-82.
†Moon : Imperialsim and World Politics, p. 76.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोगों को बहुत कम ज्ञान था। उसके भीतरी भागों का पता लगाने वाले तथा इस सम्पत्ति की ओर योरोप का ध्यान आकर्षित करने वाले साहसिक अन्वेषक तथा मिशनरी लोग थे जो अपनी जान हथेली पर रख कर उन दुर्गम प्रदेशों में नाना प्रकार के संकटों का वीरतापूर्वक सामना करते हुए घूम-घूम कर वहाँ, का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। इस सम्बन्ध में बर्टन, स्पीक, ग्राण्ट, बेकर, लिविंग्स्टन तथा स्टेनली के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने नील, नाइजर, कांगों तथा जेम्बीज़ी नदियों के मार्गों का पता लगाया। ईसाई पादरी गिनी तट तथा दक्षिणी अफ्रिका में बड़े जोरों से प्रचार कार्य कर रहे थे। इन सब लोगों के कामों, विशेषकर स्टेनली की प्रख्यात पुस्तक 'थ्रू दी डार्क कॉण्टीनेन्ट (Through the Dark Continent) के प्रकाशन से, जिसमें उसकी यात्राओं तथा उसके अनुभवों का रोमांचकारी वर्णन था, योरोप में अफ्रिका के सम्बन्ध में ऐसे समय में रुचि बढ़ी जब कि लोग उपनिवेशों का मूल्य भली भाँति समझने लगे थे।* अफ्रीका की अपार सम्पत्ति को हस्तगत करने की इच्छा योरोप के लोगों में बड़े उत्कट रूप से जाग्रत हुई और उस पर नाना प्रकार से आक्रमण होने लगा।

अफ्रिका की लूट का आरम्भ—

यह बात बड़ी विचित्र है कि अफ्रिका की इस लूट का आरम्भ किसी सत्ता ने नहीं, बेल्जियम के राजा द्वितीय लियोपोल्ड ने किया। लियोपोल्ड की रुचि व्यावसायिक बातों में थी और उसकी व्यावसायिक बुद्धि भी बड़ी प्रखर थी। उसने लिविंग्स्टन तथा स्टेनली की यात्राओं का हाल सुन रखा था और स्टेनली के वैज्ञानिक अन्वेषणों से लाभ उठाने की उसकी बड़ी प्रबल इच्छा थी। उसने वैज्ञानिक अन्वेषण को प्रोत्साहन देने, अफ्रिका के अज्ञात प्रदेशों का पता लगाने तथा वहाँ के निवासियों को सभ्य बनाने के उद्देश्य से अपनी राजधानी ब्रूसेल्ज़ में १८८६ में एक अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक सम्मेलन आमंत्रित किया जिसके द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक 'अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा' की स्थापना की गई। स्वय लियोपोल्ड उसका सभापति बना। यह निश्चित हुआ कि प्रत्येक देश में इस सभा की समितियाँ बनाई जाँय जो इस कार्य के लिये धन एकत्रित करें। इस संस्था तथा विभिन्न राष्ट्रीय समितियों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप तथा नैतिक उद्देश्य शीघ्र ही लुप्त हो गये और प्रत्येक समिति अपने राष्ट्र के लिये अफ्रीका में प्रदेश प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगी। स्वयं मूल सभा भी वस्तुतः एक बेल्जियन सभा रह गई। जब १८७८ में स्टेनली अफ्रीका से लौटकर मारसेइय में उतरा था तो बस संस्था की ओर से दो व्यक्तियों ने उससे गुप्त रूप में भेंट करके संस्था की ओर से वापिस अफ्रिका लौट जाने के लिये अनुरोध

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 482.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया था। परन्तु जन्म से अँग्रेज होने के कारण स्टेनली की इच्छा थी कि उसकी खोजों का लाभ इंगलैंड को प्राप्त हो परन्तु जब इंगलैंड ने उसके प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया और वह वहाँ से निराश हो गया तो उसने लियोपोल्ड से बातचीत की और कुछ लोगों को लेकर मध्य अफ्रीका के लिये फिर रवाना हो गया।* स्टेनली ने कांगो प्रदेश के भोले-भाले नीग्रो सरदारों को डरा धमकाकर और बहला-फुसलाकर अपने प्रदेश योरोपियनों को सौंप देने के लिये राजी कर लिया। तीन चार वर्षों में ही उसने कोई ४०० सन्धियाँ कीं और एक विशाल प्रदेश उसके हाथों में आ गया।

स्टेनली कांगों नदी के दक्षिण की ओर ही बढ़ पाया था। उसके उत्तरी किनारे पर पहले ही से एक फ्रेञ्च साहसिक यात्री ब्राज़ा के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप फ्रान्स का झण्डा फहरा रहा था। अपनी सफलता के बाद स्टेनली ने एक बार फिर उसका लाभ इंगलैण्ड को देना चाहा। उन दिनों ग्लेड्स्टन प्रधान-मंत्री था। उसने स्टेनली के प्रस्ताव को तो स्वीकार नहीं किया परन्तु पोर्तुगाल को समझाकर कांगों नदी के मुहाने के प्रदेश पर उसका अधिकार करवा दिया और फ़र्वरी १८८४ में उससे सन्धि करके उस प्रदेश पर उसके अधिकार को स्वीकार कर लिया तथा कांगो नदी में अंग्रेज़ों के लिये निर्बाध रूप से आने जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रकार लियोपोल्ड के प्रदेश का सम्बन्ध समुद्र से टूट गया। उसने फ्रान्स और जर्मनी से सहायता माँगी। फ्रांस में इन दिनों जूल्स फेरी विदेश-मन्त्री था। उसने लियोपोल्ड से सन्धि करके इंगलैंड तथा पोर्तुगाल की सन्धि को अस्वीकार कर दिया। ठीक इसी अवसर पर बिस्मार्क ने जो फ्रांस को प्रसन्न रखना चाहता था और अफ्रिका में अपनी औपनिवेशिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये इंगलैण्ड के विरुद्ध फ्रांस का समर्थन करना चाहता था, फ्रांस का समर्थन किया और इस समस्या पर विचार करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आमंत्रित करने के उसके प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इन्हीं दिनों अनेक योरोपीय राष्ट्रों के दूत मध्य-अफ्रिका में घूम रहे थे, नीग्रो सरदारों से सन्धियाँ करके बड़े-बड़े प्रदेश हस्तगत् कर रहे थे और अपने प्रभाव-क्षेत्र निर्धारित कर रहे थे। स्थिति इतनी जटिल हो गई थी कि उसे सुलझाने के लिये तथा अफ्रिका के भावी बटवारे के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण अत्यन्त आवश्यक मालूम होने लगा।‡

बर्लिन-सम्मेलन—

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन बर्लिन में हुआ (१८८४-८५)।

* Moon : Imperialism and World Politics, pp. 80-82.
‡ Phillips : Modern Europe, p. 541.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसके पहले ही काँगो प्रदेश पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के (अर्थात् लियोपोल्ड के) दावों को अमेरिका के संयुक्तराष्ट्र, जर्मनी तथा फ़्रान्स स्वीकार कर चुके थे।* तीन महीने की बातचीत के बाद एक सामान्य कानून (General Act) तैयार हुआ और उस पर सभी के हस्ताक्षर हुए। इस सम्मेलन में स्विटज़रलैंड को छोड़कर सभी योरोपीय राज्य तथा संयुक्त राष्ट्र सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन के सामने तीन प्रश्न थे—कांगों प्रदेश तथा नाइजर प्रदेश के विषय में निर्णय करना तथा उन शर्तों का निर्धारण करना जिनके अनुसार भविष्य में अन्य प्रदेशों पर उचित रीति से अधिकार किया जा सके। सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय अफ़्रिकन सभा का काँगों के प्रवाह-प्रदेश पर उसे काँगों फ़्री स्टेट का नाम देकर अधिकार स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही उस प्रदेश का व्यापार सब राष्ट्रों के लिये खुला छोड़ दिया गया और काँगों नदी के यातायात पर एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन का नियंत्रण स्थापित किया गया। नाइजर नदी के प्रदेशों के लिये भी वैसी ही व्यवस्था की गई। उस पर इंगलैण्ड तथा फ़्रान्स का संरक्षण स्वीकार कर लिया गया और नदी के यातायात के नियंत्रण में इंगलैंड को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हुए। तीसरी समस्या के विषय में यह निश्चित हुआ कि किसी प्रदेश पर किसी सत्ता का अधिकार तभी स्वीकार किया जायगा जब कि उस पर उसका अधिकार वास्तविक होगा, केवल नाममात्र का नहीं,† और इसके साथ ही यह भी आवश्यक होगा कि उसे अपने साम्राज्य में शामिल करने के पहले वह अन्य राष्ट्रों को उसकी सूचना दे।

सम्मेलन ने अफ़्रिका के निवासियों के नैतिक तथा भौतिक कल्याण के लिये चिन्ता प्रकट की थी और दास-प्रथा एवं दास-व्यापार का रोकना तथा वहाँ के निवासियों की शिक्षा और सभ्यता में उन्नति करना अपना मुख्य उद्देश्य बतलाया था परन्तु इन पवित्र कामनाओं का शीघ्र ही अन्त हो गया और योरोपीय राष्ट्रों ने बड़ी अमानुषिक निर्दयता के साथ बेचारे भोले-भाले गरीब निवासियों का रक्त-शोषण आरम्भ कर दिया। अफ़्रिका में लूट मची रही और १९१४ तक एबीसीनिया और लिबेरिया को छोड़ समस्त अफ़्रिका को योरोपियनों ने आपस में बाँट लिया।

काँगो का प्रदेश नाम के लिये तो अन्तर्राष्ट्रीय राज्य था परन्तु वह वास्तव में १९०८ तक लियोपोल्ड का व्यक्तिगत राज्य बना रहा परन्तु जब व्यापारियों द्वारा अफ़्रिकनों पर किये जाने वाले भयंकर अत्याचारों की सर्वत्र शिकायतें होने लगीं तो उसने अपना राज्य बेल्जियम की सरकार को सौंप

* Moon : Imperialism and World Politics, p. 83.
† Phillips : Modern Europe, pp. 541-542.
‡ Moon : Imperialism and World Politics, p. 84.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया। इस प्रकार काँगों फ्री स्टेट का प्रदेश जो स्वयं बेल्जियम से विस्तार में दस गुना बड़ा था और रबड़ की दृष्टि से काँगो-प्रदेश का सर्वोत्तम भाग था, बेल्जियम का एक उपनिवेश बन गया।

लियोपोल्ड की सफलता को देखकर अन्य योरोपियन भी प्रोत्साहित हुए और अफ्रिका की लूट बड़ी तेजी से होने लगी। पोर्तुगाल ने अंगोला तथा मोज़ाम्बिक की टूटी-फूटी तटीय बस्तियों से भीतर की ओर बढ़ना शुरू किया और कुछ ही वर्षों में अंगोला तथा मोज़ाम्बिक के विस्तृत उपनिवेश स्थापित कर लिये। इटली ने इरीट्रिया तथा इटालियन सोमालीलैंड पर अधिकार कर लिया और १९११-१२ में ट्रिपोली तथा साइरेनाइका भी अपने साम्राज्य में शामिल कर लिये। जर्मनी ने भी १८८४ से अफ्रिका की लूट में भाग लेना शुरू कर दिया। जो काम लियोपोल्ड के लिये स्टेनली ने किया था वही काम जर्मनी के लिये कार्ल पीटर्स ने किया जिसने दस दिन के अन्दर कोई एक दर्जन संधियाँ करके पूर्वी अफ्रिका में ६०,००० वर्ग मील पर अधिकार कर लिया।* धीरे-धीरे उसने पश्चिमी तट पर टोगोलैंड, केमरून्स तथा दक्षिण-पश्चिमी अफ्रिका अपने अधिकार में कर लिये। स्पेन भी इस लूट में शामिल हुआ और उत्तर-पश्चिमी तट पर रायो डी ओरो तथा जिब्राल्टर के सामने टेन्जियर के प्रदेश पर अधिकार करने में सफल हुआ। फ्रान्स ने एक बड़े विस्तृत प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया। उत्तरी किनारे पर एल्जियर्स के अतिरिक्त उसने १८८२ में ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया और आगे चलकर १९१२ तक मोरक्को को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इन प्रदेशों के दक्षिण में उसने समस्त सहारा प्रदेश पर अधिकार करके पश्चिमी तट पर स्थित स्थानों का काँगों नदी से सम्बन्ध जोड़ दिया। पूर्वी तट पर सुमालीलैण्ड के एक भाग पर भी उसने अधिकार कर लिया। १८८६ में उसने मेडेगास्कर द्वीप को भी साम्राज्य में शामिल कर लिया।

लूट का सबसे बड़ा भाग इङ्गलैण्ड के हिस्से में पड़ा और साम्राज्यवादियों का अफ्रिका के पूर्वी भाग में उत्तर से दक्षिण तक ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न प्रायः पूरा हो गया, केवल बीच में जर्मन पूर्वी अफ्रिका का प्रदेश छूटा रहा। दक्षिण में उसके पास दक्षिणी अफ्रिका तथा रोडेशिया थे और ब्रिटिश साम्राज्य की उत्तरी सीमा जर्मन पूर्वी अफ्रिका, तथा टेन्गेनीका झील का स्पर्श करती थी। इसके उत्तर में ब्रिटिश पूर्वी अफ्रिका, युगाण्डा तथा एँग्लो-इजिप्शियन सूडान और इजिप्ट (ब्रिटिश संरक्षण में) के द्वारा इंग लैंड का अधिकार भूमध्यसागर तक विस्तीर्ण हो गया। इस विशाल प्रदेश के

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p.301.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अतिरिक्त उसके पास पूर्वी तट पर ब्रिटिश सोमालीलैंड, पश्चिमी तट पर गेम्बिया, सियरा-लियोन, गोल्ड-कोस्ट तथा नाइजीरिया का विशाल प्रदेश भी था।

ईजिप्ट में इङ्गलैण्ड—

इन अनेक प्रदेशों में से इंगलैण्ड के लिये अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा की योजना में इजिप्ट तथा दक्षिणी अफ्रिका की बड़ी महत्वपूर्ण स्थिति है क्योंकि भारतवर्ष की ओर जाने वाले दोनों मार्गों पर इन्हीं देशों का नियन्त्रण है।* हम पहले देख चुके हैं कि इङ्गलैण्ड ने किस प्रकार फ्रान्स के साथ मिलकर इजिप्ट के मामलों में हस्तक्षेप किया और बाद में फ्रान्स के अलग हट जाने पर १८८२ में अरबी पाशा के राष्ट्रीय विद्रोह का दमन करके इजिप्ट पर नाम मात्र के लिये उसके शासक 'खेदिव' का शासन रहा आया परन्तु देश में अँगरेज़ सेना बनी रही और वास्तविक सत्ता अंगरेज़ 'सलाहकारों' के हाथों में पहुँच गई। अंग्रेजों ने वहाँ सुधार किये आर्थिक व्यवस्था ठीक की, न्याय-व्यवस्था में भी सुधार किये और सिंचाई की योजनाएँ भी बनाईं। १८८३ में एक प्रतिनिध्यात्मक विधान-सभा का निर्माण भी किया गया और १९१३ में उसे क़ानून बनाने के कुछ परिमित अधिकार दिये गये। प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर जब टर्की ने जर्मनी का साथ दिया तो १९१४ में ब्रिटिश संरक्षण में लेने की घोषणा द्वारा वह ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। इजिप्ट पर ब्रिटिश अधिकार स्थापित हो जाने से फ्रान्स तथा इंगलैण्ड में बड़ा मनोमालिन्य पैदा हो गया। फ्रान्स स्वयं अपनी इच्छा से ही अलग हट गया था परन्तु बाद में उसे अपनी भूल मालूम हुई और दोनों देशों के बीच कलह बढ़ने लगा। इजिप्ट के प्रश्न से नाइजर प्रदेश, स्याम, मेडेगास्कर आदि अन्य प्रदेशों में भी दोनों में प्रतिस्पर्धा तीव्र होने लगी। यह दशा वर्षों तक रही। अन्त में १९०४ में दोनों में समझौता हुआ और कटुता मिटी।†

इजिप्ट के दक्षिण में सूडान था जिस पर इजिप्ट का ही आधिपत्य था। वहाँ के कट्टर मुसलमान विद्रोही हो रहे थे और १८८५ में उन्होंने अपने एक नेता मुहम्मद अहमद के, जो अपने आप को 'माहदी' बतलाता था, नेतृत्व में विद्रोह कर दिया था। उन्होंने इजिप्ट की सेना को हरा कर नष्ट कर दिया और खारतूम में उसके अंग्रेज़ जनरल गार्डन की हत्या कर दी। इसके बाद कुछ वर्ष तक अंग्रेजों ने सूडान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया परन्तु १८९८ में किचनर ने ओमदुर्मन की लड़ाई में माहदी की सेना को परास्त करके सूडान

---

* Schuman : International Politics p. 518.

†Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 303.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर पुनः इजिप्ट का अधिकार स्थापित कर लिया। उसी वर्ष जब कि काँगों की घाटी से एक फ्रेंच सेना ऊपरी नील की घाटी की ओर केप्टिन मार्चन्द की कमांड में बढ़ने लगी और इजिप्शियन सूडान में फ़ेशोडा नामक गाँव में फ्रेंच झण्डा गाड़ कर उस प्रदेश पर फ्रेंच अधिकार बतलाने लगी तो किचनर ने आगे बढ़ कर मार्चन्द को वहाँ से हट जाने को कहा। कुछ दिनों तक तो युद्ध की आशंका रही परन्तु अन्त में फ्रेंच सरकार ने मार्चन्द को वापस बुला लिया और १८९९ में इंगलैंड से एक सन्धि करके इजिप्शियन सूडान पर इंगलैंड का प्राधान्य स्वीकार कर लिया। सूडान पर इंगलैंड तथा इजिप्ट का संयुक्त राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार भूमध्यसागर से लेकर भूमध्यरेखा तक नील नदी के प्रदेश में इंगलैंड का अधिकार हो गया।

दक्षिणी अफ्रिका—

दक्षिणी अफ्रिका में अंग्रेज़ों को डच उपनिवेशवासियों के, जो सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में केप कॉलोनी में जा बसे थे, वंशजों के विरोध का मुक़ाबिला करना पड़ा। ये लोग बोर (Boer) कहलाते थे। १८०६ में इंगलैंड ने हालैंड से यह प्रदेश छीन लिया था। बोर लोग कृषक थे और अंग्रेजी शासन से अप्रसन्न थे। जब १८३३ में इंगलैंड की सरकार ने समस्त साम्राज्य के गुलामों को स्वतन्त्र कर दिया तो बोर लोग केप कालोनी को छोड़कर नेटाल में जा बसे और बाद में ऑरेञ्ज तथा वाल नदियों को पार कर उनके उत्तरी किनारे पर बस गये। परन्तु अंग्रेजों ने उनका पीछा न छोड़ा। उन्होंने १८४३ में नेटाल पर अधिकार कर लिया और पाँच वर्ष बाद आरेञ्ज तथा वाल नदी की बस्तियों पर धावा भी किया। परन्तु बोर लोगों ने इसका दृढ़ता से विरोध किया और १८५० में इंगलैंड को ट्रान्सवाल रिपब्लिक तथा ऑरेञ्ज फ्री स्टेट के नाम से उन बस्तियों की स्वतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ी। १८७७ में डिज़रेली ने ट्रान्सवाल को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करने की घोषणा की परन्तु बोर लोगों ने उसका विरोध किया और १८८१ में एक छोटी सी अंग्रेज़ सेना को मजूबा हिल की लड़ाई में परास्त कर दिया। इस समय ग्लेड्स्टन प्रधान मंत्री था। साम्राज्यवाद के विरुद्ध होने के कारण उसने अंग्रेजी सेना को वापस बुला लिया और ट्रान्सवाल की स्वतन्त्रता पुनः स्वीकार करली। परन्तु रेण्ड प्रदेश (The Rand) में सोने का पता चलने (१८८६) पर बहुत से अंग्रेज़ ट्रान्सवाल में जाकर बसने लगे। शीघ्र ही इन परदेशियों (Uitlanders) की संख्या बोर लोगों से अधिक हो गई और वे लोग शासन पर अधिकार करने तथा ट्रान्सवाल पर इंगलैंड की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। इन परदेशियों में प्रमुख सेसिल रोड्स (Cecil Rhodes) था। उसके

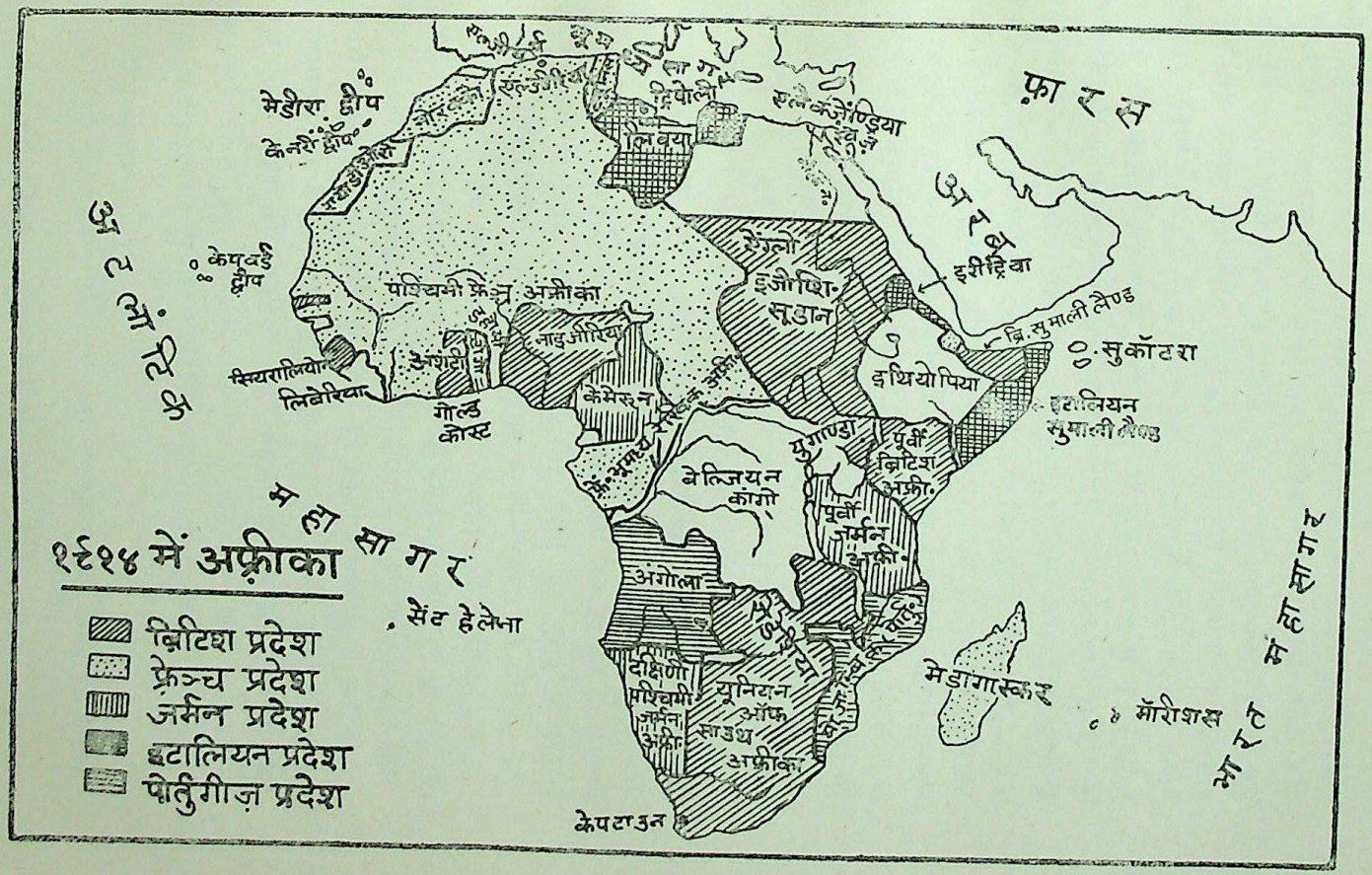

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पास सोने तथा हीरों की खानों के रूप में अपार सम्पत्ति थी। वह शीघ्र ही दक्षिणी अफ्रिका का प्रमुख राजनीतिक तथा उग्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रधान प्रतिपादक बन गया। उसने १८८९ में ब्रिटिश साउथ अफ्रिका कम्पनी नामक एक कम्पनी का संगठन किया और थोड़े ही समय में उस समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया जो उसके नाम से रोडेशिया कहलाता है। १८९० से १८९६ तक वह केप कालोनी का प्रधान मन्त्री रहा और इस काल में इंगलैण्ड के उपनिवेश मन्त्री जोज़ेफ़ चेम्बरलेन से षड्यन्त्र करके ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट की डच रिपब्लिकों को फिर से ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करने के निमित्त उनसे युद्ध छेड़ने का प्रयत्न करने लगा।* उसके एक मित्र डाक्टर जेम्सन ने १८९५ में शासन को पलट देने के उद्देश्य से ट्रान्सवाल पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया परन्तु बोर लोगों ने उसे परास्त कर दिया। इस घटना से ब्रिटिश तथा ट्रान्सवाल सरकार में बड़ा मनोमालिन्य पैदा हो गया। ट्रान्सवाल का राष्ट्रपति इन दिनों पाल क्रूजर (Paul Krueger) था। परदेशियों को मताधिकार देने के प्रश्न पर १८९९ में इंगलैण्ड तथा ट्रान्सवाल और आरेन्ज फ्री स्टेट के बीच युद्ध छिड़ गया। आरम्भ में तो जनरल बोथा (Botha) तथा ज़नरल वेट (Wet) के नेतृत्व में बोर लोगों को काफी सफलता प्राप्त हुई परन्तु उनके पास पर्याप्त साधनों का अभाव था। इंगलैण्ड ने कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्ड में और स्वयं अपने यहाँ स्वयं-सेवकों की भर्ती करके साढ़े तीन लाख सेना लॉर्ड राबर्टस् तथा लॉर्ड किचनर की कमाण्ड में दक्षिण अफ्रिका भेजी जो बड़ी कठिनाई से बोर लोगों को १९०२ में परास्त कर सकी। विरीनिगिंग (Vereeniging) की सन्धि (मई, १९०२) के द्वारा बोर लोगों ने डच भाषा की सुरक्षा तथा स्वशासन की शर्तों पर हथियार डाल दिये। ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और वे ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश बन गये। बोर लोगों में असन्तोष बना रहा जिसे कम करने के लिये १९०६-७ में इंगलैण्ड की लिबरल सरकार ने उन्हें उत्तरदायी स्वशासन प्रदान कर दिया और अन्त में १९०९ में केप कॉलोनी, नेटाल तथा इन दोनों प्रदेशों को सम्मिलित करके कनाडा के आदर्श पर उनका एक यूनियन (Union of South Africa) बना कर उसे डामीनियन (Dominion) का दर्जा देकर वास्तविक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी।

प्रशान्त महासागर—

अफ्रिका के बटवारे के साथ प्रशान्त महासागर के द्वीपों की भी

* Schuman : International Politics, p. 519,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

छीन झपट चल रही थी जिसमें योरोपीय राष्ट्रों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र भी भाग ले रहा था। १९०० तक प्रायः समस्त द्वीप किसी न किसी के पास पहुंच गये थे। इंगलैण्ड और फ्रान्स वहाँ पहले पहुँचे थे, अतः अधिकांश द्वीप उनके हाथ लगे। परन्तु हॉलेन्ड के पास भी एशिया के दक्षिण-पश्चिम में पूर्वी इन्डीज के द्वीपसमूह में उसका विस्तृत साम्राज्य बना रहा। जर्मनी ने न्यूगिनी के विशाल द्वीप के एक भाग तथा उसके उत्तर की ओर के कई द्वीप और सेमोआ द्वीप-समूह के दो सबसे बड़े द्वीपों पर अधिकार कर लिया। उसने १८९९ में स्पेन से केरोलिन दीप भी खरीद लिये। संयुक्त राष्ट्र ने ग्वाम तथा फिलिपाइन द्वीप ले लिये। १८९८ में हवाई के द्वीप पर उसने अधिकार कर लिया और १८९९-१९०० में इंगलैंड और जर्मनी से मिलकर सेमोआ द्वीप-समूह में से कई द्वीपों को भी अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। इस द्वीप-समूह के सम्बन्ध में कई बार संघर्ष का डर रहा परन्तु अन्त में १९०० में एक समझौता हो गया जिसके द्वारा इंगलैंड, जर्मनी तथा संयुक्त राष्ट्र के प्रभाव-क्षेत्रों का निर्धारण हो गया और मामला सुलझ गया।*

एशिया—

योरोपीय राज्यों की आंखें अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के अतिरिक्त एशिया पर भी लगी हुई थीं। दक्षिणी एशिया में भारतवर्ष पर तो इंगलैंड ने अधिकार कर ही रखा था और रूस धीरे-धीरे साइबेरियन मैदान में होकर पूर्व में प्रशान्त महासागर की ओर बढ़ रहा था। चीन, मलय प्रदेश तथा पश्चिमी एशिया भी योरोपीय शक्तियों को आकर्षित कर रहे थे और वे अपना जाल वहाँ भी सफलतापूर्वक फैला रही थीं।

रूस का विस्तार—

रूस १८७८ की बर्लिन-कांग्रेस के निर्णयों से बड़ा रुष्ट हो गया था और इंगलैंड को अपना प्रधान शत्रु समझने लगा था। अतः उसने मध्य एशिया में इंगलैंड से बदला लेने के विचार से पूर्व की ओर तेज़ी से बढ़ना शुरू किया। उसकी पूर्व की ओर बढ़ने का केवल यही एक कारण नहीं था। उसकी बढ़ती हुई जनसंख्या, कृषि तथा गोरस उद्योग के विकास, अन्य बड़े व्यवसायों की उन्नति, विदेशी व्यापार के विस्तार आदि सब का तकाज़ा था कि रूस के पास अधिकाधिक ऐसे बन्दरगाह हों जो वर्ष भर खुले रहें। इसी दृष्टि से वह दक्षिण की ओर कान्स्टेन्टीनोपल पर तथा पश्चिम मे एटलांटिक महासागर के तट पर

* Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 261.
† Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 553.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन्दरगाह प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था और इसी दृष्टि से पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट तथा दक्षिणपूर्व फारस की खाड़ी की ओर बढ़ना चाहता था। एशिया की ओर रूस की प्रगति क्रीमियन युद्ध के बाद से ही आरम्भ हो गई थी जब कि १८५८ में उसने चीन को विवश करके आमूर नदी के उत्तर की ओर के समस्त प्रदेश को छीन लिया था और प्रशान्त महासागर के तट पर व्लाडीवॉस्टाक की नींव डाली थी। इस प्रकार उसने उत्तरी एशिया में समस्त साइबेरिया पर अधिकार कर लिया था। बर्लिन की कांग्रेस के पहले वह मध्य एशिया में भी काफी बढ़ चुका था और ताशकंद (१८६४), समरकद (१८६८) खिवा (१८७३) तथा खोकन्द (१८७६) पर अधिकार कर चुका था। बर्लिन की सन्धि के समय वह अफ़गानिस्तान की सीमा तक पहुँच गया था और भारतवर्ष के प्रसिद्ध द्वार खैबर दर्रे तक पहुँचने के लिये उसके मार्ग में अफ़गानिस्तान ही रह गया था। उसने वहाँ के अमीर पर प्रभाव डालना शुरू किया जिसे देखकर भारतवर्ष में अंग्रेज़ सरकार चिन्तित हो उठीं। इसके परिणाम-स्वरूप अंग्रेज़ों ने अफ़गानिस्तान पर आक्रमण किया (१८७८-७९) और उसे परास्त करके एक दूसरे अमीर को सिंहासन पर बिठलाया जो अंग्रेजों का मित्र था और जिसे भारतवर्ष की अंग्रेज़ सरकार एक बड़ी धनराशि देकर अपनी ओर बनाये रही। इस दिशा में अपनी प्रगति को रुकते हुए देखकर रूस दूसरी दिशा में बढ़ा। उसने १८८१ में तुर्किस्तान की विजय पूर्ण करली और १८८४ में मर्व पर अधिकार करके १८८५ में वह पंजदेह तक पहुँच गया जहाँ फिर उसे अंग्रेज़ों के विरोध के कारण रुकना पड़ा। १८९१ में उसने पामीर में घुस कर फिर अंग्रेजों के लिये परेशानी खड़ी कर दी। दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ा परन्तु १८९५ में दोनों ने मिलकर एक संयुक्त कमीशन द्वारा अपने साम्राज्यों की सीमाएँ निर्धारित करके झगड़े को समाप्त कर लिया। उधर सुदूर पूर्व में उसने १८९८ में पोर्ट आर्थर का बन्दरगाह भी चीन से बलात्कार द्वारा पट्टे पर छीन लिया। पश्चिमी एशिया में रूस ने फ़ारस पर भी अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया परन्तु वहाँ भी इंगलैंड ने उसका विरोध किया। अन्त में (१९०७) दोनों ने परस्पर समझौता करके फ़ारस को दो प्रभाव-क्षेत्रों में बाँट लिया और उत्तरी भाग रूस के तथा दक्षिणी इंगलैंड के प्रभाव-क्षेत्र में पहुँच गया। मध्य-फारस में दोनों को कार्य करने को स्वतन्त्रता रही। इस प्रकार रूस उत्तरी और मध्य-एशिया में बढ़ रहा था। इंगलैंड भी मध्य-एशिया में रूस की प्रगति को रोकने के साथ साथ भारतवर्ष से पूर्व तथा पश्चिम की ओर बढ़ रहा था। उसने पश्चिम में बलूचिस्तान तथा पूर्व में बर्मा और मलय-प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन—

दक्षिण-पूर्वी एशिया में फ्रान्स के पास कोचिन-चीन तथा कम्बोडिया पहले से ही थे। उसने १८८४ में अनाम तथा टाँकिंग के प्रदेश भी उनमें शामिल करके इण्डोचीन का विशाल संरक्षित राज्य बना लिया। ये समस्त प्रदेश उसने चीन से छीने थे और इस प्रकार उसने चीन के बटवारे का सूत्रपात कर दिया था। उन्नीसवीं शताब्दी में एक बड़ी गम्भीर समस्या यह थी कि क्या योरोपीय राज्य चीन के विशाल किन्तु क्षीण साम्राज्य को छीन कर आपस में बाँट लेंगे।* इसी अवसर पर एक नया प्रतिस्पर्धी मैदान में उतर आया। वह था जापान।

जापान का अभ्युदय—

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जापान ने योरोपीय लोगों को पास नहीं फटकने दिया था, परन्तु १८५३-५४ में एक अमेरिकन नाविक मेथ्यू पेरी ने जापान से सन्धि करके अमेरिका के जहाज़ों के लिये जापानी बन्दरगाहों का उपयोग करने का अधिकार प्राप्त करके उसे गोरी जातियों के लिये 'खोल दिया'। शीघ्र ही योरोपियन राष्ट्रों ने जापान से इसी प्रकार की रियायतें प्राप्त करना शुरू कर दिया और जापान पर पाश्चात्य प्रभाव बड़ी शीघ्रता से बढ़ने लगा। अगले वर्षों में जापान में महान् परिवर्तन हुए। सम्राट् (मिकाडो) ने, जो दीर्घकाल से नाममात्र का शासक था, सत्ता अपने हाथ में ले ली, सामन्तवाद का अन्त कर दिया गया, पश्चिमी उद्योगवाद, शिक्षा तथा सैनिकवाद का प्रचार हुआ और जापानियों में अपने इतिहास तथा अपनी जाति का जो अभिमान था उसने पाश्चात्य राष्ट्रीयतावाद तथा साम्राज्यवाद के समान ही उग्र रूप धारण कर लिया। उसने योरोपियन राष्ट्रों के समान साम्राज्य-निर्माण के लिये कमर कसी जिसके लिये उसे क्षीयमाण चीन में बड़ा उपयुक्त क्षेत्र दिखाई देता था।

चीन की नोंच-खसोट—

हम अभी देख चुके हैं कि चीन का फ्रान्स ने दक्षिण की ओर से अङ्ग-भंग करना शुरू कर दिया था। इंगलैंड ने १८४२ में हांगकांग का द्वीप ले लिया था और अन्य योरोपीय राष्ट्रों ने भी सन्धियाँ करके समुद्र तट पर कई स्थानों में विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये थे। परन्तु चीन की वास्तविक लूट जापान ने शुरू की। १८९४-९५ में उसने चीन से युद्ध करके कोरिया का विस्तृत प्रदेश उससे अलग कर दिया (परन्तु १९१० तक उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया), फॉर्मोसा का द्वीप छीन लिया और ओकिनावा सहित ल्यू च्यू द्वीपों पर भी अधिकार कर लिया। वह उससे लियाओतुँग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर भी छीन लेना चाहता था परन्तु फ्रान्स तथा जर्मनी

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 307

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के समर्थन के साथ रूस ने उनका विरोध किया और उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हो पाई। इस अवसर पर योरोपीय राष्ट्रों ने फिर सन्धियों द्वारा चीन से कई बन्दरगाह पट्टे पर छीन लिये। इंगलैण्ड ने वी हई वी, फ्रान्स ने क्वांगचाऊ, जर्मनी ने कियाउचाउ और रूस ने लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया।

बॉक्सर-विद्रोह—

इस प्रकार निर्बल चीन योरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थ का शिकार बन रहा था। अनेक बन्दरगाह प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ और सबने मिलकर उसके अधिकतम व्यापारिक शोषण के लिये उसे अनेक क्षेत्रों में विभक्त करने का निश्चय किया ताकि प्रत्येक राष्ट्र अपने-अपने क्षेत्र में अपनी मनमानी करता रहे।* परन्तु इसी समय दो घटनायें ऐसी हुईं जिन्होंने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। विदेशियों के अत्याचारों से क्रुद्ध होकर चीन के देशभक्तों (Boxers) ने उन्हें बाहर निकालने के लिये विदेशियों पर आक्रमण कर दिया (१९००)। इस पर इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका, रूस, इटली तथा जापान की सम्मिलित सेना ने चीन पर आक्रमण करके पेकिंग पर अधिकार कर लिया। चीन को दबना पड़ा और युद्ध के हर्जाने के रूप में एक भारी रकम देनी पड़ी। सब राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय सेना के निर्माण के समय चीन से कोई प्रदेश न छीनने का निश्चय कर लिया था। अतः उन्होंने उससे कोई भूमि न ली और युद्ध समाप्त होने पर उसकी अखंडता की गारंटी दी।†

रूस-जापान का युद्ध—

चीन की अखंडता की गारंटी की बात १८९५ में भी की गई थी और उसी के आधार पर जापान को कोरिया पर अधिकार करने से रोका गया था। परन्तु उसके बाद रूस ने लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया था। यह देखकर जापान समझ गया कि रूस का विचार मंचूरिया और कोरिया को हड़पने का था। उसने मंचूरिया में सेना भेजना आरम्भ कर दिया था और पोर्ट आर्थर की क़िलेबन्दी करके वहाँ अपना जहाज़ी बेड़ा रखना भी आरम्भ कर दिया था। जापान स्वयं इन प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। अतः दोनों में वैमनस्य बढ़ा और फ़र्वरी १९०४ में जापान ने युद्ध शुरू कर दिया। रूस की पराजय हुई। अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट की मध्यस्थता के फल-स्वरूप दोनों में पोर्टस्माउथ (अमेरिका) के

*Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 271.

†Hazen : Modern European History, p. 579.

‡Mowat : Contemporary Europe and Overseas, p. 137.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान पर सन्धि हुई जिसके द्वारा कोरिया की स्वतन्त्रता दोनों ने स्वीकार की परन्तु रूस को उसमें जापान के हितों का प्राधान्य मानना पड़ा। दोनों को मंचूरिया खाली करना पड़ा और जापान को रूस से लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर का पट्टा तथा साखालिन का दक्षिणी आधा भाग प्राप्त हुआ। यह दूसरी घटना थी जिसने चीन में योरोपीय राष्ट्रों के उत्पात को बन्द कर दिया। यह युद्ध विश्व-इतिहास के निर्णायक युद्धों में से था क्योंकि इसके फल-स्वरूप विश्व की महान् सत्ताओं के बीच एक नई महान् सत्ता का उदय हुआ। इंगलैंड ने १९०२ में उससे सन्धि करके उसे एक महान् सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया था। इस युद्ध ने उसे समस्त संसार की दृष्टि में वही पदवी दे दी।

योरोपीय राष्ट्र एशिया के समान दक्षिणी अमेरिका में लूट मचाना चाहते थे; विशेषकर जर्मनी ब्राज़ील पर अधिकार करना चाहता था जहाँ प्रतिवर्ष बहुत बड़ी संख्या में जर्मन लोग जाकर बसते जा रहे थे। परन्तु संयुक्त-राष्ट्र के 'मॉनरो-सिद्धान्त' के कारण वे उधर नहीं बढ़ पाये।

इस साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का वर्णन करते-करते कहीं कहीं हमने १९१४ तक की घटनाओं की चर्चा की है। परन्तु मोटी तौर से यह औपनिवेशिक लूट उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक समाप्त हो चुकी थी और प्रायः समस्त अफ्रिका, एशिया का बहुत बड़ा भाग तथा प्रशान्त महासागर के समस्त द्वीप योरोपीय सत्ताओं तथा संयुक्त राष्ट्र ने आपस में बाँट लिये थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो प्रदेश अब भी छीन लेने योग्य रह गये थे वे थोड़े से ही थे—उत्तरी-पश्चिमी अफ्रिका के मोरक्को, एशिया में चीन तथा फ़ारस और टर्की का साम्राज्य। अभी तक जितना बटवारा हुआ था वह बिना युद्ध के ही हो गया था। जैसा हम देख चुके हैं, जापान के उत्थान के कारण चीन योरोपीय लोगों के आक्रमणों से बच गया और फ़ारस के सम्बन्ध में भी इंगलैंड तथा रूस में समझौता हो गया। मोरक्को के विषय में फ्रान्स तथा जर्मनी में बड़ी तनातनी हुई परन्तु अन्त में १९११ में दोनों में समझौता हो गया। किन्तु टर्की साम्राज्य के विषय में कोई समझौता हो उसके पहले ही विभिन्न सत्ताओं का धैर्य छूट गया। वे लड़ने लगीं और प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ हो गया।* अगले खंड में हम उन घटनाओं का वर्णन करेंगे जिनका परिणाम इस विश्व युद्ध के रूप में प्रगट हुआ।

———

*Schevill : A History of Europe, p. 635.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सशस्त्र शान्ति का युग

(१८९०-१९१४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ९

जर्मनी

द्वितीय विलियम की विश्व-राजनीति

द्वितीय विलियम—बिस्मार्क के पद-त्याग के बाद द्वितीय विलियम ने समस्त शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। बिस्मार्क सिद्धान्त की दृष्टि से तो सम्राट् का एक कर्मचारी मात्र था परन्तु व्यवहार में वह सर्वेसर्वा था। अब सम्राट् के प्रधान मंत्री सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों की दृष्टि से उसके आज्ञाकारी कर्मचारी होने लगे। वह अपनी इच्छानुसार अपने प्रधान मंत्री नियुक्त करता था और वे बिना मीन-मेष के उनके आदेशों का पालन करते थे। १८९० के बाद जर्मनी में चार प्रधान मंत्री हुए—केप्रिवि (१८९०-१८९४), होहेनलोहे (१८९४-१९००), फ़ान ब्यूलो (१९००--१९०९) तथा बेथमेन हॉलवेग (१९०९-१९१७)—परन्तु उनमें कोई ऐसा नहीं था जो सम्राट् पर काफ़ी प्रभाव डाल सका हो। सम्राट् स्वयं ही अपना प्रधान मंत्री था, वह किसी से परामर्श नहीं लेता था। सम्राज्य की नीति स्वयं सम्राट् की नीति होती थी और जर्मनी का भाग्य उसी के हाथ में था।*

औद्योगिक विकास—द्वितीय विलियम का काल जर्मनी के गृह्य इतिहास में औद्योगिक तथा सैन्य शक्ति के चरम विकास का काल था। इस समय में

*मार्च १८९० के बाद से जर्मनी में सम्राट् का वैयक्तिक शासन तो था परन्तु वह विधान की सीमाओं के अन्दर ही था। सम्राट् की सत्ता प्रधान मन्त्री के चरित्र पर कुछ निर्भर थी। केप्रिवि के समय में उसकी सत्ता सबसे अधिक रही क्योंकि वह सेना में रह चुका था और एक सैनिक की भाँति सम्राट् के आदेशों का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता था। होहेनलोहे एक अनुभवी राजनीतिज्ञ था। वह बेवेरिया की कौंसिल का अध्यक्ष, पेरिस में राजदूत तथा अल्सास का गवर्नर रह चुका था। इसके साथ ही सम्राट् का सम्बन्धी भी था। इस कारण वह कुछ स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण कर सकता था। ब्यूलो बड़ा अच्छा कूटनीतिज्ञ था और अपनी चतुराई से अपने कामों में काफी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सका। बेथमेन हॉलबेग को कूटनीतिक अनुभव नहीं था। वह ईमानदार था परन्तु उस समय की जटिल अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति को समझने में असमर्थ था और सम्राट् या सेना के अधिकारियों पर बिल्कुल प्रभाव नहीं डाल सकता था। Cambridge Modern History, Vol. XII, p. 166; Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 350.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जर्मनी के व्यवसायों ने असाधारण उन्नति की जिसके फलस्वरूप वह इंगलैण्ड तथा संयुक्त राष्ट्र का बड़ा प्रबल प्रतिस्पर्धी बन गया। इस दिशा में संरक्षण की नीति अपनाकर बिस्मार्क ने बहुत कुछ प्रगति कर ली थी। द्वितीय विलियम ने उस नीति को जारी रखा और व्यवसायों के प्रोत्साहन में कुछ नहीं उठा रखा। आधुनिक उद्योग लोहे तथा कोयले पर आश्रित हैं और भाग्य से जर्मनी के पास ये दोनों पदार्थ प्रचुर मात्रा में मौजूद थे। रूर, साइलेशिया तथा सार की खानों से बड़ी मात्रा में कोयला निकाला जाने लगा और १९१४ तक कोयले की दृष्टि से वह संसार के राज्यों में तीसरे स्थान पर पहुँच गया। लोरेन में उसे लोहे का अपार भण्डार प्राप्त हो गया था जिसके अधिकाधिक उपयोग से उसने इतना लोहा और फौलाद तैयार करना आरम्भ किया कि वह शीघ्र ही इंगलैंड से आगे निकल गया। इस व्यवसाय में अमेरिका ही उससे आगे था। लोहे और फौलाद के व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में भी बड़ी भारी उन्नति हुई। नाना प्रकार की मशीनरी तैयार होने लगी। जहाज़ बनाने के धन्धों ने बड़ी उन्नति की और जर्मनी संसार के सर्वोत्तम जहाज़ बनाने लगा। विश्व-राजनीति की सफलता के लिये अन्य शस्त्रास्त्र सम्बन्धी व्यवसाय की भी उन्नति की गई और नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्र तैयार होने लगे। बिजली का सामान, रसायनिक पदार्थ आदि तैयार करने में वह संसार के समस्त देशों से आगे बढ़ गया। रङ्ग बनाने में तो उसका एक प्रकार से एकाधिकार हो गया। कृषि, जंगल आदि की भी तो बड़ी उन्नति हुई। इस सर्वतोमुखी व्यावसायिक उन्नति के साथ जर्मनी का विदेशी व्यापार भी कई गुना बढ़ गया। विदेशी व्यापार की उन्नति के साथ जर्मनी ने व्यापारिक जहाज़ों के निर्माण में भी बड़ी उन्नति की और संसार के सामुद्रिक व्यापार में जर्मनी ने बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। हेम्बर्ग कुछ ही वर्षों में संसार के बड़े बन्दरगाहों में गिना जाने लगा जहाँ से संसार के प्रत्येक भाग को जहाज़ जाते-आते थे। औद्योगिक विकास के साथ जर्मनी की जनसंख्या भी बढ़ने लगी। १८७१ में जर्मनी की जनसंख्या ४ करोड़ के लगभग थी परन्तु १९१४ तक वह बढ़कर ६ करोड़ से ऊपर हो गई।* किन्तु इस बढ़ती हुई जनसंख्या को काम में लगाने के लिये निरन्तर बनते हुए कारखाने काफ़ी थे। बेकारी या उसके कारण देश छोड़ कर बाहर जाने की समस्या बहुत कुछ हल हो गई। जहाँ १८८० में कोई ढाई लाख आदमी प्रति वर्ष बाहर चले जाते थे, वहाँ १९१४ तक यह संख्या २५,००० रह गई।†

*Schevill : A History of Europe, p. 576.
†Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 452.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाजवाद—

औद्योगिक विकास के साथ समाजवाद ने भी उन्नति की। बिस्मार्क समाजवाद का विरोधी रहा था। उसने मजदूरों की दशा सुधारने के लिये राज्य-समाजवाद के सिद्धान्त का आश्रय लिया था परन्तु साथ ही साथ वह समाजवादियों का क़ानून द्वारा दमन भी करने पर तुला हुआ था। दमन के सम्बन्ध में द्वितीय विलियम का उससे मतभेद था। वह सामाजिक तथा आर्थिक सुधारों के द्वारा समाजवादियों का प्रभाव नष्ट कर देना, अर्थात् उनका दया के शस्त्र से विनाश करना, चाहता था। अतः उसने समाजवाद-विरोधी कानूनों की, जिनका १८९० में अन्त हो रहा था, पुनरावृत्ति नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि समाजवादी लोगों ने पुनः अपना संगठन करना और प्रचार करना शुरू किया। जर्मनी के राजनीतिक जीवन में समाजवादी प्रजातन्त्रीय दल का उत्थान द्वितीय विलियम के शासनकाल की एक महत्वपूर्ण घटना है। वह आर्थिक क्षेत्र में क्रांति की इच्छा का प्रतीक ही नहीं था, वरन् सम्राट् के स्वच्छन्द शासन के विरोध तथा प्रजातन्त्रीय संस्था की मांग का प्रतीक भी था।* वह जर्मनी का प्रमुख विरोधी तथा सुधारवादी दल था। आर्थिक क्रान्ति के साथ-साथ उदारवाद का समर्थक होने के कारण बहुत से मध्यम वर्गीय उग्रपन्थी भी, जिन्हें समाजवादी सिद्धान्तों का कोई विशेष मोह नहीं था, उसका समर्थन करते थे क्योंकि साम्राज्य की संस्थाओं को उदार बनाने का वही एक मात्र आशाजनक साधन था। उसमें यह भी एक विशिष्टता थी कि वह अन्य समाजवादी दलों की तरह अधिक राष्ट्रीयता-विरोधी नहीं था और इस कारण उसकी लोकप्रियता बढ़ती जाती थी। जैसा हम पहले देख चुके हैं, प्रत्येक सामान्य निर्वाचन में इस दल को अधिकाधिक मत प्राप्त होने लगे परन्तु जर्मनी की निर्वाचन-पद्धति ऐसी थी कि कभी भी प्राप्त मतों के अनुपात में उसके प्रतिनिधि नहीं चुने जा सकते थे। १९०७ के निर्वाचन में उसे ३२,५०,००० मत प्राप्त हुए और कंज़र्वेटिव लोगों को केवल १५,००,००० परन्तु कंज़र्वेटिव लोगों को लोक सभा में ८३ और समाजवादियों को केवल ४३ स्थान ही मिले। समाजवाद की इस प्रगति को देखकर विलियम बड़ा चिन्तित हुआ और उनका कट्टर शत्रु बन गया। १८९५ में उसने उनका दमन करने के लिये क़ानून का प्रस्ताव भी किया परन्तु लोक-सभा ने उसे स्वीकार नहीं किया। उसके बाद उसने दमनकारी क़ानून बनाने का प्रयत्न तो नहीं किया परन्तु वह अन्त तक समाजवादियों की बड़ी निन्दा करता रहा। समाजवादी निरन्तर सम्राट् के स्वच्छन्द शासन का विरोध और उत्तर-दायी शासन की माँग करते रहे। सेना तथा नौ-सेना पर निरन्तर बढ़ते हुये

*Hazen : Modern European History, p. 378.

व्यय के वे घोर विरोधी थे। १९१२ के निर्वाचन में लोक-सभा में उनके सदस्यों की संख्या बढ़कर ११० हो गई और अन्य दलों से मिलकर उन्होंने लोक-सभा में सम्राट् के शासन में अविश्वास का प्रस्ताव भी स्वीकृत करा लिया* और ऐसा मालूम होने लगा मानो सरकार और समाजवादियों के बीच भीषण संघर्ष छिड़ जायगा परन्तु उन दिनों योरोप की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बड़ी संकटापन्न थी, अतः संघर्ष टल गया।

सैन्य शक्ति का विस्तार—

जर्मनी का उत्थान सेना के बल पर हुआ था और उसके प्राधान्य का आधार भी सेना ही थी। द्वितीय विलियम सैन्य शक्ति के महत्व को खूब समझता था और उसका अधिकतम विस्तार करना चाहता था। यह बात इसी से प्रकट होती थी कि उसने अपने राज्याभिषेक के उपरान्त अपना सबसे प्रथम भाषण सेना के सामने दिया था जिसमें उसने उसका गौरव अक्षुण्य बनाये रखने का अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया था।† उसने लोक-सभा के कंज़र्वेटिव दलों के समर्थन से सेना का खूब विस्तार किया। १८९३ में शान्तिकाल के लिये सेना की संख्या ४,२५,००० नियत की गई। १९०२ में यही संख्या बढ़कर ४,९५,५०० कर दी गई। इसी वर्ष अनिवार्य सैनिक सेवा की अवधि ३ वर्ष से घटा कर दो वर्ष कर दी गई और १९१० तक सेना की संख्या में १०,००० की वृद्धि की भी व्यवस्था की गई। इस समस्त व्यवस्था के परिणामस्वरूप जर्मनी की सैन्य शक्ति बड़ी प्रबल हो गई। युद्ध के समय वह सत्रह लाख सैनिक मैदान में पहुँचा सकता था।

जल-सेना—

स्थल-सेना के साथ ही जल-सेना की ओर भी विलियम ने ध्यान दिया। जर्मन व्यापार तथा उपनिवेशिक साम्राज्य की रक्षा और विश्व-राजनीति में अपनी स्थिति के अनुकूल भाग लेने के लिये एक प्रबल नौ-सैना अत्यन्त आवश्यक थी। उसने आरम्भ में ही कहा था—'हमारा भविष्य समुद्र पर है। जब तक मैं अपनी जल-सेना को अपनी स्थल सेना के समान ही शक्तिशाली नहीं कर लूँगा तब तक मैं चैन नहीं लूँगा। जर्मनी की औपनिवेशिक आकांक्षाओं की पूर्ति उसी समय हो सकती है जब कि वह समुद्र पर प्राधान्य स्थापित कर लें।'§ उसने लड़ाई के जहाज़ों तथा सैनिक बन्दरगाहों के निर्माण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। डेन्मार्क के प्रायद्वीप से जर्मनी का समुद्र तट दो भागों—उत्तरी सागर तट तथा बाल्टिक सागर तट—में बँटा हुआ

* Lodge and Horn : A History of Modern Europe, p. 492.
† Gooch : History of Modern Europe, p. 189.
§ Marriott : Europe and Beyond, p. 175.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है और उस समय उत्तरी सागर से बाल्टिक सागर में पहुँचने के लिये तथा डेन्मार्क का चक्कर लगाना पड़ता था। इस चक्कर को बचाने के लिए तथा अपने जहाज़ों का अधिक प्रभावकारी उपयोग करने के लिये श्लेस्विग-हॉल्स्टीन के प्रदेश में कील नगर के पास से बाल्टिक सागर से उत्तरी सागर तक एक नहर खोदी गई जो १८९५ में पूर्ण हुई जिसके फल-स्वरूप जर्मनी की नौ-सेना की उपयोगिता दुगनी हो गई। इसके पाँच वर्ष पहले १८९० में जर्मनी ने इंगलैण्ड से उत्तरी सागर में जर्मन तट से कुछ दूर स्थित हेलिगोलेण्ड नामक द्वीप पूर्वी अफ्रिका में स्थित ज़ेंज़ीबार द्वीप के बदले में प्राप्त करके उसे प्रथम कोटि का नाविक अड्डा बनाना शुरू कर दिया था। १८९७ में विलिमय ने फ़ॉन तिर्पित्स (Tirpitz) को जल सेना-मन्त्री नियुक्त किया और जंगी जहाज़ों के निर्माण की एक योजना तैयार की। तिर्पित्स ने लोक-सभा से समाजवादियों की ओर से विरोध होते हुए भी १८९८ में प्रथम 'नौ-सेना क़ानून' बनवाया और १९०० में एक दूसरा क़ानून स्वीकार करवाया जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि नौ-सेना का धीरे-धीरे इस प्रकार विस्तार होता रहे कि वह १९२० तक दुगनी हो जाय। इसके साथ ही एक 'नाविक-संघ' (Navy League) की भी स्थापना की गई जिसका साम्राज्य भर में बड़ा स्वागत और समर्थन हुआ। जर्मनी के इस प्रयत्न से इङ्गलैण्ड को बड़ी चिन्ता हुई। उसकी नीति सदा यही रही कि उसकी नौ-सेना योरोप के किन्हीं दो देशों की नौ सेनाओं के बराबर हो। जर्मनी को एक प्रबल प्रतिस्पर्धी बनते हुए देखकर उसने अपनी नौ-सेना का विस्तार आरम्भ किया जिस पर जर्मनी भी अपनी नाविक योजना का विस्तार करता रहा। उसने १९०५ में सब से पहला ड्रेडनाट (विशाल जंगी जहाज़) बनाया। जहाज़ों के निर्माण का काम बड़ी शीघ्रता से होने लगा और अनेक क्रूज़र तथा ड्रेडनॉट (Dreadnoughts) बनाये जाने लगे। बड़े जहाज़ों को उपयोग के योग्य बनाने के लिये कील नहर भी गहरी की गई। इन सब प्रयत्नों के फल-स्वरूप जर्मनी की नाविक शक्ति बड़ी जबरदस्त हो गई। केवल इंगलैण्ड ही उससे आगे था।

विदेश-नीति—

बिस्मार्क के बाद जर्मनी की विदेश-नीति भी अन्य नीतियों के समान स्वयं द्वितीय विलिमय की थी। विलियम में एक महान् शासक के अनेक गुण विद्यमान थे परन्तु उसमें कई राजनीतिज्ञोचित गुणों का अभाव था। अपने अहंभाव के कारण वह मनुष्यों की ठीक-ठीक परख नहीं कर सकता था। कूटनीति में सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक संयम एवं यथार्थवादिता के गुणों का उसमें नितान्त अभाव था। वह केवल सैद्धान्तिक था, बिस्मार्क की शान्त, गम्भीर विश्लेषण-शक्ति तथा व्यवहारकुशलता उसमें नहीं थी। उसके विचार बिस्मार्क के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विचारों से भिन्न थे। उसकी दृष्टि में जर्मनी 'संतृप्त' नहीं था बल्कि उसमें अपरिमित विस्तार की क्षमता तथा आकांक्षा थी। उसके विचार में जर्मन लोग अपने आपको पहले संसार की प्रधान जाति प्रमाणित कर चुके थे और उसे विश्वास था कि ऐसा ही प्रमाण वे फिर भी देंगे। उसकी दृष्टि में जर्मनी का भविष्य केवल योरोप से ही सम्बन्ध नहीं, विश्व से सम्बन्ध था। वास्तव में विलियम परिस्थिति का स्वामी नहीं, दास था। ऐसे विचार केवल उसके ही नहीं, समस्त राष्ट्र के थे। जो पीढ़ी तीन सफल युद्धों के परिणामों से सन्तुष्ट थी वह बीत चुकी थी और नई पीढ़ी नवीन विजय पर कटिबद्ध थी। बिस्मार्क ने समस्त जर्मनी को प्रशा की उग्र अग्रगामी भावना से परिपूर्ण कर दिया था और वह स्थिर नहीं रह सकता था। सत्य तो यह है कि स्वयं बिस्मार्क ने अपनी नीति को कायम रखना असम्भव कर दिया था।†

बिस्मार्क को तो योरोप के बाहर के मामलों में कोई रुचि नहीं थी, बल्कि उसे बाल्कन प्रदेश तक की चिन्ता नहीं थी जिसका मूल्य वह 'पोमरेनिया के एक सिपाही की हड्डियों' के बराबर भी नहीं समझता था। परन्तु विलियम को केवल बाल्कन प्रदेश के सम्बन्ध में ही नहीं योरोप के बाहर संसार में रुचि थी। बिस्मार्क ने अफ्रिका में कुछ स्थान प्राप्त कर लिये थे। उसके लिये तो उनका कोई मूल्य नहीं था परन्तु एक विश्व-शक्ति की हैसियत से विलियम के लिये उनका बड़ा महत्व था। वह दावा करता था कि जर्मनी को उसकी सैनिक एवं आर्थिक शक्ति के अनुरूप ही 'संसार में स्थान' प्राप्त होना चाहिये। उसकी दृष्टि में जर्मनी की नीति उसकी नई आर्थिक स्थिति द्वारा निर्धारित होनी चाहिए थी। उसके बढ़ते हुए उत्पादन के लिए विश्व-व्यापी बाज़ार होना चाहिए और उन बाज़ारों को प्राप्त कर लेने पर उसे उनकी तथा वहाँ आने-जाने के मार्गों की रक्षा करनी चाहिये। सैन्य-शक्ति, सभ्यता तथा सर्वतोमुखी उत्कर्ष के आधार पर वह दावा करता था कि जर्मनी का स्थान 'विश्व-शक्तियों में होना चाहिये' और 'अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में कहीं भी, समुद्र पर भी, कोई महत्वपूर्ण कदम जर्मनी तथा जर्मन सम्राज्य के सहयोग के बिना नहीं उठना चाहिये।' इस प्रकार जर्मनी की राजनीति बिस्मार्क की महाद्वीपीय नीति से भिन्न 'विश्व-राजनीति' बन गई।

इस विश्व-नीति के तीन उद्देश्य थे—(१) उसका प्रथम उद्देश्य पूर्वी-भूमध्यसागर में अपना प्रभाव-क्षेत्र स्थापित करना था जिसका अर्थ था बाल्कन प्रदेश में होकर पूर्व की ओर बढ़ना (Drang Nach Osten) और अन्त में

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 379.

†Petrie : Diplomatic History, p. 239.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

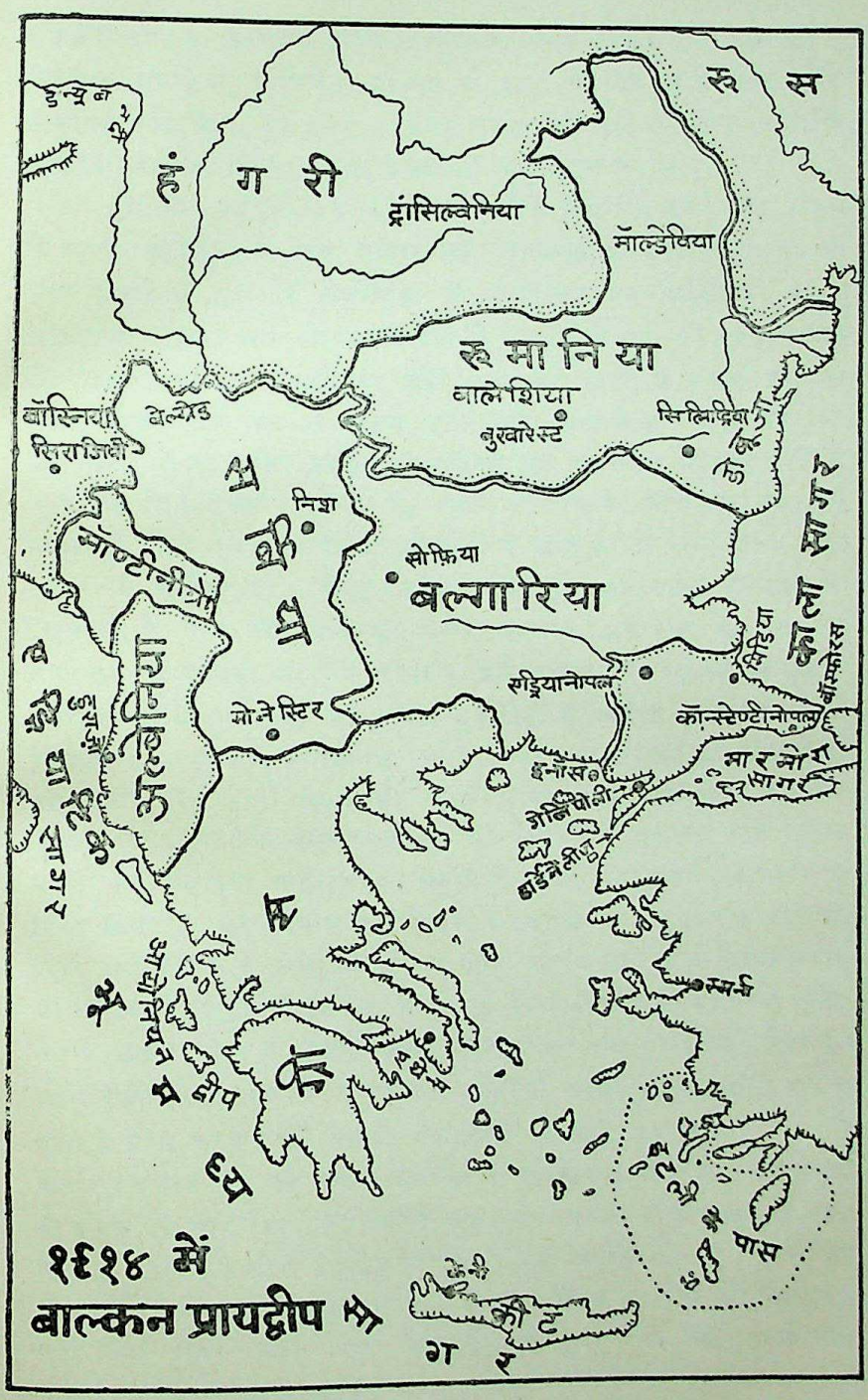

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बर्लिन से बग़दाद तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेना; (२)दूसरा उद्देश्य औपनिवेशिक मामले में, विशेषकर अफ्रिका में, दृढ़ता के साथ आगे बढ़ना और निर्णायक भाग लेना था और (३) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक शक्तिशाली नौ-सेना का निर्माण करना उसका तीसरा उद्देश्य था।*

इन तीनों उद्देश्यों ने उसकी परराष्ट्र-नीति निर्धारित की। प्रथम उद्देश्य के कारण ऑस्ट्रिया के साथ घनिष्ट मेल आवश्यक हो गया क्योंकि वह भी उसी दिशा में बढ़ कर सेलोनिका के बन्दरगाह पर अधिकार करना चाहता था। इसका अर्थ था मध्य-योरोप के कूटनीतिक गुट को सुदृढ़ बनाना (Mitteleuropa)। ऑस्ट्रिया और रूस के हितों में संघर्ष होने के कारण इसका अर्थ रूस से अलग हटना और अन्त में उसे अपना विरोधी बना लेना भी था। दूसरे उद्देश्य की पूर्ति का अर्थ था संसार में जहाँ कहीं भी आवश्यक हो, विशेषकर अफ्रिका में, जर्मनी की शक्ति का प्रदर्शन करना। इस सम्बन्ध में, जैसा हम आगे देखेंगे, मोरक्को में फ्रांस को दो बार, १९०५ और १९११ में, चुनौती दी। तीसरे उद्देश्य की पूर्ति का स्पष्ट परिणाम था इङ्गलैण्ड के साथ तीव्र प्रतिस्पर्धा और वैमनस्य। सारांश में, इस नई नीति का स्वाभाविक परिणाम होना था रूस, फ्रान्स तथा इङ्गलैंड की शत्रुता और अन्त में इन तीनों का इसके मुकाबिले में एकत्रित हो जाना, अर्थात् बिस्मार्क के समस्त कार्य का विनाश। बिस्मार्क की परराष्ट्र नीति के तीन मुख्य उद्देश्य थे – (१) फ्रांस को एकाकी बनाये रखना और उपनिवेशों की ओर उसका ध्यान लगाकर अलसास-लोरेन की क्षति को भुलाकर उसे सन्तुष्ट रखना, (२) रूस तथा ऑस्ट्रिया को जर्मनी के साथ रखना और (३) जर्मनी के विरुद्ध किसी गुट का निर्माण न होने देना। इङ्गलैंड की उसे परवाह नहीं थी; परन्तु उससे बिगाड़ न करना भी उसका गौण उद्देश्य था। उसने अनेक प्रकार की सन्धियाँ करके अपने उद्देश्य की अच्छी प्रकार से पूर्ति की थी परन्तु विलियम ने अपनी नीति से उसकी समस्त व्यवस्था को नष्ट कर दिया। जैसा हम आगे देखेंगे, तीन वर्ष के अन्दर रूस जर्मनी से अलग हो गया और बाद में फ्रांस से सन्धि करके उसने उसकी एकाकिता का अन्त कर दिया। ६ वर्ष के अन्दर इङ्गलैण्ड शत्रु बन गया। मोरक्को में हस्तक्षेप करने से फ्रांस की शत्रुता बहुत बढ़ गई और १९०७ तक जर्मनी, ऑस्ट्रिया तथा इटली के त्रिगुट के मुकाबिले में फ्रांस, रूस और इङ्गलैंड की त्रिराष्ट्र-मैत्री स्थापित हो गई। इटली का त्रिगुट से सम्बन्ध भी शिथिल पड़ता गया। इस सबके बदले में उसे मिला एक नया मित्र – टर्की—और मिली ऑस्ट्रिया की सुदृढ़ मैत्री तथा उसके साथ

*Strong : Dynamic Europe, p. 369.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऑस्ट्रिया के तथा स्वयं अपने बाल्कन प्रदेशीय हितों से उत्पन्न खतरनाक उलझनें और अन्त में मिला सर्वनाश।

रूस के प्रति उदासीनता—फ्रांस-रूस की सन्धि—

बिस्मार्क को अलग करके विलियम ने अपनी स्वतन्त्र परराष्ट्र-नीति का आरम्भ रूस की मित्रता त्याग कर ऑस्ट्रिया से घनिष्ठता कायम करके और बाल्कन प्रायद्वीप में उसके हितों के समर्थन के साथ ही रूस के मुकाबिले में टर्की के सुल्तान पर अपना प्रभाव जमाने के प्रयत्न के साथ किया। बिस्मार्क के पद-त्याग के पहले ही वह सम्राज्ञी सहित कान्स्टेण्टीनोपल पहुँचकर सुल्तान अब्दुल हमीद से भेंट करके उसे अपनी मित्रता का आश्वासन दे चुका था।

१८९० में रूस के साथ की हुई 'सुरक्षा सन्धि' समाप्ति होती थी और उसकी पुनरावृत्ति आवश्यक थी, परन्तु विलियम ने यह कह कर उसकी पुनरावृत्ति करने से इन्कार कर दिया कि यह सन्धि बड़ी पेचीदा है और इसमें ऑस्ट्रिया के लिये धमकी मौजूद है जिसके बड़े अनिष्टकारी परिणाम हो सकते हैं।* इसका परिणाम यह हुआ कि रूस अकेला पड़ गया और फ्रान्स से मित्रता करने में ही अपनी सुरक्षा का एकमात्र उपाय दिखाई देने लगा क्योंकि त्रिदलीय सन्धि की पुनरावृत्ति हो जाने से इटली से मित्रता नहीं हो सकती थी और इङ्गलैण्ड की सहानुभूति, जिसके हित अफ्रिका में फ्रान्स के हितों से तथा अफगानिस्तान में रूस के हितों से टकराते थे; त्रिगुट के साथ थी। तृतीय एलेक्ज़ेण्डर फ्रान्स से उसके नास्तिकवाद तथा उसके गणतन्त्र और उसकी निरन्तर बदलती हुई राजनीति से घृणा करता था परन्तु असहाय स्थिति में इन सब बातों की उपेक्षा करके वह फ्रान्स से मित्रता करने की चेष्टा करने लगा। १८९१ में फ्रान्स का बेड़ा मित्रता प्रकट करने की दृष्टि में जब सेण्ट पीटर्सबर्ग के नाविक अड्डे क्रॉनस्टाट (Kronstadt) में पहुँचा तो उसका बड़ा भारी स्वागत हुआ। फ्रेञ्च बेड़े की बिदाई के उपरान्त सन्धि की वार्ता होने लगी और फ्रांस ने रूस को उसके औद्योगिक विकास में सहायता करने के लिये ऋण भी दिया। १८९३ में रूसी बेड़ा फ्रेञ्च बन्दरगाह तूलों पहुँचा और फ्रेञ्च जनता ने रुसियों का अभूतपूर्व स्वागत किया। १८९४ में तृतीय एलेक्ज़ेण्डर की मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारी द्वितीय निकोलस ने फ्रान्स से जनवरी १८९५ में सन्धि करके एक द्विगुट (Dual Alliance) स्थापित किया। इस सन्धि के अनुसार यह निर्णय हुआ कि यदि फ्रान्स पर जर्मनी या उसकी सहायता से इटली आक्रमण करे तो रूस जर्मनी पर आक्रमण करेगा। इसी प्रकार यदि रूस पर जर्मनी या उसकी सहायता से आस्ट्रिया आक्रमण करे तो फ्रान्स रूस की

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 380.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायता करेगा। दोनों में से कोई अलग सन्धि नहीं करेगा। इस सन्धि की अवधि वही होगी जो त्रिगुट की थी।* विलियम को यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि रूस की फ्रान्स से सन्धि हो सकेगी। सन्धि का समाचार पाकर वह बड़ा चिन्तित हुआ। उसने निकोलस को पत्र लिखकर इस नीति के खतरे समझाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु व्यर्थ। अगले वर्ष (१८९६) रूस के सम्राट् और सम्राज्ञी ने फ्रान्स पहुँच कर वहां के राष्ट्रपति से भेंट की और अपनी प्रगाढ़ मित्रता का परिचय दिया। इन घटनाओं द्वारा फ्रान्स तथा योरोप के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ। फ्रान्स की एकाकिता समाप्त हो गई और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में एक नये युग का आरम्भ हुआ। योरोप में जर्मनी का अब असंदिग्ध प्राधान्य नहीं रहा और योरोपीय राज्य दो गुटों में बँटने लगे।†

द्विगुट से मेल के प्रयत्न—

विलियम ने अगले दस वर्ष में द्विगुट में शत्रुता की भावना को बढ़ने से रोकने का काफी प्रयत्न किया और फ्रान्स तथा रूस से मित्रता जोड़ने की भी कोशिश की। उसने निकोलस से मित्रता करने का प्रयत्न किया, १८९५ में लियाओतुङ्ग प्रायद्वीप से जापान को निकालने में फ्रान्स और रूस का साथ दिया, १८९९ में रूस की प्रसन्नता के लिये इङ्गलैण्ड से सन्धि करने से इन्कार कर दिया और १९०५ में रूस, फ्रान्स तथा जर्मनी के बीच सन्धि करने की भी कोशिश की।‡ अपनी इस नीति से उसने इङ्गलैंड को सशंक कर दिया और उसे विशेषकर दक्षिण अफ्रिका के बोअर-युद्ध के दौरान में ऐसा मालूम होने लगा मानो सारा योरोप उसके विरुद्ध हो जायगा। परन्तु विलियम की नीति में कोई स्थिरता नहीं थी। उसकी अस्थिरता ने ही इङ्गलैण्ड को एक महान् सङ्कट से बचा

---

* Gooch : History of Modern Europe, p. 183.

† Petrie : Diplomatic History (1713--1933), p. 241. यह कहना सही नहीं होगा कि इस सन्धि के द्वारा योरोप दो परस्पर विरोधी गुटों में विभक्त हो गया। इसके अनुसार केवल यही निर्णय हुआ था कि यदि एक मित्र पर आक्रमण हुआ तो दूसरा मित्र उसकी सहायता करेगा। इसके अतिरिक्त गुटों के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में कोई खास हार्दिकता नहीं थी और कोई भी दूसरे की आक्रमणात्मक कार्रवाइयों में भाग लेना नहीं चाहता था। इन सन्धियों द्वारा योरोप में केवल शक्ति-समतोलन की स्थापना ही हुई थी जिसकी आवश्यकता भी थी। Mowat : Contemporary Europe and Overseas, p. 9.

‡ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 382.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिया औपनिवेशिक नीति में फ्रान्स को प्रोत्साहित करके उसने फेशोडा में उसका साथ छोड़ दिया। एक समय जापान के विरुद्ध रूस का समर्थन करने और उसकी प्रसन्नता के लिये इंगलैण्ड की मित्रता का त्याग करके भी उसने १९०४-५ में जापान के विरुद्ध युद्ध में रूस की सहायता नहीं की, बल्कि उसकी पराजय से लाभ उठाकर वह बाल्कन प्रायद्वीप में ऑस्ट्रिया के हितों को आगे बढ़ाने लगा। इस प्रकार रूस से समझौता असम्भव हो गया और १९०८ में जब 'युवक तुर्क' क्रान्ति के परिणाम-स्वरूप बाल्कन प्रायद्वीप में फिर झगड़ा उठ खड़ा हुआ तो त्रिगुट तथा द्विगुट का विरोध स्पष्ट हो गया।

विश्व-शक्ति का दावा—

इन्हीं दिनों वह योरोप के बाहर के मामलों में हस्तक्षेप करके जर्मनी के लिए एक विश्व-शक्ति होने का दावा भी पेश कर रहा था। १८९५ में जब जापान ने चीन को बुरी तरह परास्त करके उससे लियाओतुङ्ग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर छीनने का प्रयत्न किया और रूस फ्रान्स के समर्थन के साथ जापान पर दबाव डाला तो, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, जर्मनी ने भी उनका समर्थन किया। नवम्बर १८९७ में चीन में दो जर्मन पादरियों की हत्या का बहाना लेकर उसने अपने जंगी जहाज़ भेजकर कियाओचाऊ पर अधिकार कर लिया और मार्च १८९८ में चीन को विवश करके कियाउचाऊ तथा शान्तुंग के एक भाग का ९९ वर्ष के लिये पट्टा ले लिया। इसके दो वर्ष बाद जब जनवरी १९०० में विदेशियों के हस्तक्षेप से रुष्ट होकर चीनी देशभक्तों (Boxers) ने पेकिंग में स्थित विदेशी दूतावासों पर आक्रमण करके विदेशियों के विरुद्ध कार्रवाई शुरू की तो योरोप से एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना चीन भेजी गई और उसके सेनापति होने का गौरव एक जर्मन को प्राप्त हुआ।* विलियम सभी दिशाओं में जर्मनी को आगे बढ़ाना चाहता था। उसने १८९९ से स्पेन से कोरोलिन द्वीप खरीदकर तथा १९०० में संयुक्त राष्ट्र और इंगलैंड से समझौता करके सेमोआ द्वीपसमूह के कुछ द्वीप हस्तगत करके प्रशान्त महासागर में जर्मनी के साम्राज्य का विस्तार किया।

जर्मनी और टर्की—

उसकी विश्व-राजनीति में, जैसा हम देख चुके हैं, टर्की का स्थान प्रमुख था। वह सुदूर पूर्व में जर्मनी का प्रभाव बढ़ाना चाहता था जिसके लिये पश्चिमी एशिया के मुसलमानों से, जिनमें उन दिनों अखिल-इस्लाम-आन्दोलन प्रगति कर रहा था, और मुख्य कर टर्की से, जिसमें होकर पश्चिमी एशिया को स्थल

* Ketelbey : History of Modern Times, p. 519.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मार्ग जाता है, मैत्री आवश्यक थी।* बर्लिन-कांग्रेस तक टर्की पर इंग्लैंड का प्रभाव था परन्तु साइप्रस के समझौते के कारण टर्की में इंगलैंड के लिये बहुत कम सद्भावना रह गई थी। ग्लेड्स्टन की नीति (१८८०-८१) तथा इंगलैण्ड के इजिप्ट पर अधिकार कर लेने से (१८८२) रही-सही सद्भावना भी जाती रही। विलियम ने इस स्थिति से लाभ उठाना और इङ्गलैण्ड के रिक्त स्थान की पूर्ति करना चाहा। १८८९ में वह सम्राज्ञी सहित कॉन्स्टेण्टीनोपल पहुँच कर सुल्तान अब्दुलहमीद से भेंट करके उसे अपनी मित्रता का आश्वासन दे चुका था। १८९८ में, जब कि अब्दुल हमीद की जर्मनों द्वारा शिक्षित सेना आर्मेनियन लोगों का रक्त बहा रही थी और समस्त ईसाई योरोप उससे नाराज़ था, विलियम ने फिर कॉन्स्टेण्टीनोपल पहुँच कर सुल्तान से भेंट की और वहाँ से जेरुसेलम के लिये प्रस्थान किया। वहाँ बड़ी धूमधाम के साथ एक प्रोटेस्टेण्ट चर्च की स्थापना करके वह दमिश्क पहुँचा जहाँ उसने संसार के समस्त मुसलमानों को आश्वासन दिया कि 'सुल्तान अब्दुल हमीद तथा तीस करोड़ मुसलमान जो उसे अपना खलीफा मानते हैं, सदा विश्वास रखें कि जर्मन सम्राट् सदैव उनका मित्र बना रहेगा।' इस भाषण से सारे योरोप में सनसनी फैल गई, इङ्गलैंड और फ्रांस तो विशेष रूप से चिन्तित हुए क्योंकि ससार के अधिकांश मुसलमान रूस (एशिया में), इङ्गलैंड (भारतवर्ष तथा इजिप्ट में) और फ्रांस (उत्तरी अफ्रीका में) की प्रजा थे।† तुरन्त ही उसके मनसूबों का आभास भी मिल गया जब कि सुल्तान ने १९०२ में एक समझौते द्वारा एक जर्मन कम्पनी को कॉन्स्टेण्टीनोपल से बग़दाद तक रेल बनाने की अनुमति दी।§ इस योजना से सब से अधिक भय इङ्गलैंड को उत्पन्न हुआ क्योंकि कॉन्स्टेण्टीनोपल से बग़दाद तक रेल बन जाने से और आगे बसरा तक उसका विस्तार हो जाने से बर्लिन का ऑस्ट्रिया, सर्बिया, बाल्कन प्रायद्वीप तथा टर्की के एशियाई भाग में होकर फारस की खाड़ी से सीधा सम्बन्ध हो जाता और उसके भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिये एक महान् संकट उपस्थित हो जाता।

---

* टर्की के बॉस्फ़ोरस से फारस की खाड़ी तक विस्तृत एशियायी साम्राज्य की अपेक्षा जहाँ जनसंख्या बहुत कम थी और जिसकी प्राकृतिक सम्पत्ति का खूब विकास हो सकता था, कोई अन्य प्रदेश ऐसा नहीं था जो उसकी आवश्यकताओं और उद्देश्यों के अनुकूल होता। वहाँ जर्मनी की अतिरिक्त जनसंख्या बसाई जा सकती थी और उसकी सम्पत्ति का उसके विशेषज्ञ खूब विकास कर सकते थे। वहां से उसकी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये उत्तम योद्धा भी मिल सकते थे। Strong : Dyanamic Europe, p. 372.

† Slosson : Europe since 1870, p. 253.

§ Marriott : Europe and Beyond, p. 218.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इंगलैण्ड की चिन्ता—फ्रांस-इंगलैन्ड की सन्धि—

अभी तक इंगलैण्ड अपने 'एकान्तवास' में था और जर्मनी से अच्छा सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न करता रहता था। प्रधानतः महाद्वीपीय नीति का अवलम्बन करते हुए भी बिस्मार्क ने जर्मनी के लिये एक औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इङ्गलैंड इस नये प्रतिस्पर्धी को मैदान में आया देख कर नाराज़ भी था परन्तु बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति से केवल इङ्गलैंड की शंकाओं का ही निवारण नहीं कर लिया था; अपनी आकांक्षाओं में उसका समर्थन भी प्राप्त कर लिया था। ग्लेड्स्टन ने उसका एक औपनिवेशिक सत्ता तथा ईश्वर के महान् प्रयोजन की सिद्धि में एक मित्र एवं सहयोगी की तरह स्वागत भी किया था। विलियम ने बड़े स्पष्ट और जोरदार शब्दों में कहा था कि जर्मनी का भविष्य समुद्र पर है। इससे इङ्गलैंड में चिन्ता उत्पन्न हो गई थी परन्तु फिर भी बहुत से अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ समझते थे कि यह भविष्य बहुत दूर था।* बिस्मार्क के पतन के समय तक जर्मनी तथा इङ्गलैंड के सम्बन्ध बड़े अच्छे थे जिसका एक अकाट्य प्रमाण १८९० में मिला था जब कि इङ्गलैंड ने ज़ेन्ज़ीबार के बदले म हेलिगोलैंड का द्वीप जर्मनी को वापस कर दिया था। १८९० के बर्लिन-सम्मेलन में दोनों पक्षों में परस्पर बड़ी सद्भावना रही थी १८९३ में दोनों ने एक समझौता (Anglo-German Agreement) करके नाइजीरिया तथा केमरून्स के प्रदेशों में अपनी-अपनी सीमायें निर्धारित कीं और पश्चिमी अफ्रिका में जो कठिनाइयाँ थीं उनका भी समाधान कर लिया था।‡ इङ्गलैंड ने यह मानकर कि जर्मनी सदा मित्र बना रहेगा फ्रान्स को रोकने की दृष्टि से चाड झील से ऊपरी नील के प्रदेश तक समस्त मध्य-अफ्रीका पर जर्मन 'प्रभाव' को स्वीकार करने का प्रस्ताव भी किया था परन्तु फ्रान्स के विरोध करने पर उसने इंगलैंड के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।§

इस प्रकार जर्मनी तथा इङ्गलैंड के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे बने हुए थे परन्तु इसका कारण शायद यह था कि इन दिनों इङ्गलैंड की रूस तथा फ्रान्स के साथ शत्रुता बढ़ रही थी और उसे जर्मनी स्वाभाविक मित्र दिखाई देता था। परन्तु जर्मनी में इङ्गलैंड के लिये कोई वास्तविक सौहार्द नहीं था। जब जेमसन के आक्रमण की विफलता के बाद जनवरी १८९६ में द्वितीय विलियम के नाम से ट्रान्सवाल के राष्ट्रपति क्रूज़र को अभिनन्दन का तार भेजा गया तो इंगलैण्ड को जर्मनी की प्रच्छन्न शत्रुता का पूरा-पूरा पता चल गया। इंगलैण्ड में बोअर लोगों के प्रति जर्मन सम्राट् की सहानुभूति से बड़ा रोष उत्पन्न हुआ

* Marriott : Europe and Beyond, p. 191.
‡ Marriott : Europe and Beyond, p. 192.
§ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 384.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परन्तु शायद वह तार सम्राट् की इच्छा के प्रतिकूल भेजा गया था और सम्राट् ने निजी तौर पर स्पष्टीकरण करके स्थिति को सुधार लिया।* इंगलैण्ड इस समय बिल्कुल अकेला पड़ रहा था और इसी कारण वह जर्मनी से बिगाड़ करना नहीं चाहता था। उसने जर्मनी से मेल कायम रखा और १८९८ में अफ़्रिका के सम्बन्ध में तथा १८९९ में सेमोआ के सम्बन्ध में दोनों में समझौते भी हुए। उसी वर्ष इङ्गलैण्ड के उपनिवेश-मन्त्री जोजेफ़ चेम्बरलेन ने इङ्गलैण्ड, जर्मनी तथा संयुक्त राष्ट्र के एक त्रिगुट का प्रस्ताव किया परन्तु १९०० में ब्यूलो जर्मनी का प्रधान मंत्री बना। उसका पहला कार्य इस प्रस्ताव को ठुकरा देना था (१९०१)। उसकी दृष्टि में सन्धि का आशय यही हो सकता था कि भावी युद्ध में जर्मनी महाद्वीप में इङ्गलैण्ड की तरफ़ से लड़े और इंगलैण्ड महाद्वीप की ओर से निश्चिन्त होकर एशिया तथा अफ़्रिका में अपनी स्वार्थ-सिद्धि करता रहे। उसका यह स्पष्ट मत था कि जर्मनी की औपनिवेशिक, व्यापारिक तथा नाविक उन्नति से इंगलैण्ड को असुविधा होना अनिवार्य था और कभी न कभी दोनों देशों में युद्ध छिड़ कर रहेगा। उसने तो यहाँ तक कह डाला कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इंगलैण्ड ही एकमात्र ऐसा देश है जिससे जर्मनी को हिसाब करना है।† इससे इंगलैण्ड को यह निश्चय हो गया कि जर्मनी से मित्रता नहीं हो सकती। वह देख रहा था कि जर्मनी अपनी नाविक सेना का विस्तार करके समुद्र पर उसका प्रबल प्रतिद्वन्दी बनता जा रहा था। इसके साथ ही अब बग़दाद तक रेल बना कर और शायद फ़ारस की खाड़ी में अपना नाविक अड्डा स्थापित कर पश्चिमी एशिया पर तथा भारत महासागर में वह अपना प्राधान्य जमाने का प्रयत्न कर रहा था। ऐसी परिस्थिति में उसे अपना एकान्तवास बड़ा खतरनाक दिखाई देने लगा और उसे अपने लिए मित्र ढूँढ़ने की तात्कालिक आवश्यकता दिखाई देने लगी। अतः पहले तो उसने रूस पर रुकावट लगाने के लिए १९०२ में जापान से सन्धि की और बाद में फ़्रान्स के साथ जितने झगड़े थे उन सबका उससे समझौते द्वारा निपटारा करके उससे अपने बिगड़े हुए सम्बन्ध सुधार लिये (१९०४)। जर्मनी के रूख के कारण ही

---

*आगे चल कर, जैसा क़ैसर विलियम ने डेली टेलिग्राफ़ (Daily Telegraph) के कूटनीतिक संवाददाता को बतलाया था, उसमें महारानी विक्टोरिया को एक पत्र भेजा था जिसमें बोअर लोगों पर विजय प्राप्त करने के लिये एक योजना थी और उसे लार्ड राबर्टस तथा किचनर को दक्षिणी अफ़्रिका भेजने की सलाह भी दी थी। Mowat : Contemporary Europe and Overseas, pp. 128-129

†Marriott : Europe and Beyond, pp. 192-195.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन दो परम्परागत शत्रुओं में मित्रता क़ायम हो सकी।*

कूटनीतिक क्रान्ति—फ्रान्स तथा इंगलैण्ड का यह समझौता (१९०४) आधुनिक कूटनीति की एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। बीसवीं सदी के आरम्भ में इससे एक महान् 'कूटनीतिक क्रान्ति' हो गई।† फ्रान्स और रूस में पहले से ही सन्धि थी। इस समझौते से रूस तथा इंगलैन्ड के बीच के तनाव में भी शिथिलता आ गई समझौते के बाद पेरिस में स्थित रूस के राजदूत ने कहा कि 'हमारे मित्रों के मित्र हमारे भी मित्र हैं। कौन कह सकता है कि यह बात सत्य नहीं होगी ?'‡ यह भविष्यवाणी सत्य ही निकली। तीन वर्ष बाद (१९०७) रूस के साथ भी इंगलैंड का इसी प्रकार का समझौता हो गया और जर्मनी, ऑस्ट्रिया तथा इटली के त्रिगुट के मुकाबले में फ्रान्स, रूस तथा इंगलैंड का एक नया गुट तैयार हो गया। इस प्रकार जर्मनी की सुरक्षा के लिये बिस्मार्क ने जो व्यवस्था की थी वह नष्ट हो गई। वास्तव में यह नया गुट कोई आक्रमणात्मक गुट नहीं था। इन तीनों देशों में कोई नियमानुकूल सन्धि नहीं हुई थी। इसके द्वारा उनके पारस्परिक झगड़ों का निपटारा हो गया था परन्तु इसके साथ ही आवश्यकता पड़ने पर भविष्य में घनिष्ट सम्बन्ध एवं सहयोग के लिये मार्ग खुल गया था। यह आवश्यकता भी शीघ्र ही उपस्थित हो गई।$

जर्मनी की चिन्ता—

इंगलैंड से जो समझौता हुआ था उसकी शर्तों की सूचना फ्रान्स के विदेश-मन्त्री ने पेरिस में स्थिति जर्मनी के राजदूत को दे दी थी और प्रधान मन्त्री ब्यूलो ने भी लोक-सभा में भाषण देते हुये उसका अनुमोदन किया था। फिर भी विलियम इस कूटनीतिक क्रान्ति को देख कर चिन्तित हुआ। इसके पहले इटली और फ्रान्स का पारस्परिक मनोमालिन्य दूर हो चुका था और इटली फ्रान्स की तरफ झुकने लगा था। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानों जर्मनी अकेला पड़ता जा रहा था। अब वह शिकायत करने लगा कि उसके शत्रु उसे चारों ओर से घेरने (Encirclement) का तथा स्वयं पृथ्वी का अधिकांश आपस में बाँट कर उसे उचित स्थान प्राप्त करने से रोकने का षड्यन्त्र रच रहे थे। इंगलैण्ड और फ्रांस का समझौता हो जाने के बाद से

*Petrie : Diplomatic History (1783-1933), p. 249.

†Slosson : Enrope since 1870, p. 249.

‡Holland Rose : The Development of the European Nations, Vol II, p. 341.

$Petrie : Diplomatic History, p. 252.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही वह अपने शत्रुओं की मैत्री को तोड़ने, अपने एकमात्र मित्र ऑस्ट्रिया की स्थिति को बाल्कन प्रायद्वीप में सुदृढ़ करने तथा टर्की को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करने लगा।

शत्रुओं की मैत्री को भंग करने के प्रयत्न—

अपने शत्रुओं की पारस्परिक घनिष्ठता में विक्षेप डालने के उसे दो उपाय नज़र आ रहे थे।* प्रथम, ज़ार के साथ गुप्त षड्यन्त्र करके उसे फोड़ कर फ्रान्स तथा इङ्गलैंड से अलग कर लेना और सम्भवतः यदि फ्रांस भी रूस के साथ जर्मनी की ओर चला आया तो इङ्गलैंड के विरुद्ध फ्रान्स, रूस तथा जर्मनी का एक विशाल गुट बना लेना और द्वितीय, बल-प्रयोग की धमकी द्वारा फ्रान्स पर कूटनीतिक विजय प्राप्त करना जिससे संसार को इङ्गलैंड, फ्रान्स तथा रूस की मैत्री का खोखलापन विदित हो जाय और इस कारण यह घोषणा करना कि संसार में कहीं भी जर्मनी के परामर्श के बिना कोई महत्वपूर्ण व्यवस्था नहीं की जा सकती। उसने इन दोनों गुप्त तथा प्रकट तरीकों का प्रयोग किया।

मोरक्को में फ्रान्स को चुनौती—

इंगलैंड और फ्रांस में जो समझौता हुआ था, उसके द्वारा इंगलैंड ने फ्रान्स को मोरक्को में अपनी इच्छानुसार व्यवस्था करने की अनुमति दे दी थी और इसके बदले में फ्रान्स ने इजिप्ट में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया था। इसके बाद ही फ्रान्स तथा स्पेन ने परस्पर सन्धि करके मोरक्को के विषय में समझौता कर लिया था। परन्तु इस विषय में जर्मनी से कोई परामर्श नहीं किया गया था। मोरक्को में जर्मनी का व्यापार इंगलैण्ड तथा फ्रान्स की तुलना में कुछ अधिक नहीं था परन्तु कई दृष्टि से उसकी स्थिति महत्वपूर्ण थी। वह एक निर्बल मुसलमानी राज्य था जो योरोपियनों से अपनी रक्षा नहीं कर सकता था और वर्षों से योरोपियनों के व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय सौदे का उपयुक्त क्षेत्र समझा जाता रहा था। इसके अतिरिक्त जिब्राल्टर के निकट उसकी स्थिति ऐसी है जहाँ से भूमध्यसागर तथा दक्षिणी अटलांटिक महासागर के मार्गों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है और इस कारण वह योरोप की नाविक सत्ताओं के लिये बड़े महत्व का था। इसके साथ ही उन दिनों मुसलमानों का प्रश्न महत्वपूर्ण बनता जा रहा था और जिस देश ने मोरक्को में क़दम जमा लिया उसका उस प्रश्न में महत्व अधिक होना निश्चित था। १८९८ में विलियम ने मुसलमानों के संरक्षण का वचन दिया था और उसे भय था कि ऐसा वचन

* Marriott : Europe and Beyond, p. 202.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
देने के बाद यदि उसने मोरक्को में हस्तक्षेप नहीं किया तो टर्की में वर्षों के परिश्रम से पैदा की हुई उसकी प्रतिष्ठा गिर जायगी।* उसकी स्थिति के कारण कई योरोपीय राज्यों का लक्ष्य उसकी तरफ था परन्तु फ्रान्स का ध्यान उस ओर विशेष था क्योंकि वह अल्जीरिया से मिला हुआ था। इंगलैंड और स्पेन से समझौता करके उसने मोरक्को के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करना शुरू किया, आयात-निर्यात की आय की ज़मानत पर उसने सुल्तान को बहुत सा ऋण दिया और सुधार की एक विशाल योजना भी प्रस्तुत की जिसमें सड़कें बनाना, तार लगाना, राष्ट्रीय बैंक की स्थापना करना, बन्दरगाहों की सुरक्षा फ्रेञ्च पुलिस को सौंपना आदि बातें थीं।† इस प्रकार फ्रान्स बड़ी शीघ्रता से मोरक्को पर अपना अधिकार स्थापित कर रहा था। विलियम ने यह सब देख कर शिकायत की कि इस प्रकार फ्रान्स और इंगलैण्ड मोरक्को को हड़प कर योरोपीय देशों के व्यापार को बन्द कर देना चाहते हैं और विशेषकर जर्मनी के आर्थिक हितों का, उसके सन्धि-जन्य अधिकारों की अवहेलना करके, गला घोंट देना चाहते हैं। अतः वह अपने प्रधान-मन्त्री ब्यूलो के परामर्श से जर्मनी की मोरक्को सम्बन्धी नीति की घोषणा करने के लिये टेञ्जियर जाने को राजी हो गया। मार्च १९०५ के आरम्भ में ही फ्रान्स का मित्र रूस जापान से मुकडन की लड़ाई में हार चुका था। ऐसे अवसर पर फ्रान्स को दबाने का अच्छा अवसर देखकर वह ३१ मार्च को टेञ्जियर पहुँचा। वहाँ के जर्मन निवासियों के समक्ष भाषण देते हुये उसने कहा कि 'मोरक्को में जर्मनी के महान् हित हैं जो बढ़ते जा रहे हैं। व्यापार की उन्नति तभी हो सकती है जब कि सुल्तान के प्रभुत्व के अन्तर्गत सब राष्ट्रों को समान अधिकार प्राप्त हों और सभी राष्ट्र मोरक्को की स्वतन्त्रता स्वीकार करें। मैं इसी स्वतन्त्रता को स्वीकार करने आया हूँ।' सुल्तान के प्रतिनिधि को मोरक्को की स्वतन्त्रता के संरक्षण का वचन देकर उसने आशा प्रकट की कि मोरक्को में सभी देशों को व्यापार के समान अधिकार प्राप्त रहेंगे।§ इसके बाद जर्मनी ने मोरक्को के प्रश्न पर विचार करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को तथा फ्रान्स के विदेश-मन्त्री देलकासे (Delcasse) को पदच्युत कर देने की माँगें पेश कीं। जर्मनी के हस्तक्षेप का फ्रान्स ने बड़ा विरोध किया परन्तु जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की माँग पर अड़ गया। तनाव बढ़ा और युद्ध की सम्भावना दिखाई देने

---

* Holland Rose : The Development of the European Nations, Vol. II, p. 343.

† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 388.

§ Gooch : History of Modern Europe, p. 353.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगी। देलकासे तो इंगलैंड की सहायता की आशा से युद्ध के लिये तैयार था परन्तु फ्रान्स का प्रधान मन्त्री रूविये (Rouvier) तथा उसके अन्य सहयोगी तैयार नहीं थे। अतः देलकासे ने त्यागपत्र दे दिया। इस बीच में विलियम अमेरिका के प्रेसिडेण्ट रूसवेल्ट से सम्मेलन की माँग में शामिल होने का अनुरोध कर रहा था। रूसवेल्ट तैयार हो गया और उसने फ्रांस को समझा कर राज़ी कर लिया। १६ जनवरी १९०६ को एल्जेसिरास (स्पेन में) नामक स्थान पर सम्मेलन का आरम्भ हुआ।* जर्मनी की दोनों मांगें पूरी हो गईं। देलकासे पदच्युत कर दिया गया था और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की व्यवस्था भी हो गई। स्पष्टतः फ्रान्स की कूटनीतिक पराजय हो चुकी थी। परन्तु सम्मेलन में जर्मनी के धमकीपूर्ण रुख से प्रायः सभी राष्ट्रों की सहानुभूति फ्रान्स के साथ हो गई, यहाँ तक कि इटली के प्रतिनिधि ने भी घोषणा की कि इटली और इंगलैंड के हित समान हैं।† केवल ऑस्ट्रिया ने ही जर्मनी का साथ दिया। सम्मेलन ने तीन महीने के वादविवाद के बाद एक एक्ट (Act ot Algeciras) बनाया जिसके द्वारा मोरक्को की स्वतन्त्रता की पुष्टि की गई, वर्तमान सन्धि के अनुकूल समस्त राष्ट्रों के व्यापारिक अधिकारों की गारण्टी दी गई, एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक स्थापित किया गया और देश की सुरक्षा के लिये एक स्विस इन्स्पेक्टर जनरल की अधीनता में फ्रान्स तथा स्पेन की सम्मिलित पुलिस की व्यवस्था की गई।§ इस निर्णय पर ब्यूलो ने कहा कि 'हम न तो जीते हैं, न हारे ही हैं!' रूविये ने भी इसी प्रकार के भाव प्रकट किये। वास्तव में आरम्भ में कूटनीतिक दृष्टि से पराजित होते हुए भी अन्त में विजय फ्रान्स की ही हुई। मोरक्को में उसकी स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति के कारण अधिक वैध और पुष्ट हो गई। मोरक्को की सुरक्षा के सम्बन्ध में आंशिक अधिकार प्राप्त हो जाने से फ्रान्स ऐसी स्थिति में पहुंच गया जहाँ से उसे धीरे-धीरे मोरक्को को अधिकाधिक अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाने की सुविधा मिल गई। इसके अतिरिक्त जर्मनी का असली उद्देश्य—इंगलैंड और फ्रान्स की मैत्री का भंग$—पूरा नहीं हुआ, बल्कि परिणाम उल्टा ही हुआ। अभी तक तो

* इस सम्मेलन में जर्मनी, फ्रान्स तथा इंगलैंड के अतिरिक्त स्पेन पोर्तुगाल, इटली, ऑस्ट्रिया-हंगरी, बेल्जियम, संयुक्त राष्ट्र, हॉलैण्ड, रूस, स्वीडन तथा मोरक्को शामिल हुए। Marriott : Europe and Beyond, p. 204.

† Holland Rose : The Developmentt of The Europeon Nations, Vol. II, p 346.

§ Slosson : Europe since 1870, p. 254.

$ डिकिनसन के अनुसार यह कहना कठिन है कि जर्मनी का मोरक्को में हस्तक्षेप करने का यही मुख्य उद्देश्य था। द्वितीय विलियम तथा उसके प्रधान मन्त्री की उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इंगलैंड और फ्रान्स के बीच कोई स्थायी पारस्परिक दायित्व नहीं थे परन्तु अब दोनों की मैत्री अधिक दृढ़ हो गई। अब से आगे दोनों में अधिक कूटनीतिक सहयोग होने लगा और वह प्रक्रिया आरम्भ हो गई जिसे जर्मन लोग 'घेरा' (Encirclement) कहते थे और अंग्रेज लोग 'बीमा' (Insurance)।† इस घटना ने इंगलैंड और फ्रान्स की मैत्री को दृढ़ नहीं किया, उसने इंगलैंड और रूस को निकट लाकर उनके पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार भी कर दिया और आगे चलकर १९०७ की त्रिराष्ट्र-मैत्री के लिये मार्ग तैयार कर दिया।* इस अन्तर्राष्ट्रीय सङ्कट ने प्रथम बार इंगलैंड, फ्रान्स, रूस और इटली को एक पक्ष में एकत्रित करके योरोपीय राष्ट्रों को ठीक उसी प्रकार विभक्त कर दिया जिस प्रकार महायुद्ध के आरम्भ में उनका विभाजन होने वाला था।

रूस को मिलाने का प्रयत्न—विली-निकी पत्र-व्यवहार—

फ्रान्स और इंगलैण्ड में फूट डालने के प्रयत्न के साथ-साथ विलियम रूस के ज़ार निकोलस को भी फ्रान्स से फोड़ लेने का पत्र-व्यवहार (Willy-Nicky correspondence) द्वारा षड्यन्त्र कर रहा था (१९०४-१९०६)। रूस की उन दिनों इंगलैण्ड से अनबन थी और जापान से उसका युद्ध छिड़ा हुआ था इङ्गलैण्ड जापान का मित्र था। ऐसी परिस्थिति में विलियम ने निकोलस को बहका लिया और फ़िनलैण्ड में व्योर्कों (Biorko) नामक स्थान पर भेंट करके उससे एक गुप्त सन्धि पर हस्ताक्षर करवा लिये (२४ जुलाई १९०५) जिसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि यदि दोनों साम्राज्यों में से किसी पर कोई योरोपियन सत्ता आक्रमण करे तो दूसरा मित्र अपनी पूरी शक्ति से उसकी सहायता करेगा और कोई अलग सन्धि नहीं करेगा तथा रूस इस सन्धि की शर्तें फ्रान्स को बतलाकर उसे भी शामिल होने के लिये आमन्त्रित करेगा। जापान के साथ सन्धि हो जाने पर जब निकोलस ने अपने विदेश-मन्त्री काउण्ट लेम्डॉसर्फ को यह सन्धि बताई तो उसने उसका विरोध किया और काउण्ट विट ने भी लेम्सडॉर्फ का समर्थन किया। उधर पेरिस में स्थित रूसी राजदूत ने भी सूचना दी कि फ्रान्स जर्मनी के साथ शामिल नहीं होगा। अतः ज़ार को विवश होकर सन्धि तोड़ देनी पड़ी। उसके साथ रूसी नीति की दिशा बदल गई और उसने इंगलैंड से बातचीत करना आरम्भ किया।‡

समय की बातों से यह उद्देश्य संदिग्ध दिखाई देता है। Dickinson : International Anarchy, p. 125.

* Gooch : History of Modern Europe, p. 368.

† Hearnshaw : Main Currents of EuropeanHistory, p. 290.

‡ Gooch : History of Modern Europe, p. 388.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाल्कन प्रायद्वीप में रूस की चुनौती—

इस प्रकार निकोलस के मन्त्रियों ने उसे फ्रांस की मित्रता का बलिदान करने से रोक लिया। अगले वर्ष इंगलैंड से भी रूस का समझौता हो गया (१९०७) और मध्य-योरोपीय त्रिगुट के विरुद्ध इङ्गलैंड, फ्रान्स तथा रूस का गुट खड़ा हो गया। यह गुट वास्तव में रक्षात्मक था परन्तु जर्मनी को, जो रक्षात्मक शब्द की विचित्र व्याख्या किया करता था, इसे देख कर बड़ी चिंता हुई वह इस गुट को समाप्त करने पर तुल गया और अगले वर्ष ही उसे उपयुक्त अवसर मिल गया। जुलाई १९०८ में, जैसा हम आगे देखेंगे, टर्की में 'नवयुवक तुर्क' क्रान्ति हो गई जिससे लाभ उठाकर ऑस्ट्रिया ने बॉस्निया तथा हर्जगोविना के प्रदेश, जिनमें उसे १८७८ की बर्लिन-सन्धि के अनुसार केवल अपनी सेना रखने का अधिकार प्राप्त था, अपने साम्राज्य में शामिल कर लिये। इस बात से सर्बिया, जिसकी आँखें सदा इन प्रदेशों पर लगी रहती थीं, बड़ा क्रुद्ध हुआ और रूस तथा इंगलैंड से सहायता प्राप्त कर सकने की आशा में युद्ध की तैयारी करने लगा। परन्तु रूस अभी पिछले युद्ध की क्षति-पूर्ति नहीं कर सका था और सर्बिया की सहायता करने को उत्सुक होते हुए भी युद्ध के लिये तैयार नहीं था। ऑस्ट्रिया टर्की को तो हर्जाना देकर संतुष्ट कर लेने के लिये तैयार था परन्तु सर्बिया के प्रति अत्यन्त कड़ा रुख अख्त्यार किए हुए था। युद्ध अनिवार्य मालूम होने लगा परन्तु जर्मनी की धमकी ने युद्ध रोक दिया। विलियम ने घोषणा की कि 'यदि मेरे महान् मित्र को तलवार खींचनी पड़ी तो एक 'चमकते हुए कवचवाला' वीर उसके साथ दिखाई देगा'* और मार्च १९०१ के अन्त में उसने रूस को स्पष्ट चेतावनी दी कि यदि उसने सर्बिया को सहायता देने का प्रयत्न किया तो केवल ऑस्ट्रिया से ही नहीं, जर्मनी से भी लड़ना पड़ेगा। रूस अपनी असमर्थता देखकर दब गया और उसे घोर अपमान का अत्यन्त कड़ुआ घूँट पीना पड़ा।

फ्रान्स और रूस से समझौता—

रूस को इस प्रकार परास्त कर देने पर भी विलियम की त्रिराष्ट्र-मैत्री (Triple Entente) की ओर से चिंता दूर नहीं हुई और उसने १९०९ तथा १९१० में उसने फूट डालने का फिर प्रयत्न किया। उसने ८ फर्वरी १९०९ को मोरक्को के प्रश्न पर फ्रांस से समझौता कर लिया जिसके द्वारा फ्रांस ने मोरक्को की स्वतंत्रता एवं अखंडता के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया और जर्मनी ने मोरक्को की आन्तरिक सुरक्षा के सम्बंध में फ्रांस की असाधारण स्थिति मान ली। इसी प्रकार पोत्सडाम (Potsdam) के स्थान पर नवम्बर

* Marriott : Europe and Beyond, p. 221.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९१० में उसने द्वितीय निकोलस से मेसोपोटामिया तथा फारस में अपने हितों के संबंध में समझौता कर लिया जिसके अनुसार निकोलस ने जर्मनी की बग़दाद रेलवे की योजना का विरोध न करने का वचन दिया और विलियम ने फारस में रूस के विशिष्ट हितों को स्वीकार कर लिया।*

मोरक्को में फिर फ्राँस को चुनौती—

इन समझौतों का उद्देश्य स्पष्टतः त्रिराष्ट्र-मैत्री को निर्बल करना था। परन्तु अगले ही वर्ष मोरक्को के सङ्कटने उसे निर्बल करने की जगह अधिक दृढ़ कर दिया। मोरक्को के पहले संकट का एल्जेसिरास-सम्मेलन ने निवारण कर दिया था। बाद में फ्रांस और जर्मनी में उसके सम्बन्ध में एक विशेष समझौता भी हो चुका था परन्तु इतने पर भी स्थिति अस्पष्ट थी। मोरक्को की 'स्वतंत्रता' तथा फ्रास की 'पुलिससत्ता' में स्वाभाविक अन्तर्विरोध था जिसके कारण भविष्य में झगड़े होना निश्चित था।† फ्रांस मोरक्को को पूर्णतया अपने अधिकार में लाने पर तुला हुआ था और जर्मनी उसे रोकने या उसके बदले में उपयुक्त पुरस्कार प्राप्त करने पर कटिबद्ध था। १९११ में मोरक्को में गृह-युद्ध छिड़ गया और फ़ेज़ (राजधानी) के आस-पास के क़बीलों ने विद्रोह कर दिया। सुल्तान विद्रोह नहीं दबा सका और फ्रांस ने आन्तरिक सुरक्षा के लिये अपनी ज़िम्मेदारी का बहाना लेकर एक सेना भेजी जिसने २१ मई को फ़ेज़ में प्रवेश किया। फ्रेञ्च सेना के कमाण्डर को ऐसा काम न करने का स्पष्ट आदेश था जिसके द्वारा सुल्तान के प्रभुत्व अथवा मोरक्को की अखंडता को कोई क्षति पहुँचती। परन्तु फ्रेञ्च सेना ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों जर्मनी की शंकाएँ भी बढ़ती गईं। जर्मनी के विदेश-मन्त्री ने घोषणा की कि 'यदि फ्रांस को फ़ेज़ में बना रहना आवश्यक दिखाई दिया तो मोरक्को की पूरी समस्या फिर से उठेगी और एल्जेसिरास के एक्ट पर हस्ताक्षर करने वाली समस्त सत्ताओं को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता फिर से प्राप्त हो जायगी।'‡ जून में फ्रेञ्च सेना फेज़ से हटनेलगी परन्तु ज्यों-ज्यों वह हटती जाती थी त्यों-त्यों जर्मनी का रुख अधिकाधिक कड़ा होता जाता था।

जर्मनी पहले स्वयं कह चुका था कि मोरक्को में उसके हित केवल व्यापारिक थे और फ्रांस के शान्ति-स्थापन के कार्य से उन हितों की रक्षा ही हो रही थी परन्तु १९०५ की तरह इस बार भी जर्मनी संसार की दृष्टि में फ्रांस को अपमानित करना और त्रिराष्ट्र-मैत्री को निर्बल करना चाहता था। अवसर भी उपयुक्त दिखाई दे रहा था। फ्रांस में मन्त्रिमण्डल बड़े जल्दी-जल्दी

* Marriott : Europe and Beyond, p. 211.
† Slosson : Europe since 1870, p. 266.
‡ Marriott : Europe and Beyond, p. 212.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बदल रहे थे और सिण्डीकेलिस्ट लोगों की हड़तालों के कारण फ्रान्स के व्यय-साथ अस्त-व्यस्त हो रहे थे। फ्रांस की थल-सेना तथा नौ-सेना भी अभी पूरी तरह से ठीक नहीं थी। रूस की सेना का पुनः संगठन भी पूर्ण नहीं हो पाया था। उससे पिछले वर्ष ही जर्मनी का समझौता हो चुका था और उसे आशा थी कि यदि रूस के सामने फ्रान्स की कार्यवाई सन्धि के विरुद्ध प्रमाणित हो गई तो वह फ्रान्स की सहायता नहीं करेगा।* इंगलैंड में भी लॉर्ड भवन के 'निषेधाधिकार' के प्रश्न पर एक भीषण वैधानिक सङ्कट विद्यमान था और वहाँ भी उद्योगों के क्षेत्र में बड़ी परेशानी हो रही थी। अपने शत्रुओं की इन मुसीबतों से लाभ उठा कर अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जर्मनी ने १ जुलाई १९११ को फ्रेञ्च सरकार को सूचना दी कि मोरक्को में जर्मन लोगों तथा जर्मन हितों की रक्षा के लिये एक जंगी ज़हाज़ (Panther) एगेडिर (Agadir) भेजा गया है। इस कार्यवाई के साथ स्थिति तुरन्त बड़ी संकटापन्न हो गई परन्तु विलियम का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। फ्रान्स ने कड़ा रुख अख्यार किया। जर्मनी ने मोरक्को के फ्रान्स, जर्मनी तथा स्पेन के बीच विभाजन की ओर संकेत किया परन्तु फ्रान्स ने उत्तर दिया कि मोरक्को में फ्रान्स की सत्ता सर्वोच्च मानी जा चुकी थी। फ्रान्स विस्तार की बातों पर तो बातचीत कर सकता था परन्तु ऐसी कोई बात नहीं कर सकता था जिससे फ्रान्स के सम्मान एवं गौरव को किसी प्रकार की क्षति पहुँचे।‡ इंगलैंड ने भी फ्रान्स का पूरा समर्थन किया। प्रधान मंत्री लॉयड जॉर्ज ने २१ जुलाई को मेन्शन हाउस (Mansion House) में भाषण देते हुए कहा कि 'यदि हमारे लिये ऐसी स्थिति पैदा कर दी गई कि जहाँ इंगलैंड के हित अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं वहाँ उसे विभिन्न राष्ट्रों की मंत्रणा में नगण्य समझ कर ही शान्ति कायम रखी जा सकती है तो मैं पूरे ज़ोर से कह देना चाहता हूं कि उस कीमत पर शान्ति इतना बड़ा अपमान होगा जो इंगलैण्ड के समान महान् देश के लिये असह्य होगा।' पार्लामेण्ट के विरोधी दल के नेता लॉर्ड बाल्फ़ोर ने भी जर्मनी को चेतावनी देते हुए कहा, कि 'यदि ऐसे कोई लोग हैं जो यह समझते हों कि हम लोग अपनी आन्तरिक कठिनाइयों के कारण योरोप के नकशे से मिट जाने के लिये तैयार हो जायेंगे तो उन्हें समझ लेना चाहिए कि अंग्रेज लोगों के स्वभाव तथा विरोधी दल की देश-भक्ति के विषय में उन लोगों के विचार गलत हैं।'

जर्मनी की स्थिति बड़ी कठिन हो गई। वह बहुत बढ़ गया था। राज-

* Holland Rose : The Development of the European Nations, Vol. II, p. 362.

‡ Marriott : Europe and Beyond, p. 212.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीतिक संकट के फल-स्वरूप जर्मनी में आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था और सैनिक, नौ-सैनिक तथा आर्थिक दृष्टि से जर्मनी में युद्ध छेड़ने के लायक तैयारी नहीं थी।* अतः उसे धौंस छोड़ कर फ्रांस से शान्तिपूर्वक बातचीत करनी पड़ी। अन्त में ४ नवम्बर १९११ को दोनों में संधि हो गई जिसके द्वारा जर्मनी ने मोरक्को पर फ्रान्स का वस्तुतः संरक्षण स्वीकार कर लिया और उसके बदले में फ्रान्स ने जर्मनी को फ्रेंच कांगो का आधा भाग दे दिया। इसके साथ ही फ्रान्स ने मोरक्को में सब राष्ट्रों के लिए व्यापार का द्वार खुला रखा। अगले वर्ष फ्रांस ने मोरक्को पर अपने संरक्षण की घोषणा की। जर्मनी को कांगो का उपजाऊ प्रदेश तो मिल गया परन्तु १९०५ के समान इस बार भी वह पराजित हुआ। उसका मुख्य उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। जिस प्रकार टेञ्जियर की घटना ने द्विराष्ट्र-मैत्री (Dual Entente) को सुदृढ़ बना दिया था उसी प्रकार एगेडिर की घटना ने त्रिराष्ट्र-मैत्री (Triple Entente) को निर्बल करने की जगह मजबूत कर दिया। इस घटना से जर्मनी में इंगलैंड के प्रति बड़ी नाराजी पैदा हो गई क्योंकि उसी की नाविक शक्ति के कारण वह फ्रांस को परास्त नहीं कर सका था। जर्मनों में, विशेष कर उग्र राष्ट्रवादियों में यह निश्चय ज़ोर पकड़ने लगा कि 'हमने फ्रान्स और ऑस्ट्रिया से तो निपटारा कर लिया है, अब इंगलैण्ड से निपटना है।'†

इटली का ट्रिपोली पर आक्रमण—

जर्मनी के दबने का एक कारण और भी था। मोरक्को में फ्रांस की स्थिति मजबूत होते हुए देख कर इटली डर रहा था कि फ्रांस कहीं ट्रिपोली को भी हस्तगत करने का प्रयत्न न करे। अतः उसने इटलीवालों के साथ दुर्व्यवहार तथा उसके व्यापार में हस्तक्षेप का बहाना लेकर ट्रिपोली पर आक्रमण कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति की दृष्टि से यह युद्ध बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि त्रिगुट से त्रिराष्ट्र-मैत्री की ओर जाने में इटली की यह पहली मञ्जिल थी।‡ ट्रिपोली पर आक्रमण करते समय उसने अपने मित्रों के हितों का बिल्कुल विचार नहीं किया था। अपने दो मित्रों में युद्ध छिड़ते देख कर और मुसलमानों को अपनी ओर मिलाने की योजना में विघ्न पड़ते देख कर विलियम बड़ा चिन्तित हुआ। इंगलैंड आदि ने इटली की इस कार्यवाई का विरोध नहीं किया और इंगलैण्ड ने तो टर्की की सेना को इजिप्ट में होकर निकलने भी नहीं दिया क्योंकि वह समझ रहा था कि यदि इंगलैण्ड की ओर से कोई प्रतिकूल

* Ketelbey : History of Modern Times, p. 392.

† Hearnshaw :Main Currents of European History, p. 293.

‡ Petrie : Diplomatic History, p. 305.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काम हुआ तो इटली, जिसके सम्बन्ध जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया के साथ शिथिल होते जा रहे थे, फिर जर्मनी की ओर झुक जायगा। अक्टूबर १९१२ में टर्की को सन्धि करके ट्रिपोली इटली के सुपुर्द कर देना पड़ा।

बाल्कन-युद्ध—

ट्रिपोली-युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि बाल्कन प्रायद्वीप के विभिन्न राज्यों को टर्की के साम्राज्य का बटवारा करने के लिये प्रोत्साहन मिला। रूस के पूर्ण समर्थन के साथ सर्बिया, बल्गारिया, ग्रीस तथा मॉन्टीनीग्रो ने एक संघ (Balkan League) बना कर टर्की के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया। योरोप की महान् सत्ताएँ युद्ध को रोकना चाहती थीं। उन्होंने रूस तथा ऑस्ट्रिया-हंगरी के द्वारा बाल्कन राज्यों को सूचना दी कि योरोप का राज्यमंडल ऐसे काम के विरुद्ध है जिसके द्वारा टर्की से झगड़ा हो और यदि युद्ध हुआ तो उसके परिणाम-स्वरूप जो यथास्थिति में परिवर्तन होगा उसका वह अनुमोदन नहीं करेगा। परन्तु युद्ध नहीं रुका और, जैसा हम देखेंगे, पहले युद्ध में टर्की की हार हुई और विजेता राष्ट्रों ने टर्की का प्रायः समस्त साम्राज्य छीन लिया। परन्तु लूट के बटवारे पर विजेता राष्ट्रों में युद्ध छिड़ गया जिससे लाभ उठा कर टर्की ने अपना कुछ प्रदेश वापस ले लिया।

बाल्कन-युद्धों का प्रभाव—

इन युद्धों के दौरान में रूस और ऑस्ट्रिया का मनोमालिन्य काफी बढ़ गया। दोनों युद्धों में सर्बिया विजयी रहा था और द्वितीय युद्ध में बल्गारिया को, जिसका समर्थन ऑस्ट्रिया कर रहा, बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी। १९१२ में रूस तथा ऑस्ट्रिया दोनों ने सैन्य तैयारी कर ली थी और वे बड़ी कठिनाई से रोके जा सके थे। इस संकट में इंगलैंड और जर्मनी परस्पर सहयोग करते रहे और उन्हीं के सहयोग के कारण यह युद्ध बढ़ कर योरोपीय युद्ध न बन सका।* जुलाई १९१३ में तो ऑस्ट्रिया-हंगरी के विदेश-मन्त्री ने जर्मनी तथा इटली के सामने योरोपीय युद्ध छिड़जाने का भय होने पर भी सर्बिया पर आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा था परन्तु दोनों ने उसका अनुमोदन नहीं किया,† और इस तरह से योरोप को महायुद्ध के संकट से बचा लिया। परन्तु जिस प्रकार १९०५ से १९११ तक मोरक्को के मामले ने जर्मनी और फ्रान्स की शत्रुता बढ़ाई थी उसी प्रकार संकटों का जो सिलसिला १९०८ में बाल्कन प्राय द्वीप में आरम्भ हुआ उसने रूस तथा ऑस्ट्रिया के बीच तनाव बहुत बढ़ा दिया। इस

*Petrie : Diplomatic History, p. 308.

†Slosson : Europe since 1870, p. 277.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकट को महायुद्ध में परिणत होने से रोकने में जर्मनी ने इंगलैण्ड का साथ अवश्य दिया था परन्तु इसका कारण शायद यही था कि जर्मनी की सैन्य तैयारी उस समय तक पूर्ण नहीं हो पाई थी। बाल्कन युद्धों के फल-स्वरूप सर्बिया और ऑस्ट्रिया के बीच तनाव बहुत बढ़ गया था। रूस सर्बिया का समर्थक था और जर्मनी ऑस्ट्रिया का मित्र था। ऑस्ट्रिया सर्बिया का सर्वनाश करने पर तुला हुआ था। ऐसी स्थिति में ऑस्ट्रिया सर्बिया के बीच निकट भविष्य में युद्ध छिड़ जाने तथा उसके फलस्वरूप जर्मनी तथा रूस के भी युद्ध में शामिल हो जाने से एक महान् योरोपीय युद्ध की आशंका बढ़ रही थी। ऐसी स्थिति में यदि महायुद्ध रुक सकता था तो उसी समय जब तक इंगलैण्ड और जर्मनी शान्ति के लिये सहयोग करते रहते।* इसी कारण इंगलैण्ड जहाँ एक तरफ फ्रान्स और रूस से अधिक घनिष्ठता क़ायम कर रहा था वहाँ दूसरी ओर जर्मनी के साथ मिल कर युद्ध रोकने का प्रयत्न भी कर रहा था। उसने जर्मनी से १९१२ में प्रस्ताव भी किया कि दोनों देश जंगी जहाज बनाना बन्द कर दें और बगदाद रेलवे के सम्बन्ध में तथा यदि पोर्तुगाल अपने अफ्रिकन उपनिवेशों को छोड़ना चाहे तो उनमें जर्मनी के भाग के सम्बन्ध में समझौता हो जाय। इंगलैण्ड से इस प्रस्ताव के साथ लार्ड हाल्डेन जर्मनी पहुँचा।† जंगी जहाजों के निर्माण के सम्बन्ध में तो कोई समझौता नहीं हो पाया परन्तु अन्य दोनों मामलों में दोनों पक्षों का सन्तोषप्रद समझौता हो गया। जून १९१४ में यह निर्णय हो गया कि जर्मनी बसरा तक रेल मार्ग बना ले और उसे मेसोपोटामिया में महत्वपूर्ण व्यापारिक रियायतें मिलें। इंगलैंड का प्रभाव फ़ारस की खाड़ी पर बना रहे ताकि उससे भारतीय साम्राज्य को कोई खतरा उत्पन्न न हो। इस प्रकार फ़ारस की खाड़ी में इंगलैंड की स्थिति सुरक्षित हो गई और बसरा तक समग्र मेसोपोटामिया जर्मन प्रभाव-क्षेत्र में पहुँच गया।‡ परन्तु यह समझौता भी महायुद्ध को नहीं रोक पाया। उसी महीने में सिराजिवो में ऑस्ट्रिया के युवराज आर्कड्यूक फ्रान्सिस फ़र्डिनेन्ड की हत्या हो गई जिसका दोष ऑस्ट्रिया के सम्राट ने सर्विया के मत्थे मढ़ा और उसके सामने असम्भव शर्तें पेश करके उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। जर्मनी ने भी रूस की सैन्य हलचल को देख कर ऑस्ट्रिया का साथ दिया और योरोपीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। महायुद्ध के के कारणों का विस्तृत वर्णन हम आगे करेंगे।

---

*Petrie : Diplomatic History, p. 308.

†Slosson : Europe since 1870, p. 279.

‡Petrie : Diplomatic History, p. 308.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १०

त्रिराष्ट्र-मैत्री (Triple Entente)

(१) इंगलैण्ड (१८९०-१९१४)

आयर्लैण्ड को स्वराज्य (Home Rule) देने के प्रश्न पर १८८६ में लिबरल दल में फूट हो गई थी और जोज़ेफ चेम्बरलेन तथा उसके अनुयायी 'लिबरल यूनियनिस्ट' के नाम से लिबरल पार्टी से अलग होकर कंज़र्वेटिव दल में शामिल हो गये थे। इसके बाद से १९०६ तक शासन कंज़र्वेटिव दल के हाथों में रहा, केवल बीच में १८९२ से १८९५ तक ग्लेडस्टन का चौथा लिबरल शासन रहा। कंज़र्वेटिव दल के काल में आयर्लैण्ड की समस्या, इजिप्ट तथा सूडान के झगड़ों तथा दक्षिणी अफ्रिका के डच गणतन्त्रों के साथ होने वाले संघर्ष के कारण सरकार का ध्यान आन्तरिक सुधारों की ओर से अधिकतर हटा रहा।

चेम्बरलेन की नई औपनिवेशिक नीति—

यह काल, जैसा हम देख चुके हैं, साम्राज्यवाद का था और इङ्गलैंड में उपनिवेशों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक समझा जाने लगा था। इस नये दृष्टिकोण का प्रधान प्रतिपादक जोज़ेफ चेम्बरलेन था जो उपनिवेशों के पक्ष में संरक्षण नीति का समर्थक था। वह चाहता था कि अन्य देशों के मुकाबिले में उपनिवेशों के साथ आयात-निर्यात कर में रियायत की जाय ताकि मूल देश और उपनिवेशों का एक प्रकार से आर्थिक संयोग हो जाय और उनके पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ट हो जाय। स्वशासित उपनिवेशों को अधिक निकट लाने की दृष्टि से १८८७ में लन्दन में उनके प्रतिनिधियों तथा इंगलैंड के प्रतिनिधियों का पहला औपनिवेशिक सम्मेलन हुआ। ऐसे ही सम्मेलन बाद में १८९४, १८९७, १९०२. १९०७ तथा १९११ में हुए। १९०७ में सम्मेलन का नाम बदलकर साम्राज्य सम्मेलन (Imperial Conference) कर दिया गया। कई लोग चाहते थे कि यह सम्मेलन केवल परस्पर परामर्श करने के लिये ही न हो, बल्कि उसे एक वास्तविक संघ में परिवर्तित कर दिया जाय जिसकी एक समान व्यवस्थापिका, न्याय-व्यवस्था, कर-नीति तथा नौ-सेना हो। परन्तु जनता पर इस योजना का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी तरफ से उदासीन रही।* किन्तु चेम्बरलेन की संरक्षण नीति ने कंज़र्वेटिव दल में फूट डाल दी। जब १९०५ में कंज़र्वेटिव प्रधान मन्त्री बालफ़ोर ने पदत्याग किया और नये निर्वाचन हुए तो कंज़र्वेटिव दल की हार हुई और लिबरल दल की अभूतपूर्व बहुमत से विजय हुई बीस साल से बाद उसके हाथों में फिर शक्ति आ गई और अगले दस वर्ष तक इंगलैण्ड में लिबरल दल का शासन रहा। इस निर्वाचन में एक महत्वपूर्ण बात यह भी हुई कि उसमें मजदूरों को ५१ स्थान मिले।†

नया उदारवाद—

परन्तु अब उदारवाद रसेल, पामर्स्टन, ग्लेडस्टन आदि का पुराना उदारवाद नहीं था जो आर्थिक व्यक्तिवाद का समर्थन करता था। देश में एक नई शक्ति-मजदूर दल का उदय हो चुका था और लिबरल दल को उसका मुकाबला करना था। उसके सामने उसे विवश होकर 'इंगलैंड की दशा की समस्या' की ओर ध्यान देना पड़ा, राज्य के हस्तक्षेप द्वारा जनता की अवस्था को सुधारने की दृष्टि से उसे समाजवादी प्रकृति के कई क़ानून बनाने पड़े और इस प्रकार पुराने उदारवाद का स्थान नये उदारवाद ने ले लिया। १९०६ में केम्पवेल बैनरमेन प्रधान मन्त्री बना था और उसके बाद १९०८ में हर्बर्ट एस्क्विथ प्रधान मंत्री बना परन्तु इन दोनों के मंत्रिमन्डलों में मुख्य व्यक्ति लॉयड जॉर्ज था जिसके प्रभाव तथा निर्देशन से बड़े-बड़े सामाजिक सुधार हुए।‡ सब से पहला महत्वपूर्ण सुधार मजदूरों को संतुष्ट करने के लिये किया गया। १९०१ में टाफ वेल (Taff Vale) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की हैसियत से लॉर्ड-सभा ने अपने निर्णय द्वारा ट्रेड यूनियन को उसके सदस्यों की हड़ताल से उत्पन्न क्षति की पूर्ति के लिये क़ानूनी तौर पर उत्तरदायी ठहराया था।§ इससे ट्रेड यूनियनों को बड़ा धक्का पहुँचा। १९०६ में एक क़ानून (Trade Disputes Act) बना कर लिबरल सरकार ने टाफ़ वेल-निर्णय को पलट दिया। उसी वर्ष एक दूसरे क़ानून (Workmen's Compensation Act) द्वारा कारखानों में आकस्मिक दुर्घटनाग्रस्त मजदूरों को मालिकों से हर्जाना दिलाने की व्यवस्था की गई। बेकारी की समस्या के समाधान के लिये भी एक क़ानून (Labour Exchange Act)

---

* Slosson : Europe since 1870, p. 96.

† Muir : A Short History of the British Commonwealth, Vol. II, p. 751.

‡ Slosson : Europe since 1870, p. 97.

§ Trevelyan : British History in the 19th Century and After, p. 437.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बनाया गया और एक दूसरे क़ानून (Trade Board Act) के द्वारा कुछ प्रकार के कारखानों में न्यूनतम वृद्धि निश्चित की गई। १९१२ में एक क़ानून द्वारा कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों के लिये भी यही व्यवस्था की गई। इन क़ानूनों के साथ ही बच्चों तथा वृद्धों के लाभ के लिए तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुधार के लिए भी क़ानून बने। एक क़ानून के द्वारा पाठशालाओं के निर्बल बालकों के लिये तीसरे पहर के मुफ्त भोजन की व्यवस्था हुई, उनके मुफ्त इलाज, मनोरंजन आदि के लिए भी प्रबन्ध हुआ। १९०८ में वृद्धावस्था में राज्य की ओर से पेन्शन देने के लिये भी एक क़ानून (Old Age Pensions Act) बनाया गया। मजदूरों के निवास-स्थानों में सुधार करने के लिये स्थानीय बोर्डों को एक क़ानून (Housing and Town Planning Act) द्वारा अधिकार दिया गया। १९१२ में एक राष्ट्रीय बीमा कानून (National Insurance Act) के द्वारा अधिकांश मजदूरों के स्वास्थ्य बीमे तथा बहुतसों के बेकारी-बीमे की व्यवस्था की गई। *

मज़दूर (लेबर) दल—

इंगलैंड में मार्क्स के समाजवाद का कभी अधिक ज़ोर नहीं हुआ, हाँ, उसकी प्रेरणा से १८८१ में एक छोटे से 'सामाजिक प्रजातन्त्रीय संघ' (Social Democratic Federation) का जन्म अवश्य हुआ था। इन समाजवादियों से अधिक महत्व इंगलैंड में 'फ़ेबियन' (Fabian) समाजवादियों का रहा जो कुछ सुशिक्षित व्यक्तियों का एक समाज था जिसके आरम्भिक नेताओं में बर्नार्ड शॉ, सिडनी वेब आदि लोग थे। वे क्रमिक सुधारों द्वारा समाजीकरण के समर्थक थे। परन्तु इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण ट्रेड यूनियन आन्दोलन था जो निरन्तर प्रगति कर रहा था और जिसमें सब प्रकार के मजदूर शामिल थे। १८९२ में उनके सदस्यों की संख्या १५ लाख थी परन्तु १९१३ में वह बढ़कर ४० लाख तक पहुँच गई थी। १८९३ तक ट्रेड-यूनियन आन्दोलन राजनीति से दूर रहा परन्तु उस वर्ष स्काटलैंड के खानों में काम करने वाले एक व्यक्ति कीयर हार्डी (Keir Hardie) ने एक 'स्वतन्त्र मज़दूर दल' (Indepnedent Labour Party) की स्थापना करके उसे राजनीति में प्रविष्ट किया। आरम्भ में तो इस दल की प्रगति बहुत धीमी रही,* परन्तु १९०१ के टाफ़ वेल

*Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II. p. 332.
१८९५ के निर्वाचन में उसने २८ उम्मेदवार खड़े किये थे जो सब हार गये। १९०० के निर्वाचन में उसके केवल दो उम्मेदवार चुने गये थे। Trevelyan : British History in the 19 th Century and After, p. 436.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णय ने उसमें नवीन प्राणों का संचार कर दिया। सरकार के इस आक्रमण ने ट्रेड यूनियनों, स्वतन्त्र मज़दूर दल, फ़ेबियन समाजवादियों तथा सामाजिक प्रजातन्त्र संघ सबको एक कर दिया और उन्होंने मिल कर 'मजदूर दल' (Labour Party) का निर्माण किया।* १९०६ के कानून से उन्हें बल प्राप्त हुआ उस वर्ष के निर्वाचन में उन्हें पार्लामेन्ट मे २९ में स्थान प्राप्त हुए और १९१० के निर्वाचन में उन्होंने ४२ स्थान प्राप्त कर लिये। इस प्रकार इंगलैंड की राजनीति में एक नई शक्ति का उदय हुआ उसने लिबरल दल को अपना पुराना रूप छोड़ कर नया रूप धारण करने तथा सामाजिक सुधार के लिये विवश कर दिया।

लॉयड जार्ज के बजट—

लिबरल दल ने इस नई शक्ति के प्रभाव से जितने सुधार किये उनमें से कई का कज़रवेंटिव लोगों ने भी समर्थन किया था परन्तु कई सुधारों का उन्होंने विरोध भी किया था। लार्ड-सभा पूर्ण रूप से कंज़र्वेटिव थी और देश तथा पार्लामेंट के लिबरल जनमत की उपेक्षा करती थी। अतः उसमें तथा लोक-सभा में स्वाभाविक विरोध था जिसने १९०९ में लायड जार्ज के बजट के प्रश्न पर बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया। लायड जार्ज अर्थ-मन्त्री था। नये सुधारों को कार्यान्वित करने के लिये बड़ी धनराशि की आवश्यकता थी और जर्मनी के साथ जो नाविक प्रतिस्पर्धा चल रही थी उसमें भी अपार धन-व्यय हो रहा था। अतः उसने १९०९ में लोक-सभा में जो बजट प्रस्तुत किया उसमें कई प्रकार के नये कर लगाये—उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ आय-कर; भारी उत्तराधिकार-कर, काम में न आने वाली भूमि पर कर (जिसका उद्देश्य बड़ी-बड़ी जायदादों को भंग करना था) मोटर-कार तथा अन्य विलासता की वस्तुओं पर कर आदि।§ लोक-सभा में तो बजट स्वीकृत हो गया परन्तु लार्ड-सभा ने उसे रद्द कर दिया, हालाँकि यह अर्थ-बिल था और परम्परा के अनुसार लार्ड सभा ऐसे बिलों में हस्तक्षेप नहीं करती थी। इस पर पार्लामेंट को भंग कर दिया गया और १९१० में नये निर्वाचन हुए जिसमें लिबरल दल की काफी क्षति हुई परन्तु मजदूर दल तथा आयर्लैंड के सदस्यों की सहायता से उसका लोक-सभा में बहुमत बना रहा। लायड जार्ज ने कुछ संशोधन के साथ फिर वही बजट पार्लामेंट में पेश किया और इस बार लार्ड-सभा को विवश होकर उसे स्वीकार करना पड़ा।

पार्लामेण्ट एक्ट—

अब लिबरल दलों ने लार्ड-सभा की शक्ति को कम करने के लिये एक

---

*Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 311.
Hayes and Cole : History of Europe, Vol. pp. 332-333.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिल पार्लामेन्ट में पेश किया परन्तु लॉर्ड सभा ने उसे रद्द कर दिया, जिस पर दिसम्बर (१९१०) में फिर दुबारा सामान्य निर्वाचन हुआ जिसका परिणाम पहले जैसा ही रहा। अब लॉर्ड-सभा को नये लॉर्ड बनाने की धमकी के सामने दबना पड़ा और उसने बिल को स्वीकार कर लिया। यह कानून (Parliament Act) इङ्गलैंड के वैधानिक इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा यह व्यवस्था की गई कि (१) लोक-सभा द्वारा स्वीकृत अर्थ बिल लॉर्ड-सभा की स्वीकृति के बिना ही कानून बन जायेंगे; (२) दूसरी प्रकार के बिल लॉर्ड-सभा की स्वीकृति के बिना क़ानून बन जायेंगे यदि लोक-सभा उन्हें लगातार तीन बार स्वीकार कर ले और पहली तथा तीसरी स्वीकृति के बीच में कम से कम दो वर्ष की अवधि बीत चुकी हो; (३) लोक-सभा के निर्वाचन (सात वर्ष की जगह) कम से कम प्रति पांच वर्ष में हों। इस कानून ने लॉर्ड-सभा के अधिकारों को बहुत कम कर दिया। अर्थ-बिलों पर उसे कोई अधिकार नहीं रहा और अन्य प्रकार के बिलों पर उसे केवल दो वर्ष का 'स्थगनकारी निषेधाधिकार' (Suspensive Veto) रहा। लोक-सभा का स्थान सर्वोच्च हो गया।

आयर्लैंड का सुधार बिल—

यह महत्वपूर्ण सुधार आयर्लैंड के सदस्यों के समर्थन से सम्भव हो सका था। लिबरल दल ने उन्हें स्वराज्य देने का वचन देकर अपनी ओर मिला लिया था। अब पार्लामेंट का सुधार करके लिबरल मन्त्रिमंडल ने पार्लामेंट में आयर्लैंड के लिये तीसरी बार सुधार बिल पेश किया जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव किये गये। आयर्लैंड के लिये एक पृथक् पार्लामेण्ट स्थापित हो; सन्धि, युद्ध सेना, पर-राष्ट्र सम्बन्ध, धार्मिक संस्थाओं आदि के मामलों में आयर्लैंड पर इंगलैंड का आधिपत्य रहे और शेष मामले आयर्लैण्ड की पार्लामेण्ट के हाथ रहें। इंगलैंड की पार्लामेंट में आयर्लैण्ड के सदस्यों की संख्या १०३ से घटाकर ४२ कर दी जाय।* यह बिल लोक-सभा ने स्वीकार कर लिया और दो वर्ष बाद लॉर्ड-सभा का विरोध होते हुये भी कानून बन गया, परन्तु वह कार्यान्वित नहीं हो सका। उत्तरी आयर्लैंड के अल्स्टर (Ulster) प्रान्त वालों ने उसका विरोध किया और कानून लागू करने पर सशस्त्र विद्रोह की धमकी दी। आयर्लैण्ड में स्थित अंग्रेजी सेना के अफसरों ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि यदि अल्स्टरवालों ने विद्रोह किया तो हम उनका दमन करने में अपनी सेनाओं का प्रयोग नहीं करेंगे। आयर्लैंडवाले भी अल्स्टर वालों के मुकाबले के लिये अपनी स्वयंसेवक सेना तैयार करने लगे और एक भीषण गृह-कलह के लक्षण दिखाई

* Slosson : Europe since 1870, p. 102.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देने लगे। इसी बीच में योरोपीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। ऐसे संकट के समय में गृह-कलह बड़ा अनिष्टकारी होता। इस दृष्टि से यह प्रश्न युद्ध की समाप्ति तक स्थगित कर दिया गया।

विदेश नीति—

उन्नीसवीं शताब्दी में इङ्गलैंड ने योरोप की महाद्वीपीय नीति में उसके पहले या उसके बाद के समय की अपेक्षा बहुत कम प्रमुख भाग लिया। इसका एक कारण तो यह था कि १८३७ में महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारूढ़ होने पर इंगलैंड का हेनोवर से सम्बन्ध टूट गया था और इस कारण उसे जर्मनी की राजनीतिक उलझनों में भाग लेने की आवश्यकता न रही। इसके अतिरिक्त देश के अन्दर की तथा बाहर की साम्राज्य सम्बन्धी समस्याएँ ही इतनी थीं कि सरकार तथा जनता का ध्यान अधिकतर उधर ही लगा रहा। १८१५ तक तो उसके वैदेशिक सम्बन्ध नेपोलियन के विरुद्ध होने वाले युद्ध द्वारा निर्धारित होते रहे और नेपोलियन को पराजित करने के लिये वह समय-समय पर योरोपीय राज्यों से मिलकर उसके विरुद्ध गुट बनाता रहा। १८१५ के बाद १८२७ में कैनिंग की मृत्यु तक फ्रेंञ्च-क्रान्ति तथा नेपोलियन के युद्धों से उत्पन्न समस्याओं के समाधान में तथा वियना-व्यवस्था को कायम रखने में वह ऑस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस के साथ सहयोग करता रहा परन्तु इसके साथ ही मेटरनिख की प्रतिक्रियावादी नीति का विरोध करता रहा। कैनिंग की मृत्यु के बाद से १८७४ में डिज़रेली के द्वितीय शासन के आरम्भ तक इंगलैंड योरोपीय समस्याओं से प्रायः दूर रहा। परन्तु कभी-कभी ग्रीस, बेल्जियम तथा इटली के राष्ट्रीय आन्दोलनों के सम्बन्ध में, या बाल्कन-समस्याओं के सम्बन्ध में वह हस्तक्षेप अवश्य करता रहा और चूंकि अकेले सफलतापूर्वक हस्तक्षेप करना असंभव था, इसलिये वह किसी न किसी के साथ सहयोग करता रहा। ग्रीस की स्वतन्त्रता के मामले में उसने रूस से और बेल्जियम की स्वतन्त्रता तथा क्रीमियन युद्ध के मामले में फ्रांस से सहयोग किया। १८७४ से उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक उसकी नीति साम्राज्यवाद की समस्या द्वारा निर्धारित रही और इस सम्बन्ध में ईजिप्ट तथा सूडान के मामले में फ्रांस के साथ तथा मध्य एशिया तथा सुदूर पूर्व में रूस के साथ काफी खटपट रही। जर्मनी, ऑस्ट्रिया या इटली के साथ कोई अनबन नहीं हुई। औपनिवेशिक समस्याओं के समाधान में जर्मनी के साथ उसका सहयोग रहा और १८७८ में रूस के विरुद्ध उसने ऑस्ट्रिया का साथ दिया। फिर भी उसने योरोपीय समस्याओं में कोई प्रमुख भाग नहीं लिया उसका हस्तक्षेप सदा अपने साम्राज्य के हितों की दृष्टि से हुआ। उसका सहयोग भी समय-समय पर आवश्यकतानुसार हुआ और उसने योरोपीय शक्तियों से कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थायी सम्बन्ध नहीं जोड़े। १८७० में जब फ्रान्स और प्रशा का युद्ध हुआ तो बेल्जियम की तटस्थता भंग होने पर शस्त्र उठाने की घोषणा करने के अतिरिक्त ग्लेड्स्टन ने कुछ नहीं किया। इस प्रकार कैनिंग की मृत्यु के बाद से शताब्दी के अन्त तक इङ्गलैण्ड अपनी महान् नाविक शक्ति के भरोसे से 'वैभवशाली एकान्तवास में ही बना रहा, यहाँ तक कि शताब्दी के अन्तिम बीस वर्षों में फ्रान्स तथा रूस से खटपट होते हुए भी सेलिसबरी ने जर्मनी, ऑस्ट्रिया तथा इटली के त्रिगुट से सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता नहीं समझी।*

परन्तु चेम्बरलेन जैसे कुछ राजनीतिज्ञ ऐसे थे जो इस एकान्तवास की कठिनाइयों से चिंतित थे। फ्रांस तथा रूस से तनातनी बढ़ती जा रही थी। १८९८ में फ़ेशोडा में तो फ्रांस के साथ युद्ध होते-होते बचा। दक्षिणी अफ्रीका में बोअर-युद्ध के समय उसे एकाकिता के कारण अपनी सुरक्षा की ओर से बड़ी भारी चिंता हो गई और एकांतवास का अंत करके अपने लिये मित्र खोजने की आवश्यकता महसूस होने लगी। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इंगलैण्ड की नीति में परिवर्तन हुआ और एकांतवास की नीति का अंत हुआ।

एकान्तवास का अन्त—

फ्रांस और रूस से खटपट होने के कारण इंगलैंड के लिये जर्मनी ही स्वाभाविक मित्र हो सकता था और इसी कारण वह आरम्भ में त्रिगुट की ओर झुकने लगा। बिस्मार्क उपनिवेशवाद का विरोधी था अतः उसे जर्मनी की ओर से कोई डर नहीं था और जब बाद में जर्मनी ने भी साम्राज्य-निर्माण में भाग लेना शुरू किया तो इंगलैण्ड ने उसका स्वागत किया था। १८७९ में ऑस्ट्रिया से संधि करने से पहले बिस्मार्क ने डिज़रेली से इंगलैण्ड के साथ पारस्परिक रक्षा-संधि करने का प्रस्ताव किया था। उस समय इंगलैंड योरोपीय झमेलों से दूर रहने की नीति के कारण संधि के लिये तैयार नहीं हुआ था, परन्तु अब उसकी ओर से संधि करने के प्रयत्न होने लगे। किन्तु बिस्मार्क के पतन के बाद जर्मनी की नीति बदल गई थी और इंगलैंड की तरफ विलियम का रुख मित्रतापूर्ण नहीं था। १८९६ में जेम्सन के धावे तथा १८९९-१९०२ के बोअर-युद्ध के समय में जर्मनी की विरोधी मनोवृत्ति स्पष्ट प्रगट हो गई। फिर भी इंगलैंड का उपनिवेश-मन्त्री चेम्बरलेन उससे मैत्री करने का प्रयत्न करता रहा और १८९८ तथा १९०१ में इस उद्देश्य से उसने सन्धि के प्रस्ताव भी किये परन्तु विलियम ने उन्हें ठुकरा दिया। उन्हीं दिनों जर्मनी अपनी थल-सेना का विस्तार कर रहा था और उसने एक महान् नौ-

*Trevelyan : British History in the 19th Century and After, p. 458.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेना के निर्माण का कार्य भी आरम्भ कर दिया था। जर्मनी की इस नाविक प्रतिस्पर्धा ने योरोपीय शक्तियों के प्रति इंगलैंड के रुख में परिवर्तन कर दिया।* और वह इस नये शत्रु के सामने अपने पुराने शत्रुओं से मेल करने के लिये तैयार हो गया। जर्मनी की एशिया माइनर में कान्सटेण्टीनोपल से बग़दाद तक रेल बनाने की योजना से इंगलैंड को अपने पूर्वीय साम्राज्य के लिये बड़ा भारी संकट मालूम होने लगा। इन सब आशंकाओं के साथ साथ क़ैसर विलियम तथा जर्मन अध्यापकों के उत्तेजक भाषणों ने इंगलैंड को और भी भयभीत कर दिया और बहुत से लोगों को तो ऐसा मालूम होने लगा मानों जर्मनी अँग्रेज़ों की शक्ति को नष्ट कर देना चाहता है।

जापान से सन्धि—

जब जर्मनी से मैत्री करने के सभी प्रयत्न विफल हो गये और उसका रुख अधिकाधिक शत्रुतापूर्ण होता गया तो इंगलैंड ने दक्षिण अफ्रिका का युद्ध समाप्त होते ही अन्य देशों जापान, फ्रांस तथा रूस से संधियाँ करने का विचार किया। सर्वप्रथम उसने जनवरी १९०२ में जापान से संधि की जिसके द्वारा दोनों ने कोरिया तथा चीन की स्वतंत्रता को स्वीकार किया परंतु इसके साथ ही किसी सत्ता के आक्रमण अथवा आंतरिक संकट के कारण इन देशों में उनके हितों की हानि की सम्भावना होने पर दोनों ने एक दूसरे को हस्तक्षेप करके अपने हितों की रक्षा करने का अधिकार दे दिया। यह भी निर्णय हुआ कि यदि इस प्रकार अपने हितों की रक्षा करने में किसी को युद्ध करना पड़ा तो दूसरा मित्र तटस्थ रहेगा परंतु यदि किसी को दो शक्तियों से युद्ध करना पड़ा तो दूसरा मित्र उसकी सहायता करेगा।† इस संधि से इंगलैंड की मित्र-हीन अवस्था का अंत हो गया और अब वह प्रशांत महासागर में अपने हितों की रक्षा के लिये उधर एक बड़ी नाविक सेना रखने की चिंता से मुक्त हो गया।

फ्रान्स से मैत्री—

जापान से संधि करना तो सरल था क्योंकि वह भी एकाकी होने के कारण मित्र की तलाश में था परंतु फ्रांस तथा रूस से संधि करना सरल नहीं था। किंतु यह कार्य फ़ेशोडा के झगड़े के समय सूडान के विषय में समझौता हो जाने से सरल हो गया था क्योंकि उससे यह प्रगट हो गया कि इसी प्रकार अन्य झगड़ों का भी निपटारा किया जा सकता है।

---

*Trevelyan : British History in the 19th Century and After, p. 459.

†Petrie : Diplomatic History, p. 272.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के बाद (१९०१) सप्तम एडवर्ड के सिंहासनारूढ़ होने तथा .फ्रांस में १८९८ में देलकासे के विदेश-मन्त्री बन जाने से भी सरलता हो गई। एडवर्ड .फ्रांस का प्रेमी और उसके साथ मैत्री का समर्थक था। .फ्रांस से मित्रता करने की नीति तो उसके मन्त्रियों की ही थी और उसमें उसका कोई भाग नहीं था।* परन्तु उसकी .फ्रांस की मित्रतापूर्ण यात्राओं से मैत्री के लिये अनुकूल वातावरण तैयार हो गया। उधर देलकासे जर्मनी को .फ्रांस का कट्टर शत्रु समझता था और औपनिवेशिक क्षेत्र में हानि करके भी इंगलैंड की मित्रता आवश्यक समझता था।† ऐसी दशा में दोनों देशों में मित्रता सम्भव हो सकी। मई १९०३ में एडवर्ड .फ्रांस पहुँचा और जुलाई में फ्रेञ्च राष्ट्रपति लोबे (Loubet) अपने विदेश-मन्त्री देलकासे के साथ एडवर्ड से भेंट करने इंगलैण्ड गया। इस भेंट से लाभ उठाकर देलकासे ने लॉर्ड लेन्सडाउन (इंगलैण्ड के विदेश-मन्त्री) से इंगलैण्ड के साथ जितने भी झगड़े थे उनके विषय में बातचीत की। ये झगड़े अफ्रिका, अमेरिका तथा एशिया में कई जगह थे परन्तु उन सबका निपटारा हो गया। इंगलैंड ने .फ्रांस को पश्चिमी अफ्रिका में गेम्बिया तथा नाइजर प्रदेशों में तथा गिनी में कई रियायतें दीं जिनके बदले में .फ्रांस ने न्यूफाउन्डलैण्ड के समुद्र तट से मछली मारने के अपने कुछ अधिकार त्याग दिये।‡ इसी प्रकार पूर्वी एशिया में स्याम, अफ्रिका में जेञ्जीबार और मेडागास्कर तथा न्यू हेब्रिडीज़ द्वीप सम्बन्धी छोटे-छोटे झगड़े भी दूर कर लिये गये। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण समझौता उत्तरी अफ्रिका के सम्बन्ध में हुआ। फ्रांस ने ईजिप्ट में इंगलैंड के कामों में रुकावट न डालने का वचन देकर वहाँ इंगलैंड का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इसके बदले में इंगलैंड ने मोरक्को में फ्रांस के हितों और दावों को स्वीकार कर लिया। फ्रांस ने स्पेन से भी समझौता कर लेने का वचन दिया, परंतु इस सम्बन्ध में जर्मनी से समझौता करने की कोई चर्चा नहीं हुई। इसके साथ ही .फ्रांस ने मोरक्को पर पूर्ण अधिकार कर लेने की दशा में जिब्राल्टर के सामने तट की क़िलाबंदी न करने का भी वचन दिया।$ इन दोनों समझौतों के साथ ही दोनों ने एक मध्यस्थता-सन्धि करके भविष्य में उत्पन्न होने वाले उन सब झगड़ों का, जिनसे

---

* Trevelyan : British History in the 19th Century and After, p 459.

† Slosson : Europe since 1870, p. 246.

‡ Holland Rose : The Development of the European Nations, Vol. II, p. 340.

$ Brogan : The Development of Modern France, p. 395.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्र के आधार-भूत हितों या गौरव को क्षति नहीं पहुँचती हो, मध्यस्थ द्वारा निर्णय कराना स्वीकार किया।*

इन झगड़ों के दूर हो जाने से इंगलैंड और फ्रांस के बीच 'हार्दिक मैत्री' (Entente Cordiale) हो गई। यह मित्रता भी राजनीतिक अथवा सैनिक सहयोग के लिये बंधनकारी कोई नियमानुकूल संधि नहीं थी। विभिन्न मामलों के सम्बंध के विभिन्न लिखित समझौते हुए थे परंतु उनसे आगे कुछ नहीं हुआ था। पारस्परिक सम्बंध अच्छे हो जाने से भविष्य में दोनों देशों में आवश्यकता पड़ने पर सहयोग सरल हो गया और सहयोग हुआ भी परन्तु दोनों में से किसी ने भी सहयोग के लिये वचन नहीं दिया था। यह मैत्री जर्मनी के विरुद्ध भी नहीं थी और जर्मनी के प्रधान-मन्त्री ब्यूलो ने उसका स्वागत भी किया था। किंतु मोरक्को-सम्बन्धी समझौते की गुप्त शर्तें मालूम होने पर वह बहुत रुष्ट हुआ और, जैसा हम देख चुके हैं; उसने इस मैत्री को भंग करने का प्रयत्न भी किया किन्तु बात उल्टी रही। जनवरी १९०६ में जब कि युद्ध की आशंका दिखाई देने लगी तो इंगलैण्ड और फ्रांस के बीच सैनिक सहयोग के सम्बंध में बातचीत भी हुई जिसके अनुसार युद्ध छिड़ने पर इंगलैंड से फ्रांस को सेना भेजने के लिये एक पूर्ण योजना तैयार हुई जो १९१४ में काम आई।†

रूस से मैत्री—

फ्रांस से मैत्री करने के बाद इङ्गलैण्ड ने रूस से मैत्री करने का प्रयत्न किया। रूस के साथ भी कई झगड़े थे। बाल्कन प्रायद्वीप में तो बल्गारिया के मामले (१८८७) के बाद से दोनों में तनाव कम हो गया परंतु सुदूर पूर्व में तथा मध्य और पश्चिमी एशिया में दोनों के बीच वैमनस्य बढ़ रहा था। रूस, अफ़ग़ानिस्तान में अँग्रेजों के विरुद्ध षडयन्त्र कर रहा था, तिब्बत में भी वह अपना प्रभाव बढ़ा रहा था और फ़ारस तथा फारस की खाड़ी पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिये भी साज़िश में लगा हुआ था। १९०२ में जापान के साथ इङ्गलैंड ने जो संधि की थी उससे भी वह चिढ़ रहा था। दोनों में पारस्परिक वैमनस्य इतना अधिक था कि रूस-जापान के युद्ध के दौरान में एक साधारण सी घटना पर दोनों में युद्ध की नौबत आ गई थी परन्तु फ्रांस के प्रभाव से युद्ध होते-होते रुक गया। बात यह हुई थी कि रूसी बेड़ा पूर्व की

---

* Muir : A Short History of the British Commonwealth, Vol. II, p. 729.

† Trevelyan : British History in the 19th Century and After, p. 661.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर जाने के लिए जब उत्तरी सागर में से निकल रहा था। (अक्टूबर १९०४) तो उसे मार्ग में इङ्गलैण्ड के कुछ मछली मारने वाले छोटे-छोटे जहाज़ मिले। रूसियों ने यह सन्देह करके कि उनमें जापान की टॉरपीडो किश्तियाँ छिपीं हुई थीं, उन पर गोलाबारी की जिसमें कई आदमी मारे गये। इंगलैण्ड में इस घटना से बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ परन्तु सरकार ने मामला एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन के सुपुर्द कर दिया जिसने रूसी बेड़े के अफ़सर का दोष बतलाया। रूस को क्षमा माँगनी पड़ी और मछुओं को हर्जाना देना पड़ा। उन्हीं दिनों जर्मनी के सम्राट् तथा रूस के ज़ार के बीच जो गुप्त बातचीत चल रही थी। उससे इँगलैंड में रूस के प्रति शंका बढ़ रही थी। ज़ार स्वयं जर्मनी की ओर झुक रहा था। इतनी विपरीत परिस्थिति होते हुए भी लॉर्ड ग्रे ने जो नये लिबरल मन्त्रिमण्डल में विदेश-मन्त्री था, लार्ड लैन्सडाउन के समान रूस के साथ समझौता करने का प्रयत्न किया। जापान से परास्त होने के बाद रूस ने मंचूरिया पर अधिकार जमाने का विचार छोड़ कर जापान से समझौता करने की नीति स्वीकार कर ली थी जिससे इँगलैण्ड के साथ समझौता होने की सम्भावना बढ़ गई थी। उधर रूस में १९०५ में क्रान्ति हो चुकी थी, सम्राट् ने एक विधान भी प्रदान किया था। और प्रथम ड्यूमा का अधिवेशन भी हो चुका था। इन सब बातों से भी अंग्रेजों में रूस के प्रति अभी तक जो अरुचि थी वह बहुत कुछ दूर होगई थी।* लेन्सडाउन के प्रयत्न सफल हुए और १९०७ में सभी झगड़ों के विषय में समझौता हो गया। दोनों ने तिब्बत की अखण्डता को क़ायम रखने और उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। इंगलैण्ड ने अफ़गानिस्तान को स्वतन्त्र रहने देना स्वीकार किया और रूस ने उसकी विदेश नीति पर इंगलैण्ड का नियन्त्रण मान लिया। फ़ारस के विषय में यह निर्णय हुआ कि उत्तरी फ़ारस रूस के प्रभाव-क्षेत्र में रहे और दक्षिणी फ़ारस इंगलैंड के प्रभाव-क्षेत्र में। इन दोनों क्षेत्रों के बीच में एक तटस्थ क्षेत्र रहा जिसमें दोनों देशों को रियायतें प्राप्त करने का अधिकार रहा।† इस प्रकार इंगलैण्ड और रूस के झगड़ों का अन्त हुआ और दोनों देशों में मैत्री हो गई। फ्रान्स-रूस की सन्धि, इंगलैन्ड-फ्रान्स की मैत्री तथा इंगलैंड-रूस की मैत्री ये तीनों मिलकर त्रिराष्ट्र की मैत्री (Triple Entente) कहलाते हैं। ध्यान रहे कि यह मैत्री भी कोई राजनीतिक

---

* Mowat : Contemporary Europe and Overseas, p. 152.

† यह समझौता फ़ारस की खाड़ी के सम्बन्ध मे नहीं था। वहाँ इंगलैण्ड की स्थिति जैसी की तैसी बनी रही। Gooch : History of Modern Europe, p. 393.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अथवा सैनिक सन्धि नहीं थी। परन्तु, जैसा हम फ्रान्स के सम्बन्ध में कह चुके हैं, मैत्री हो जाने से इन देशों में आवश्यकता पड़ने पर पारस्परिक सहयोग सरल हो गया।

इस प्रकार इंगलैण्ड ने अपने पुराने शत्रुओं से मैत्री करके अपनी ख़तरनाक एकाकिता का अन्त कर लिया। इन शत्रुओं की मैत्री को देख कर द्वितीय विलियम बड़ा चिन्तित हुआ और शिकायत करने लगा कि शत्रु उसे चारों ओर से घेरने का प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु इंगलैंड ने इस पर भी, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, जून १९१४ तक एशिया तथा अफ्रिका में रियायतें देकर जर्मनी के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न किया। बाल्कन प्रदेश के मामलों में भी ग्रे ने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध बाल्कन या स्लाव गुट के निर्माण में भी बाधा डाली और कॉन्स्टेन्टीनोपल में जर्मनी के बढ़ते हुए प्रभाव का विरोध करने से इन्कार करके अपनी ओर से जर्मनी की शंकाओं तथा झगड़े के प्रत्येक कारण को दूर करने की कोशिश की।* जर्मनी अपनी नाविक शक्ति बढ़ाता जा रहा था और समय-समय पर योरोप के सामने युद्ध का डर खड़ा करता रहता था परन्तु फिर भी इंगलैंड योरोप के झमेलों से यथाशक्ति दूर रहने की ही सोचता रहा और उसने त्रिराष्ट्र-मैत्री को कभी नियमानकूल सन्धि का रूप देने का प्रयत्न नहीं किया।

(२) फ्रान्स (१८९०-१९१४)

बिस्मार्क के पतन के समय तक तृतीय गणतन्त्र काफ़ी मज़बूत हो गया था और बूलाँजे की महत्वाकाँक्षा से उत्पन्न भयंकर संकट पर विजय प्राप्त करके सुरक्षित हो गया था। व्यवसाय तथा व्यापार उन्नति पर था और एक विशाल साम्राज्य का निर्माण भी हो चुका था। देश में सार्वजनिक शिक्षा की भी उन्नति हो रही थी और इन सब बातों से गणतन्त्र सुदृढ़ एवं सुसंगठित होता जा रहा था। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि मानों तृतीय गणतन्त्र का जन्म बुरे मुहूर्त में हुआ था। बूलाँजे के संकट से मुक्त होने के बाद शीघ्र ही उसे एक नये संकट का सामना करना पड़ा।

द्रेफुस का मामला—

बूलाँजे की लोकप्रियता का एक कारण उसका यहूदी-विरोधी प्रचार भी

---

* Trevelyan : British History in the 19th Ceutury and After, p. 463.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था।* इस प्रचार का प्रभाव पादरियों तथा सेना के अधिकारियों पर भी हुआ और उन्होंने एक फ्रेंच यहूदी कप्तान एल्फ्रैड द्रे फुस (Alfred Dreyfus) को अपनी यहूदी-विरोधी भावना का शिकार बनाया। अक्टूबर १८९४ में द्रे फुस चुपचाप गिरफ्तार कर लिया गया और सैनिक अदालत के सामने उसके स्वहस्त-लिखित एक पत्र के आधार पर सेना के गुप्त रहस्यों को दूसरे राष्ट्र (सम्भवतः जर्मनी) को बेचने का अभियोग चलाया गया। मुकद्दमे की जाँच गुप्त रूप से हुई और वह दोषी ठहराया गया। उसे सेना से बरखास्तगी तथा आजन्म कारावास का दन्ड दिया गया। वह तुरन्त ही दक्षिण अमेरिका के उत्तरी तट पर डेविल्स आइलैंड (Devil's Island) को अपनी सज़ा काटने के लिये भेज दिया गया।

द्रे फुस ने मुकद्दमे की जाँच के समय अपने को बराबर निर्दोष बताया था। उसके मित्रों ने भी उसके साथ किये गये व्यवहार को घोर अन्याय कह कर उसका विरोध किया, किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु १८८६ में सेना के खुफिया-विभाग के अध्यक्ष कर्नल पिक्वार्त (Picquart) को पता चला कि जिस पत्र के आधार पर द्रे फुस को दंड दिया गया था वह उसका लिखा हुआ नहीं, वरन् सेना के एक दुश्चरित्र अफसर मेजर एस्तरहेज़ी (Esterhazy) का लिखा हुआ था। जब उसने यह सूचना अपने उच्च अधिकारियों को दी और मुकद्दमे की फिर से जाँच करने का अनुरोध किया तो उन्होंने यह सोचकर कि यदि सैनिक न्यायालय का निर्णय गलत प्रमाणित हुआ तो सेना की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचेगी, मामले को दबा दिया परन्तु जब पिक्कार्त ने अभियोग की फिर से जाँच करने का आग्रह किया तो उसे हटा दिया गया और उसकी जगह कर्नल हेनरी नियुक्त किया गया।

इस पर मामला संगीन हो गया और उसने एक भीषण सामाजिक, राजनीतिक एवं वैधानिक संघर्ष का रूप धारण कर लिया। समस्त राष्ट्र विभक्त हो गया। सेना, चर्च तथा राजसत्तावादी लोग द्रेफुस की सज़ा को ठीक बतला-कर देश की उसके नाना प्रकार के शत्रुओं—'यहूदियों, फ्रीमेसनों, प्रोटेस्टेंटों, इंगलैंड, त्रिगुट, समाजवादियों, अराजकतावादियों, धर्म, राष्ट्रध्वजा तथा समाज के शत्रुओं के गुट'—से रक्षा करने के लिये एक हो गये और द्रेफुस का पक्ष लेने वालों पर कानून, व्यवस्था, सम्पत्ति, धर्म तथा देशभक्ति के शत्रु होने का दोष लगाने लगे। यह मामला रूढ़िवादिता और प्रगति, निरंकुशता और क्रान्ति, दुराग्रह तथा विचार-स्वातन्त्र्य, चर्च तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति; सत्ता तथा स्वतन्त्रता के बीच एक महान् संघर्ष बन गया।'†

---

* Marriot : A Short History of France, p. 252.
† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 364,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्रे.फुस का पक्ष प्रख्यात उपन्यासकार एमिले ज़ोला, अनातोले फ्रान्स, क्लीमेन्सी जैसे बड़े-बड़े साहित्य-सेवियों तथा गणतन्त्रीय राजनीतिज्ञों ने लिया। समस्त गणतन्त्रीय लोगों, प्रोटेस्टैंटों, मज़दूर दल तथा साम्यवादी लोगों ने भी उनका साथ दिया। ज़ोला ने सैनिक न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध अन्याय ही नहीं, बेईमानी का दोष लगाते हुए समाचार-पत्रों में एक निर्भीक पत्र प्रकाशित किया परन्तु सरकार ने उस पर बदनामी करने का अभियोग लगा कर उसे एक वर्ष के कारावास का दंड दिया जिससे उसने देश से भाग कर मुक्ति प्राप्त की।

किन्तु १८९९ से स्थिति ने पलटा खाया। कर्नल हेनरी ने द्रे.फुस के मामले में एक ज़ाली दस्तावेज़ तैयार करना स्वीकार करके आत्महत्या करली। ऐस्तरहेज़ी भी इसी प्रकार अपना अपराध स्वीकार करके देश छोड़ कर भाग गया। इस भंडाफोड़ को देख कर वाल्डेक-रूसो के नये मन्त्रिमन्डल ने अभियोग की दुबारा जाँच करने का आदेश दिया। इस आदेश से शासन के इस मूलभूत सिद्धान्त का पालन हुआ कि सेना नागरिक शासन के नियन्त्रण में रहनी चाहिये। इस सारे मामले की जड़ में यही प्रश्न था और इसी कारण सेना के अधिकारी अभियोग की फिर से जाँच करने का विरोध कर रहे थे। द्रेफुस वापस .फ्रान्स लाया गया और अगस्त १८९९ में उसके मुक़दमे की फिर जाँच हुई परन्तु सेना के अफसर उसे फिर से दोषी प्रमाणित करने पर तुले हुए थे। जाँच में अत्यन्त धांधली की गई और वह पुनः दोषी ठहराया गया परन्तु 'दोष कम करने वाली परिस्थिति' के आधार पर उसकी सजा घटाकर दस वर्ष की कर दी गई। इस पर राष्ट्रपति ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके उसे क्षमा करके मुक्त कर दिया। यह निर्णय एक प्रकार का समझौता था क्योंकि इससे सेना के गौरव की रक्षा होगई और उसके साथ ही नागरिक सरकार की सर्वोच्च सत्ता पुनः स्थापित होगई।* परन्तु इससे कोई पक्ष सन्तुष्ट नहीं हुआ। द्रे.फुस के विरोधी राष्ट्रपति से नाराज हो गये। द्रे.फुस और उसके पक्षपोषक क्षमा नहीं, निर्दोषिता की घोषणा चाहते थे। अन्त में १९०६ में द्रेफुस के दल की विजय हुई जब कि फ्रान्स के सर्वोच्च न्यायालय (Court of Cassatiou) ने द्रे.फुस के अभियोग को निराधार बतला कर और सैनिक न्यायालय पर उसके साथ घोर अन्याय करने का दोष लगा कर उसे निर्दोष घोषित किया। सरकार ने उसे पुनः सेना में नियुक्त करके और उसकी पदोन्नति करके मेजर बना दिया तथा जिस स्थान पर वह गिरफ्तार किया गया था वहीं उसे सम्मानित उपाधि प्रदान की गई। कर्नल पिक्वार्त ब्रिगेडियर जनरल बनाया गया और वह

* Mowat : Contemporay Europe and Overseas, p. 42.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाद में युद्ध-मन्त्री बना। जो अफसर इस षड्यन्त्र में शामिल थे वे सब बरखास्त कर दिये गए।*

द्रे.फुस के मामले का महत्व—

यह मामला आरम्भ में साधारण होते हुए भी, जैसा हम बतला चुके हैं, धीरे-धीरे बड़ा महत्वपूर्ण और गणतन्त्र के लिये जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था। द्रे.फुस के अपराध या उसकी या निर्दोषिता का प्रश्न तो दब गया था और विभिन्न व्यक्तियों एवं दलों ने इस मामले को अपने स्वार्थ की पूर्ति का साधन बना लिया था। यहूदी विरोधी लोगों ने उसका उपयोग जनता को यहूदियों के विरुद्ध भड़काने में किया और पादरी लोग भी उनमें शामिल हो गये। राजसत्तावादियों को यह कहने का मौका मिला कि गणतन्त्र देशद्रोहियों का जनक है और इस कारण उसे नष्ट कर देना चाहिए। इसके विपरीति द्रे.फुस के पक्ष में वे सब लोग थे जो जाति-द्रोह को बर्बरता समझते थे, जो यह विश्वास करते थे कि सेना नागरिक सत्ता के आधीन होनी चाहिये, जो इस मामले को गणतन्त्र पर गुप्त घातक आक्रमण समझते थे और जो यह विश्वास करते थे कि पादरियों को राजनीति से अलग रहना चाहिये।† सारांश में द्रे.फुस के विरोधी सब गणतन्त्र के विरोधी थे और उसके समर्थक गणतन्त्र के समर्थक थे। द्रेफुस की विजय का अर्थ था गणतन्त्र के शत्रुओं की पराजय, सेना पर नागरिक सत्ता की विजय और राजसत्तावादियों के अन्तिम गढ़—सेना—पर गणतंत्र का सफल आक्रमण।‡ इस मामले ने गणतन्त्र को मज़बूत कर दिया। उस पर इस भीषण आक्रमण को देख कर विभिन्न प्रकार के गणतन्त्रीय लोग अपने मतभेदों को भूल कर एक हो गये और सेना तथा चर्च के राजनीतिक प्रभाव को नष्ट करने पर तुल गये। समस्त राजसत्तावादियों को सेना से निकाल कर उनका प्रभाव तो आसानी से कम कर दिया गया परन्तु चर्च के साथ उन्हें बड़ा लम्बा संघर्ष करना पड़ा।

चर्च और राज्य का सम्बन्ध-विच्छेद—

रोमन केथोलिन चर्च आरम्भ से ही गणतन्त्र का विरोधी था। गेम्बेता बहुत पहले १८७८ में उसे गणतन्त्र का प्रधान शत्रु घोषित कर चुका था। प्रश्न केवल धार्मिक ही नहीं, आर्थिक एवं राजनीतिक भी था। फ्रान्स में रोमन केथोलिक भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों की अनेक संस्थायें थीं जिनके पास अपार सम्पत्ति थी। १८५० के आसपास उनकी सम्पत्ति ५ करोड़ फ्राङ्क के लगभग थी,

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 364.
† Hazen : Modern European History, p. 400.
‡ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 364.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८८० में वह ७० करोड़ के लगभग हो गई थी और १९०० में तो बढ़ कर १ अरब फ्राङ्क के लगभग पहुँच गई थी।* यह अपार सम्पत्ति व्यवसाय में बिलकुल काम में नहीं आती थी और यह बात राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिये बड़ी अनिष्टकारी थी। चर्च के विरुद्ध इससे भी अधिक आपत्तिजनक बात यह थी कि पादरी लोग अपनी पाठशालाओं में तथा अपने उपदेशों में गणतन्त्र तथा उसके आधारभूत सिद्धान्तों—स्वतन्त्रता एवं समानता—के प्रति घृणा का प्रचार करते थे और जनता को गणतन्त्र विरोधी बनाते थे। गणतन्त्र इस बात को कभी सहन नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त, जैसा हम देख चुके हैं, पादरी वर्ग राजसत्तावादी था और सदैव उनका समर्थन किया करता था। बूलाँजे के आन्दोलन में उन्होंने बड़ी सहायता की थी और पोप तेहरवें लियो के आदेश के प्रतिकूल उन्होंने द्रेफुस के विरोध में भी अपना पूरा ज़ोर लगाया था। चर्च की इन कार्रवाइयों से गणतन्त्र की रक्षा करना आवश्यक था और प्रधान-मंत्री वाल्डेक-रूसो ने, जो गेम्बेता का अनुयायी था, १ जुलाई १९०१ को चर्च से गणतंत्र को रक्षा करने के लिये एक कानून (Law of Associations) बना कर पहला कदम उठाया, इस क़ानून के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि कोई भी धार्मिक संस्था पार्लामेंट की स्वीकृति प्राप्त किये बिना कायम नहीं रह सकती और जिन संस्थाओं ने पार्लामेंट की अनुमति प्राप्त न की हो उनका कोई सदस्य फ्रान्स में शिक्षा का कार्य न कर सके। बहुत सी संस्थाओं ने पार्लामेण्ट से अनुमति प्राप्त करने से इन्कार कर दिया और बहुत सी संस्थाओं को जिन्होंने प्रार्थना की, अनुमति नहीं मिली। इसका परिणाम यह हुआ कि वे सब संस्थायें बन्द कर दी गईं, उनकी सम्पत्ति जब्त करली गई और उनके शिक्षणालय बन्द कर दिये गये। हजारों भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों को शिक्षण-कार्य छोड़ना पड़ा। १९०४ में एक कानून और बनाया गया जिसके अनुसार समस्त धार्मिक संस्थाओं को, स्वीकृत संस्थाओं को भी, दस वर्ष के अन्दर शिक्षण-कार्य बन्द करने का आदेश दिया गया। इस प्रकार सार्वजनिक शिक्षा चर्च के प्रभाव से मुक्त कर दी गई और उसकी व्यवस्था सरकार ने अपने हाथों में ले ली।

इसके बाद सरकार ने दूसरा कदम उठाया। इस समय तक चर्च और राज्य के सम्बन्ध का आधार वह समझौता था जो १८०१ में नेपोलियन ने पोप के साथ किया था। सरकार ने दिसम्बर १९०५ में एक क़ानून (Act of Separation) बनाकर उस समझौते को रद्द कर दिया और चर्च का राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। राज्य ने पादरियों को वेतन देना बन्द कर दिया

---

* Hazen : Modern European History, p. 400.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और इसके साथ ही उनकी नियुक्ति से भी कोई सरोकार नहीं रखा परंतु पुराने पादरियों को पेन्शन देने की व्यवस्था की गई और नये पादरियों को जिन्होंने थोड़े ही समय तक काम किया था, कुछ रुपया दिया गया। १७८९ के बाद से चर्च ने जो सम्पत्ति प्राप्त कर ली थी वह ज़ब्त कर ली गई किंतु राज्य का प्रयोजन समस्त सार्वजनिक धार्मिक कार्य बंद करना नहीं था। अतः इस क़ानून के द्वारा यह भी व्यवस्था की गई कि जब्त किये हुए गिरजाघर गृहस्थ केथोलिकों की समितियों (Associations of Worship) को दे दिये जायँ जो पादरियों से राज्य के कानूनों का पालन करने का वचन लेकर उन्हें धार्मिक कार्य के लिये लौटा दें।* परम्परा से यह नियम चला आता था कि चर्च की सम्पत्ति की व्यवस्था पादरी ही करें, फिर भी बहुत से केथोलिक लोग समितियाँ बनाने के लिये तैयार हो गये। परंतु इसी समय नये पोप दसवें पायस ने हस्तक्षेप किया और इस कानून की कड़ी निन्दा करके उसे अस्वीकृत कर दिया। इस पर स्थिति बड़ी खराब हो गई। पादरियों ने नये कानून का विरोध किया और मरने-मारने पर उतारू हो गये। ऐसा मालूम होने लगा मानो पुलिस समस्त गिर्जे बंद कर देगी और धार्मिक कार्य बंद हो जायगा। परंतु सरकार केथोलिकों की भावनाओं को अधिक चोट नहीं पहुँचाना चाहती थी। उस समय समाजवादी ब्रियाँ (Briand) धर्म-मन्त्री था उसने पार्लामेंट को कुछ रियायतें देने के लिये राजी कर लिया और १९०७ में एक नया कानून पास कराया जिसके द्वारा गृहस्थों की समितियाँ निर्माण करने की आवश्यकता न रही और पादरियों को मेयरों अथवा प्रिफेक्टों के साथ इक़रार करके धार्मिक कार्य के लिये गिरजाघरों के ले लेने की अनुमति ले ली।

इतनी रियायत कर देने पर भी गणतंत्रीय दल का उद्देश्य पूरा हो गया। चर्च का राज्य से सम्बंध टूट गया और उसका शिक्षा देने का अधिकार छिन गया। इस प्रकार वह गणतंत्र के विरुद्ध प्रचार करने की सुविधाओं से वंचित हो गई और उसका राजनीतिक प्रभाव घट गया। फ्रांस में गणतंत्र को केथोलिक चर्च के विरुद्ध उसी प्रकार संघर्ष करना पड़ा था जिस प्रकार जर्मनी में बिस्मार्क को, परंतु जहाँ बिस्मार्क को पराजित होना पड़ा वहाँ फ्रेंच गणतंत्र विजयी रहा।

समाजवादी समस्याएं—

राजसत्तावादियों तथा पादरियों की पराजय के बाद गणतन्त्र सुरक्षित हो गया। द्रेफ़ुस के अभियोग की फिर से जाँच करने वाले चर्च के विरुद्ध कार्यवाही करने वाला वाल्देक रूसो था जिसने समाजवादियों से मिलकर पादरी-

* Schevill : A History of Europe, p. 265.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विरोधी दल (Bloc) का निर्माण करके साम्राज्य, राजसत्तावाद तथा चर्च के खतरों से गणतंत्र को मुक्त किया था।* इन खतरों के दूर होने के बाद देश की आंतरिक राजनीति में सामाजिक तथा समाजवादी समस्याओं का प्राधान्य रहा। १८९४ में ट्रेड यूनियनों को क़ानूनी अस्तित्व प्राप्त हो चुका था और १८९८ में मज़दूरों को हर्जाना दिलाने की व्यवस्था भी हो चुकी थी। वाल्देक रूसो के मंत्रि-मण्डल में १९०० में समाजवादी नेता (Millerand) के शामिल होने के बाद उसके प्रभाव से इस दिशा में अधिक प्रगति होने लगी। १९०६ में एक कानून बनाया गया जिसके द्वारा कारखानों में प्रतिदिन काम करने के घण्टों की संख्या दस नियत की गई और १९१० में वृद्धावस्था के दिनों के लिये पेन्शन की व्यवस्था की गई। मिलराँ के मंत्रिमण्डल में शामिल हो जाने पर समाजवादियों में फूट पड़ गई। उनमें एक दल ऐसे लोगों का था जो उग्रवादियों तथा अन्य राजनीतिक दलों से सहयोग करने के पक्षपाती थे। इस दल में मिलराँ, विवियानी, ब्रियाँ आदि थे जो मध्य-वर्गीय मन्त्रिमण्डलों में रहे। दूसरा दल सामयिक राजनीतिक आवश्यकता के सामने अपने सिद्धान्तों का त्याग करने के लिये तैयार नहीं था। उसमें सबसे मुख्य सिण्डिकेलिस्ट लोग थे जो समस्त प्रकार के वैधानिक आन्दोलनों के विरोधी थे और हड़ताल, तोड़ फोड़ आदि सीधी आर्थिक कार्रवाही द्वारा पार्लामेन्टरी संस्थाओं का विनाश करने में विश्वास रखते थे। १९०६ से १९१० तक फ्रांस के उद्योग-धंधों में इन लोगों की कार्रवाही से बड़ी गड़बड़ रही। १९१० में इन लोगों की प्रेरणा से रेलवे की महान् हड़ताल हुई और ऐसा मालूम होता था मानो वह सामाजिक क्रान्ति की भूमिका थी।‡ परंतु समाजवादी प्रधान-मन्त्री स्वयं ब्रियाँ ने 'सुरक्षित' (Reserves) सैनिकों को (अर्थात् स्वयं हड़तालियों को) काम पर बुलाकर उसको भंग कर दिया। ब्रियाँ को सफलता तो मिली परंतु इससे उसकी सरकार की सत्ता निर्बल पड़ गई। १९१२ से योरोप में युद्ध की आशंका होने लगी जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेश नीति तथा राष्ट्र की रक्षा की समस्या के सामने अन्य समस्याएँ दब गईं।§

विदेश नीति—रूस से सन्धि—

बिस्मार्क के पतन के समय तक फ्रांस मित्रहीन अवस्था में रहा परन्तु,

---

* Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 344.

‡ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 366.

§ Grant and Temperley : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 344.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसा हम देख चुके हैं, द्वितीय विलियम की नीति के कारण रूस जर्मन से खिंच रहा था और फ्रांस की ओर झुकता जा रहा था। धीरे-धीरे फ्रांस और रूस के पारस्परिक सम्बन्ध सुधरते गये और दोनों में संधि की बातचीत होने लगी। जब तक तृतीय एलेक्ज़ेन्डर रहा तब तक तो संन्धि नहीं हुई परन्तु उसकी मृत्यु के बाद जब द्वितीय निकोलस ज़ार बना तो कार्य सरल हो गया और १८९५ में संधि हो गई जिसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि यदि फ्रान्स पर जर्मनी या जर्मनी की सहायता के साथ इटली आक्रमण करेगा तो रूस उसकी सहायता करेगा और इसी प्रकार यदि रूस पर जर्मनी या उसकी सहायता से ऑस्ट्रिया हंगरी-आक्रमण करेगा तो फ्रांस उसकी सहायता करेगा। इसके साथ ही यह भी तै हुआ कि सन्धि दोनों मिलकर करेंगे और कोई भी अलग सन्धि नहीं करेगा। यह सन्धि उसी अवधि तक रहेगी जब तक त्रिगुट की सन्धि रहेगी।* यह संधि रक्षात्मक थी। इससे फ्रांस की खतरनाक एकाकिता समाप्त हो गई और उसे जर्मनी के विरुद्ध सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त हो गया। योरोपीय राजनीति की दृष्टि से इस सन्धि के साथ बिस्मार्क-युग का अन्त हो गया। विरोधी गुटों से जो उसे भय था वह सत्य हो गया था। अब योरोप दो सशस्त्र शिविरों में विभक्त होकर उस मार्ग पर अग्रसर हुआ जो १९१४ के महान् अनर्थ की ओर ले जाता था।

अँग्रेजों से संघर्ष—

योरोप में इस प्रकार निश्चिन्त होकर फ्रान्स ने इंगलैण्ड के विरुद्ध अफ्रिका में कार्यवाही शुरू की। वह ईजिप्ट में अँग्रेजों के प्राधान्य का अधिकाधिक विरोध करने लगा और वहाँ से अँग्रेज़ी सेना को हटाने की माँग करने लगा। मध्य-अफ्रिका में उसने पश्चिमी तट से पूर्व की ओर बढ़ कर पूर्वी तट तक फ्रेञ्च साम्राज्य स्थापित करने के प्रयत्न शुरू किये और इसी सिलसिले में फ्रेञ्च सेनाएँ सुडान में फ़ेशोडा नामक स्थान तक पहुँच गईं जिस पर, हम देख चुके हैं, अँग्रेजों से तनाव बढ़ा। अन्त में उसे दबना पड़ा और इंगलैंड के प्रति उसकी कटुता बढ़ गई। इसके बाद ही इंगलैंड का दक्षिणी अफ्रिका में बोअर लोगों से युद्ध छिड़ गया। योरोप में इस युद्ध के दौरान में इंगलैंड के प्रति शत्रुतापूर्ण मनोवृत्ति का प्रदर्शन होता रहा परन्तु किसी भी सत्ता

---

* Slosson : Europe since 1870, pp. 153-54. हॉलैण्ड रोज़ के अनुसार इस सन्धि की भाषा में किसी आक्रांता का नाम नहीं था और सन्धि की कोई अवधि भी निश्चित नहीं की गई थी। The Development of the European Nations : Vol. II. p. 37.

† Gooch : History of Modern Europe, p. 187.

ने बोअर लोगों की सहायता नहीं की। फ़ेशोडा की घटना तथा बोअर युद्ध दोनों ही फ़्रान्स तथा इंगलैण्ड के पारस्परिक सम्बन्धों के इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण घटनाएँ थीं। फ़ेशोडा की घटना के फलस्वरूप फ़्रान्स और इंगलैन्ड दोनों में प्रथम समझौता हुआ और सूडान में दोनों क्षेत्र निर्धारित हो गये। इससे साथ ही इसी प्रकार समझौते द्वारा अन्य झगड़ों के निपटारे की आशा का भी जन्म हुआ। बोअर—युद्ध से इंगलैण्ड की अपनी एकाकिता के भयंकर ख़तरे का ज्ञान हुआ, *और वह फ़्रान्स से ज़िसने उस युद्ध में उसे परेशान करने का कोई प्रयत्न नहीं किया था, संघर्ष के कारणों का निवारण कर मैत्री करके अपनी एकाकिता को मिटाने के लिये उत्सुक हो गया।* इंगलैंड की रूस से तो शत्रता थी ही और अब जर्मनी भी उसका भयंकर प्रतिस्पर्धी बनता जा रहा था। ऐसी दशा में उसे फ़्रान्स से मैत्री कर लेने में अपना हित दिखाई देता था। फ़्रान्स भी जर्मनी की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत था और अपनी सुरक्षा के लिये अधिकाधिक राष्ट्रों से मित्रता स्थापित करना चाहता था। उसने, जैसा हम देख चुके हैं, १९०० तथा १९०२ में समझौता करके इटली से अपना सम्बन्ध सुधार लिया था। दोनों समझौते के लिये तैयार हो गये और हम देख चुके हैं, देलकासे तथा लेन्सडाउन के बातचीत के फलस्वरूप दोनों में १९०४ में 'हार्दिक मैत्री हो गई। परन्तु जर्मनी इस मैत्री से चिन्तित हो उठा और उसे भंग करने पर तुल गया उसने दो बार १९०५ तथा १९११ में मोरक्को के प्रश्न पर फ़्रान्स के लिये बड़ी संकटमय स्थिति उत्पन्न कर दी परन्तु इंगलैण्ड ने उसका साथ दिया और दोनों की मैत्री भंग होने की जगह और भी दृढ़ हो गई। १९११ में मोरक्को के प्रश्न पर जर्मनी ने परेशानी पैदा की थी उसका अन्त दोनों में एक सन्धि द्वारा हुआ जिसके अनुसार फ़्रान्स ने अपने काँगो-प्रदेश का आधा भाग देकर मोरक्को पर अपना संरक्षण स्थापित कर लेने की स्वीकृति ले ली। १९०७ में इंगलैंड और रूस में समझौता हो जाने के बाद इंगलैण्ड, फ़्रान्स तथा रूस की त्रिराष्ट्र-मैत्री (Triple Entente) स्थापित हो गई और योरोप दो शिवरों में बिभक्त हो गया। जब १९१४ में महायुद्ध का आरम्भ हुआ तो तीनों मित्रों ने परस्पर सहयोग किया।

(३) रूस (१८९४-१९१४)

द्वितीय निकोलस—

तृतीय एलेक्ज़ेन्डर की मृत्यु (१८९४) के बाद उसका पुत्र द्वितीय निकोलस ज़ार बना। सुधारकों की आशा थी कि नया शासन अच्छा होगा और निको-

*Slosson : Europe since 1870, p. 245.
†Grant and Temperly: Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 345.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लस रुके हुए सुधार के कार्य को आगे बढ़ायगा। परन्तु यह आशा व्यर्थ निकली। उसने सिंहासन पर बैठते ही घोषणा की 'कि मैं अपने स्वर्गीय पिता के समान ही दृढ़ता के साथ निरंकुश शासन के सिद्धान्तों की रक्षा करूँगा।* दस वर्ष तक निकोलस अपने पिता की नीति का उससे भी अधिक कठोरता के साथ पालन करता रहा। निरंकुश तो वह था ही, इसके साथ ही वह दुर्बल तथा अस्थिरचित्त भी था और उस पर उसकी पत्नी का बड़ा भारी प्रभाव था जो स्वयं १६०७ से एक अत्यन्त दुष्ट प्रकृति के साधु रासपुटिन के प्रभाव में आ गई थी।† उसके पिता का विश्वासपात्र भयंकर प्रतिक्रियावादी पोबीदोनोत्सेव भी मौजूद था। १६०३ में विट को बरखास्त करने के बाद उसने गृह मन्त्री के पद पर भी प्रतिक्रिया एवं निरंकुशता के अवतार प्लेह्व (Plehve) को नियुक्त किया। इन सब बातों के परिणाम-स्वरूप रूस में भयंकर प्रतिक्रिया का शासन छा गया जिसमें राज्य के असंख्य भ्रष्टाचारी कर्मचारियों और अत्यन्त क्रूर एवं सतर्क पुलिस के अत्याचारों से जनता त्रस्त हो गई। देश में किसी का भी जीवन सुरक्षित नहीं था और कोई भी गिरफ्तार करके कारागार में डाला जा सकता था या निर्वासित कर दिया जा सकता था। शिक्षित एवं बुद्धिजीवी व्यक्तियों—अध्यापकों, विद्यार्थियों, पत्रकारों आदि का जीवन तो असह्य था। उन पर पुलिस का कठोर नियंत्रण था और उनमें से कोई भी सुरक्षित नहीं था। विद्यार्थियों पर तो पुलिस की विशेष कड़ी निगाह रहती थी। कहा जाता है कि एक वर्ष के अन्दर मॉस्को के विश्वविद्यालय के ½ विद्यार्थी पकड़ कर या तो साइबेरिया भेज दिये गये या योरोप की जेलों में ठूँस दिये गये।$ सरकार भयंकर दमन पर उतर आई थी और उदारवाद के लेशमात्र चिन्हों का भी तुरन्त बड़ी कठोरता से दमन कर दिया जाता था।

अ-रूसी लोगों पर अत्याचार—

निकोलस का शासन अ-रूसी लोगों पर भी उतना ही कठोर था। यहूदियों पर अत्याचार पहले से भी बढ़ गये। फ़िनलैण्ड १८०६ में रूस की अधीनता के आने के बाद भी शामिल नहीं किया गया था और उसका अपना ही विधान बना हुआ था। केवल रूस का ज़ार उसका ग्राण्ड ड्यूक था। उसकी अपनी पार्लामेण्ट, अपनी सेना, अपनी मुद्रा तथा समस्त व्यवस्था अपनी ही थी और उसका शासन वैधानिक था। रूस के भाग्यविधाताओं को यह स्थिति

---

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 368.

†Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 485.

$Hazen , Modern European History, p. 570.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असह्य दिखाई देती थी और तृतीय एलेक्ज़ेण्डर के समय से ही फिन लोगों की स्वतन्त्रताओं पर आघात आरम्भ हो गया था। निकोलस ने फ़र्वरी १८९९ में फ़िनलैंड के विधान का अन्त कर के उसे रूस में शामिल कर लिया और उसके पूर्ण रूसीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो गई। इस अत्यन्त प्रतिक्रियावादी शासन में, केवल एक ही दिशा में, औद्योगिकक्षेत्र में, काउण्ट विट के निर्देशन में प्रगति दिखाई देती थी।* उसने विदेशी पूँजीपतियों को रूस में अपनी पूँजी लगाने को प्रोत्साहित किया, यातायात की सुविधाओं का विस्तार किया, राष्ट्रीय साख की वृद्धि की और देश की काफी आर्थिक उन्नति की।

सुधार की मांग—

इतना कठोर दमन होते हुए भी देश में विभिन्न प्रकार की समितियों की आड़ में क्रान्तिवादी आन्दोलन बढ़ रहा था। निकोलस के राज्याभिषेक के समय से ही स्थानीय स्वशासन संस्थायें (Zemstvos) अपने अधिकारों के विस्तार की माँग होने लगी थीं और उनकी बढ़ती हुई माँगों को देख कर विट ने १९०२-०३ में उनकी समितियों को आवश्यक सुधारों, मुख्यकर कृषि-सम्बन्धी सुधारों, के विषय में सिफारिश करने के लिये कहा।† उन्होंने प्रेस की स्वतन्त्रता तथा प्रतिनिधिक शासन की माँग की। वे मांगें ज़ार को अत्यन्त अरुचिकर थीं। उसने इनके लिये विट को उत्तरदायी ठहरा कर उसे १९०३ में बरखास्त करके घोर प्रतिक्रियावादी प्लेह्व को गृहमन्त्री बनाया जिसने उदारवाद के खिलाफ जिहाद बोल दिया।

व्यापक असन्तोष—

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्यक्ष रूप से आन्दोलन दब गया और लोग चुप होकर उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। वह अवसर शीघ्र ही आ गया। १९०४ में, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, जापान से रूस का युद्ध छिड़ गया जिसने शासन की अयोग्यता तथा उसके भ्रष्टाचार का पर्दा फ़ाश कर दिया। युद्ध में रूस की हार हो रही थी जिसके लिये जनता इस भ्रष्ट एवं अयोग्य शासन को ही जिम्मेदार समझती थी। निरन्तर हार होने के समाचारों से देश में ज़ार के निरंकुश तथा निकम्मे शासन के प्रति बड़ा असन्तोष फैला। जुलाई १९०४ में प्लेह्व की हत्या कर दी गई। उनका शासन घोर प्रतिक्रियावादी था। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु के पहले के एक वर्ष के अन्दर उसने ४८६७ व्यक्तियों को उन पर मुकदमा चलाये बिना ही कारागार में डाल दिया था या निर्वासित कर दिया था। उसके बाद प्रिन्स मिर्स्की गृह-मन्त्री नियुक्त हुआ

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 369.
†Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 478.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो कुछ दयालु था। उसने सुधारकों से अपनी माँग पेश करने के लिये कहा जिस पर स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन ने नवम्बर १९०४ में अपनी ग्यारह माँगें पेश कीं जिनमें वैयक्तिक स्वतंत्रता, धर्म, भाषण, प्रेस, सार्वजनिक सभा करने तथा सभा-सोसायटियों का निर्माण करने की स्वतन्त्रता; स्थानीय स्वशासन का विस्तार, कानून बनाने तथा शासन पर नियंत्रण रखने के लिये एक प्रतिनिधि-सभा की स्थापना और इन्हीं सिद्धान्तों के अनुकूल विधान बनाने के लिये एक राष्ट्रीय सभा के आमंत्रण की मांगें मुख्य थीं।* जनता में असंतोष बढ़ता चला गया। नगरों में मजदूरों ने आन्दोलन में भाग लेना शुरू कर दिया, मॉस्को, विल्ना तथा अन्य औद्योगिक नगरों में राजनीतिक हड़तालें होने लगीं परन्तु ज़ार ने अपना रवैया नहीं बदला और दमन जारी रखा।† रविवार, २२ जनवरी को सेंट पीटर्सबर्ग में हड़तालियों का एक विशाल जुलूस फ़ादर गेपों (Gapon) नामक पादरी के नेतृत्व में अपनी शिकायतें राज्य के कर्मचारियों में विश्वास न होने के कारण स्वयं ज़ार के सामने पेश करने के लिये राजमहल की ओर चला परन्तु उस पर सेना ने गोलियाँ चलाईं और बहुत से आदमी मारे गये। इस पर देश में लोग बिगड़ खड़े हुए। समाजवादी क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में कृषकों ने जमीदारों के मकानों में आग लगा दी, पुलिस के कई अफ़सर मारे गये, कई जगह थल-सेना तथा नौ-सेना में भी विद्रोह हुए, ज़ार के चाचा ग्रान्डड्यूक सर्जियस की हत्या कर दी गई। रूस में एक प्रकार से अराजकता छा गई।‡

राजनीतिक क्रान्ति—अक्टूबर (१९०५) की घोषणा—

इस अराजकता से घबड़ा कर ज़ार ने प्रेस, यहूदियों तथा अन्य अ—रूसी लोगों के लिये कुछ सुधारों की घोषणा की और १९ अगस्त १९०५ को सुधारों के विषय में परामर्श देने के लिये एक राष्ट्रीय सभा (Duma) को शीघ्र ही आमन्त्रित करने की भी घोषणा की। परन्तु इस घोषणा से आन्दोलन शान्त होने की जगह और भी बढ़ा। अन्त में, ज़ार ने पोबीदोनोत्सेव तथा अन्य उग्र प्रतिक्रियावादी अधिकारियों को बरखास्त करके विट को वापस बुलाया और उसे प्रधान-मन्त्री बनाया। ३० अक्टूबर १९०५ को एक उद्घोषणा द्वारा धर्म, भाषण और सार्वजनिक सभा करने तथा सभा-सोसायटियाँ स्थापित करने की स्वतन्त्रता का, विस्तृत मताधिकार के आधार पर एक प्रतिनिधिक सभा अथवा

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 177.

† Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 481.

‡ Hazen : Modern European History, p. 586,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्लामेण्ट (Duma) स्थापित करने का और उसके हाथ में सरकारी कर्मचारियों के कामों पर प्रभावकारी नियंत्रण सौंपने का वचन दिया और इसके साथ ही यह अटल नियम बनाया कि ड्यूमा की अनुमति के बिना कोई क़ानून कार्यान्वित नहीं हो सकेगा। अगले मास में उसने फ़िनलैण्ड की स्वतन्त्रता लौटा दी और वहाँ राष्ट्रीय सभा ने अपने लिये एक प्रजातंत्रीय विधान का निर्माण किया जिसे १६०६ में ज़ार ने स्वीकार कर लिया।*

निकोलस ने अक्टोबर-घोषणा के द्वारा रूस में प्रतिनिधिक एवं उत्तरदायी शासन की दिशा में बड़ा महत्वपूर्ण कदम उठाया था परन्तु शीघ्र ही उसने एक दूसरे आदेश द्वारा उसके प्रभाव में बड़ी कमी कर दी। उसने ड्यूमा को राज्य की विधानसभा का प्रथम सदन मान कर साम्राज्य-परिषद् (Council of the Empire) के नाम से सम्राट् द्वारा नियुक्ति सरकारी कर्मचारियों तथा पुरानी अवस्था में सम्बद्ध व्यक्तियों के एक दूसरे सदन का निर्माण कर दिया और ज़ार की अनुमति के लिये भेजे जाने के पहले कानूनों के लिये ड्यूमा के साथ साम्राज्य-परिषद की स्वीकृति आवश्यक कर दी। इस प्रकार ड्यूमा एकमात्र प्रतिनिधि-सभा होने के अधिकार से वंचित कर दी। १६०६ के मार्च तथा अप्रेल में ड्यूमा के लिये निर्वाचन हुए जिसमें 'वैधानिक प्रजातंत्रीय' दल (Constitutional Democrats or Cadets) को बहुमत प्राप्त हुआ। ड्यूमा के प्रथम अधिवेशन के पहले ही उसने कुछ वैधानिक कानून भी बना कर, जिनमें कोई परिवर्तन करने का उसे अधिकार नहीं था, उसकी सत्ताओं को और भी सीमित कर दिया।†

प्रथम ड्यूमा—

ड्यूमा का प्रथम अधिवेशन १० मई १६०६ को हुआ परन्तु आरंभ से ही सरकार के साथ संघर्ष शुरू हो गया। ड्यूमा पश्चिमी योरोप के प्रजातंत्रों के समान पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करना चाहती थी। उसने साम्राज्य-परिषद् के (जो पूर्णतया सम्राट के नियंत्रण में थी और लोक-सभा (Duma) के कार्य को रद्द कर सकती थी) सुधार की माँग की। इसके साथ उसने यह मांग भी की कि सम्राट के मन्त्री ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी हों। उसने मृत्युदण्ड को बन्द करने के लिये कानून बनाया और देश भर में फौजी कानून को रद्द करने तथा सम्राट्, राज्य और मठों के पास जितनी भूमि थी वह एक

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 482.

† Hazen : Modern European History, p. 587.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लम्बे पट्टे पर किसानों को दे देने की भी मांग की। सम्राट् के मंत्रियों तथा सम्राज्य-परिषद् ने इन सब माँगों का विरोध किया। सबसे अधिक झगड़ा मंत्रियों के उत्तरदायित्व के प्रश्न पर हुआ जिससे चिढ़ कर ज़ार ने २२ जुलाई १९०६ को सभा भंग कर दी और नई ड्यूमा के निर्वाचन का आदेश दिया।

इस प्रकार प्रथम ड्यूमा बड़ी अल्पजीवी रही और उत्तरदायी शासन स्थापित करने के उसके सभी प्रयत्न विफल हुए। इसका कारण यह था कि क्रान्तिवादी लोग आपस में विभक्त थे। उनका कोई संगठित राजनीतिक दल नहीं था। वे कई टुकड़ों में बँटे हुए थे। कुछ लोग नरम विचारों के थे और ज़ार की अक्टोबर की उद्घोषणा में वर्णित सुधारों से सन्तुष्ट थे। वे अक्टोब्रिस्ट कहलाते थे। उनसे कुछ आगे बढ़े हुए लोग, जो केडेट (वैधानिक प्रजातन्त्री) कहलाते थे, उत्तरदायी तथा प्रतिनिधि-शासन के समर्थक थे और बड़ी-बड़ी जायदादों को तोड़ कर किसानों को देना चाहते थे। इनके अतिरिक्त कुछ समाजवादी गुट भी थे।* ड्यूमा में ये सभी प्रकार के लोग आपसी झगड़ों में व्यस्त रह कर एक नहीं हो सके। उधर सरकार भी, जो आन्दोलन से डर कर दब गई थी, क्रान्तिवादियों की पारस्परिक फूट से प्रोत्साहित हो कर कड़ी पड़ गई और सुधार का काम असफल रहा।

अपनी असफलता से क्षुब्ध होकर ड्यूमा के लगभग आधे सदस्यों ने फ़िनलैण्ड के विबोर्ग (Viborg) नामक नगर से एक घोषणा द्वारा जनता से ऐसे वचन भंग करने वाली सरकार को कर न देने तथा उसकी सैनिक सेवा न करने का अनुरोध किया। परन्तु जनता में उनका कोई प्रभाव न होने के कारण यह घोषणा व्यर्थ रही। उल्टे सरकार का रुख अधिक कड़ा हो गया, घोषणा करने वालों को कड़ा 'दण्ड मिला और उनका मताधिकार छिन गया।†

द्वितीय तथा तृतीय ड्यूमा—

मार्च १९०७ में दूसरी ड्यूमा का अधिवेशन हुआ परन्तु उसमें भी शीघ्र ही मन्त्रियों से संघर्ष आरम्भ हो गया। सम्राट् ने जून में उसे भी भंग कर दिया और सितम्बर में नये निर्वाचन करने का आदेश जारी किया। उसके साथ उसने एक नये निर्वाचन क़ानून की घोषणा की जिसके द्वारा मताधिकार अत्यन्त संकुचित कर दिया गया जिससे सदस्यों के अधिकांश के निर्वाचन का अधिकार १ लाख ३० हज़ार ज़मीदारों के हाथों में पहुँच गया।‡ इस संकुचित मताधिकार के आधार पर निर्वाचित तीसरी ड्यूमा का अधिवेशन १४ नवम्बर १९०७ को

---

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 369

† Vernadsky : A History of Russia, p. 191.

$Hazen : Modern European History, p. 588.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ और नये सदस्यों में अधिकतर ज़मीदार तथा प्रतिक्रियावादी लोग होने के कारण यह सभा अत्यन्त नम्र थी और प्रायः सरकार के आदेशानुसार काम करती थी। वह पाँच वर्ष तक बनी रही। १९१२ में चौथी ड्यूमा का निर्वाचन हुआ जो उससे भी अधिक नम्र निकली।

प्रतिक्रिया—

इसका एक कारण तो नया निर्वाचन-क़ानून था जिसके अनुसार निर्वाचन का अधिकार अधिकतर प्रतिक्रियावादी लोगों के हाथों में था। इसके अतिरिक्त १९०७ से ही देश भर में फिर से निरंकुश शासन तथा प्रतिक्रिया का अखण्ड राज्य शुरू हो गया था जिसका सूत्रधार पीटर स्टॉलिपिन (Peter Stolypin) था जिसे निकोलस ने १९०६ में पहले गृह-मन्त्री और बाद में प्रधान-मन्त्री नियुक्त किया था और जिसने प्रथम ड्यूमा का विसर्जन करा कर १९०५-०६ की क्रान्ति को वस्तुतः समाप्त कर दिया था।* द्वितीय ड्यूमा को बरखास्त करने के बाद निकोलस ने निर्वाचन-कानून बदल कर जो प्रतिक्रिया आरम्भ की थी उसमें उसका पूर्ण समर्थन था। वह बिस्मार्क की तरह कठोर शासन के साथ-साथ सुधार की नीति में विश्वास करता था। उसने क्रान्तिकारियों तथा सुधारकों का बड़ी कठोरता से दमन किया। पुलिस के दमन कार्य में बाधा डालनेवाली जितनी क़ानूनी स्वतन्त्रताएं थीं वे रद्द हो गईं और उसने समाजवादियों को हज़ारों की संख्या में गिरफ़्तार करके तथा उन पर गुप्त रीति से मुकद्दमा चला कर साइबेरिया भेज दिया। अ-रूसी लोगों, विशेषकर यहूदियों के साथ, बड़ी कठोरता का बर्ताव किया गया। हज़ारों षड्यन्त्रकारी पकड़-पकड़ कर फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दिये गये।† प्रतिक्रियावादी लोग ड्यूमा का अन्त कर क्रान्ति को बिलकुल समाप्त कर देना चाहते थे। उन्होंने उसे रद्द तो नहीं किया परन्तु उसे केवल एक परामर्शदात्री सभा बना कर उसका क्रान्तिकारी रूप मिटा दिया। उसने कृषकों को उनकी आर्थिक दशा सुधार कर क्रान्ति से अलग रखने के लिए एक कानून बनवाया और प्रत्येक कृषक को अपनी ग्राम-पंचायत (Mir) से अलग हो कर अपने हिस्से की भूमि का स्वामी बनाने का अधिकार दिया $ परन्तु उसकी क्रूरता से लोग तंग आ गये थे और सितम्बर १९११ में एक यहूदी वकील ने कीव नगर के एक थियेटर में उसकी हत्या कर दी। स्टॉलिपिन तो संसार से उठ गया परन्तु जिस प्रतिक्रिया का वह प्रतिनिधि था

---

* Mowat : Contemporary Europe and Overseas, p. 141.

† लोग फाँसी के फन्दे को 'स्टॉलिपिन की नेकटाई' कहा करते थे। Slosson : Europe since 1870, p. 200.

$ Vernadsky : A History of Russia, p. 191.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और जिसकी उसने बड़ी तत्परता से सेवा की थी वह बनी रही।* १९०५ की क्रान्ति का चिन्ह केवल ड्यूमा के अस्तित्व में ही रह गया। ड्यूमा, जैसा हम देख चुके हैं, एक निर्बल संस्था रह गई थी और विधान की दृष्टि से एक क़ानून बनानेवाली सभा होते हुए भी उसका काम वस्तुतः परामर्श देना मात्र रह गया था। पराजित क्रान्तिकारियों को ज़ार की दया पर निर्भर एक काग़ज़ी विधान तथा एक निर्बल ड्यूमा के अतिरिक्त अथवा 'निरंकुश ज़ार के अधीन वैधानिक एकतंत्र' के अतिरिक्त कुछ प्राप्त नहीं हुआ† परन्तु फिर भी ड्यूमा जनता की प्रतिनिधि-सभा थी और उसकी इच्छाओं की अभिव्यक्ति कर सकती थी। इस प्रकार उसमें प्रजातंत्र के बीज विद्यमान थे जो उपयुक्त वातावरण में अंकुरित हो सकते थे। इसके साथ ही १९०५ में रूस के मजदूरों ने सरकार का पहली बार संगठित रूप में विरोध किया था और यद्यपि सरकार विजयी हुई थी तो भी उसकी निर्बलता संसार को प्रकट हो चुकी थी जिससे उसकी प्रजा तथा दूसरे देशों की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा गिर चुकी थी। यदि एक और असफल युद्ध हुआ तो कौन कह सकता था कि सरकार का क्या होगा?‡ और युद्ध अधिक दूर भी नहीं था।

विदेश-नीति—

हम देख चुके हैं कि बिस्मार्क के पतन के बाद द्वितीय विलियम की नीति के परिणाम-स्वरूप रूस फ़्रान्स की ओर आकर्षित हुआ और एलेक्ज़ेण्डर की मृत्यु के बाद १८९५ में द्वितीय निकोलस ने फ़्रान्स से सन्धि कर ली। रूस की दृष्टि में इस सन्धि से जर्मनी या इंगलैंड को कोई सीधी धमकी नहीं थी। उसका उद्देश्य एक योरोपियन सत्ता के दूसरी पर आक्रमण होने की आशंका का निवारण करना था।$ परन्तु इसके निर्माण के बाद योरोप दो गुटों में विभक्त हो गया और योरोपीय राष्ट्रों की पारस्परिक शंका के फल-स्वरूप सर्वत्र शस्त्रास्त्र का विस्तार होने लगा और विभिन्न राज्य युद्ध की तैयारी पर अपार धन खर्च करने लगे।

प्रथम हेग-सम्मेलन—

इस ख़र्च से बचने के लिये शस्त्रास्त्र की इस विनाशकारी प्रतिस्पर्धा का निवारण करने की दृष्टि से २४ अगस्त १८९८ को ज़ार द्वितीय निकोलस ने इस समस्या पर विचार करने के लिये उन सब राष्ट्रों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 485.

† Strong : Dynamic Europe, p. 300.

‡ Slosson : Europe Since 1870, p. 201.

$ Vernadsky : A History of Russia, p. 178.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में आमंत्रित किया जिनके राजदूत सेंटपीटर्सवर्ग में रहते थे और जिनके साथ उसका कोई झगड़ा नहीं था।* सम्मेलन का अधिवेशन मई १८९९ में हेग में हुआ जिसमें २० योरोपियन राज्यों, चार एशियाई राज्यों (चीन, जापान, फ़ारस तथा स्याम) और दो अमेरिकन राज्यों (संयुक्त राष्ट्र तथा मेक्सिको) के कोई १०० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने शस्त्रास्त्र-विस्तार की हानियों पर ज़ोर दिया। परन्तु जर्मनी के प्रतिनिधि उनसे सहमत नहीं हुए और मानव समाज के भौतिक एवं नैतिक कल्याण की दृष्टि से सैनिक व्यय को कम करने और सैन्य-शक्ति को सीमित करने के लिये समझौता करने की संभावना पर विचार करने की वांछनीयता के सम्बन्ध में एक पवित्र प्रस्ताव स्वीकार करने के अतिरिक्त सम्मेलन कुछ नहीं कर सका।† एक दिशा में उसे अवश्य सफलता मिली। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को मध्यस्थों के निर्णय द्वारा तै करने के लिये सम्मेलन के एक स्थायी मध्यस्थ न्यायालय की स्थापना की और युद्ध की क्रूरताओं को सीमित रखने के लिये कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का निर्माण किया। यह भी निश्चित हुआ कि इसी प्रकार के सम्मेलन प्रति सात वर्ष में होते रहें।$ इस प्रकार अपने मुख्य उद्देश्य में सम्मेलन असफल रहा।

इंगलैण्ड से मैत्री—

सम्मेलन की असफलता का मुख्य कारण विभिन्न राष्ट्रों की पारस्परिक शंका थी। अतः महाद्वीप की प्रमुख शक्तियों—रूस, फ़्रान्स तथा जर्मनी—का पारस्परिक समझौता ही शान्ति क़ायम रखने का एकमात्र साधन दिखाई देता था। रूस में विट इस योजना का समर्थक था। परन्तु इस प्रकार का समझौता जर्मनी तथा फ़्रान्स के वैमनस्य और रूस तथा जर्मनी के मित्र ऑस्ट्रिया की बाल्कन प्रायद्वीप में प्रतिस्पर्धा के कारण असंभव था। जर्मनी इन दिनों रूस का ध्यान बाल्कन प्रायद्वीप से हटा कर मध्य तथा सुदूरपूर्व की ओर लगाने का तथा बाल्कन प्रायद्वीप में ऑस्ट्रिया तथा रूस के बीच सहयोग स्थापित करने का प्रयत्न करता रहा। उसे इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। १८९७ से दस वर्ष तक प्रायद्वीप में ऑस्ट्रिया तथा रूस का सहयोग रहा और रूस एशिया में आगे बढ़ता रहा जिसकी उसके आर्थिक हितों की दृष्टि से आवश्यकता भी थी।‡ एशिया में रूस के विस्तार का वर्णन ऊपर हो चुका

---

* Mowat : Contemporary and Europe and Overseas, p. 99.

† Hazen : Modern European History, p. 592.

‡ Mowat : Contemporary Europe and Overseas, p. 110.

$ Vernadsky : A History of Russia, p. 179.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। इस विस्तार के परिणाम-स्वरूप, जैसा हम देख चुके हैं, रूस और जापान में युद्ध हुआ जिसमें रूस की पराजय हुई। उन दिनों रूस और इंगलैण्ड में काफ़ी तनातनी थी और इङ्गलैण्ड १९०२ में जापान से सन्धि कर चुका था। अतः रूस को युद्ध के दौरान में इङ्गलैण्ड के मुकाबले में योरोप में अपना पक्ष मज़बूत करने के लिये जर्मनी से घनिष्ठता स्थापित करने की आवश्यकता हुई और उसने जुलाई १९०४ में उससे एक व्यापारिक सन्धि की। इस सन्धि से तथा रूस की हार से प्रोत्साहित होकर जर्मनी ने मोरक्को में फ़्रान्स को चुनौती दी और जुलाई १९०५ में विलियम ने निकोलस से ब्योर्को (Bjorko) में भेंट कर एक गुप्त सन्धि करके रूस को फ़्रान्स से अलग करने तथा अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न भी किया। परन्तु यह स्पष्ट था कि जर्मनी के साथ सन्धि करने का अर्थ होगा फ़्रान्स की मित्रता की हानि। फ़्रान्स पहले से ही मित्र था और इस समय रूस को आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी जो केवल फ़्रान्स से ही मिल सकती थी। अतः रूस ने एल्जिसिरास के सम्मेलन में फ़्रान्स का ही साथ दिया। फ़्रान्स की इच्छा थी कि रूस और इङ्गलैंड का वैमनस्य भी मिट जाय और वह रूस पर इङ्गलैंड से समझौता करने पर ज़ोर दे रहा था। जापान से युद्ध होने के पहले तक रूस बाल्कन प्रायद्वीप की ओर बढ़ने की जगह पूर्वी एशिया में बढ़ना ही अच्छा समझता था परन्तु जापान से पराजित होने के पश्चात् रूस के राजनीतिज्ञ सोचने लगे कि 'यदि मंचूरिया और कोरिया में सदा खुले रहने वाले बन्दरगाह प्राप्त करने का हमारा नया स्वप्न सत्य नहीं होता तो क्यों न हम कॉन्स्टेण्टीनोपल और बॉस्फ़ोरस के जलडमरूमध्य के अपने पुराने स्वप्न को ही सत्य करने का ही फिर प्रयत्न करें।' फ़्रान्स के दबाव की अपेक्षा शायद इसी विचार से इङ्गलैंड की तरफ़ से रूस का रुख बदल गया और वह उसके साथ सहयोग करने के लिये तैयार हो गया।* इसके साथ ही वह जापान से पराजित होने से नष्ट अपनी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त भी करना चाहता था।† अतः उसने अगस्त १९०७ में इङ्गलैंड से समझौता करके फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान तथा तिब्बत में जितने भी संघर्ष के कारण थे उनका निवारण कर लिया और मैत्री स्थापित कर ली। इस मैत्री के साथ, जैसा हम देख चुके हैं, इङ्गलैंड, फ़्रान्स और रूस की त्रिराष्ट्र-मैत्री स्थापित हो गई यह मैत्री आक्रमणात्मक नहीं थी परन्तु इसके निर्माण के साथ योरोप का अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण पारस्परिक शंका से परिपूर्ण हो गया।

---

* Slosson : Europe since 1870, p. 264.

† Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 485.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय हेग सम्मेलन—

ऐसी परिस्थिति में निकोलस ने अमेरिका के राष्ट्रपति रूसवेल्ट के प्रस्ताव पर निःशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार करने के लिये हेग में दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आमंत्रित किया। पहला सम्मेलन तो प्रधानतः योरोपीय था परन्तु यह सम्मेलन सच्चे अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय था क्योंकि इसमें २१ योरोपीय, १९ अमेरिकन तथा ४ एशियाई राष्ट्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे और इस प्रकार इसमें सम्मिलित होने वाले राष्ट्रों में अ-योरोपीय राष्ट्रों की संख्या अधिक थी।* इस सम्मेलन में निःशस्त्रीकरण पर सबसे अधिक ज़ोर इंगलैण्ड के प्रधान-मन्त्री केम्पवेल-बैनरमेन ने दिया परन्तु जर्मनी ने उस पर विचार नहीं होने दिया,† और यह सम्मेलन भी अपने मुख्य उद्देश्य में असफल रहा। इस सम्मेलन में योरोपीय राष्ट्रों में जो परस्पर विरोधी गुटबन्दी हाल ही में हो चुकी थी उसका स्पष्ट प्रमाण मिल गया, क्योंकि इसमें एक ओर जर्मनी तथा आस्ट्रिया थे और दूसरी ओर फ़्रान्स, रूस तथा इंगलैण्ड।‡

'युवक तुर्क' क्रान्ति—

जर्मनी त्रिराष्ट्र-मैत्री से चिन्तित था और उसे भङ्ग करना चाहता था। उसकी परीक्षा करने का अवसर उसे १९०८ में मिला जब कि 'युवक तुर्क' क्रान्ति होते ही ऑस्ट्रिया ने ऑस्निया तथा हर्ज़गोविना को अपने राज्य में शामिल कर लिया। आस्ट्रिया की इस कार्रवाई के लिये रूस, फ़्रान्स तथा इंगलैण्ड में से कोई भी तैयार नहीं था। वे कुछ न कर सके और उनकी बड़ी भारी कूटनीतिक पराजय हुई। जर्मनी ने १९११ में मोरक्को में फिर फ़्रान्स को चुनौती दी परन्तु इस बार त्रिराष्ट्र मैत्री की कूटनीति अधिक प्रभावकारी रही। तीनों ने मिल कर जर्मनी का मुक़ाबला किया और उसे मोरक्को पर फ़्रान्स का संरक्षण स्वीकार करना पड़ा। इसके बाद योरोप में तनाव बढ़ता रहा। बाल्कन-युद्धों के दौरान में त्रिगुट और त्रिराष्ट्र-मैत्री का सहयोग रहा परन्तु रूस और ऑस्ट्रिया का वैमनस्य बढ़ता रहा। इन युद्धों के फल-स्वरूप ऑस्ट्रिया और सर्बिया का वैमनस्य बहुत बढ़ गया। रूस की सहानुभूति सर्बिया के साथ थी। इस कारण जब ऑस्ट्रिया ने सर्बिया से युद्ध छेड़ा तो रूस ने अपनी सेनाओं को कूच करने का आदेश दिया। इस पर जर्मनी ने रूस और फ़्रांस के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और महायुद्ध शुरू हो गया। बेल्जियम की तटस्थता के प्रश्न पर इंगलैण्ड भी फ़्रान्स तथा रूस के साथ युद्ध में शामिल हो गया।

---

* Hazen : Modern European History, p. 593.

† Slosson : Europe since 1870, p. 259.

‡ Vernadsky : History of Russia, p. 193.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ११

पूर्वीय समस्या (१८९०-१९१४)

बाल्कन प्रायद्वीप एक ज्वालामुखी था जिसमें समय-समय पर विस्फोट हुआ करते थे। बर्लिन कांग्रेस के बाद बल्गारिया के संयोग के प्रश्न पर योरोपीय राष्ट्रों में काफी तनातनी हो रही थी जिसका अन्त रूस के ज़ार निकोलस के फर्डिनेण्ड को बल्गारिया का राजा स्वीकार कर लेने पर हुआ था।

आर्मेनियन लोगों की हत्या—

बल्गारिया की समस्या का अन्त होते ही कास्पियन तथा काले सागर के बीच के प्रदेशों से बसने वाले आर्मेनियन लोगों की समस्या उठ खड़ी हुई। ये लोग ईसाई थे। बर्लिन की सन्धि तथा साइप्रस के समझौते में टर्की के सुल्तान ने उनके सुशासन का वचन दिया था जिससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने सुधार की माँग करना शुरू कर दिया था। सुल्तान ने अपना वचन पूरा नहीं किया। इंगलैंड समय-समय पर उसे सुधार की याद दिलाता रहा परन्तु यह देख कर कि योरोपीय सत्ताएँ आपस में विभक्त हैं, वह आर्मेनियन लोगों की मांगों की उपेक्षा करता रहा। इतनी ही नहीं, उसे यह भी भय हुआ कि कहीं बल्गारिया की तरह आर्मेनिया भी स्वतंत्र होकर अलग होने का प्रयत्न न करे। टर्की को आर्मेनियन समस्या से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय आर्मेनियन लोगों से मुक्ति प्राप्त कर लेना ही दिखाई देता था।* १८९३ में कुछ आर्मेनियन लोगों ने टर्की के अधिकारियों का विरोध किया था। उसका बहाना लेकर १८९४ में सुल्तान के अधिकारियों ने उन लोगों से बदला लेना शुरू किया। उनके गाँवों पर आक्रमण होने लगे और हज़ारों स्त्री-पुरुष मौत के घाट उतारे जाने लगे। १८९५ तक ५०,००० आर्मेनियन इस रक्त-पिपासा के शिकार बन चुके थे। २६ अगस्त १८९६ में कॉन्स्टेण्टीनोपल में बसने वाले आर्मेनियन लोगों ने, जिनका अपने भाइयों की दुर्दशा सुनकर रक्त खौल रहा था, योरोपीय सत्ताओं की ओर से, जो पूर्वीय समस्या के लिये सदा सामूहिक उत्तरदायित्व का दावा करती रहती थीं, निराश होकर विद्रोह कर दिया। सरकार ने उनसे भयंकर बदला लिया और चौबीस घण्टे के अन्दर कोई ६,००० आर्मेनियनों की हत्या कर दी गई।

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 317.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इधर आर्मेनियनों के रक्त से कॉन्स्टेण्टीनोपल की सड़कें लाल हो रही थी, इधर इंगलैंड को छोड़ अन्य योरोपीय राज्य चुप साधे बैठे थे। रूस को उन लोगों से बिल्कुल सहानुभूति नहीं थी। ईसाई होते हुए भी वे भिन्न सम्प्रदाय के थे; अभी-अभी वह बल्गारिया की कृतघ्नता देख चुका था और वह आर्मेनिया में एक दूसरे कृतघ्न स्वतन्त्र राज्य की सृष्टि करना नहीं चाहता था; इसके अतिरिक्त आर्मेनिया इंगलैंड के संरक्षण में था और उसने बल्गारिया में उसके मार्ग में जो बाधाएं डाली थीं उसका बदला लेने का उसे अच्छा अवसर मिल गया था। अतः उसका रुख टर्की के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहा।* जर्मनी इन दिनों टर्की को प्रसन्न रखना चाहता था। ऑस्ट्रिया जर्मनी के साथ था। फ्रांस का इजिप्ट के प्रश्न पर इंगलैंड से वैमनस्य था और इस कारण वह इंगलैंड के हित में किसी भी संयुक्त कार्यवाही में सम्मिलित होने के लिये तैयार नहीं था। अकेला इंगलैंड ही चिल्लाता रहा परन्तु सुल्तान ने उसकी बिल्कुल परवाह नहीं की और इंगलैंड का प्रधान-मन्त्री सेलिसबरी टर्की का अब तक समर्थन करके 'गलत घोड़े पर बाज़ी लगाने की' इंगलैण्ड की ग़लती पर शोक प्रकट करके चुप हो गया क्योंकि योरोपीय राज्यमण्डल की अनुमति के बिना टर्की को दबाने का प्रयत्न करके वह युद्ध का खतरा उठाने को तैयार नहीं था।†

ग्रीस-टर्की का युद्ध—

आर्मेनियन लोगों की हत्या से उत्पन्न क्षोभ अभी शान्त नहीं हो पाया था कि बाल्कन प्रायद्वीप में एक दूसरी जगह विस्फोट हो गया। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के समय से ही ग्रीस को शिकायत बनी हुई थी कि बहुत से ग्रीक लोग फिर भी टर्की की अधीनता में रह गये थे। वे कई जगह—आयोनियन द्वीप, क्रीट, थिसेली, एपिरस तथा मेसिडोनिया में—बसे हुए थे। ग्रीस सदा ही इन प्रदेशों को टर्की के आधिपत्य से मुक्त करके अपने साथ शामिल करने का प्रयत्न करता रहा। उसका मुख्य ध्यान थिसेली तथा एपिरस की ओर रहता था। क्रीमियन युद्ध तथा १८७७-७८ के रूस-टर्की के युद्ध के समय में उसने उन

* Gooch : History of Modern Europe, p 240.

† Slosson : Europe since 1870, p. 46. टर्की के साम्राज्य की ईसाई प्रजा की दुर्दशा के लिये बर्लिन की सन्धि उत्तरदायी थी। यदि महान् सत्ताएं अपनी धरोहर के प्रति सच्ची होती तो इस सन्धि के द्वारा समस्त टर्की में सुशासन का युग आरम्भ हो जाता। आधुनिक इतिहास में धरोहर के प्रति विश्वासघात का इससे बड़ा उदाहरण नहीं मिलेगा। Holland Rose : The Development of the European Nations, Vol. I, p. 298.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रदेशों पर आक्रमण भी किया था। परन्तु योरोपीय सत्ताओं ने उसे वहाँ से हटने पर विवश कर दिया था। किन्तु १८८१ में ग्लेड्स्टन ने, जो टर्की का शत्रु था, उसे दबा कर एपिरस का तृतीयांश तथा थिसेली का अधिकांश ग्रीस को दिलवा दिया था। इसके कोई २० वर्ष पहले ग्लेड्स्टन ने आयोनियन द्वीप भी जो १८१५ से इंगलैण्ड के पास थे ग्रीस को दिलवा दिये थे।*

अब क्रीट का प्रश्न रह गया था। क्रीट के निवासी भी टर्की के साम्राज्य में रहने वाले अन्य ईसाई लोगों के समान ही पीड़ित एवं असन्तुष्ट थे। वे केवल टर्की के आधिपत्य से मुक्त ही होना नहीं चाहते थे, वे ग्रीस के साथ शामिल होने के लिये भी आतुर थे। उन्होंने कई बार विद्रोह भी किया परन्तु उनके बदले उन्हें सुल्तान के सुधार-सम्बन्धी कोरे आश्वासनों के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। बल्गारिया की स्वतंत्रता के बाद से ही उनमें राष्ट्रीयता की भावना उग्र होती जा रही थी जो १८९६ में भड़क उठी और वेनिज़िलोस (Venizelos) के नेतृत्व में उन्होंने टर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। ग्रीस में भी उन दिनों राष्ट्रीयता की भावना ज़ोर पकड़ रही थी। उसने क्रीटवालों की सहायता के लिये तुरन्त एक सेना भेजी और शायद इस भरोसे में कि योरोपीय सत्ताएँ युद्ध नहीं होने देंगी, थिसेली पर भी आक्रमण कर दिया। इस पर ज़र्मनी से इशारा पाकर टर्की ने १७ अप्रेल १८९७ को ग्रीस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और उसकी जर्मन-शिक्षित सेना ने 'तीस दिन के युद्ध' में ग्रीस को बिल्कुल परास्त कर दिया। यह देख कर योरोपीय सत्ताओं ने युद्ध को बढ़ने से रोकने के लिये, दोनों को युद्ध बन्द करने पर विवश किया। दिसम्बर में दोनों में सन्धि हो गई। ग्रीस के लिये युद्ध बड़ा अनिष्टकारी सिद्ध हुआ। उसे थिसैली का कुछ भाग टर्की के सुपुर्द करना पड़ा और युद्ध का भारी हर्जाना देना पड़ा। क्रीट टर्की से अलग कर दिया गया, हालाँकि उसे नियमानुकूल स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई।†

क्रीट की व्यवस्था—

टर्की से अलग करके क्रीट की व्यवस्था योरोपीय सत्ताओं ने अपने हाथ में ले ली परन्तु पारस्परिक ईर्ष्या के कारण वे शीघ्र उसकी व्यवस्था न कर सके। जर्मनी और ऑस्ट्रिया ऐसी कोई व्यवस्था नहीं चाहते थे जो टर्की को रुचिकर नहीं थी। अतः वे अलग हो गये। इङ्गलैंड, रूस, फ्रान्स तथा इटली ने टर्की के आधिपत्य में क्रीट को स्वशासन प्रदान कर दिया और अपनी ओर से क्रीट पर शासन करने के लिये ग्रीस के राजा जार्ज को हाई कमिश्नर नियुक्त किया। ग्रीस ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया। अप्रेल १८९९ में एक विधान-

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 319.
† Marriott : The Eastern Question, p. 382.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभा आमंत्रित की गई जिसने वेनिज़िलॉस द्वारा निर्मित एक उदार विधान स्वीकार किया। वेनिज़िलॉस बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ था। उसके नेतृत्व में क्रीट ने वास्तविक स्वशासन का उपभोग किया। इस प्रकार क्रीट की समस्या का समाधान एक प्रकार का समझौता था। उसे ग्रीक शासक के अधीन स्वायत्त शासन प्राप्त हो गया परन्तु वह ग्रीक से पृथक तथा टर्की के अधीन बना रहा।* ग्रीस के राजा को योरोपीय सत्ताओं ने अपना हाई कमिश्नर नियुक्त करके क्रीटवालों में यह विश्वास जमा दिया था कि शीघ्र ही क्रीट ग्रीस में शामिल कर दिया जायगा परन्तु उसमें देर होती देख कर उसका धैर्य छूट गया और १९०५ में उन्होंने वेनिज़िलॉस के नेतृत्व में विद्रोह करके ग्रीस के साथ क्रीट संयोग की घोषणा कर दी। योरोपीय सत्ताओं ने फिर हस्तक्षेप किया और क्रीट में तीन वर्ष तक एक अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक पुलिस बनी रही। १९०८ में जब 'युवक तुर्क' क्रान्ति हुई तो उन्होंने फिर ग्रीस से शामिल होने की मांग की परन्तु ग्रीस की गलती से संयोग न हो सका। अन्त में १९१० में वेनिज़लॉस के ग्रीस के प्रधान मंत्री बनने पर संयोग संभव हो सका जिसे टर्की ने बाल्कन युद्ध के अन्त में १९१३ में स्वीकार कर लिया।$

'युवक तुर्क' क्रान्ति—

क्रीट का ग्रीस के साथ संयोग मुख्यकर 'युवक तुर्क' क्रान्ति के कारण हो सका था। टर्की में कुछ वर्षों से पश्चिमी योरोप में शिक्षा पाये हुए 'युवक तुर्क' लोगों में अपने क्षीयमाण राज्य को नवजीवन प्रदान करने और पश्चिमी ढंग पर उसका पुनः संगठन करने की इच्छा जाग्रत हो रही थी। इस इच्छा का द्विविध स्वरूप था। उन लोगों में प्रजातान्त्रिक भावना का ज़ोर था और वे भाषण, प्रेस, धर्म आदि की स्वतन्त्रता, पार्लमिएट की स्थापना तथा उदार विधान का निर्माण चाहते थे। इसके साथ ही वे राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण थे और टर्की को संसार के प्रगतिशील देशों में अपना उचित स्थान प्राप्त करता हुआ योरोपीय राज्यों की दासता से मुक्त देखना चाहते थे। युवक तुर्क लोग गुप्त समितियों द्वारा प्रचार करते थे और सेना में उनका प्रचार काफ़ी आगे बढ़ चुका था। इस आन्दोलन का आरम्भ १८९१ में हुआ था जब कि कुछ तुर्क युवकों ने जनीवा में 'एकता तथा प्रगति की कमिटी' (Committee of Union and Progress) की स्थापना की थी। इस कमिटी का नाम बाद में 'युवक तुर्क (Young Turks) भी पड़ गया। बाद में वह जनीवा से उठ कर पेरिस चली गयी और अन्त में उसने १९०६ में सेलोनिका में अपना आसन जमाया।$

* Slosson : European since 1870, p. 43.
‡ Marriott : The Eastern Question, pp. 384-85-467.
$ Marriott : The Eastern Question, p. 434.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२३ जुलाई १९०८ को युवक तुर्कों ने सेलोनिका में १८६६ के विधान की घोषणा की जिसे सुल्तान अब्दुल हमीद ने सिंहासन पर बैठते समय जारी किया था परन्तु दो वर्ष बाद वापस ले लिया था। इसके साथ ही मेसिडोनिया में स्थित तुर्क सेना, जो इन लोगों से मिली हुई थी, कॉन्टेएटीनोपल की ओर कूच करने के लिए तैयार हो गई। सुल्तान ने उस विधान की फिर से घोषणा कर दी, पार्लामेएट आमन्त्रित की और जनता को वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा धार्मिक समानता प्रदान की। इसके साथ ही उसने प्रेस पर से नियन्त्रण हटा लिये और अपनी ४०,००० जासूसों की सेना बरख़ास्त कर दी। परन्तु कुछ महीनों बाद जोश ठंडा होते देख उसने अप्रेल १९०९ में सेना की सहायता से विधान को रद्द कर देने का प्रयत्न किया। इस पर 'युवक तुर्क' सेना ने कॉन्स्टेएटीनोपल में प्रवेश किया और सुल्तान को पदच्युत करके उसके भाई पाँचवें मुहम्मद को सिंहासन पर बिठला दिया। ऐसा मालूम होने लगा मानों टर्की के दिन फिर गये और सुधार एवं उदार शासन के युग का आरम्भ हो गया। परन्तु शीघ्र ही क्रान्तिकारियों में मतभेद हो गया। प्रगति के समर्थकों के सामने एकता के समर्थकों का, प्रजातान्त्रिक भावना के सामने राष्ट्रीयता का ज़ोर बढ़ा और टर्की में फिर से प्रतिक्रिया का आरम्भ हो गया। नई सरकार धार्मिक असहिष्णुता तथा अ-तुर्क लोगों पर अत्याचार करने पर तुल गई और तुर्कीकरण की कठोर नीति बरतने लगी।

क्रान्ति का प्रभाव—

किन्तु क्रान्ति के आरम्भ से पूर्वीय प्रश्न से सम्बन्धित समस्त समस्याएँ जाग्रत हो गईं और घटनाओं का वह सिलसिला आरम्भ हुआ जिसका अन्त प्रथम विश्व-युद्ध में हुआ।* योरोपीय तथा बाल्कन राष्ट्रों में यह भय उत्पन्न हो गया कि कहीं नवीन टर्की अपना सुधार करके और अपनी शक्ति को संगठित करके फिर से अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न न करे। अतः उन्होंने टर्की को सम्हालने के पहले ही अपनी स्वार्थ-सिद्धि आरम्भ कर दी और बर्लिन की सन्धि का भंग करना शुरू कर दिया।

बर्लिन-सन्धि का भंग—

५ अक्टूबर १९०८, को बल्गारिया ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी; ६ अक्टूबर, को ऑस्ट्रिया ने बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया; और १२ अक्टूबर को क्रीट ने ग्रीस के साथ अपने संयोग की घोषणा कर दी।$ सुल्तान को इन घटनाओं पर बड़ा क्रोध आया। उसने

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 325.

$Gooch : History of Modern Europe, p. 413.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योरोपीय सत्ताओं से अपील की। बल्गारिया का मामला कुछ दिनों तक तो संगीन होता हुआ दिखाई दिया परन्तु उसे ऑस्ट्रिया का समर्थन प्राप्त था जिसने बॉस्निया तथा हर्ज़गोविना को शामिल करने के लिये उसकी स्वीकृति लेकर बल्गारिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार करने का वचन दे दिया था।* अन्त में अप्रेल १९०९ में उससे हर्जाना लेकर सुल्तान ने उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली।† ऑस्ट्रिया की कार्रवाई पर रूस बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने बड़ा विरोध किया।

सर्विया का असन्तोष—

परन्तु ऑस्ट्रिया की कार्यवाही से सबसे अधिक असन्तोष सर्विया को हुआ क्योंकि बॉस्निया और हर्ज़गोविना स्लाव प्रदेश थे। वह कुछ वर्षों से अपने आपको बाल्कन प्रायद्वीप के स्लाव लोगों का संरक्षक तथा भावी मुक्तिदाता समझने लगा था। इसके अतिरिक्त उसके आर्थिक-हितों की दृष्टि से यह आवश्यक था कि उसके राज्य का विस्तार एड्रियाटिक सागर तक हो परन्तु इन प्रदेशों के आस्ट्रिया में मिल जाने से उस सागर तक पहुँचने का उसका स्वप्न नष्ट हो गया। जनता बड़ी उत्तेजित हो गई और आस्ट्रिया से युद्ध छेड़ने की माँग करने लगी। सरकार ने योरोपीय सत्ताओं से न्याय तथा इस बलात्कार से रक्षा की अपील की और यह आग्रह किया कि यदि स्थिति पुनः पहले जैसी न हो सके तो कम से कम नवीबाज़ार का संजक देकर सर्विया की क्षतिपूर्ति की जाय।‡ इंगलैण्ड और रूस को सर्विया से सहानुभूति थी। रूस १८८१ में ऑस्ट्रिया द्वारा भविष्य में इन प्रदेशों को शामिल कर लिये जाने की स्वीकृति दे चुका था और उसने जुलाई १९०८ में भी इस शर्त पर अपनी सम्मति दे दी थी कि इसके बदले में मध्य योरोपीय सत्ताएँ बॉस्फ़ोरस तथा डार्डेनेलीज़ जलडमरुमध्यों में रूस के जंगी जहाज आने-जाने दें।$ परन्तु अब वह मुकर गया। किन्तु युद्ध के लिये तैयार न होने के कारण अकेले वह कुछ नहीं कर सकता था। इंगलैण्ड ने रूस से मिल कर बर्लिन

---

*Gooch : A History of Modern Europe, p. 413.

† Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 363.

‡ Marriott : Europe and Beyond, p. 227.

$ Gooch : History of Modern Europe, p. 411. यह बातचीत ऑस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री एहरेन्थाल और रूस के विदेश-मन्त्री इज़वॉल्स्की के बीच हुई थी। परन्तु बातचीत क्या थी इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। बाद में इज़वॉल्स्की मुकर गया। Dickinson : International Anarchy, pp. 169-172,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की संधि के भंग के प्रश्न पर विचार करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की माँग करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं किया। आस्ट्रिया से बातचीत करते समय रूस ने फ्रांस से परामर्श नहीं किया था। अतः वह भी इस मामले में रूस का साथ देने के लिये तैयार नहीं हुआ।* उधर, जैसा हम देख चुके हैं, जर्मनी ऑस्ट्रिया की मदद पर था और 'चमकीले कवच' की बात कहके रूस को धमका रहा था। अतः रूस को दबना पड़ा। सर्बिया बेचारा कर ही क्या सकता था। उसे केवल ऑस्ट्रिया की कार्यवाही को स्वीकार ही नहीं करना पड़ा, इसके साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ा कि उस कार्यवाही से उसके अधिकारों का उल्लघंन नहीं हुआ था और भविष्य में ऑस्ट्रिया के प्रति अपनी नीति बदलने तथा उससे मेल कर लेने का वचन भी देना पड़ा।† परन्तु ऑस्ट्रिया ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मांग करने वाले राष्ट्रों की लाज बचाने को टर्की के सुल्तान को हर्जाना देकर उसकी स्वीकृति ले ली और नवीबाज़ार के संजक को खाली कर दिया जिससे सर्बिया को कुछ सन्तोष हो गया।‡ फिर भी जो आग भड़क उठी थी, वह बुझी नहीं। संकट बिना युद्ध के टल गया था परन्तु विजयी ऑस्ट्रिया-हंगरी, अपनी सफलता के मद से उन्मत्त जर्मनी, त्रस्त योरोप, क्षुब्ध रूस और अत्यन्त क्रुद्ध सर्बिया, इन सबसे मिलकर एक विशाल बारूद का ढ़ेर बन गया था जिसके विस्फोट के लिये एक चिनगारी पर्याप्त थी।$ १९०८ की घटनाओं का स्वाभाविक परिणाम १९१४ का महायुद्ध था।

इटली-टर्की का युद्ध (१९११-१९१२)—

टर्की के साम्राज्य पर इटली के भी दाँत थे। वह अफ्रिका में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। जहाँ उसके लिये केवल ट्रिपोली की विलायत ही बची थी क्योंकि पश्चिम की ओर एल्जीरिया और ट्यूनिस फ्रान्स के अधिकार में थे और पूर्व की ओर ईजिप्ट में इङ्गलैण्ड जमा हुआ था। १८७८ की बर्लिन-कांग्रेस में उसने अपना इरादा भी प्रगट कर दिया था। कुछ वर्षों तक तो वह उस प्रदेश में व्यापारिक एवं आर्थिक तरीकों द्वारा अपना मार्ग तैयार करता रहा परन्तु जब १९०८ में 'युवक तुर्क' आन्दोलन हुआ

---

* Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 362.

† Gooch : History of Modern Europe, p. 422.

‡ एहरेन्थाल ने यह काम इटली को सन्तुष्ट करने के लिये किया था, परन्तु वास्तव में कारण यह था कि सेलोनिका पहुँचने का मार्ग इस संजक की अपेक्षा मोरावा की घाटी में होकर अधिक सरल था। Marriott : Europe and Beyond, p. 226.

$ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 327.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसका उद्देश्य टर्की को योरोपियनों के प्रभाव से मुक्त करना था तो वह सतर्क हो गया। उधर कुछ दिनों से जर्मनी भी ट्रिपोली में वैज्ञानिक अनुसंधान में रुचि लेने लगा था। इटली यह देखकर चिन्तित हुआ। उसने यकायक २५ सितम्बर १९११ को टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके ट्रिपोली के तटीय नगरों पर अधिकार कर लिया, और रोड्ज़ द्वीप तथा डोडेकेनीज़ द्वीप समूह को छीन लिया। टर्की कुछ दिनों तक तो संभावित अन्तर्राष्ट्रीय झमेले से लाभ उठाने की आशा में इटली को रियायतें देने से इन्कार करता रहा परन्तु १९१२ में जब बाल्कन राज्यों ने उसके विरुद्ध एक संघ बना लिया तो उसने १८ अक्टूबर १९१२ को लॉसेन के स्थान पर सन्धि करके इटली को ट्रिपोली दे दिया। इस युद्ध ने टर्की के साम्राज्य की निर्बलता प्रमाणित कर दी। उसका इससे भी अधिक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि उस को देख कर बाल्कन राज्यों ने भी अपना संघ बनाकर टर्की से युद्ध छेड़ दिया जिससे आगे चल कर महायुद्ध हुआ। योरोपीय स्थिति पर इसका प्रभाव परोक्ष किन्तु महत्वपूर्ण हुआ। त्रिराष्ट्र-मैत्री की सहिष्णुता के साथ तथा अपने मित्रों से परामर्श किये बिना यह कार्यवाही करके इटली ने दूसरे पक्ष की ओर बढ़ने में एक कदम और उठाया।* एलजेसिरास के सम्मेलन में उसका रुख स्वतन्त्र रहा था, बोस्निया के संकट के समय भी उसने क्रोध प्रकट किया था, परन्तु ट्रिपोली पर आक्रमण करना तो अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करना था।

बाल्कन राज्यों का संघ—

जिस दिन लॉसेन की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए उसी दिन ग्रीस ने टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। परन्तु इस बार ग्रीस अकेला नहीं था। इसी बीच में एक आश्चर्यजनक घटना हो चुकी थी कि समस्त बाल्कन राज्य पहली बार टर्की के विरुद्ध मिल गये थे।

बाल्कन प्रायद्वीप के ईसाई राज्यों के मेल अथवा संघ की बातचीत १८७८ के बाद कई बार चली थी परन्तु १८८५ में बल्गारिया के विस्तार तथा उसके बाद के सर्बिया- बल्गारिया के युद्ध के कारण मेल की आशा टूट गई और वर्षों तक जागृत नहीं हुई। १८९१ में ग्रीस के प्रधानमन्त्री ट्रिकूपिस (Tricoupis) ने सर्बिया तथा बल्गारिया से बातचीत चलाई थी। सर्बिया तो राजी हो गया था परन्तु बल्गारिया के सम्बन्ध जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया से और उनके द्वारा टर्की से भी अच्छे थे, अतः उसने इस विचार को बिलकुल प्रश्रय नहीं दिया। परन्तु बाल्कन राज्यों के मेल के मार्ग में वास्तविक बाधा मेसिडोनिया में उनके परस्पर-

* Gooch : History of Modern Europe, p. 487.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विरोधी हितों के संघर्ष के कारण थी* क्योंकि उस प्रदेश में सर्ब, बल्गार, ग्रीक आदि सभी जातियों के लोग बसे हुए थे और प्रत्येक राज्य उसका अधिक से अधिक भाग हड़पना चाहता था। इसके अतिरिक्त उनके बीच एतिहासिक तथा जातीय कारणों से भी वैमनस्य चला आ रहा था। परन्तु इन सब कारणों के होते हुए भी उनको एकत्र करने वाली एक बात थी—टर्की के प्रति सामान्य घृणा। मेसिडोनिया के ईसाइयों के हत्याकाण्ड का उन सब पर समान प्रभाव हुआ था क्योंकि वहाँ उन सभी जातियों के लोग मारे गये थे और सभी समान रूप से अपने लोगों को टर्की की दासता से मुक्त करने के लिये आतुर थे। 'युवक तुर्क' क्रान्ति के बाद से तुर्कीकरण की नीति के कारण सुल्तान के अत्याचार बढ़ते और असह्य होते जा रहे थे। इतने ही में इटली ने टर्की के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और टर्की कई जगह परास्त हुआ। इस पर सभी राष्ट्रों ने मेसिडोनिया की मुक्ति का उपयुक्त अवसर आया देख कर अपने पारस्परिक मतभेदों को भुला दिया और मई १९१२ तक ग्रीस, सर्बिया, मॉण्टीनीग्रो तथा बल्गारिया ने आपस में एक दूसरे से सन्धि करके टर्की के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए एक संघ बना लिया।† युद्ध का निश्चय करके उन्होंने तैयारी शुरू कर दी और इसके साथ ही सुल्तान से मेसिडोनिया में सुधार करने की माँग की। सुल्तान भी युद्ध की तैयारी करने लगा। मेसिडोनिया के ईसाइयों की दुर्दशा की ओर योरोपीय सत्ताओं का ध्यान बहुत पहले से लगा हुआ था। उन्होंने कई बार सुल्तान को उनकी दशा में सुधार करने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए पत्र लिखे थे और सुल्तान ने भी सदा सुधार का वचन दिया था परन्तु उसने किया कुछ भी नहीं था। बेचारे ईसाइयों की दशा उत्तरोत्तर बिगड़ती गई। यह देख कर १९०३ में सब सत्ताओं ने इस मामले को ऑस्ट्रिया तथा रूस के सुपुर्द कर दिया जिन्होंने मूर्ज़तेग (Murtzsteg) के स्थान पर समझौता करके मेसिडोनिया पर अपना संयुक्त अधिकार स्थापित कर लिया ताकि लोगों को यह आश्वासन हो सके कि सुल्तान सुधार अवश्य करेगा। परन्तु ऑस्ट्रिया बाल्कन प्रदेश में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था। अतः यह व्यवस्था असफल रही।§ कुछ दिनों तक तो योरोपीय सत्तायें चुप रहीं परन्तु अब आग को सुलगती हुई देखकर उसे शान्त करने की दृष्टि से उन्होंने टर्की से रियायतें देने का तथा बाल्कन राष्ट्रों से धैर्य रखने का अनुरोध किया परन्तु व्यर्थ। इस

* Marriott : Europe and Beyond, p. 233.

† इस संघ का दूसरा उद्देश्य बाल्कन प्रायद्वीप में ऑस्ट्रिया तथा जर्मनी के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना भी था। Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 295.

§ Ketelbey : A History of Modern Times, p. 358.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उन्होंने टर्की पर दबाव डालने की बजाय चारों राज्यों को पत्र भेजे जिसमें उन्होंने टर्की पर बर्लिन की सन्धि के अनुसार सुधार करने के लिए ज़ोर डालने का वचन दिया और साथ ही उनसे युद्ध न छेड़ने का आग्रह किया। अन्त में उन्होंने यह भी धमकी दी कि यदि उन्होंने युद्ध छेड़ा तो उन्हें कुछ नहीं मिलेगा। बाल्कन राज्यों ने इस पत्र की बिलकुल परवाह नहीं की और अक्टूबर १९१२ में सुल्तान के सुधार करने से इनकार करने पर टर्की के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया।*

प्रथम बाल्कन-युद्ध—

टर्की पर चार दिशाओं से आक्रमण हुआ। बाल्गारिया की सेनाएँ थ्रेस में घुस गईं और एक सप्ताह के अन्दर एड्रियानोपल तक पहुँच गईं। उन्होंने उसका घेरा डाला और टर्की की सेनाओं को राजधानी में शरण लेनी पड़ी। सर्बिया की सेना नबीबाज़ार के संजक पर चढ़ दौड़ी और मोनेस्टिर तक पहुँच कर अल्बेनिया में घुस गई। उसने आगे बढ़ कर नवम्बर में एड्रियाटिक सागर पर डुराज़ों के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया। मॉण्टीनोग्रो ने भी अल्बेनिया पर आक्रमण किया। ग्रीक ने थिसेली पर आक्रमण किया और ८ नवम्बर को सेलोनिका पर अधिकार कर लिया। ग्रीस के बेड़े ने टर्की के बन्दरगाहों का अवरोध किया और कई द्वीप छीन लिए। इस प्रकार डेढ़ महिने के अन्दर टर्की परास्त हो गया और उसके पास कॉन्स्टेण्टीनोपल, एड्रियानोपल, जनीना तथा अल्बेरिया में स्कूटरी को छोड़ योरोप में कुछ न बचा। यह देख कर उसने सत्ताओं से अपील की। बाल्कन राज्यों की इस विजय से त्रिगुट बिल्कुल प्रसन्न नहीं था। जर्मनी का मित्र टर्की निर्बल हो गया था और रूस की नीति सफल हुई। ऑस्ट्रिया-हंगरी और इटली दोनों ही सर्बिया को एड्रियाटक सागर के निकट नहीं पहुँचने देना चाहते थे। दूसरी ओर इङ्गलैण्ड और फ्रान्स युद्ध को बढ़ने से रोकने के लिये उत्सुक थे क्योंकि रूस और ऑस्ट्रिया में युद्ध छिड़ जाने का डर बढ़ रहा था।† इस कारण सब सत्ताओं ने मिल कर ज़बरदस्ती युद्ध बन्द करवा दिया और लन्दन में अपने तथा बाल्कन राज्यों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन आमंत्रित किया। ऑस्ट्रिया सर्बिया को एड्रियाटिक सागर से दूर रखने की शर्त की स्वीकृति लेकर सम्मेलन में शामिल हुआ।‡

सन्धि की बातचीत शुरू हुई। सर्बिया, मॉण्टीनीग्रो तथा ग्रीस अल्बेनिया को आपस में बाँट लेना चाहते थे परन्तु ऑस्ट्रिया ने इसका विरोध किया। एक कठिनाई उन नगरों के विषय में भी थी जो अभी तक टर्की के पास थे।

---

* Morriott : Europe and Beyond, p. 237.
† Petrie : Diplomatic History, p. 309
‡ Dickinson : International Anarchy, p. 324.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्मेलन में यह निर्णय हुआ कि एड्रियानोपल को छोड़ शेष तीनों नगर टर्की के पास बने रहें।* एड्रियानोपल के समर्पण का समाचार पाने पर 'युवक तुर्कों' ने इस भय से कि कहीं सरकार इस बलिदान के लिये तैयार न हो जाय सरकार पलट दी। सन्धि की बातचीत बन्द हो गई और युद्ध फिर आरम्भ हो गया।

टर्की ने अपने खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु उसके पास जो स्थान थे वे भी निकल गये। बाल्गारियावालों तथा सर्व लोगों ने एड्रियानोपल छीन लिया, ग्रीक लोगों ने जनीना पर अधिकार कर लिया और मॉण्टीनीग्रो तथा सर्विया ने स्कूटरी विजय कर लिया। परन्तु ऑस्ट्रिया स्कूटरी को इन लोगों के हाथों में नहीं देख सकता था। अतः सत्ताओं ने उनसे उसे छीन कर एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन के हाथों में सौंप दिया। अब टर्की के पास कॉन्स्टेण्टीनोपल को छोड़ कुछ नहीं बचा था। अतः उसे सन्धि करनी पड़ी। लन्दन में फिर सभा हुई और ३० मई १९१३ को सन्धि हो गई। टर्की के पास कॉन्स्टेण्टीनोपल तथा उसके पश्चिम में इजियन सागर पर स्थित ईनॉस से काले सागर पर स्थित मिडिया तक खींची जाने वाली रेखा तक का भाग ही रह गया। उस रेखा के पश्चिम का समस्त भाग उससे छीन कर आपस में बाँटने के लिये बाल्कन राज्यों को दे दिया गया। क्रीट को ग्रीस के साथ शामिल होने की अनुमति मिल गई और अल्बेनिया स्वतन्त्र कर दिया गया। सर्विया अल्बेनिया को मॉण्टीनीग्रो से मिल कर आपस में बाँट लेना चाहता था परन्तु ऑस्ट्रिया ने ऐसा नहीं होने दिया। इंङ्गलैंड, फ्रान्स और रूस सर्विया की ओर झुके हुए थे। कुछ दिनों तक ऑस्ट्रिया और रूस के बीच बड़ी तनातनी रही और युद्ध की आशंका नज़र आने लगी। ऑस्ट्रिया युद्ध भड़काने की कोशिश कर रहा था परन्तु जर्मनी ने शायद इस कारण से कि उसकी युद्ध की तैयारी पूरी नहीं हुई थी या और किसी कारण से उसे धैर्य रखने को कहा।† इंगलैंड ने शान्ति बनाये रखने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु शान्ति ऑस्ट्रिया को सन्तुष्ट करके ही रखी जा सकी।

द्वितीय बाल्कन-युद्ध—

योरोपीय सत्ताएँ इस प्रकार पूर्वीय समस्या का अन्तिम समाधान करके खुश हो रही थीं परन्तु वास्तव में उसका समाधान हुआ नहीं था। विजयी राष्ट्र शीघ्र ही लूट के बटवारे पर झगड़ने लगे। झगड़ा मुख्य कर मेसिडोनिया पर था। उसमें ग्रीक, स्लाव तथा बल्गार सभी लोग रहते थे। ग्रीस सांस्कृतिक

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 329.

† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 330.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा प्राचीन ऐतिहासिक सम्बन्धों के कारण उसे अपने राज्य में शामिल करना चाहता था। सर्बिया अल्बेनिया के बदले में उसे माँग रहा था। बल्गारिया कहता था कि मेसिडोनिया के निवासी अधिकतर बल्गार थे, इजियन सागर के तट तक उसका विस्तार अत्यन्त आवश्यक था और सेन स्टीफ़ेनो की सन्धि के अनुसार एक बार वह प्रदेश उसे प्राप्त भी हो चुका था। अतः वह मेसिडोनिया अपने पास रखने के लिये अड़ गया। ऑस्ट्रिया भी उसे प्रोत्साहित कर रहा था।* मेसिडोनिया के अधिकांश में ग्रीस तथा सर्बिया की सेनाएँ मौजूद थीं। उन्होंने बल्गारिया के आक्रमण में उसकी रक्षा करने के लिये आपस में गुप्त सन्धि कर ली। रूस ने मध्यस्थ बन कर झगड़ा निपटाने का प्रस्ताव किया। सर्बिया तो राज़ी हो गया परन्तु बल्गारिया ने कई शर्तें पेश कीं। वास्तव में बल्गारिया अपनी इच्छानुसार बटवारा करना चाहता था। वह विजय-गर्व से फूला नहीं समा रहा था और सर्बिया तथा ग्रीस को तुच्छ समझता था। उसने उन्हें सरलता से परास्त कर सकने की आशा से बिना युद्ध छेड़े हुए ही सर्बिया और ग्रीस पर अचानक धोखे से आक्रमण कर दिया।‡ बल्गारिया का दावा सर्बिया के दावे से अधिक मज़बूत था परन्तु उसने युद्ध छेड़ कर ग़लती की और अपना दावा कमजोर कर लिया। मॉण्टीनीग्रो तथा रूमानिया भी सर्बिया के साथ शामिल हो गये और टर्की भी कुछ क्षति-पूर्ति की आशा से उसकी ओर मिल गया। बल्गारिया बुरी तरह से परास्त हो गया और उसे सन्धि करनी पड़ी। अगस्त १९१३ में बुखारेस्ट की सन्धि हुई जिसके अनुसार बल्गारिया को सब दिशाओं में हानि उठानी पड़ी। रूमानिया को सिलिस्ट्रिया तथा डोब्रुजा का समस्त दक्षिणी भाग मिला। सर्बिया को ग्रीस की नई सीमा तक सारा पश्चिमी मेसिडोनिया प्राप्त हुआ जिसमें मोनेस्टिर का नगर शामिल था। ग्रीस को दक्षिणी मेसिडोनिया का बहुत बड़ा भाग मिला जिसमें सेलोनिका से लेकर कवाला के आगे तक सारा ईजियन तट आ गया। टर्की ने बल्गारिया से कान्स्टेण्टीनोपल की सन्धि करके उससे एड्रियानोपल तथा पूर्वी थ्रेस का अधिकांश ले लिया।§ यह कहना तो सरल नहीं है कि इस युद्ध के लिये किसकी कितनी ज़िम्मेदारी थी परन्तु इतना स्पष्ट है कि इसका दोष महान् सत्ताओं पर था। ऑस्ट्रिया और इटली ने सर्बिया तथा मॉण्टीनीग्रो को अल्बेनिया का स्वतन्त्र राज्य खड़ा करके एड्रियाटिक सागर से दूर रखा। इसी कारण सर्बिया ने मेसिडोनिया में उसकी क्षति-पूर्ति के लिये प्रयत्न किया जिसके फल-स्वरूप

---

* Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 296.

‡ Hazen : Modern European History, p. 605.

§ Slosson : Europe since 1870, p. 274.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बल्गारिया से उसका झगड़ा हुआ और युद्ध हो गया।*

बाल्कन-युद्धों के परिणाम—

बाल्कन-युद्धों का सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी परिणाम योरोपीय राज्य की हैसियत से टर्की का विनाश था। टर्की के पास कॉन्स्टेण्टीनोपल, एड्रियानोपल और उनके बीच का प्रदेश अब भी योरोप में था परन्तु अब टर्की एशियाई राष्ट्र रह गया था और ये उसके बाहरी भाग थे। अपने योरोपीय साम्राज्य का $\frac{4}{5}$ भाग उससे छिन गया और $\frac{3}{5}$ योरोपीय प्रजा उससे अलग हो गई थी। बाल्कन प्रदेश के सभी राज्यों का विस्तार बढ़ा परन्तु सबसे अधिक लाभ उठाने वाले ग्रीस और सर्बिया थे जिनके राज्य प्रायः दुगने हो गये। मॉण्टीनीग्रो का छोटा सा राज्य भी विस्तार में दुगना हो गया। रूमानिया का भी कुछ विस्तार हुआ। केवल बल्गारिया अन्य राज्यों के मुक़ाबिले में हानि में रहा। प्रथम युद्ध में उसी ने अधिक भाग लिया था और धन-जन की हानि भी उसी की अधिक हुई थी परन्तु अन्त में उसे लाभ बहुत कम हुआ। वह जो कुछ चाहता था उसका उसे आधे से भी कम मिला।

पाँच शताब्दियों से विद्यमान् टर्की के शानदार साम्राज्य का इस प्रकार अन्त हुआ और बाल्कन प्रदेश के दलित ईसाई राष्ट्रों की मुक्ति हुई। यह महान् कार्य बाल्कन प्रदेश के चार राज्यों ने ही कर लिया था, योरोप के महान् राज्यों ने इसमें कोई भाग नहीं लिया था। इतने वर्षों की जटिल पूर्वीय समस्या उन्हें युद्ध में शामिल किये बिना ही हल हो गई थी। परन्तु वास्तव में समस्या हल नहीं हुई थी। द्वितीय बाल्कन-युद्ध के फल-स्वरूप विभिन्न बाल्कन राज्यों के बीच पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष में वृद्धि हो गई थी। बल्गारिया अपने पड़ोसियों से बहुत चिढ़ गया क्योंकि उन्होंने उसे उसके उचित भाग से वंचित कर दिया था। वह इंगलैंड से भी बहुत नाराज हो गया क्योंकि उसे यह सदेह था कि उसने टर्की से बग़दाद रेलवे के संबंध में कुछ वचन लेकर उसे एड्रियानोपल दिलवा दिया था। महायुद्ध में इंगलैंड के विरुद्ध उसके जर्मनी के साथ शामिल होने का एक कारण यह भी था। रूस एक बार फिर बाल्कन राष्ट्रों का संरक्षक बन कर खड़ा हुआ, किन्तु इस बार ऑस्ट्रिया के विरुद्ध, हमेशा की तरह टर्की के विरुद्ध नहीं।† सर्बिया तो अत्यन्त संतुष्ट था। ऑस्ट्रिया ने स्वतन्त्र अल्बेनिया का राज्य खड़ा करके उसे एड्रियाटिक सागर से दूर कर दिया था। इससे चिढ़कर उसने ऑस्ट्रिया के साम्राज्य में बसने वाले स्लाव, क्रोट, स्लोवीन आदि लोगों में ऑस्ट्रिया के विरुद्ध विद्रोह की भावना भड़का कर बदला लेना शुरू किया। ऑस्ट्रिया भी संतुष्ट नहीं था क्योंकि सर्बिया तथा

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 278-279.
† Ketelbey : A History of Modern Times, p. 332.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रीस के विस्तार के कारण इजियन सागर तक बढ़ने के लिये उसके मार्ग में बड़ी भारी बाधा उत्पन्न हो गई थी। उसका मार्ग वस्तुतः बन्द हो चुका था। सर्बिया ने इस तरह मेसिडोनिया में बढ़ कर तो अपराध किया ही था, एक दूसरा अक्षम्य अपराध उसने यह किया था कि उसने स्लाव लोगों में अपनी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा ली थी जो उसके साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बड़ी खतरनाक बात थी। परन्तु उसे अकेले सर्बिया से ही शिकायत नहीं थी। ग्रीस भी, जैसा हम अभी देख चुके हैं, उसके मार्ग में बाधक था। उधर रूमानिया भी 'वृहद रूमानिया' बनने का स्वप्न देख रहा था जिससे ऑस्ट्रिया के साम्राज्य को स्पष्ट खतरा था। यह खतरा इस कारण और भी भयंकर था कि रूस और रूमानिया के सम्बन्ध उस समय अच्छे थे।* फिर भी उसे सबसे अधिक नाराज़ी सर्बिया से थी जिसे नष्ट करने पर वह उतारू हो गया।

सर्बिया का नाश केवल ऑस्ट्रिया ही नहीं चाहता था, जर्मनी भी उसका शत्रु बन गया था। जिस प्रकार वह सेलोनिका के मार्ग में ऑस्ट्रिया के लिये बाधक था उसी प्रकार वह कॉन्स्टेण्टीनोपल के मार्ग में जर्मनी के लिये भी बाधक था क्योंकि दोनों के मार्ग सर्बिया में हो कर ही थे। इस प्रकार द्वितीय बाल्कन-युद्ध के परिणाम ऑस्ट्रिया और जर्मनी के लिये अत्यन्त अरुचिकर एवं निराशा जनक हुए और बुखारेस्ट की सन्धि को भंग करने के लिये स्वयं उनका हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया। सन्धि होने के बाद से ही निस्सन्देह वे युद्ध के लिये कटिबद्ध हो गये और केवल अवसर तथा बहाने की प्रतीक्षा करने लगे।† आस्ट्रिया ने तो सन्धि के तीसरे दिन ही इटली को सर्बिया के विरुद्ध कार्यवाही करने के अपने इरादे की सूचना दी थी और सन्धि के अनुसार सहयोग की माँग की थी परन्तु इटली के इन्कार करने पर युद्ध रुक गया था। जर्मनी ने भी उसे रोक दिया था। परन्तु इससे उसके विचार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। कॉन्स्टेण्टीनोपल तथा सेलोनिका के मार्ग की मुख्य बाधा—सर्बिया—को नष्ट करना उनकी प्रथम चिन्ता बनी रही।‡

---

* Marriott : Europe and Beyond, pp. 254-255.

† Hearnshaw : Main Currents of European History, p. 297.

‡ १९१२-१३ के बाल्कन-युद्धों तथा उनके प्रभाव पर जो सबसे अच्छी राय प्रकट की जा सकती है वह यही है कि युद्ध में शामिल किसी भी राष्ट्र को, चाहे वह विजयी रहा हो या पराजित हुआ हो, विश्वास नहीं था कि उसके प्रदेश-वितरण सम्बन्धी निर्णय स्थायी होंगे। सभी इन सन्धियों को व्यर्थ समझते थे और सभी को आशा थी कि शीघ्र ही दूसरा युद्ध छिड़ेगा।' Grant and Temperley : Europe in the Nineteeenth and Twentieth Centuries, pp. 380-383.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्यारह महीने बाद उन्हें उपयुक्त अवसर और बहाना दोनों ही मिल गये। २८ जून १९१४ को बॉस्निया के प्रमुख नगर सिराजिवो में आस्ट्रिया के युवराज आर्कड्यूक फ्रान्सिस फर्डिनेण्ड की हत्या हो गई। बॉस्निया ऑस्ट्रिया के साम्राज्य में था और हत्यारा जाति से सर्ब होते हुए भी आस्ट्रिया की प्रजा था। फिर भी ऑस्ट्रिया ने इस हत्या का दोष सर्बिया पर लगाया और उसके सामने कुछ अत्यन्त अपमानजनक शर्तें रख कर उन्हें ४८ घण्टे के अन्दर स्वीकार करने की माँग की। सर्बिया ने अधिकाँश शर्तों को स्वीकार कर लिया और शेष दो शर्तों को यह कह कर मानने से इन्कार कर दिया कि उन्हें मानना अपने प्रभुत्व को तिलाञ्जलि देना होगा। फिर भी उसने उन शर्तों को हेग न्यायालय अथवा महान् सत्ताओं के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रस्ताव किया। ऑस्ट्रिया को इससे सन्तोष नहीं हुआ और उसने २८ जुलाई को सर्बिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। रूस ने इस प्रश्न को योरोपीय सत्ताओं के सम्मुख रखने की माँग की और ऑस्ट्रिया के विरोध करने पर अपनी सेनाएँ सीमा की ओर भेजना आरम्भ कर दिया। इस पर जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी (१ अगस्त)। तीसरे दिन फ्रान्स के विरुद्ध भी युद्ध घोषित कर दिया गया और इस प्रकार योरोपीय महायुद्ध का आरम्भ हो गया। इस तरह हम देखते हैं कि १९१२ और १९१३ के बाल्कन-युद्ध १९१४ के योरोपीय युद्ध की भूमिका थे। जुलाई १९०८ की तुर्क क्रान्ति से लेकर जुलाई १९१४ में सर्बिया के विरुद्ध ऑस्ट्रिया की युद्ध-घोषणा तक घटनाओं का अनुक्रम बिल्कुल सीधा और स्पष्ट है।*

———

* Hazen : Modern European History, p. 606.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम महायुद्ध

(१९१४-१९१८)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १२

प्रथम महायुद्ध (१९१४-१९१८)

ऑस्ट्रिया के युवराज की हत्या के फल-स्वरूप, जैसा हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, महायुद्ध का आरम्भ हुआ। युवराज फ्रान्सिस फर्डिनेण्ड की हत्या तो युद्ध आरम्भ करने का एक बहाना मात्र थी, युद्ध के वास्तविक कारण बहुत पहले से विद्यमान थे और एक प्रकार से वह अनिवार्य था। १९१० से आगे तीन चार वर्ष बड़े संकटमय रहे थे। उनमें तीन छोटे-छोटे युद्ध—इटली का टर्की के विरुद्ध तथा दो बाल्कन-युद्ध—हुए; मोरक्को के प्रश्न पर जर्मनी और फ्रान्स के बीच युद्ध होते-होते बचा; शस्त्रीकरण की दौड़ में अभूतपूर्व तेज़ी आई, अपरिमित मात्रा में शस्त्रास्त्रों का निर्माण हुआ और समाचार-पत्रों में भावी महायुद्ध की बड़ी चर्चा होती रही। इन सब बातों को तथा तत्कालीन अत्यन्त अशान्त वातावरण को देखते हुये युद्ध एक प्रकार से अनिवार्य था। यदि वह जुलाई १९१४ में टल जाता तो अगले दो तीन वर्षों में वह किसी अन्य बहाने से अवश्य छिड़ जाता।*

महायुद्ध के कारण—राष्ट्रीयता की भावना—

युद्ध का वास्तविक कारण राष्ट्रीयता की उग्र भावना और उसके कारण उत्पन्न विभिन्न राज्यों की प्रतिस्पर्धा तथा पारस्परिक आशंका थी। इस भावना का सामरिक रूप जर्मनी में सबसे उग्र था। अन्य देशों में भी राष्ट्रीयता की भावना काफ़ी ज़ोरदार थी इसी के कारण सभी राष्ट्र अफ्रिका, एशिया तथा बाल्कन प्रायद्वीप में अपने स्वार्थ-साधन एवं हितों की वृद्धि के लिये झगड़ रहे थे। यही भावना फ्रान्स में अल्सास-लोरेन को पुनः प्राप्त करने की आकांक्षा को जीवित रखे हुए थी इसी के कारण जर्मनी तथा इङ्गलैण्ड के पारस्परिक सम्बन्ध कटुतर होते जा रहे थे और उनमें सैनिक प्रतिस्पर्धा बढ़ रही थी। इसी ने टर्की के साम्राज्य में एक भयानक विस्फोटक शक्ति का कार्य करके उसको नष्ट कर दिया था और यही अब ऑस्ट्रिया के (और शायद रूस के भी) साम्राज्य को नष्ट करने की धमकी दे रही थी। सर्बिया में तुर्क साम्राज्य के विनाश में सहयोग देने के बाद ऑस्ट्रिया के स्लाव प्रदेशों को अपने में सम्मिलित करने का उत्साह बढ़ रहा था और आस्ट्रिया के राजनीतिज्ञ अपने साम्राज्य के विनाश को रोकने के प्रयत्न में लगे हुए थे।†

*Slosson : Europe since 1870, p. 282
†Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 350.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूटनीतिक कारण—

ऐसे वातावरण में कूटनीति के दाँवपेच चल रहे थे जिनके कारण अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बढ़ रहा था। बिस्मार्क ने जर्मनी की सुरक्षा के लिये त्रिगुट बना रखा था जिसके विरुद्ध-त्रिराष्ट्र मैत्री के निर्माण के साथ योरोप दो सशस्त्र शिविरों में विभक्त हो गया था जो दोनों परस्पर सशङ्क रहते थे। इसी शङ्का के कारण मोरक्को तथा बाल्कन प्रायद्वीप के सम्बन्ध में कई अन्तर्राष्ट्रीय सङ्कट उत्पन्न हुए जिससे दोनों शिविरों के बीच तनाव अत्यन्त तीव्र हो गया यहाँ तक कि १९१४ तक प्रत्येक गुट समझने लगा था कि उसके साथ धोखा किया जा रहा है और उनमें से कोई भी भावी सङ्कट को दूर करने की दृष्टि से समझौते करने के लिये तैयार नहीं था। कूटनीति युद्ध का कारण तो नहीं थी परन्तु उसके कारण युद्ध के अनुकूल परिस्थिति अवश्य उत्पन्न हो गई थी। उसने योरोप को दो विरोधी गुटों में विभक्त कर दिया था जिनके सदस्य सन्धियों के जाल में इस प्रकार फंसे हुए थे कि यदि उनमें से कोई युद्ध छेड़ देता तो दूसरे अपने आप ही उसमें खिंचे हुए चले आते। पहले जब इस प्रकार की गुटबन्दी नहीं थी तब यदि कोई झगड़ा खड़ा होता तो सभी बड़े-बड़े राष्ट्र सम्मेलन द्वारा उसे निपटा लिया करते थे। परन्तु अब अपनी प्रतिष्ठा को ही सब कुछ समझने वाले तथा औचित्य की भावना से रहित दो सशस्त्र एवं सशङ्क गुटों के बन जाने से यह बात असम्भव हो गई।*

आर्थिक कारण—

आर्थिक स्थिति भी योरोप को युद्ध की दिशा में ले जा रही थी। जर्मनी बड़ी तीव्र गति से औद्योगिक एवं व्यावसायिक उन्नति कर रहा था जिसके फलस्वरूप इङ्गलैण्ड के साथ उसकी बड़ी तीव्र प्रतिस्पर्धा चल रही थी और दोनों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ रहा था। अपने औपनिवेशिक साम्राज्य की विफलता के कारण जर्मनी अधिक अच्छे और आकर्षक प्रदेशों को प्राप्त करना चाहता था परन्तु वे फ्रान्स और इङ्गलैण्ड के पास थे। जर्मनी की इन आकांक्षाओं से फ्रान्स और इङ्गलैण्ड को अपने हितों का बड़ा खतरा मालूम होता था। जर्मनी की यह आर्थिक प्रतियोगिता किसी अंश तक रूस के साथ भी चल रही थी।†

सैनिक कारण—

उस राष्ट्रीयता, आर्थिक-प्रतियोगिता तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव से विभिन्न राष्ट्रों के बीच पारस्परिक ईर्ष्या एवं शङ्का बढ़ती जा रही थी और उसके फल-

* Schevill : A History of Europe, p. 707.

† Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 350.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वरूप सर्वत्र शस्त्रास्त्रों की वृद्धि हो रही थी जिससे पारस्परिक शंका में अधिकाधिक तीव्रता आती जा रही थी और युद्ध की सम्भावना अधिकाधिक निकट आती जा रही थी।

सामाजिक कारण—

उपर्युक्त सभी कारणों ने मिलकर उस सद्भावना एवं सौहार्द को निर्बल कर दिया था जिसे व्यापार, धर्म, विज्ञान, कला आदि मानवता को एक सूत्र में ग्रन्थित करने वाले साधनों ने सिखाया था और सद्भावना के स्थान पर आशंका, भय तथा द्वेष फैला दिया था। ऐसी मानसिक स्थिति में विभिन्न राष्ट्रों के लिये ठंडे दिमाग से कुछ भी सोच सकना कठिन हो गया था। इन कारणों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के सामाजिक कारण भी कार्य कर रहे थे।* डार्विन के सिद्धान्त से भी कई लोग बड़े प्रभावित हुए थे और वे 'सामाजिक डार्विनवाद' में विश्वास करते थे, अर्थात् वे समझते थे कि (सैनिक दृष्टि से) योग्यतम राष्ट्र ही बचा रहेगा और उन्नति करेगा अथवा उनका यह विश्वास था कि युद्ध 'जीवन-संघर्ष' का एक स्वस्थ्य अंग है और इस कारण प्राकृतिक नियमों के अनुकूल एवं आवश्यक है। विभिन्न राष्ट्रों के लोग अपनी-अपनी संस्कृति को सर्वोत्कृष्ट समझते थे और अन्य राष्ट्रों को उसके अन्तर्गत लाना अपना कर्त्तव्य मानते थे। अन्ध-देशभक्ति के प्रचारक समाचार-पत्रों एवं वक्ताओं का जादू भी काम कर रहा था जिसके कारण शान्ति के लिए किये हुए सरकार के प्रयत्नों और उसकी रियायतों को जनता देशद्रोह समझती थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि भौतिकवाद की प्रगति के साथ सच्ची धार्मिकता तथा मानवता की भावना (जो उसका अनिवार्य परिणाम है) शिथिल पड़ती जा रही थी और नरसंहार से अब लोगों की नैतिक भावना को उतनी ठेस नहीं लगती थी। उन्हें अपने भौतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए भौतिक (पाशविक) बल के प्रयोग में कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देने लगता था।‡

इस प्रकार उग्र राष्ट्रीयता, आर्थिक राष्ट्रीयता, गुप्त अन्तर्राष्ट्रीयता कूटनीति, अन्तर्राष्ट्रीय मनोमालिन्य एवं आशंका, शस्त्रास्त्रों की वृद्धि, १९११ से आगे तेज़ी से उत्पन्न होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय संकट तथा भौतिकता की वृद्धि के परिणाम-स्वरूप योरोप में १९१४ के ग्रीष्मकाल तक अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध हो चुका था और महायुद्ध की सम्भावना बहुत-बढ़ चुकी थी। १९१३ में यदि जर्मनी ऑस्ट्रिया को रोक न देता तो महायुद्ध उसी वर्ष आरंभ हो जाता है।

---

*Schevill : A History of Europe, p. 707.

‡Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 350.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध का उत्तरदायित्व—

महायुद्ध का आरम्भ ऑस्ट्रिया के युवराज की हत्या और उसके बाद की घटनाओं के कारण हुआ। युवराज की हत्या के बाद से महायुद्ध के आरम्भ तक घटना-चक्र बड़ी तेजी से चला और उस सम्बन्ध की बातें अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाई हैं।* युद्ध छिड़ने पर प्रत्येक पक्ष ने अपने को निर्दोष बतलाकर युद्ध छेड़ने का दोष दूसरे के सिर मढ़ने का प्रयत्न किया। जर्मनी और ऑस्ट्रिया ने सारा दोष रूस पर लगाया और इंगलैण्ड तथा फ्रान्स को भी दोषी बताया क्योंकि उनके विचार में अपने मित्रों के समर्थन के बिना वह युद्ध छेड़ने का साहस कभी नहीं करता। इसके विपरीत दूसरी ओर से सारा दोष जर्मनी के सिर मढ़ा गया, क्योंकि ऑस्ट्रिया को केवल जर्मनी के हाथ की कठपुतली समझते थे और उनका विश्वास था कि जर्मनी के प्रोत्साहन के बिना युद्ध नहीं छेड़ सकता था। उस समय संसार की समाचार-एजेन्सियों तथा तार की लाइनों पर मित्र-राष्ट्रों का अधिकार होने से संसार के सामने उन्हीं के पक्ष की बात पहुँच पाई और बारम्बार उसे दोहराने से सर्वत्र यही विश्वास जम गया कि युद्ध आरम्भ करने की जिम्मेदारी अकेले जर्मनी की ही थी।‡ यह कहा जाता रहा कि युवराज की हत्या के पहले द्वितीय विलियम और फ्रान्सिस फर्डिनेण्ड ने एक गुप्त भेंट में योरोपीय महायुद्ध का षड्यंत्र रच लिया था और जब ५ जुलाई को ऑस्ट्रिया ने जर्मनी से सहायता माँगी तो द्वितीय विलियम ने एक कौंसिल करके युद्ध का निश्चय कर लिया था।†

किन्तु युद्ध की समाप्ति पर युद्ध के आरम्भ के पूर्व की घटनाओं पर प्रकाश पड़ने लगा। अनेक राजनीतिज्ञों एवं कूटनीतिज्ञों के, जिनका उन घटनाओं से सम्बन्ध था, लेख प्रकाशित हुए। रूस, आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी के एकतंत्र युद्ध काल में ही नष्ट हो गये थे और उसकी जगह क्रान्तिकारी सरकारें स्थापित हो गई थीं जिन्होंने अपने अपने गोपनीय दफ्तर खोल दिये और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों से सम्बन्ध रखने वाला समस्त गुप्त पत्र-व्यवहार प्रगट कर दिया। इस पर अपनी सफाई देने के लिये इंगलैण्ड और फ्रांस की सरकारों को भी ऐसा ही करना पड़ा जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्षों से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो गई और युद्ध-सम्बन्धी घटनाओं की पूरी-पूरी जानकारी सम्भव हो सकी। परन्तु अभी

---

* Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 387.

† Schevill : A History of Europe, p. 707.

‡ Slosson : Europe Since 1870, p. 308.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक विद्वानों में युद्ध की ज़िम्मेदारी के विषय में एकमत नहीं हो सका है। यह विषय अभी तक विवादास्पद बना हुआ है। हाँ, इतनी बात अवश्य स्पष्ट हो गई है कि युद्ध छेड़ने का दोष किसी एक राष्ट्र पर, चाहे वह जर्मनी हो या रूस, नहीं लगाया जा सकता। ऑस्ट्रिया, जर्मनी, फ़्रान्स, रूस और इङ्गलैंड सभी किसी न किसी मात्रा में युद्ध के लिये जिम्मेदार थे।*

सर्बिया को ऑस्ट्रिया की अन्तिम शर्तें—

युवराज की हत्या का समाचार पहुँचते ही वियना में क्रोध का समुद्र उमड़ पड़ा। सरकार ने सर्बिया को इसके लिये दोषी मान कर डॉ० वीज़नर को उसकी जाँच का भार सौंपा परन्तु उसने अपनी रिपोर्ट में युवराज की हत्या में सर्बिया की सरकार का शामिल होना 'नितान्त असम्भाव्य' बतलाया।‡ हत्यारा जाति से सर्ब था परन्तु वह बॉस्निया का निवासी और ऑस्ट्रिया की प्रजा था। यह सत्य है कि सर्बिया में वर्षों से एक प्रभावशाली समिति (Narodna Oobrana)समस्त सर्ब लोगों की राजनीतिक एकता के लिये प्रयत्न कर रही थी। वहाँ एक गुप्त आतंकवादी संगठन भी काम कर रहा था जिसका नाम 'संयोग या मृत्यु' था और जो प्रायः हत्याएँ किया करता था। सर्बिया की सरकार उससे अप्रसन्न थी और उसे भय था कि कहीं उसके कारण ऑस्ट्रिया से युद्ध न छिड़ जाय। वियना में स्थित सर्बिया के राजदूत ने ऑस्ट्रिया के अधिकारियों को चेतावनी भी दी थी कि यदि युवराज सिराजिवो गया तो उसके संकट में पड़ जाने का भय था।§ फिर भी उसकी सुरक्षा के लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। युवराज फ़्रान्सिस फ़र्डिनेण्ड के विषय में यह विश्वास किया जाता था कि वह अपने साम्राज्य की द्वैध व्यवस्था से असन्तुष्ट था और संघीय आधार पर उसकी नवीन व्यवस्था करना चाहता था जिससे स्लाव लोगों को स्वायत्त शासन प्राप्त हो सकता। इस प्रकार उससे सर्ब लोगों को उतना भय नहीं था जितना ऑस्ट्रिया के द्वैध एकतन्त्र को था। ऑस्ट्रिया का निरंकुश शासक वर्ग तथा हंगरी का प्रधान-मन्त्री तिस्सा (Tisza) उसकी नीति के विरोधी थे। इन सब बातों को देखते हुए यह बात मानना कठिन है कि सर्बिया की सरकार ने उसकी हत्या करवाई थी और इस प्रकार हत्या रहस्यमय बन जाती है।$ इसके साथ ही सर्बिया की ओर से आस्ट्रिया को शंका होना

---

* Schevill : A History of Europe, p. 708.

‡ Grant and Temperley : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 388.

§Slosson : Europe since 1870, p. 305.

युवराज की नवीन व्यवस्था से सर्ब, क्रोट तथा स्लोवीन लोगों को एकत्रित करके

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वाभाविक था। उसने १९०९ में दिये वचन को भंग करके अपने राज्य में ऑस्ट्रिया-विरोधी प्रचार होने ही नहीं दिया था, उसे प्रोत्साहित भी किया था; उसे हत्या के षड्यन्त्र का कुछ पता था परन्तु उसने उसे रोकने या बाद में षड्यन्त्रकारियों को दण्ड देने का यथोचित प्रयत्न नहीं किया।* किन्तु इन बातों से सर्बिया की सरकार का षड्यन्त्र में शामिल होना प्रमाणित नहीं होता, फिर भी ऑस्ट्रिया ने उस पर हत्या का दोष लगाया और उसे बड़ी कड़ी शर्तें स्वीकार करने को कहा।

ऑस्ट्रिया को जर्मनी का समर्थन—

ऑस्ट्रिया यह क़दम जर्मनी के समर्थन के बिना नहीं उठा सकता था और जर्मनी ने रूस से युद्ध छिड़ जाने का निश्चित भय होते हुए भी उसे अपनी पूर्ण सहायता का आश्वासन दे दिया था।† ऑस्ट्रिया को विश्वास था कि सर्बिया उन शर्तों को कभी स्वीकार नहीं करेगा और स्पष्टतः उसके सामने ऐसी शर्तें रख कर वह युद्ध आरम्भ करना चाहता था। सर्बिया ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया और अधिकांश शर्तों को स्वीकार कर लिया। किन्तु इससे ऑस्ट्रिया को सन्तोष नहीं हुआ और उसने सर्बिया से अपना कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ दिया। इसके साथ ही उसने अपनी सेना को कूच (Mobilization) की आज्ञा दी। इसके पहले ही सर्बिया ने भी युद्ध छिड़ जाने की आशंका से अपनी सेना को कूच का आदेश दे दिया था। स्पष्टतः दोनों देशों के बीच युद्ध छिड़ जाने की नौबत आ गई थी।

एक वृहद सर्ब राज्य के निर्माण के इच्छुक सर्ब लोगों को अवश्य भय था क्योंकि नवीन व्यवस्था के स्थापित होने पर वृहद सर्बिया का स्वप्न नष्ट हो जाता। इस कारण ऑस्ट्रिया का युवराज उग्र सर्ब-राष्ट्रीयतावादियों का शत्रु दिखाई देता था और उसे समाप्त कर देना उनके हितों में था। Strong : Dynamic Europe, p. 374.

* Slosson : Europe since 1870, p. 305. 'संयोग या मत्यु' नामक संगठन में अधिकतर सर्बिया के सैनिक अधिकारी सम्मिलित थे और उसका सबसे प्रभावशाली सदस्य सर्बिया की सेना के जासूसी विभाग का अध्यक्ष था। Schevill : A History of Europe, p. 709.

Grant and Temperley : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 353-354. 'ऑस्ट्रिया को ऐसा क़दम उठाने के लिये प्रोत्साहित करके, जिससे योरोपीय युद्ध छिड़ जाना निश्चित सा ही था, जर्मन सरकार ऑस्ट्रिया के समान ही युद्ध छेड़ने के दोष की भागी बन गई। Gooch : History of Modern Europe, p. 534.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क़ैसर की चिन्ता—रूस का रुख—

क़ैसर विलियम इस स्थिति को देख कर चिन्तित हो गया। वह देख रहा था कि इस प्रकार ऑस्ट्रिया संसार के सामने आक्रामक प्रकट होगा। रूस की गतिविधि भी वह देख रहा था। उसे सर्बिया के साथ एक स्लाव-राज्य होने के कारण स्वाभाविक सहानुभूति थी। रूस की सरकार यह भी सोचती थी कि १९०९ में एक बार दब जाने के बाद यदि इस बार भी रूस ने सर्बिया का साथ नहीं दिया तो उसकी प्रतिष्ठा बिल्कुल नष्ट हो जायगी। इसके साथ वह यह भी समझ रहा था कि रूस का स्वार्थ सर्बिया की स्वतन्त्रता में ही है क्योंकि कुछ वर्षों से कॉन्स्टेण्टीनोपल में ऑस्ट्रिया और जर्मनी का प्रभाव बढ़ रहा था और यदि सर्बिया को वे दबा सके तो समस्त बाल्कन प्रायद्वीप उनके प्रभाव में चला जायगा और जल संयोजकों पर अपना अधिकार जमाने का रूस का पुराना स्वप्न बिगड़ जायगा। ऑस्ट्रिया के सर्बिया को चुनौती देने के पाँच दिन पहले ही १८ जुलाई को रूस का विदेश-मंत्री सेज़ोनॉव सेंट पीटर्सबर्ग में स्थित ऑस्ट्रियन राजदूत को कह चुका था कि 'यदि सर्बिया को अपमानित करने का प्रयत्न किया गया तो रूस उदासीन नहीं रह सकेगा। रूस ऑस्ट्रिया को सर्बिया के विरुद्ध धमकी भरे शब्दों का प्रयोग या सैन्य कार्यवाई नहीं करने देगा।'*

फ़्रांस द्वारा रूस का समर्थन—

रूस को शीघ्र ही फ़्रांस का भी समर्थन प्राप्त हो गया। फ़्रांस का राष्ट्रपति पुंकारे २० जुलाई को ज़ार से भेंट करने सेंट पीटर्सबर्ग पहुँचा और २३ जुलाई तक वहीं रहा। उसने अपने राजदूत द्वारा सेज़ोनॉव से दृढ़ता दिखाने का अनुरोध किया और उसे फ़्रांस के समर्थन का आश्वासन दिया। उसने ऑस्ट्रियन राजदूत को भी संकेत किया कि सर्बिया को नरम पत्र लिखने से योरोप की शान्ति बनी रहेगी। उसने कहा कि 'रूस सर्बिया का घनिष्ट मित्र है और रूस का भी एक मित्र है—फ़्रांस।'‡ सेज़ोनॉव और ज़ार निकोलस दोनों में से कोई युद्ध छेड़ना नहीं चाहता था। सेज़ोनॉव समझता था कि ऑस्ट्रिया दृढ़ता दिखाने से दब जायगा। फ़्रांस की सरकार भी युद्ध के लिये उत्सुक नहीं थी। उसे यह भय ज़रूर था कि कहीं रूस की मित्रता न चली जाय और त्रिराष्ट्र-मैत्री की प्रतिष्ठा की हानि न हो। इसके साथ ही वह यह भी समझती थी

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 571.
‡ Slosson : Europe since 1870, p. 310.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि यदि युद्ध छिड़ ही गया तो उसे १८७० की पराजय को धोने का अवसर प्राप्त हो जायगा।*

इंगलैंड का शान्ति के लिये प्रयत्न—

इङ्गलैंड ने स्थिति को सम्हालने का प्रयत्न किया। २६ जुलाई को उसके विदेश-मन्त्री सर एडवर्ड ग्रे ने विकट स्थित पर विचार करने और अधिक बिगड़ने से बचाव का उपाय ढूँढ़ने के लिये और सम्मेलन के अन्त तक सक्रिय सैनिक कार्रवाइयों को बन्द करने के लिये इटली, फ्रांस, इङ्गलैंड और जर्मनी के कूटनीतिक प्रतिनिधियों के सम्मेलन का अनुरोध किया। इटली और फ्रांस ने तो प्रस्ताव स्वीकार कर लिया परन्तु जर्मनी ने ऐसे सम्मेलन में एल्जेसिरास-सम्मेलन के इतिहास की पुनरावृत्ति और केन्द्रीय सत्ताओं की प्रतिष्ठा गिरने के भय से उत्तर दिया कि मुख्य झगड़े का सम्बन्ध केवल ऑस्ट्रिया और सर्बिया से ही था और अन्य सत्ताओं का कर्त्तव्य था कि वे इस झगड़े को सीमित करके 'स्थानीय युद्ध' ही बना रहने दें और बढ़ने न दें। इस उत्तर से ऑस्ट्रिया को जर्मनी के समर्थन का पूर्ण आश्वासन मिल गया और उसने २८ जुलाई को सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।§

जर्मनी का आस्ट्रिया पर अंकुश लगाने का प्रयत्न—

किन्तु उसी दिन जर्मनी ने अपना रुख कुछ बदला। उन दिनों इंगलैंड का

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, vol. II, p. 571. सेज़ोनॉव एक पहेली था। आज तक इन घटनाओं का अध्ययन करने वाले लोग निश्चित रूप से यह नहीं जान पाये हैं कि वह युद्ध चाहता था या उसे रोकना चाहता था। Slosson : Europe since 1870. ब्रेण्डनबुर्ग के मत में युद्ध छेड़ने के दोषी पुंकारे और पेरिस में स्थित रूसी राजदूत इज़वॉल्स्की (Iswolski) थे। पेरिस और सेंट पीटर्सबर्ग दोनों जगह शासक वर्ग दो दलों में बंटे हुए थे। एक दल शान्ति चाहता था और दूसरा युद्ध। युद्ध चाहने वाले दल का नेता रूस में इज़वाल्स्की और फ्रांस में पुंकारे था। दोनों बड़ी चतुराई और सावधानी से वर्षों से युद्ध की तैयारी कर रहे थे और बाल्कन-देशों में झगड़ों के सिलसिले में युद्ध छिड़ जाने के अवसर की ताक में थे। वह अवसर उन्हें १९१४ में मिल गया। रूस की सैन्य-तैयारी, जो युद्ध का तात्कालिक कारण थी, उन्हीं का काम था। Brandenburg: From Bismarck to the World War, pp. 520-521.

§ Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 572.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेड़ा नाविक अभ्यास के लिए एकत्रित था। २६ जुलाई को अभ्यास समाप्त हो गया था परन्तु उसके नाविक-मन्त्री विन्स्टन चर्चिल ने अपनी ही ज़िम्मेदारी पर समस्त बेड़े को एकत्रित बने रहने की आज्ञा दी। उधर रूस ने २५ जुलाई को ही तैयारी के रूप में कुछ सैनिक आज्ञाएँ जारी कर दी थीं। २७ जुलाई को ग्रे ने जर्मन सरकार को तार द्वारा ऑस्ट्रिया पर अंकुश लगाने का ज़ोरदार शब्दों में अनुरोध किया। इंगलैंण्ड के रुख को देख कर जर्मन सरकार का 'स्थानीय युद्ध' का भ्रम दूर हो गया और बेथमेन-हॉलवेग ने २८ जुलाई को एक ओर तो रूस को सेना को सामान्य कूच (General Mobilization) की आज्ञा न देने को कहा और दूसरी ओर बर्कटोल्ड को नरम पड़ कर रूस को मना लेने और रूस से सीधी बातचीत करके पारस्परिक विरोध को मिटाने की सलाह दी। उसने वियना में स्थिति जर्मन राजदूत को तार दिया-'हम यह तो आशा नहीं करते कि ऑस्ट्रिया सर्बिया से बातचीत करे क्योंकि वह लड़ रहा है परन्तु रूस से बातचीत न करना भारी भूल होगी। एक मित्र की तरह हम अपना कर्त्तव्य करने को तैयार हैं परंतु यदि ऑस्ट्रिया हमारी सलाह को न माने और उस कारण एक विश्व युद्ध छिड़ जाय तो मित्र की हैसियत से हमें उसमें घसीटे जाने से इन्कार करना पड़ेगा। बर्कटोल्ड को यह बात पूर्ण ज़ोर देकर कह दीजिये।'* परन्तु बर्कटोल्ड ने सलाह नहीं मानी।

ज़ार की सैनिक कूच की आज्ञा—

जर्मनी ने रूस से जो अनुरोध किया था उसके परिणाम-स्वरूप ज़ार ने सामान्य कूच की आज्ञा को (जिस पर उसने हस्ताक्षर कर दिए थे परन्तु जो अभी प्रकाशित नहीं हुई थी) वापस ले लिया। परन्तु ऑस्ट्रिया के रुख को देख कर और सैनिक अधिकारियों के दबाव के कारण सेज़ोनॉव के आग्रह पर ज़ार ने ३० जुलाई को सामान्य कूच की आज्ञा जारी कर दी।

जर्मनी द्वारा रूस के विरुद्ध युद्ध-घोषणा—

रूस की सेना के कूच ने ऑस्ट्रिया-सर्बिया के युद्ध को रूस-जर्मनी के युद्ध में परिणत कर दिया।§ जर्मनी के सैनिक अधिकारियों ने क़ैसर को समझाया कि रूस युद्ध पर उतारू है और जर्मनी सेना के कूच में देरी करने से अनर्थ हो जायगा। इस पर ३१ जुलाई को क़ैसर ने ज़ार को बारह घन्टे के अन्दर अपनी कूच की आज्ञा को वापस ले लेने के लिए कहा। जब रूस ने उसकी बात नहीं मानी तो जर्मनी ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी (१ अगस्त)। आस्ट्रिया ने भी

* Gooch : History of Modern Europe, p. 543.

§ Hayes : A Political and Cultural History of Modern, Europe, Vol. II, 573.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूस के विरुद्ध कूच की आज्ञा जारी की (३१ जुलाई)। फ्रान्स ने भी १ अगस्त को अपनी सेना को कूच की आज्ञा दी। इस प्रकार रूस के श्रीगणेश करते ही अन्य सत्ताओं की कूच की आज्ञाएँ स्वयं-चालित पिस्तौल की गोलियों की वर्षा के समान बड़ी तेज़ी से जारी हो गईं और जिस महायुद्ध की इतने दिनों से आशंका थी वह आरम्भ हो गया।*

जर्मनी द्वारा फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध-घोषणा—इंगलैण्ड का रुख—

जर्मनी ने ३१ जुलाई को फ्रान्स से पूछा कि यदि रूस से जर्मनी का युद्ध छिड़ा तो उसका क्या रुख रहेगा। इस पर १ अगस्त को उसने उत्तर दिया कि 'फ्रान्स अपने हितों का ध्यान रखेगा।' इस पर ३ अगस्त को जर्मनी ने फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इंगलैण्ड को फ्रान्स से सहानुभूति थी। पिछले वर्षों में फ्रान्स के साथ उसका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा था और दोनों के बीच गुप्त सैनिक परामर्श भी होता रहा था। ऐसी अवस्था में फ्रान्स पर आक्रमण होने की दशा में उसकी सहायता करना इंगलैण्ड का नैतिक कर्त्तव्य था। ग्रे बहुत पहले (२२ नवम्बर १९१२) उसे सहायता देने का व्यक्तिगत वचन दे चुका था। परन्तु ग्रे की स्थिति बड़ी कठिन थी। इंगलैण्ड का लोकमत युद्ध-विरोधी था और उसके लिए मन्त्रि-मण्डल तथा पार्लामेण्ट को युद्ध के पक्ष में ले आना कठिन था। अपनी स्थिति की कठिनाई को देखते हुए ही उसने मामले को शान्तिपूर्वक सुलझाने का प्रयत्न किया था। इसके साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जब योरोप के आकाश में संकट के भयानक बादल उमड़ रहे थे तो उसने रूस के कूच को रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उल्टे यह कहा जा सकता है कि उसने सेज़ोनॉव पर कोई दबाव न डाल कर उसे प्रोत्साहित भी किया था। वह प्रत्येक दशा में त्रिराष्ट्र-मैत्री को कायम रखना चाहता था। उसे भय था कि वर्तमान संकट में रूस का साथ न देने से ऐसा रोष उत्पन्न होगा जो इंगलैण्ड और रूस की मित्रता के लिये घातक होगा। परन्तु उसका रुख डॉवाडोल ही बना रहा।† फ्रान्स और रूस के बहुत दबाव डालने पर भी उसने किसी भी अवस्था में हस्तक्षेप करने का वचन नहीं दिया। किन्तु इसके साथ ही उसने २८ जुलाई को अपने राजदूत द्वारा जर्मनी को चेतावनी दे दी थी कि यदि फ्रान्स पर आक्रमण हुआ तो इंगलैण्ड की मित्रतापूर्ण बातचीत से इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि इंगलैंड तटस्थ बना रहेगा।* उसने २ अगस्त

---

* Schevill : A History of Europe , p. 713.

† Schevill : A History of Europe , p. 713.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को जर्मनी को चेतावनी दी थी कि इंगलैंड फ्राँस के तट पर आक्रमण सहन नहीं कर सकेगा।

इंगलैंड द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा—

इन सब बातों के होते हुए भी इङ्गलैंड का रुख अनिश्चित था परन्तु वेल्जियम की तटस्थता के प्रश्न ने उसका रुख निश्चित कर दिया। २ अगस्त को जर्मनी ने लुक्सेमबुर्ग को तटस्थ भूमि पर अधिकार कर लिया और वेल्जियम से १२ घंटे के अन्दर अपने राज्य में से जर्मन सेनाओं को फ्रांस के लिये मार्ग देने की मांग की। वेल्जियम ने इन्कार कर दिया और इङ्गलैंड से अपील की। इङ्गलैंड ने प्रशा तथा अन्य राज्यों के साथ १८३९ में वेल्जियम की तटस्थता की गारंटी दे रखी थी। जर्मनी के इस कार्य से अन्तर्राष्ट्रीय कानून का भंग होने और उससे भी अधिक वेल्जियम पर जर्मनी का अधिकार होने से अपनी सुरक्षा के लिये एक महान् संकट खड़ा होते देख कर इङ्गलैंड ने जर्मनी से वेल्जियम के सामने पेश की हुई मांगों को वापस लेने के लिये कहा। इस पर जर्मनी के प्रधान-मन्त्री वेथमेन-हॉलवेग ने यह कह कर कि इङ्गलैंड केवल एक 'कागज के टुकड़े' के लिये एक सजातीय राष्ट्र से जो उसका मित्र बना रहना चाहता है उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। मन्त्रिमण्डल और पार्लामेण्ट अब युद्ध के पक्ष में हो गये और इङ्गलैंड ने ४ अगस्त की मध्य-रात्रि में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध की तात्कालिक ज़िम्मेदारी—

इस प्रकार महायुद्ध छिड़ गया। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं इसका दोष किसी एक राष्ट्र के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। फिर भी ऑस्ट्रिया, जर्मनी और रूस पर दोष अधिक आता है। ऑस्ट्रिया सर्बिया के सर्वनाश पर तुला हुआ था और युद्ध पर उतारू था। उसने जर्मनी की रूस को मनाने और सीधी बातचीत करने की सलाह को नहीं माना जिसके लिये रूस तैयार था। वह जानता था कि रूस युद्ध के लिये तैयार था, फिर भी उसने अपने मित्र की सलाह नहीं मानी। जर्मनी ने रूस से युद्ध छिड़ जाने का निश्चित भय होते हुए भी आरम्भ में ही ऑस्ट्रिया को पूर्ण समर्थन का आश्वासन देकर उसे निर्भय बना दिया। यदि जर्मनी उस पर रोक लगाता तो ऑस्ट्रिया का रुख अवश्य नरम पड़ जाता। इस प्रकार हालाँकि जर्मनी पर महायुद्ध की सीधी जिम्मेदारी तो नहीं लादी जा सकती परंतु उसके रुख से वह अनिवार्य हो गया।

❀ Gooch : History of Modern Europe, p. 542.

† Gooch : History of Modern Europe, p. 554.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शायद सत्य बात यह है कि ऑस्ट्रिया और सर्बिया के इस झगड़े में जर्मनी को पूर्व की ओर के अपने भावी विस्तार को सुनिश्चित करने का स्वर्ण-अवसर दिखाई देता था। उसे आशा थी कि यह युद्ध 'स्थानीय' बना रहेगा और त्रिराष्ट्र-मैत्री के सदस्य हस्तक्षेप नहीं करेंगे क्योंकि वे सब अपनी-अपनी मुसीबतों में फंसे हुए थे। सेंट पीटर्सबर्ग में हिंसात्मक हड़ताल हो रही थी, फ्रांस में जनता तीन वर्ष की सैन्य-सेवा के नये कानून का विरोध कर रही थी और इङ्गलैंड के सामने स्वराज्य के प्रश्न पर आयलैण्ड में भयंकर गृह-कलह की भयानक संभावना खड़ी थी। परन्तु उसने यह समझने में बड़ी भूल की।* रूस ने अपनी सेना को कूच करने की आज्ञा देने में जल्दी की। उसके कूच को देख कर जर्मनी के लिये कूच की आज्ञा जारी करना अनिवार्य हो गया। रूस के कूच से ग्रे के शान्ति के प्रयत्न विफल हो गये। यदि उसके प्रस्ताव पर विचार करने के लिये काफ़ी समय मिला होता और रूस ने कूँच की आज्ञा जारी करके बातचीत का सिलसिला तोड़ न दिया होता तो बर्कटोल्ड के अड़ंगा लगाने पर भी उसका प्रस्ताव कारगर हो गया होता। सत्य बात तो यह मालूम होती है कि कोई भी सरकार महायुद्ध तो नहीं चाहती थी परन्तु उनमें आपस में तनाव बहुत बढ़ गया था और प्रत्येक को शान्ति से अधिक अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की चिन्ता थी। यदि ऐसा न होता तो महायुद्ध रुक जाता। यह युद्ध 'संकल्प (Intention) का नहीं संक्षोभ (Tension)' का था।§

योरोपीय-युद्ध विश्व-युद्ध में परिणत—

धीरे-धीरे अन्य राष्ट्र भी युद्ध में शामिल होते गये। ७ अगस्त को मॉण्टीनीग्रो स्वाभाविक सहानुभूति के कारण सर्बिया से मिल गया। २३ अगस्त को जापान ने भी कुछ तो इङ्गलैंड के प्रति "अपने सन्धि-जन्य दायित्व को निभाने के लिये और कुछ १८९५ की घटनाओं का बदला लेने के लिये, जिसमें जर्मनी ने उसे पोर्ट ऑर्थर से वंचित करने में भाग लिया था, जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। टर्कों ने अपने साम्राज्य के निकले हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने की आशा में एक अगस्त को जर्मनी के साथ गुप्त सन्धि करके २९ अक्टूबर को काले सागर में स्थित रूसी बन्दरगाहों पर गोलाबारी की जिस पर मित्र-राष्ट्रों (Entente Powers) ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध के आरम्भ में केन्द्रीय सत्ताओं के मित्र होते हुए भी इटली और रूमानिया तटस्थ रहे क्योंकि उनकी दृष्टि में जर्मनी और ऑस्ट्रिया अपनी

* Strong : Dynamic Europe, pp. 375-376.
† Schevill ; A History of Europe, p. 713.
§ Slosson : Europe since 1870, p. 333.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

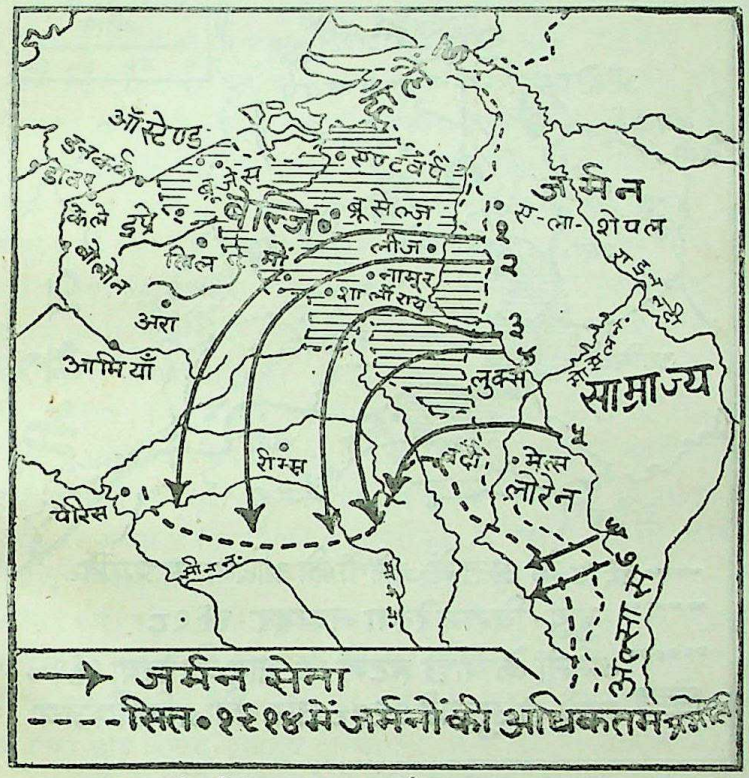

फ्रान्स और बेल्जियम पर जर्मन आक्रमण, १९१४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

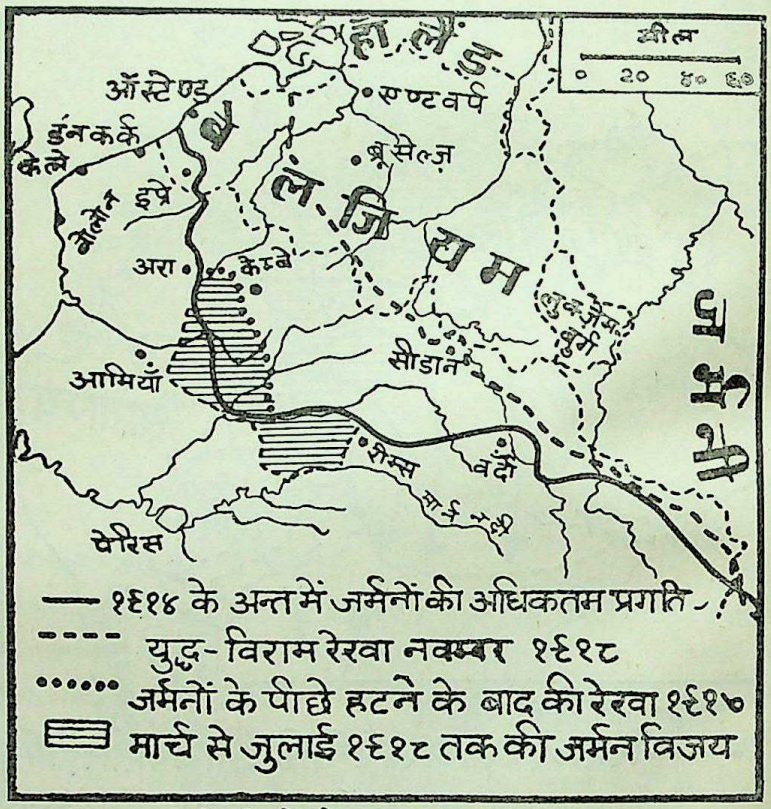

पश्चिमी मोर्चा, १९१४–१९१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रक्षा के लिये नहीं लड़ रहे थे। इस प्रकार इटली १९०२ में फ्रान्स के साथ किए हुए गुप्त समझौते का पालन कर रहा था। जर्मनी ने उसे कुछ देने का वचन देकर तटस्थ रखना चाहा परन्तु मित्र-राष्ट्रों ने अधिक प्रलोभन देकर उसके साथ अप्रेल १९१५ में लन्दन की गुप्त सन्धि करके उसे अपनी ओर मिला लिया उसने पहले २३ मई को अपने पुराने शत्रु ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़कर मित्र-राष्ट्रों की ओर से युद्ध में प्रवेश किया। मध्य योरोपीय राष्ट्रों की यह क्षति बल्गारिया ने जर्मनी की विजयों से प्रोत्साहित होकर और प्रादेशिक विस्तार का वचन लेकर सितम्बर १९१५ में उनसे सन्धि करके पूरी कर दी और १४ अक्टूबर को सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके वह युद्ध में शामिल हो गया। रूमानिया १९१६ तक अलग रहा। मित्र-राष्ट्रों से प्रादेशिक विस्तार का वचन लेकर उसने भी अगस्त १९१६ में ऑस्ट्रिया से युद्ध छेड़ दिया। इसके पहले ही मार्च १९१६ में इङ्गलैंड का पुराना मित्र पोर्तुगाल भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर चुका था। ग्रीस १९१७ तक कहने को तो युद्ध से अलग रहा परन्तु एक प्रकार से वह मित्र-राष्ट्रों की ओर ही था क्योंकि १९१५ से ही मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ उसकी भूमि का उपयोग कर रही थीं। इस प्रकार नार्वे, स्वीडेन, हालैण्ड, स्विट्ज़रलैंड तथा स्पेन को छोड़ समस्त योरोपीय राष्ट्र धीरे-धीरे युद्ध में शामिल हो गये। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति बुडरो विल्सन ने आरम्भ से ही अमेरिका की तटस्थता की घोषणा कर दी थी परन्तु आगे चल कर जब जर्मनी की पनडुब्बियों ने अमेरिका के जहाज़ों पर भी आक्रमण शुरू किया तो अप्रेल १९१७ में उसने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ना आरम्भ कर दिया। अमेरिका का अनुकरण करके कुछ ही महीनों में मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका के कई राज्य, स्याम, लिबेरिया तथा चीन भी मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में शामिल हो गये।* आयर्लैंड को छोड़ ब्रिटिश साम्राज्य तो आरम्भ से ही युद्ध में शामिल हो गया था। इन राज्यों के शामिल हो जाने से प्रायः समस्त संसार मित्र-राष्ट्रों की ओर हो गया और युद्ध वस्तुतः विश्व-युद्ध बन गया।

जर्मन युद्ध योजना—बेल्जियम पर आक्रमण—'मार्न का चमत्कार'—

आरम्भ में साधारणतया आशा की जाती थी कि युद्ध कुछ ही महीनों में समाप्त हो जायगा और जर्मन सेनाओं की प्रारम्भिक सफलताओं से यह आशा पूरी होती हुई मालूम होती थी। जर्मन युद्ध-योजना कुछ समय के लिये बाल्कन प्रायद्वीप को ऑस्ट्रिया के भरोसे छोड़ कर रूस अपनी पूरी शक्ति मोर्चों पर ला सके। इसके पहले ही ज़बरदस्त शक्ति से फ्रान्स पर आक्रमण

*Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, pp. 354-355.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करके उसे परास्त कर देने और बाद में पूर्व की ओर मुड़ कर रूस पर टूट पड़ने की थी। उसे आशा थी कि इंगलैंड तटस्थ रहेगा, फ़्रान्स के परास्त हो जाने पर रूस सरलता से नष्ट किया जा सकेगा जिसके बाद बाल्कन प्रदेश को हस्तगत करना सरल होगा।* इस योजना के अनुसार जर्मनी ने सर्वप्रथम फ़्रान्स पर आक्रमण किया और चूँकि उस पर बेल्जियम में होकर आक्रमण करना सरल था, उसने अपनी विशाल सेनाओं को बेल्जियम में हो कर भेजा।† उसे एक महीने के अन्दर पेरिस ले लेने की आशा थी परन्तु बेल्जियम की सेनाओं ने बड़ी वीरता के साथ मुकाबला किया। किन्तु वह अधिक मुक़ाबला न कर सका। २४ अगस्त को नामूर का विशाल क़िला शत्रु के हाथों में पहुँच गया। इसी बीच में १६ अगस्त तक इंगलैंड ने अपनी १,१०,००० सेना फ़्रान्स में उतार दी थी।‡ जर्मन सेनाओं ने फ़ॉन क्लुक (Kluck) के नेतृत्व में फ़्रेंच सेनाओं को शार्लीराय (Charleroi) के निकट परास्त कर दिया और मॉन्स के पास अंग्रेज़ सेना को घेर लिया। दोनों सेनाओं ने बड़ी तेज़ी से भाग कर ही अपनी रक्षा की। वे भाग कर मार्न (Marne) नदी के पीछे पहुँच गईं। फ़ॉन क्लुक ने ५ सितम्बर को मार्न नदी को पारकर पेरिस की ओर कूच शुरू किया। परन्तु फ़्रेञ्च सेना के कमाण्डर जोफर (Joffer) ने अपने सैनिकों को पीछे हटने की अपेक्षा अपने स्थान पर लड़ते-लड़ते मर मिटने का आदेश दिया। १२ सितम्बर तक बड़ा भयंकर युद्ध होता रहा। ९ सितम्बर को अंग्रेज़ों ने मार्न नदी पार की और जर्मन सेनाओं को भागकर एन (Aisne) नदी के पीछे तक हट जाना पड़ा जहाँ वह खाइयाँ खोद कर डट गईं। मार्न नदी की लड़ाई इस युद्ध की निर्णायक लड़ाइयों में से थी।§ 'मार्न के चमत्कार' ने जर्मनी के फ़्रान्स को शीघ्र ही परास्त करने के स्वप्न को भंग कर दिया। इसके बाद इस मोर्चे पर युद्ध की गति बन्द हो गई। दोनों पक्ष आमने सामने खाइयाँ खोद कर डट गये। शीघ्र ही दोनों ने अपनी खाइयों की पंक्तियाँ स्विट्ज़रलैंड की उत्तरी सीमा से लेकर बेल्जियम के उत्तरी किनारे तक बढ़ा लीं और खाइयों में से मशीन-गनों

---

* Marriott : Europe and Beyond, p. 266.

† बेल्जियम की तटस्थता भंग करके उसमें होकर फ़्रान्स पर आक्रमण करने की योजना जर्मन स्टाफ़ के प्रमुख काउण्ट श्लीफ़ेन (Schlieffen) ने १९०५ में ही बना ली थी और १९१२ में सरकार ने उसे स्वीकार भी कर लिया था।

‡ Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 399.

Marriott : Europe and Beyond, p. 267.

§ Marriott : Europe and Beyond, p. 268.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा युद्ध होता रहा। समय समय पर इस गतिरोध का भारी बमबारी, विषैले गैसों (जर्मनी की ओर से) तथा टेङ्कों (अंग्रेजों की ओर से) के प्रयोग से अन्त करने का दोनों ओर से बड़ा प्रयत्न हुआ परन्तु किसी पक्ष को भी कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई और पश्चिमी मोर्चे पर इस प्रकार १९१८ तक कोई पक्ष आगे न बढ़ सका।*

चैनल के बन्दरगाहों की ओर दौड़—

जर्मन सेनाओं के शीघ्र ही पेरिस न पहुँच सकने का एक कारण यह भी था कि वे पहले फ्रेञ्च सेना को घेर कर नष्ट करना चाहती थी।† इस उद्देश्य में उन्हें सफलता नहीं मिल सकी क्योंकि विभिन्न जर्मन कमाण्डर आपस में सम्पर्क नहीं रख सके और फ़ॉन मोल्के जिसने बहुत पीछे लुक्सेमबुर्ग में अपना हेडक्वार्टर बना रखा था वहाँ से यथायोग्य संचालन नहीं कर सका। इस असफलता के कारण मोल्के हटा दिया गया और उसकी जगह फ़ॉन फ़ाकन-हाइन (Von Falkenhayn) नियुक्त किया गया जिसने अक्टूबर और नवम्बर में इङ्गलिश चैनल के बन्दरगाहों—डनकर्क, केले, ऑस्टेण्ड आदि-पर अधिकार करके इङ्गलैण्ड और फ्रान्स के बीच आना-जाना रोकने की योजना पर कार्य शुरू किया। अंग्रेज़ों ने एण्टवर्प तथा ऑस्टेण्ड में अपनी सेना उतार दी थी, फिर भी जर्मन सेनाओं ने एन्टवर्प ले लिया और सारे बेल्जियम को रौंद डाला। जर्मनों ने इप्रे (Ypres) पर अंग्रेज़ों पर कई आक्रमण किये। अंग्रेजी सेना तो प्रायः नष्ट हो गई परन्तु इप्रे को उन्होंने नहीं छोड़ा और जर्मनी चैनल के बन्दरगाहों पर अधिकार न कर सका। तिस पर भी अब तक की घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि प्रायः समस्त बेल्जियम और उत्तरी-पूर्वी फ्रान्स का एक बड़ा प्रदेश जर्मनी के हाथों में चला गया। इस प्रदेश में फ्रान्स का ९० प्रतिशत कच्चा लोहा और ५० प्रतिशत कोयला था। बेल्जियम के बन्दरगाहों से उसे आगे चल कर पन्डुब्बियों के युद्ध में भी बड़ी सरलता हो गई। इस प्रकार जर्मनी की युद्ध करने की शक्ति बहुत बढ़ गई।$

पूर्वी मोर्चा—रूस का पूर्वी प्रशा पर आक्रमण—

रूस ने अपनी सेनाओं को अप्रत्याशित तेज़ी से आगे बढ़ा कर अगस्त के प्रथम सप्ताह में ही पूर्वी प्रशा में अपनी एक सेना भेज दी थी। उसे आरंभ में कुछ

---

*Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 356.
†Slosson : Europe since 1870, p. 341.
‡Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 402.
$Hazen : Modern European History, pp. 620-621.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफलता भी मिली परन्तु २६ अगस्त को फ़ान हिन्डेनबुर्ग (Von Hindenburg) ने उन्हें टेनेनबर्ग (Tennenberg) के ऐतिहासिक रणक्षेत्र पर ऐसी बुरी तरह से परास्त किया कि उन्हें पीछे हट कर रूस की भूमि में लौट जाना पड़ा। इस युद्ध में ८०,००० रूसी सैनिक क़ैद हुए और उनकी बहुत सी तोपें छिन गईं।*

रूस का पोलेण्ड पर आक्रमण—

किन्तु रूस का मुख्य आक्रमण पोलेण्ड में हुआ जहाँ उसकी सेनाओं ने १ सितम्बर को लेम्बर्ग ले लिया और ऑस्ट्रिया की सेना को परास्त करके गेलेशिया पर अधिकार कर लिया। वहाँ से वे कार्पेथियन पर्वत के दर्रों की ओर बढ़ी जिससे हंगरी के मैदान के लिये बड़ा भारी संकट उपस्थित हो गया। परन्तु ऑस्ट्रिया पर रूसियों का दबाव कम करने के लिए हिन्डेनबुर्ग ने पोलैंड पर आक्रमण किया और मेकेन्सन के नेतृत्व में एक दूसरी जर्मन सेना ऑस्ट्रिया की सहायता पर पहुँच गई। रूसी सेनाएँ हारी, उन्हें गेलेशिया खाली करना पड़ा, वार्सा भी उनके हाथों से निकल गया और उन्हें रूस की भूमि में ही नया मोर्चा तैयार करना पड़ा।

सर्बिया में ऑस्ट्रिया की पराजय—

ऑस्ट्रिया की सेनाओं से सर्बिया में कुछ नहीं बना। उन्होंने आरम्भ में ही बेल्ग्रेड पर अधिकार कर लिया था और सर्ब लोगों को काफी हानि उठानी पड़ी थी परन्तु ५ दिसम्बर को उन्होंने बेल्ग्रेड पर पुनः अधिकार करके ऑस्ट्रियन सेनाओं को पीछे हटा दिया। अगले ६ महिने तक उन पर कोई आक्रमण नहीं हुआ।

समुद्र पर युद्ध—

समुद्र पर ब्रिटेन के बेड़े का प्राधान्य था। इस कारण जर्मन बेड़ा हेलिगोलैंड, कील नहर तथा बाल्टिक सागर के अपने अड्डों में ही रुका रहा और वहाँ तक पहुँचने के मार्गों में माइनें (Mines) बिछा कर अपनी रक्षा करता रहा। परन्तु कई जर्मन क्रूजर जहाज़ पहले से ही बाहर निकल चुके थे। उनमें से गोबेन (Goeben) तथा ब्रेस्लाउ (Breslau) नामक जहाज़ तो टर्की के समुद्रों में जा छिपे थे परन्तु एक जहाज़ एम्डन (Emden) प्रशान्त महासागर की ओर चला गया। उसने इंगलैंड के जहाज़ों को बड़ी क्षति पहुँचाई परन्तु एक आस्ट्रेलियन जहाज़ ने उसे सिडनी के निकट डुबो दिया। इसी प्रकार एडमिरल फ़ान स्पी (Admiral Von Spee) ने चिली के तट से कुछ दूर कारोनेल के निकट दो अंग्रेजी जहाज डुबा दिये परन्तु जब वह फ़ाकलैंड द्वीपों में पोर्ट स्टेनली नामक बन्दरगाह में शरण लेने का प्रयत्न कर रहा था तो

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 405,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

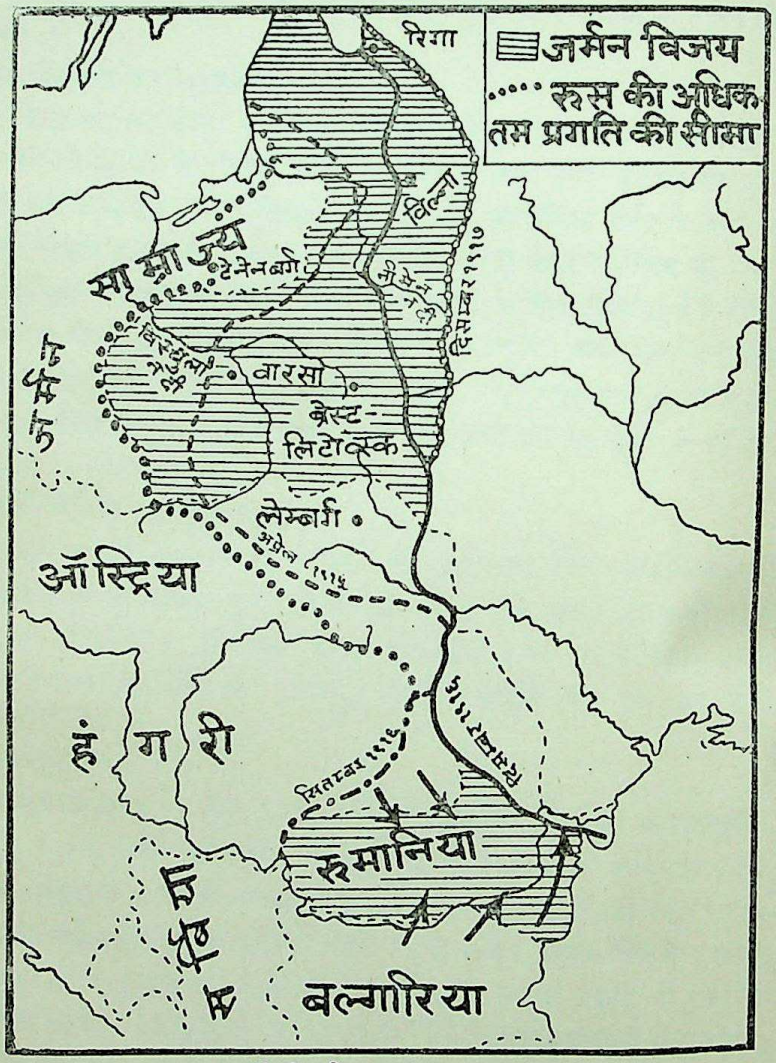

पूर्वी मोर्चा, १९१४-१९१७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एडमिरल स्टर्डी ने उसके बेड़े को नष्ट कर दिया। कई जर्मन व्यापारी जहाज़ भी बाहर थे। उनमें से अचानक युद्ध छिड़ जाने के कारण जो किसी सुरक्षित बन्दरगाह तक नहीं पहुँच सके उन्हें अंग्रेज़ी बेड़े ने पकड़ लिया और इस प्रकार उसने समस्त जर्मन बेड़े और व्यापारी जहाज़ों को समुद्र से खदेड़ दिया। इसके साथ ही उसने जर्मनी के समुद्रतटों का घेरा डाल दिया ताकि उसे समुद्र पार के देशों से कोई माल न मिल सके और तटस्थ देशों के व्यापार पर भी कड़ी निगाह रखने का प्रयत्न किया।

जर्मन साम्राज्य का विनाश—

अंग्रेज़ों को क्षति तो काफ़ी उठानी पड़ी, परन्तु समुद्र पर जर्मनी कुछ नहीं कर सकता था। और शीघ्र ही उसका समस्त साम्राज्य छिन गया। अंग्रेज़ी तथा फ्रेञ्च सेनाओं ने पश्चिमी अफ्रिका में टोगोलैण्ड तथा केमेरून्स ले लिये; बोथा और स्मट्स के नेतृत्व में दक्षिणी अफ्रिका की सेनाओं ने जर्मन दक्षिण-पश्चिमी अफ्रिका पर अधिकार कर लिया; जापान ने, जो २३ अगस्त को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर चुका था, कियाऊ-चाऊ तथा प्रशान्त महासागर में स्थित कई जर्मन-द्वीप छीन लिये; न्यूज़ीलैण्ड ने सेमोआ और ऑस्ट्रेलिया ने जर्मनी न्यूगिनी पर अधिकार कर लिया। केवल जर्मन पूर्वी अफ्रिका में १९१७ तक मुक़ाबला होता रहा।

१९१५

पश्चिमी मोर्चा—

मित्र-राष्ट्रों को १९१५ के आरम्भ में स्थिति आशाजनक दिखलाई दी। मार्च में पश्चिमी मोर्चे पर उन्हें नूव-शेपल (Neuve Chapelle) में कुछ सफलता मिली और उन्हें जर्मन पंक्तियों को तोड़ सकने की आशा बंधी। परन्तु शीघ्र ही यह आशा निराशा में परिणत हो गई। जर्मनी ने इप्रे (Ypres) के अञ्चल में आक्रमण किया और २२ अप्रैल से ११ मई तक इप्रे लेने के लिये भीषण प्रयत्न किया जिसमें भयङ्कर गोलाबारी के साथ उन्होंने प्रथम बार विषैले गैसों का भी प्रयोग किया।* परन्तु उनका प्रयत्न व्यर्थ रहा। वे इप्रे नहीं ले सके। सितम्बर में लूस (Loos) के क्षेत्र में अंग्रेजों तथा जर्मनी के बीच, शेम्पेन (Champagne) क्षेत्र में फ्रेञ्च तथा जर्मनों के बीच भयङ्कर लड़ाइयाँ हुईं जिनमें मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी की पंक्तियों को तोड़ने का भरसक प्रयत्न किया। बड़ा नरसंहार हुआ परन्तु स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सका। पश्चिमी मोर्चे पर जर्मन सेनाओं में कुछ कमज़ोरी आ गई थी क्योंकि बहुत सी सेना पूर्व में रूस से लड़ रही थीं। फिर भी वे अपनी जगह से नहीं

* Hazen : Modern European History, p. 625.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हटीं। १९१५ के लिये उनकी योजना 'पश्चिम में अपनी रक्षा की दीवार को सुदृढ़ बनाये रखने ताकि अंग्रेज़ और फ्रेञ्च उससे अपना सर टकराते रहें और पूर्व में रूस को नष्ट करने' की थी।* इस योजना से उन्हें बहुत कुछ सफलता मिली।

पूर्वी मोर्चा—

पूर्वी मोर्चे पर भी नये वर्ष का आरम्भ मित्र-राष्ट्रों के लिये आशाजनक रीति से हुआ। ग्राण्डड्यूक निकोलस के नेतृत्व में रूसी सेना ने ऑस्ट्रिया पर आक्रमण किया और गेलिशिया प्रान्त पर अधिकार कर लिया। उन्होंने पूर्वी प्रशा पर भी आक्रमण किया परन्तु हिन्डेनबुर्ग ने उन्हें मजूरियन झीलों (Mazurian Lakes) की लड़ाई में बुरी तरह से परास्त कर दिया। १,५०,००० रूसी हताहत हुए और १,००,००० क़ैद कर लिये गये। इसके उपरान्त अप्रेल में हिन्डेनबुर्ग और मेकेन्सन की कमाण्ड में जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओं ने प्रत्याक्रमण आरम्भ किया। अगस्त तक उन्होंने आस्ट्रियन गेलिशिया रूसियों से खाली करा लिया और पोलेंड, लिथुएनिया तथा कूरलैण्ड विजय कर लिये। रूसियों की सर्वत्र हार हुई और उनकी बहुत सी युद्ध-सामग्री छिन गई।

बाल्कन प्रायद्वीप—

मित्र-राष्ट्रों की विफलता यहीं तक सीमित नहीं रही। उन्हें बाल्कन प्रायद्वीप में भी धन-जन तथा प्रतिष्ठा की भारी क्षति उठानी पड़ी। युद्ध के आरम्भ में टर्की, ग्रीस, रुमानिया तथा बल्गारिया तटस्थता की घोषणा करके युद्ध से अलग रहे। टर्की में कुछ बड़े बड़े राजनीतिज्ञ तटस्थ बने रहने के पक्ष में थे परन्तु रूस की परम्परागत शत्रुता, क़ैसर विलियम की कूटनीति, इंगलैण्ड से इजिप्ट तथा साइप्रस वापस प्राप्त करने की आशा, युद्ध-मन्त्री अनवर बे के प्रभाव आदि के कारण उसने तटस्थता का त्याग करके केन्द्रीय सत्ताओं (जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया) का साथ दिया।† इसका रूस पर बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा क्योंकि टर्की के शत्रु से मिल जाने के कारण बॉस्फ़ोरस तथा डार्डेनेलीज़ के जल-संयोजकों का मार्ग उसके लिये बन्द हो गया और मित्र-राष्ट्रों से उसका सम्पर्क टूट गया। इन जल-संयोजकों के किनारों पर तुर्कों ने अच्छी किलेबन्दी कर रखी थी। उसे नष्ट करने और इस मार्ग को खोलने की दृष्टि से नवम्बर १९१४ में अंग्रेज तथा फ्रेञ्च बेड़ों ने डार्डेनेलीज़ के किलों पर बमबारी की परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। शत्रु से मिल जाने पर टर्की को

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 408.
† Marriott : Europe and Beyond, p. 272.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साइप्रस से हाथ धोना पड़ा। इंगलैंड ने ५ नवम्बर को उसे अपने साम्राज्य में शामिल कर लेने की घोषणा की।

गेलिपोली पर मित्र-राष्ट्रों का विफल आक्रमण—

इस क्षेत्र में कॉन्स्टेण्टीनोपल की स्थिति बड़े महत्व की थी। जर्मनी मेसोपोटेमिया तथा फ़ारस में अपना प्रभाव जमा कर इजिप्ट और भारतवर्ष में अंग्रेजों पर आक्रमण करना चाहता था। इस उद्देश्य की सफलता के लिये उसके लिये कॉन्स्टेण्टीनोपल का बड़ा महत्व था। मित्र-राष्ट्र भी उस पर अधिकार करना चाहते थे क्योंकि जब तक काले सागर का द्वार शत्रु के हाथों में था तब तक रूस को कुछ भी सहायता पहुँचाना उनके लिये असम्भव था। रूस के बार-बार पराजित होने का कारण युद्ध-सामग्री की कमी था। अतः उन्होंने तुर्कों की किलेबन्दी को व्यर्थ करके कॉन्स्टेण्टीनोपल तक और फिर वहाँ से काले सागर तक का मार्ग खोलने के लिये फ़र्वरी १९१५ में डार्डेनेलीज़ की किलेबन्दी पर फिर गोलाबारी की परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इस पर उन्होंने तटीय क़िलेबन्दी पर पीछे से आक्रमण करने के उद्देश्य से गेलिपोली प्रायद्वीप पर दो बार (अप्रेल और अगस्त में) अपनी सेनाएँ उतारीं। परन्तु उनसे कुछ न बन पड़ा और दिसम्बर तक उन्हें वहाँ से हटा लेना पड़ा।

मित्र-राष्ट्रों को इसमें बड़ी क्षति उठानी पड़ी, उनके हज़ारों सैनिक नष्ट हो गये और उनकी प्रतिष्ठा को भी बड़ा धक्का पहुँचा। यदि इस प्रयत्न में उन्हें सफलता प्राप्त हो जाती तो शायद युद्ध का रूप ही बदल जाता। मित्र-राष्ट्रों का रूस से सम्पर्क स्थापित हो जाता, रूस को युद्ध-सामग्री प्राप्त हो सकती और मित्र-राष्ट्रों को वहाँ से प्रचुर मात्रा में अन्न प्राप्त हो सकता। इसके साथ ही सम्भव था कि जो बाल्कन राज्य अभी तक युद्ध में शामिल नहीं हुए थे वे मित्र-राष्ट्रों से मिल जाते और ऑस्ट्रिया पर दक्षिण-पूर्व की ओर से आक्रमण हो सकता। बर्लिन और कॉन्स्टेण्टीनोपल का सम्बन्ध टूट जाने से टर्की अकेला पड़ जाता, उसे रूसी मोर्चे से अपनी सेनाएँ हटा लेनी पड़तीं, मेसोपोटामिया और इजिप्ट में मित्र-राष्ट्रों की स्थिति मज़बूत हो जाती और शायद टर्की सन्धि कर लेने के लिये विवश हो जाता।* शायद युद्ध की अवधि भी कम हो जाती।

बाल्कन प्रायद्वीप की स्थिति पर प्रभाव—

इस असफलता का बाल्कन प्रायद्वीप की स्थिति पर मित्र-राष्ट्रों के लिये बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा। ग्रीस तटस्थ था परन्तु उसके प्रधान मन्त्री वेनिज़िलॉस को सर्बिया के साथ की हुई सन्धियों के दायित्वों तथा मित्र-राष्ट्रों के उपकारों का ध्यान था। वह बाल्कन प्रायद्वीप में जर्मन प्राधान्य स्थापित होने से बहुत डरता था। वह अब भी एक बाल्कन संघ का निर्माण करना चाहता था

* Hazen : Modern European History, p. 627.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और बल्गारिया को कवाला तथा मेसिडोनिया का कुछ भाग देकर उसे सन्तुष्ट रखना चाहता था। मित्र-राष्ट्र भी विभिन्न बाल्कन राज्यों में मेल चाहते थे और सर्बिया से बल्गारिया को मेसिडोनिया का कुछ प्रदेश दिला कर शत्रुओं के चंगुल में फंसने से रोकना चाहते थे। बल्गारिया में भी एकमत नहीं था परन्तु मित्र-राष्ट्रों की कूटनीति निर्बल रही और गेलिपोली में उनकी जो पराजय हुई उसने बल्गारिया का रुख निर्धारित कर दिया। अक्टूबर १९१५ में वह केन्द्रीय राज्यों से मिल गया। बल्गारिया के इस प्रकार युद्ध में शामिल हो जाने के दो तात्कालिक परिणाम हुए। अब केन्द्रीय राज्यों का टर्की के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया और इसके साथ ही सर्बिया का अन्त निश्चित हो गया। जब मेकेन्सन की कमाण्ड में जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओं ने २ अक्टूबर १९१५ को सर्बिया पर आक्रमण किया तो बल्गारिया की सेना ने उनका साथ दिया। कुछ ही सप्ताहों में सारा देश शत्रुओं के हाथों में पहुँच गया और स्वतन्त्र सर्बिया का अस्तित्व मिट गया (२८ नवम्बर)। मित्र-राष्ट्र सर्बिया की बिलकुल सहायता न कर सके। रूस ने ४ अक्टूबर को बल्गारिया को चेतावनी देकर कुछ दिन बाद उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा भी कर दी थी। इंगलैंड तथा फ्रांस की एक छोटी सी सेना भी सेलोनिका में उतरी थी परन्तु उस समय तक बहुत देर हो चुकी थी और सर्बिया की रक्षा न हो सकी। ग्रीस के राजा कॉन्स्टेण्टाइन का रुख मित्र-राष्ट्रों के प्रतिकूल था। जब उन्होंने सेलोनिका में अपनी सेना उतारी तो उसने ग्रीस की तटस्थता भंग करने का विरोध किया और उसका रुख उत्तरोत्तर विरोधी होता गया। इसी बीच जर्मनी ने ग्रीक सेना की डिविज़नों को जर्मनी तथा बल्गारिया के प्रति आत्मसमर्पण करने का आदेश दिया और समस्त ग्रीक मेसिडोनिया पर अधिकार कर लिया। १९१६ के आरम्भ में मॉण्टीनीग्रो पर भी केन्द्रीय राज्यों का अधिकार हो गया। इस प्रकार उत्तरी सागर से लेकर डार्डेनेलीज़ के जल-संयोजक तक सारे मध्य योरोप में जर्मनी का प्राधान्य स्थापित हो गया। मित्र-राष्ट्रों के पास बाल्कन प्रायद्वीप में केवल सेलोनिका रहा जहाँ उन्होंने एक सुदृढ़ छावनी क़ायम की जिसके कारण दक्षिणी मेसिडोनिया केन्द्रीय सत्ताओं के हाथों में पड़ने से बच गया।

मध्य-पूर्व—

इंगलैंड ने टर्की के एशियाई साम्राज्य पर आरम्भ में ही भारतवर्ष की ओर से आक्रमण कर दिया था और एक भारतीय सेना ने २१ नवम्बर १९१४ को मेसोपोटामिया में बसरा पर अधिकार कर लिया। वहाँ से आगे बढ़ कर उसने सितम्बर में फ़रात और दज़ला के संगम पर स्थित कुर्ना पर भी अधिकार कर लिया। अप्रेल १९१५ में टर्की की सेना शैबा नामक स्थान पर बुरी तरह से परास्त हुई और अमारा भी भारतीय सेना के हाथों में पहुँच गया। उन्हीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिनों मित्र-राष्ट्रों का गेलिपोली पर असफल आक्रमण हो रहा था। उसकी लज्जा का निवारण करने के लिये मेसोपोटामिया में आगे बढ़ते रहने का निश्चय किया गया और जनरल टाउनशेण्ड ने, जिसके हाथों में सेना की कमाण्ड थी, २८ सितम्बर को कूत (Kut) ले लिया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर वह आगे बढ़ता रहा हालाँकि उसके पास युद्ध की सामग्री की कमी थी। वह बग़दाद तक बढ़ता चला गया परन्तु तुर्कों ने उसे परास्त कर दिया। उसकी आधी सेना नष्ट हो गई। उसे भाग कर कूत लौट आना पड़ा जहाँ टर्की की सेना ने आगे बढ़कर उसे घेर लिया। ३ सितम्बर से २१ अप्रेल १९१६ तक वह घिरा रहा। उसे सहायता पहुँचाई गई, घेरे को तोड़ने के तीन बार प्रयत्न हुए, परन्तु व्यर्थ। अन्त में ८,००० सैनिकों के साथ, जिनमें ६,००० भारतीय थे, उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा।

टर्की के केन्द्रीय सत्ताओं के साथ शामिल होने पर इंगलैण्ड ने नवम्बर १९१४ में इजिप्ट के खेदिव द्वितीय अब्बास को पद्च्युत करके इजिप्ट अपने संरक्षण में ले लिया था और दिसम्बर में हुसेन कमाल को अपनी अधीनता में वहाँ का सुल्तान बना दिया था। फर्वरी १९१५ में तुर्कों ने स्वेज़ नहर पर आक्रमण किया परन्तु वे पीछे हटा दिये गये।

इस प्रकार १९१५ का अन्त मित्र-राष्ट्रों के लिये घोर निराशा में हुआ। सभी मोर्चों पर उनकी पराजय हुई और केन्द्रीय राज्यों की स्थिति दृढ़तर हो गई। केवल समुद्र पर इंगलैंड का प्राधान्य बना हुआ था परन्तु वहाँ भी जर्मनी ने उसके लिये बड़ी परेशानी पैदा कर दी थी—इंगलैंड ने जर्मनी का जो तटावरोध कर रखा था उसके प्रत्युत्तर में जर्मनी ने फ़र्वरी १९१५ में ब्रिटिश द्वीपों का तटावरोध घोषित किया। जिसे सफल बनाने के लिये उसने पनडुब्बियों का प्रयोग शुरू किया। उसने घोषणा की कि 'समुद्री युद्ध-क्षेत्र' के अन्दर शत्रुओं के भी जहाज बिना किसी चेतावनी के डुबो दिये जायंगे और तटस्थ राज्यों के जहाजों को युद्ध-क्षेत्र से दूर रहने का आदेश दिया। उसने प्रथम ६ महीने में इंगलैण्ड के कोई २०० व्यापारी जहाज़ डुबो दिये। तटस्थ राष्ट्रों की भी काफ़ी हानि हुई। ७ मई को उसने इंगलैण्ड के यात्री ले जाने वाले एक बड़े जहाज़ लुसिटानिया को, जिस पर ११९८ यात्री थे, जिनमें से १०० अमेरिकन थे, बिना चेतावनी दिये हुए ही आयर्लैण्ड के निकट डुबो दिया। अमेरिका को इससे बहुत बुरा लगा, उसने जर्मन सरकार से इसका विरोध भी किया परन्तु अपनी तटस्थता का त्याग नहीं किया। इस युद्ध में इंगलैण्ड की क्षति तो बहुत हो रही थी परन्तु उसे यह देख कर सन्तोष था कि इस प्रकार के युद्ध द्वारा जर्मनी के लिये एक नया प्रबल शत्रु तैयार हो रहा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इटली मित्र-राष्ट्रों में शामिल—

इस अत्यन्त नैराश्यमय वर्ष में मित्र-राष्ट्रों को यदि कहीं सफलता प्राप्त हुई तो जर्मनी के उपनिवेशों को हस्तगत करने में, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, और शत्रु के विरुद्ध नया मोर्चा बनाने में प्राप्त हुई। इटली ने युद्ध के आरम्भ में केन्द्रीय राज्यों का साथ छोड़ कर तटस्थता की घोषणा की थी। उसके बाद से ही जर्मनी और मित्र-राष्ट्र दोनों ही उसे अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न कर रहे थे। अन्त में मित्र-राष्ट्रों ने उसे लन्दन की सन्धि (२८ अप्रेल) के द्वारा बड़े-बड़े प्रादेशिक लाभों का प्रलोभन देकर अपनी ओर युद्ध में शामिल कर लिया और इस प्रकार शत्रु के विरुद्ध एक नया मोर्चा बना लिया।

१९१६

पश्चिमी मोर्चा—वर्दाँ और सोम—

१९१६ में मित्र-राष्ट्रों को आरम्भ में ही पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनी के भयंकर आक्रमण का सामना करना पड़ा। गतिरोध को भंग करने और फ्रान्स की सेना को नष्ट करने के विचार से फ़ॉकेनहाइन ने २१ फ़र्वरी को फ्रान्स के द्वार 'वर्दाँ' (Verdum) पर भीषण आक्रमण किया। यह आक्रमण कितना भयंकर था इसका पता केवल इसी बात से चल सकता है कि वर्दाँ के आसपास के किलों पर जर्मनों ने प्रथम बारह घन्टों में कोई दस लाख गोले फेंके।* फर्वरी से जुलाई तक बड़ा घोर युद्ध होता रहा। दोनों ओर भारी क्षति हुई परन्तु फ्रेञ्च सेनाएँ अपने स्थान से न हटीं। दिसम्बर में जर्मनी को अपना प्रयत्न छोड़ना पड़ा और वर्दाँ की रक्षा हो गई।

इसी बीच जुलाई में अँग्रेज़ों ने फ्रेञ्च सेना की सहायता से सोम (Somme) नदी पर जर्मनों पर आक्रमण किया। जुलाई से नवम्बर तक बड़ा विनाशकारी युद्ध होता रहा। दोनों पक्षों की अपार हानि हुई। सैनिकों की संख्या तथा जितनी युद्ध-सामग्री इसमें खर्च हुई उसकी दृष्टि से उस समय तक इतनी बड़ी लड़ाई कभी नहीं हुई थी।* मित्र-राष्ट्र कुछ नगरों तथा गांवों पर ही पुनः अधिकार कर सके परन्तु जर्मन पंक्तियाँ यथावत् बनीं रहीं। किन्तु इस युद्ध के कारण वर्दाँ पर जर्मनों का दबाव कम हो गया और फ्रेंच सेनाओं को सफलता प्राप्त हो सकी। शीतकाल में जर्मन लोग सोम की खाइयों को छोड़कर कुछ मील पीछे हटकर पहले से ही तैयार की हुई सुदृढ़ 'हिन्डनबुर्ग पंक्ति' में चले गये।

---

* Ketelbey : A History of Modern Times, p. 415,

† इस लड़ाई में अँग्रेजी ने प्रथम बार टैंकों (Tanks) का प्रयोग किया। Slosson : Europe since 1870, p. 349.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके पहले ही अगस्त में फ़ॉकेनहाइन हटाया जा चुका था और हिन्डेनबुर्ग तथा ल्यूडेनडॉर्फ़ दोनों को सम्मिलित रूप में सर्वोच्च कमाण्ड सौंप दी गई थी।*

इटालियन मोर्चा—

पश्चिम की ओर जिन दिनों जर्मन सेनाएँ वर्दाँ को लेने का प्रयत्न कर रहीं थीं उन्हीं दिनों ऑस्ट्रिया इटली पर आक्रमण कर रहा था। उसे यह आशा नहीं थी कि पिछले वर्ष की पराजय के बाद रूस आक्रमण करने का साहस कर सकेगा। अतः उसने रूसी मोर्चे से अपनी बहुत सी सेना हटा कर टिरोल में होकर इटली पर हमला बोल दिया (१४ मई)। उसकी सेना को आरम्भ में कुछ सफलता प्राप्त हुई परन्तु इटालियनों ने बड़ा जोरदार मुकाबला किया, हालांकि उनकी क्षति बड़ी भारी हुई। उधर इटली की प्रार्थना पर पूर्व की ओर से रूस ने आक्रमण कर दिया। अतः ऑस्ट्रियन सेनाओं का वेनेटिया लेने का उद्देश्य पूरा न हो सका और उन्हें पीछे हटना पड़ा।

पूर्वी मोर्चा—

हिन्डेनबुर्ग तथा मेकेन्सन द्वारा परास्त होने के बाद रूस ने अपनी स्थिति कुछ सुधार ली थी। जून १९१६ में ब्रूसिलॉव की कमाण्ड में रूसी सेनाओं ने फिर आक्रमण किया। वे गेलेशिया में घुस पड़ीं और बुकोविना लेकर आगे लेम्बर्ग की ओर बढ़ने लगीं। हजारों ऑस्ट्रियन सैनिक क़ैद हो गये और ऑस्ट्रियन सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। परन्तु हिन्डेनबुर्ग ने शीघ्र ही सहायता भेज कर रूसी सेनाओं की प्रगति को रोक दिया। इसके आगे रूसियों से कुछ

---

*कुछ लेखकों का मत है कि वर्दाँ तथा सोम की लड़ाइयों के साथ जर्मनों के भाग्य ने पलटा खाया। पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों मोर्चों पर उसकी अपार हानि हो चुकी थी और इतनी क्षति उठाते हुए कोई राष्ट्र अधिक दिनों तक युद्ध नहीं कर सकता (हालांकि जर्मनी दो वर्षों तक और भी लड़ता रहा)। उसकी युद्ध-सामग्री कम होती जा रही थी, ब्रिटिश तटावरोध के कारण उसकी आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती जा रही थी और जर्मन जनता कष्ट का अनुभव करने लगी थी। गर्मी में क़ैसर ने पूर्वी मोर्चे से हिन्डेनबुर्ग तथा ल्यूडेनडॉर्फ़ को बुलाकर सर्वोच्च कमाण्ड उनके हाथों सौंपी परन्तु ल्यूडेनडॉर्फ़ स्वयं यह देखकर परेशान था कि जर्मन सेनाएँ थकती जा रही थीं। उसने लिखा कि 'हमारी सेना में उत्साह की ही कमी नहीं है उसके असंख्य सैनिक मारे जा चुके हैं....यदि युद्ध चलता रहा तो हमारी पराजय अनिवार्य है।' Ketelbey: A History of Modern Times, p. 415.

*Ketelbey : A History of Modern Times, p. 416.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं बन पड़ा। यह उनका अन्तिम आक्रमण था और यही उनकी अन्तिम विजय थी। पिछले वर्ष की क्षति के बाद से ही रूस में शिथिलता आ गई थी। इस लड़ाई के बाद उसकी सेना में लड़ने का दम नहीं रहा क्योंकि निरन्तर पराजय के कारण उसमें नैराश्य छा गया और इसके साथ ही देश के अन्दर युद्ध-क्षेत्र की पराजयों के फल-स्वरूप, जैसा कि प्रायः हुआ करता है, शासन की व्यवस्था भी बिगड़ रही थी।*

पश्चिमी तथा पूर्वी मोर्चों पर मित्र-राष्ट्रों की ओर से जो धावे हुए उनकी युद्ध की गति पर काफ़ी प्रभाव हुआ। सोम के धावे से वर्दाँ को सहायता प्राप्त हुई और उसकी रक्षा हो सकी। ब्रूसिलाव के आक्रमण से इटली पर आस्ट्रियनों का दबाव कम हो सका और इटली की सेना स्वयं इन्सॉन्ज़ो नदी के किनारे आगे बढ़ कर ९ अगस्त को गोरिज़िया पर अधिकार करके ट्रीस्ट की ओर बढ़ सकी। परन्तु ये धावे किसी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार नहीं हुए थे। अभी तक मित्र-राष्ट्र समस्त मोर्चों पर युद्ध संचालन करने के लिए एक सम्मिलित कमाण्ड स्थापित नहीं कर पाये थे जिसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। उसके अभाव में युद्ध-संचालन ठीक-ठीक नहीं हो पा रहा था जिसका दुःखद परिणाम रुमानिया में इसी वर्ष प्रकट हुआ, जबकि रूस की विजय से प्रोत्साहित होकर रुमानिया ने मित्र-राष्ट्रों से मिल कर केन्द्रीय राज्यों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा।

रुमानिया का युद्ध में प्रवेश और पतन—

रुमानिया अगस्त १९१६ तक तटस्थ बना रहा। २७ अगस्त को उसने मित्र-राष्ट्रों के साथ शामिल होकर हंगरी पर आक्रमण करके कुछ ही सप्ताह में ट्रान्सिल्वेनिया के एक बड़े भाग को अपने अधिकार में कर लिया। परन्तु सितम्बर में मेकेन्सन अपनी सेना के साथ डोब्रूज़ा में घुस पड़ा और पश्चिम की ओर से फ़ाकेनहाइन की कमान्ड में एक जर्मन सेना आगे बढ़ी। रुमानियन सेना ने बड़ी वीरता से मुक़ाबला किया परन्तु उन्हें लगातार पीछे हटना पड़ा। दक्षिणी रुमानिया शत्रुओं के अधिकार में चला गया जिन्होंने ६ दिसम्बर को राजधानी बुखारेस्ट भी ले लिया। इस विजय से केन्द्रीय सत्ताओं के अधिकार में रुमानिया के गेहूँ और तेल के प्रचुर साधन आ गये। रुमानिया की पराजय का एक कारण तो स्वयं उसकी गलती थी। उसने मित्र-राष्ट्रों का पक्ष बहुत देर से लिया। जिन दिनों रूसी जनरल ब्रूसिलॉव विजयी हो रहा था यदि उन्हीं दिनों वह युद्ध छेड़ देता तो परिणाम दूसरा ही होता। किन्तु जिस समय उसने युद्ध छेड़ा उस समय ब्रूसिलाव हार रहा था और उसे कहीं से भी सहायता नहीं मिल सकती थी।

---

* Schevill : A History of Europe, p. 718.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

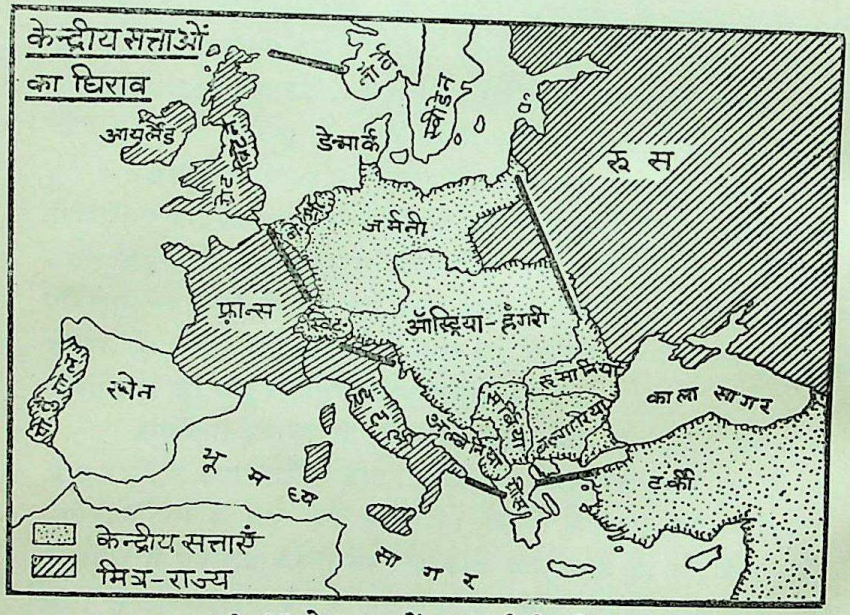

१९१६ के अन्त में युद्ध की स्थिति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जटलैण्ड की लड़ाई—

भूमि पर तो मित्र-राष्ट्रों को कहीं सफलता प्राप्त नहीं हो रही थी परन्तु समुद्र पर इंगलैंड का प्राधान्य अक्षुण्ण बना हुआ था। इस वर्ष जर्मनों की नौ-सेना ने जटलैंड के निकट अवरोध को तोड़ने का प्रयत्न किया। ३१ मई को इंगलैंड के बेड़े के प्रधान एडमिरल बीटी को एडमिरल हिप्पर के नेतृत्व में जटलैंड के निकट जर्मनी के जहाज़ दिखाई दिये और उसने उन पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में बीटी के तीन ज़हाज़ डूब गये। बीटी के पीछे सर जॉन जेलिको के नेतृत्व में मुख्य अंग्रेज़ी बेड़ा और हिप्पर के पीछे एडमिरल शीयर के नेतृत्व में मुख्य जर्मन बेड़ा था। उन दोनों में युद्ध छिड़ गया परन्तु युद्ध आरम्भ होने के समय अन्धेरा होने लगा था। जर्मनी बेड़े को काफ़ी हानि पहुँची परन्तु सवेरा होते-होते उससे भी अधिक हानि ब्रिटिश बेड़े को पहुँचा कर वह समूचा ही अदृश्य हो गया। यह लड़ाई ट्राफ़लगर की लड़ाई के बाद की सबसे बड़ी सामुद्रिक लड़ाई थी। परन्तु उससे कुछ भी निश्चय नहीं हुआ। दोनों पक्षों की काफी क्षति हुई और दोनों ही ने विजयी होने का दावा किया। परन्तु एक प्रकार से वास्तविक विजय इंगलैंड की ही रही क्योंकि इस लड़ाई के बाद जर्मन बेड़े ने अपने अड्डे से बाहर निकलने का कभी साहस नहीं किया।*

सन्धि-चर्चा—

१९१६ का अन्त मित्र-राष्ट्रों के लिये अत्यन्त निराशाजनक वातावरण में हुआ। पश्चिमी मोर्चे पर गतिरोध बना हुआ था और अन्य प्रायः सभी मोर्चों पर वे असफल रहे थे। केन्द्रीय सत्ताओं की स्थिति उनके मुक़ाबले में बहुत अच्छी थी। उनके अधिकार में उत्तर-पूर्वी फ्रान्स, बेल्जियम, सर्बिया, मॉण्टोनीग्रो, दक्षिणी रुमानिया, मेसिडोनिया का कुछ प्रदेश, समस्त पोलेण्ड तथा रूस का भी कुछ प्रदेश था। केन्द्रीय सत्ताओं में प्रमुख जर्मनी था; ऑस्ट्रिया निर्बल था और सदा जर्मनी की सहायता की अपेक्षा करता था। जर्मनी की शक्ति अब भी काफ़ी थी परन्तु उसकी बड़ी भारी क्षति हो चुकी थी और वह इतने लम्बे युद्ध के लिये तैयार नहीं था। अपनी ज़बरदस्त हानि को देख कर कैसर शान्ति की बात सोचने लगा। शत्रुओं के इतने प्रदेश अपने अधिकार में होने से उसे उनसे अच्छा सौदा करने का अवसर दिखाई दे रहा था। उसके चान्सलर बेथमेन-हॉलवेग ने १९१५ से ही शान्ति की सम्भावनाओं को टटोलना शुरू कर दिया था। ऑस्ट्रिया की स्वीकृति भी प्राप्त की जा चुकी थी। १२ दिसम्बर को बेथमेन-हॉलमेन ने समस्त युद्धरत सरकारों को शान्ति चर्चा करने के लिये

*Hazen : Modern European History, p. 638.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निमन्त्रण दिया परन्तु उसने शान्ति की बातों का कोई विवरण नहीं दिया। सभी निमन्त्रित राज्यों ने उस प्रस्ताव को युद्ध की एक चाल और मित्र राष्ट्रों में फूट डालने का प्रयत्न बतला कर ठुकरा दिया (३० दिसम्बर)। इसके पहले ही १८ दिसम्बर को अमेरिका के प्रेसिडेण्ट विल्सन ने अपनी ही ओर से सभी युद्धरत राष्ट्रों को अपनी-अपनी शर्तों की घोषणा करने का अनुरोध किया ताकि उन पर बातचीत हो सके। मित्र राष्ट्रों को अमेरिका के माध्यस्थ्य के लिये किये जाने वाले इस प्रयत्न से बड़ी परेशानी मालूम हुई। जर्मनी ने विल्सन के प्रस्ताव को तो स्वीकार किया और सहयोग का वचन भी दिया परन्तु अपने उद्देश्यों को व्यक्त नहीं किया। मित्र-राष्ट्रों ने १० जनवरी १९१७ को अपने उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करते हुए शान्ति की शर्तों का उल्लेख किया। बाद में जर्मनी ने भी ऐसा ही किया परन्तु दोनों ओर की शर्तों में ऐसी कोई बात नहीं थी जिस पर दोनों पक्ष एकमत हो सकते। विल्सन का प्रयत्न व्यर्थ गया और युद्ध जारी रहा।*

१९१७

पश्चिमी मोर्चा—

पश्चिमी मोर्चे पर जर्मन सेनाएँ १९१७ के आरम्भ में ही पीछे हट कर हिण्डेनबुर्ग-पंक्ति में पहुँच गई थीं। इस वर्ष उन्होंने तो आगे बढ़ने का कोई प्रयत्न

*Gooch : History of Modern Europe, pp. 608-618. इस प्रकार शांति का प्रयत्न व्यर्थ हुआ परन्तु जर्मनी में पराजय की भावना व्याप्त हो रही थी और केथोलिक केन्द्रीय दल तथा समाजवादी दल ने विधान-सभा (Raichstag) में १७ जुलाई को सरकार से संधि करने का अनुरोध करने वाला प्रस्ताव स्वीकृत करवाया। इसके पहले ऑस्ट्रिया का नया सम्राट् प्रथम चार्ल्स अपने साम्राज्य के अधीन राष्ट्रों की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों एवं आन्दोलनों से डर कर मित्र-राष्ट्रों से गुप्त सन्धि द्वारा युद्ध से अलग होने का असफल प्रयत्न कर चुका था। ऐसी स्थिति में १ अगस्त १९१७ को पोप पन्द्रहवें बेनेडिक्ट ने भी सभी युद्धरत राष्ट्रों से युद्ध बन्द करके 'न्यायपूर्ण एवं स्थायी' शान्ति की बातचीत करने का अनुरोध किया। परन्तु इस समय तक कोई भी पक्ष शांति की बात करने को तैयार नहीं था और पोप का अनुरोध व्यर्थ गया। Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, pp. 605, 609-610. ऑस्ट्रिया के नये सम्राट् ने बड़े दृढ़ निश्चय के साथ युद्ध को अंत करने का प्रयत्न अपने बहनोई बूर्बों-पार्मा के प्रिंस सिक्स्टे के द्वारा किया था जो बेल्जियम की सेना में था। कई महीनों तक उसके द्वारा फ्रान्स और इंगलैण्ड से बातचीत होती रही परन्तु अन्त में भंग हो गई। Petrie : Diplomatic History, pp. 318-321.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं किया परन्तु मित्र-राष्ट्रों ने छोटे-बड़े कई प्रयत्न उन्हें पीछे हटाने के लिये किये। फ्रेञ्च सेना का सर्वोच्च कमाण्डर इस समय जोफर के स्थान पर निवेल (Nivelle) था जिसने अप्रेल में एल (Aisle) नदी के किनारे जर्मनों पर बड़ा भीषण आक्रमण किया किन्तु उसे बड़ी क्षति उठानी पड़ी और पन्द्रह दिन के अन्दर ही उसका प्रयत्न विफल हो गया। उसी महीने में अँग्रेजी सेनाओं ने अरा (Arras) के सामने जर्मनों को हरा कर विमी (Vimy) की प्रसिद्ध श्रेणी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने जून में इप्रे के दक्षिण में मैसिनोज़ (Messines) पर आक्रमण किया जिसमें उन्हें भारी हानि उठानी पड़ी। जुलाई से नवम्बर तक इप्रे के निकट दोनों पक्षों के बीच भयङ्कर मारकाट होती रही और अंग्रेज लोग अपने ३ लाख आदमी खो कर जर्मनी को केवल ३ हज़ार गज़ पीछे हटा सके। इस आक्रमण के अन्त में क्रेम्ब्रे (Cambrai) की लड़ाई (नवम्बर-दिसम्बर) में अंग्रेजों ने बड़ी संख्या में टैंकों का प्रयोग करके एक बार तो जर्मन सेना में खलबली मचा दी परन्तु वह शीघ्र ही सम्हल गई और इतनी हानि उठाने के बाद भी अंग्रेज़ जर्मनों की स्थिति को अधिक निर्बल नहीं कर सके।

इटालियन-मोर्चा—

इस वर्ष जर्मनी ने इटली पर बड़ा भीषण आक्रमण किया। उसका इरादा सर्बिया और रूमानिया को नष्ट करने के बाद इटली को भी नष्ट कर देने का था। जर्मन सेनाएँ इटली के मोर्चे को केपोरेटो (Caporetto) नामक स्थान पर तोड़ कर इटली में घुस गईं और उसकी सेना को मार भगाया (अक्टूबर)। वेनेटिया का अधिकांश प्रदेश जर्मनी के हाथ में पहुँच गया और वेनिस कुछ मील ही रह गया। इटली ने पियाव (Piave) नदी के किनारे नई रक्षा-पंक्ति बनाई और अंग्रेज़ तथा फ्रेञ्च सेनाएँ भी बड़ी शीघ्रता से सहायता के लिये भेजी गईं।

मध्य-पूर्व—

इस प्रकार महाद्वीप में मित्र-राष्ट्रों को कोई सफलता प्राप्त नहीं हो रही थी परन्तु मध्य-पूर्व में वे टर्की के विरुद्ध काफ़ी सफल हो रहे थे। वहाँ जनरल मॉड ने कुत वापस ले लिया और मार्च में बग़दाद में प्रवेश किया। शत्रु-सेना उत्तर की ओर भागी और मॉड की सेनाएँ भी उसको खदेड़ती हुई आगे बढ़ने लगीं। पेलेस्टाइन में एलेनबी ने लॉरेन्स और अरब विद्रोहियों की सहायता से तुर्क सेनाओं के रास्ते काट दिये और अक्टूबर में बीरशेवा पर अधिकार करके

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुर्कों को गाज़ा से निकाल दिया और क्रिस्मस के पहले वह जेरूसेलम में प्रवेश कर गया।

पनडुब्बियों का युद्ध—अमेरिका का युद्ध में प्रवेश—

समुद्र पर यह वर्ष इङ्गलैण्ड के लिए बड़ा विनाशकारी रहा। बर्दाँ पर फ़्रान्स को नष्ट करने के उद्देश्य में विफल होकर जर्मनी ने इङ्गलैण्ड पर घातक चोट करने के इरादे से १ फ़र्वरी १९१७ को उसके जहाज़ों पर पनडुब्बियों का अनियन्त्रित आक्रमण शुरू किया।* जर्मन योजना इङ्गलैण्ड में भोज्य पदार्थ और अन्य सामान पहुँचाने वाले जहाज़ों को नष्ट कर उसे भूखों मार डालने की थी। योजना सफल होती हुई मालूम होती थी क्योंकि पहले चार महीनों में अंग्रेजों के अधिकाधिक जहाज़ जर्मन पनडुब्बियों द्वारा डुबोये जाते रहे। अप्रेल में पनडुब्बियों का आक्रमण बड़ा ही भयंकर रहा और इङ्गलैण्ड से रवाना होने वाले जहाज़ों का चतुर्थांश डुबो दिया गया। यदि जर्मनी इस प्रकार के युद्ध में और भी तेजी ला सकता तो इङ्गलैण्ड घुटनों आ जाता। उस महीने में इङ्गलैण्ड में केवल डेढ़ महीने के लिए अनाज बाकी रह गया था।† परन्तु इङ्गलैण्ड ने बड़ी तेजी से और बड़ी संख्या में नये जहाज़ बनाना, पनडुब्बियों को नष्ट करने के उपायों का प्रयोग और अपने व्यापारी जहाज़ों को एक साथ लड़ाई के जहाज़ों के संरक्षण में भेजना (Convoy System) आरम्भ किया। इसके साथ ही जर्मनी के तट के निकट, जलडमरूमध्य और नॉर्वे से ऑर्कनी द्वीप तक उत्तरी सागर में माइनों का जाल बिछा दिया गया ताकि जर्मन पनडुब्बियाँ जर्मनी से निकल कर अटलांटिक महासागर में न पहुँच पाँय। शत्रु के जहाज़ों को भुलावा देकर नष्ट करने के लिये क्यू-किश्तियों (Q-Boats) का भी प्रयोग किया गया। इन उपायों से क्रिस्मस तक संकट टल गया और इंगलैण्ड की रक्षा हो गई। युद्ध अन्त होने तक कोई २०० जर्मन पनडुब्बियाँ नष्ट कर दी गई और अंग्रेज़ी बेड़े

---

* पनडुब्बियों के अनियंत्रित युद्ध की योजना सोम की लड़ाई के बाद हिण्डेनबुर्ग और ल्यूडेनडॉर्फ ने बनाई थी। उस समय तक की स्थिति को देखकर वे इन निष्कर्षों पर पहुँचे थे—(१) शत्रुओं के साधनों को देखते हुये आक्रमणात्मक स्थल-युद्ध द्वारा जर्मनी के विजय प्राप्त करने की कोई सम्भावना नहीं थी, (२) रक्षात्मक युद्ध से भी काम नहीं चलेगा क्योंकि सेना सोम की लड़ाई के समान विनाशकारी किसी दूसरी लड़ाई की क्षति को सहन नहीं कर सकेगी; (३) जर्मनी के लिये एकमात्र आशा पनडुब्बियों के अनियंत्रित युद्ध में ही दिखाई देती है। Hayes: A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 598.

† Carter and Mears: History of Britain, p. 990.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने ८८,००० छोटे बड़े व्यापारी जहाजों को बड़ी सफलतापूर्वक संरक्षण दिया। उनमें से केवल ४३६ जहाज़ नष्ट हुए। परन्तु फिर भी जर्मन पनडुब्बियाँ युद्ध के अन्त तक कोई ६,००० ज़हाज़ डुबो चुकी थी।* यह युद्ध जुआरी का दाव था। जर्मनी का कोई उद्देश्य पूरा नहीं हुआ बल्कि इसका उल्टा प्रभाव हुआ। उसने मार्च में अमेरिका के ५ ज़हाज़ डुबो दिये थे जिस पर अप्रेल में वह अपनी तटस्थता को त्याग कर मित्र-राष्ट्रों के साथ जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो गया था।

बॉल्शेविक क्रान्ति के फलस्वरूप रूस युद्ध से अलग—

अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करने से मित्र-राष्ट्रों का पक्ष मज़बूत हो गया परन्तु इसके साथ ही रूस युद्ध से अलग हो गया। मार्च १९१७ में पेट्रोग्राड में क्रान्ति हो गई और १५ मार्च को ज़ार निकोलस ने सिंहासन त्याग दिया। एक अस्थायी सरकार नियुक्त हुई जो मध्यमवर्गीय थी। परन्तु वह वामपक्षीय दवाब के सामने न टिक सकी और जुलाई में सामाजिक क्रान्तिवादी दल के नेता केरेन्स्की की सरकार बनी। उसने युद्ध को जारी रखने का यथाशक्ति प्रयत्न किया किन्तु उग्र वामपक्षीय बोलशेविकों के विरोध के सामने वह कुछ न कर सका। जर्मनी ने कई क्रान्तिकारियों को, जिनमें लेनिन भी था, गड़बड़ फैलाने के लिये रूस में प्रवेश करने में सहायता दी। ट्रॉटस्की भी अमेरिका से लौट आया। केरेन्स्की की सरकार बड़ी कठिनाई में पड़ गई। उसने अपनी कठिनाइयों को देख कर मित्र-राष्ट्रों को युद्ध के हर्ज़ाने या प्रदेश शामिल करने की शर्त के बिना सन्धि करके युद्ध बन्द करने की प्रार्थना की, रूस की सेना में अनुशासन पैदा करने का भी प्रयत्न किया और जुलाई में शत्रुओं पर आक्रमण भी किया परन्तु व्यर्थ। सेनाओं ने विद्रोह कर दिया। ऑस्ट्रिया ने समस्त गेलिशिया वापस ले लिया और जर्मन सेनाएँ रिगा लेकर एस्टोनिया में घुस पड़ीं। नवम्बर में दूसरी क्रान्ति हुई और लेनिन ने केरेन्स्की की सरकार को पलट कर शासन-सूत्र अपने हाथों में ले लिया। उसका पहला काम जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया से युद्ध-विराम संधि करना था। युद्ध बन्द करके उसने मार्च १९१८ में जर्मनी और उसके मित्रों से ब्रेस्टलिटोव्स्क (Brest-Litovsk) के स्थान पर संन्धि कर ली। हिण्डेनबुर्ग और ल्यूडेनडार्फ ने बड़ी कड़ी शर्तें पेश कीं। लेनिन को उन्हें स्वीकार करना पड़ा और पोलेण्ड, लिथुएनिया तथा लेटविया का कूरलैण्ड (Courland) प्रान्त जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया को, और कॉकेशस के दक्षिण में आर्मेनियन प्रान्त टर्की को सुपुर्द कर देने पड़े। बेसरेबिया का प्रदेश भी आगे चलकर रूमानिया को वापस करने के लिये केन्द्रीय सत्ताओं के सुपुर्द करना पड़ा। फिनलैण्ड, एस्टो-

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 360.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निया, लेटविया का लिवोनिया प्रान्त और यूक्रेन का विशाल प्रदेश रूस से अलग करके जर्मनी के संरक्षण में स्वतन्त्र राज्य बना दिये गये।*

ग्रीस मित्र-राष्ट्रों में शामिल—

इधर रूस युद्ध से अलग हो रहा था, उधर मित्र-राष्ट्र ग्रीस पर दबाव डाल रहे थे। दिसम्बर १९१६ में एक सम्मिलित अंग्रेज़-फ्रेञ्च सेना ने एथेन्स में उतर कर राजा के महल पर गोले बरसाये थे। जून १९१७ में उसने राजा कॉन्स्टेन्टाइन को पद-त्याग करने पर विवश किया और उसके स्थान पर उसके पुत्र को सिंहासन पर बिठलाया। वेनिज़िलॉस जो मित्र-राष्ट्रों का समर्थक था फिर प्रधान-मंत्री बना और उसने ग्रीस को मित्र-राष्ट्रों के साथ शामिल कर दिया।

१९१८

इस वर्ष, जैसा हम देख चुके हैं, केन्द्रीय सत्ताएँ पूर्वी मोर्चे की चिन्ता से मुक्त हो गईं। मार्च में रूस से सन्धि करके उन्होंने ७ मई को बुखारेस्ट की सन्धि द्वारा रूमानिया के साथ भी शान्ति स्थापित कर ली। रूमानिया ने डोब्रूज़ा का प्रदेश बल्गारिया के सुपुर्द कर दिया और अपने समस्त आर्थिक साधन, विशेष कर अन्न और तेल, जर्मनी के हाथों में छोड़ दिये और अपनी रेलों पर जर्मनी की सेनाओं को आने-जाने का अधिकार दे दिया।

पश्चिमी-मोर्चा—

पूर्व की ओर से निश्चन्त होकर जर्मनी ने, अमेरिका से काफी मदद शत्रुओं को पहुँच सके उसके पहले ही पश्चिमी मोर्चे पर शत्रुओं को नष्ट करने के इरादे से, चार बड़े ज़बरदस्त आक्रमण किये। प्रथम आक्रमण मार्च में अरा (Arras) से आयज़ (Oise) तक अंग्रेजों की सेना-पंक्ति पर हुआ (१२ मार्च)। अंग्रेज़ सेना को पीछे हटना पड़ा और एक सप्ताह के अन्दर ही सोम का रणक्षेत्र जर्मनों के हाथों में पहुँच गया जो आमियां

---

* इस सन्धि के द्वारा रूस को आस्ट्रिया-हंगरी और टर्की के बराबर प्रदेश से हाथ धोना पड़ा जिसमें ५ करोड़ ६० लाख मनुष्य अर्थात् समस्त देश की ३२ प्रतिशत जनसंख्या थी, उस प्रदेश में उसके लोहे के समस्त उत्पादन का ७३ प्रतिशत और कोयले के उत्पादन का ८९ प्रतिशत होता था। देश की समस्त रेलों का तीसरा भाग उसी में आ जाता था और इसके अतिरिक्त ५,००० कारखाने, मिलें आदि भी उसी प्रदेश में पड़ते थे। बाद में उसे ६ अरब मार्क युद्ध के हर्जाने के रूप में देना भी स्वीकार करना पड़ा। Petrie : Diplomatic History, pp. 323-324.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

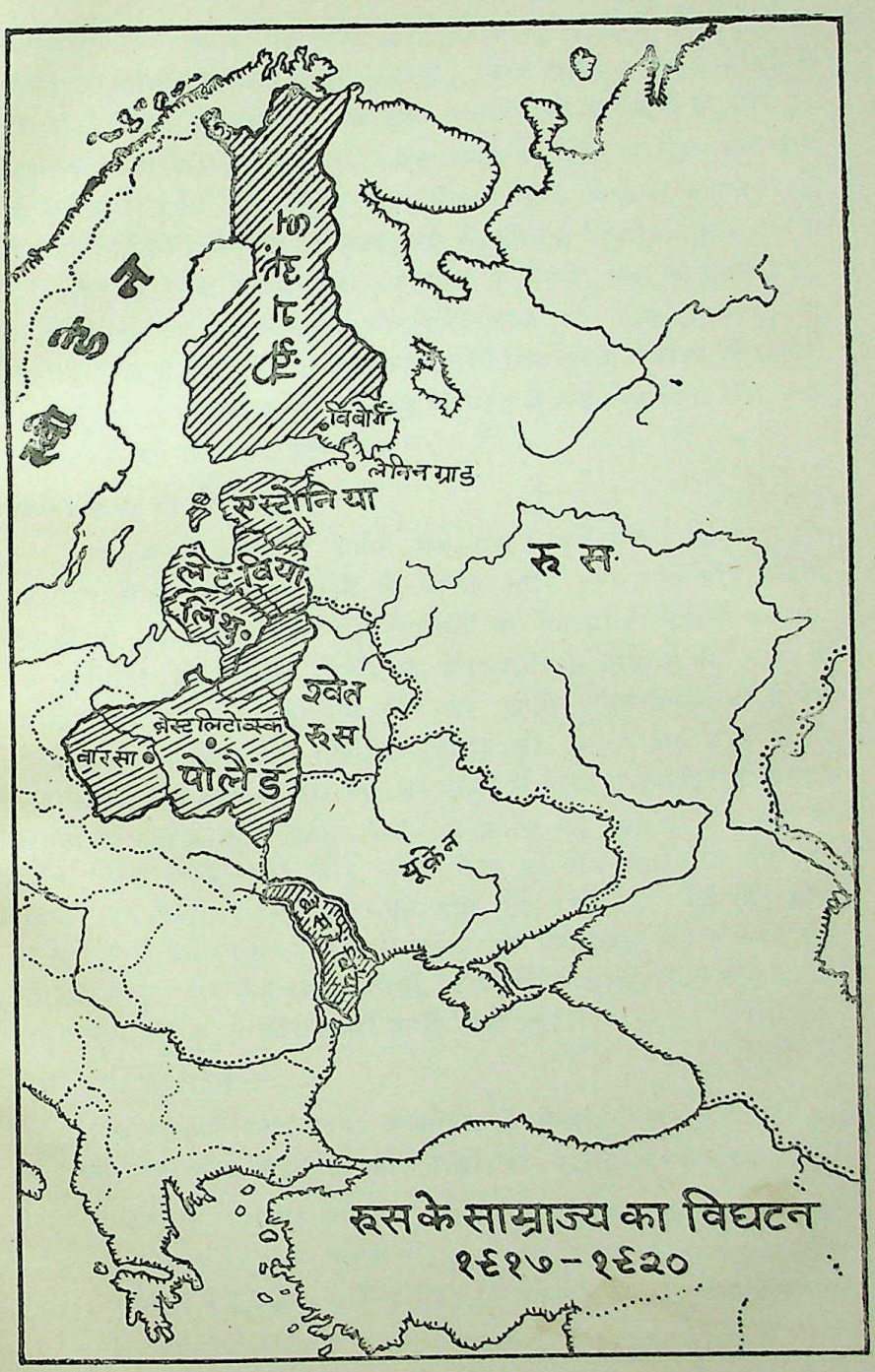

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(Amiens) से केवल दस मील रह गये। परन्तु इतने में ही अंग्रेजों की कुमक आ पहुँची और जर्मन प्रगति रुक गई। दूसरा आक्रमण अप्रेल में इप्रे से ला बासी (La Bassee) तक हुआ जिसमें इप्रे के दक्षिण की ओर का बहुत सा प्रदेश जर्मन के हाथ लगा। एक समय तो ऐसा मालूम होने लगा मानो इप्रे भी जर्मनी के हाथों में चला जायगा और वे चैनल के बन्दरगाहों तक पहुँच जायेंगे। तीसरा आक्रमण मई में रीम्स (Rheims) से सॉयसों (Siossons) तक फ्रेञ्च सेना पर हुआ। फ्रेञ्च सेना को हटना पड़ा, जर्मन सेनाएँ मार्न तक पहुँच गईं और पेरिस केवल ४० मील रह गया किन्तु यहाँ वे रोक दी गईं। चौथा आक्रमण उन्होंने फिर जुलाई में किया और मार्न नदी को पार कर लिया परन्तु इस बार भी फ़ाश ने उन्हें रोक दिया और बड़ी हानि उठा कर उन्हें पीछे हटना पड़ा।

जर्मन सेना का पीछे हटना—

इस महान् प्रयत्न से जर्मनी थक गया। उधर मित्र-राष्ट्रों की स्थिति अमेरिका से सहायता प्राप्त होने के कारण सुधर रही थी* और उन्होंने इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली तथा अमेरिका सभी की सेनाओं की सर्वोच्च कमाण्ड, जो अभी तक अलग-अलग उन्हों के सेनाध्यक्षों के हाथों में थी, फ्रान्स के मार्शल फ़ॉस (Foch) के हाथों में सौंप कर अपने सैनिक संगठन को अधिक प्रभावकारी बना लिया था। उसने १८ जुलाई को फ्रान्स तथा अमेरिका की सेनाओं को मार्न नदी की ओर बढ़ा कर जर्मनी के विरुद्ध आक्रमण शुरू किया। जर्मनों को मार्न प्रदेश से हटना पड़ा। ८ अगस्त को अंग्रेज़ो ने अमियाँ के मोर्चों पर आक्रमण किया और जर्मन सेना को सोम रणक्षेत्र से पीछे हटा दिया। इस तिथि को समस्त जर्मन सेना-पंक्ति पीछे हटने लगी। बेल्जियम और इंगलैण्ड की सेनाओं ने इप्रे से आगे बढ़ना शुरू किया और शत्रु को समुद्र तट से हटा दिया। अब मित्र-राष्ट्र सैनिकों, तोपों, टैंकों आदि की दृष्टि से शत्रु से बहुत आगे बढ़े हुए थे और उनकी प्रगति जारी रही।

ऑस्ट्रिया का पतन—

अक्टूबर में इटली तथा इंगलैण्ड की सेनाओं ने पियाव के मोर्चे पर आक्रमण किया और ऑस्ट्रिया की सेनाओं को परास्त करके अपने देश में

---

*अमेरिका ने मार्च में ८०,०००, अप्रेल में १,२०,०००, मई में २,४५,०००, जून में २,८०,००० जुलाई में ३,००,००० अगस्त में २,८५,००० और सितम्बर में २,५७,००० सैनिक भेजे। Marriott : Europe and Beyond, p. 290.

खदेड़ दिया। उधर ऑस्ट्रिया-हंगरी के अन्दर ऑक्टोबर में क्रान्ति हो गई, और रुमानिया ने फिर युद्ध में शामिल होकर उस पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार ऑस्ट्रिया-हंगरी में गड़बड़ फैल गई और इटली की सेनाएँ ट्रेन्ट तथा ट्रीस्ट में घुस गईं। इस पर ऑस्ट्रिया-हंगरी ने आत्मसमर्पण कर दिया।

युद्ध का अन्त—

इस समय तक इंगलैंड ने जर्मनतट का अवरोध करके जर्मनी में किसी प्रकार की भी सामग्री पहुँचना बन्द कर रखा था। जर्मनी की जनता भूखों मर रही थी और अपार कष्ट सह रही थी। बल्गारिया के पतन से ल्यूडेनडॉर्फ निराश हो गया। इसके पहले ही उसने अगस्त १९१८ में कैसर विलियम को सूचित कर दिया था कि जर्मनी परास्त हो चुका है। सितम्बर में बल्गारिया के पतन के समाचार सुन कर उसने सम्राट् से सन्धि प्रस्ताव करने की प्रार्थना की।* ३ अक्टूबर को सम्राट् ने अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन से सन्धि का प्रस्ताव किया। विल्सन उन १४ सिद्धान्तों के आधार पर जो उसने ८ जनवरी १९१८ को काँग्रेस के समक्ष अपने सन्देश में प्रस्तुत किए थे, सन्धि की शर्तें पेश कीं। इन शर्तों को सुनकर जर्मन जनता सन्धि के लिए व्यग्र हो उठी। सैनिक अधिकारी तो अब भी युद्ध जारी रखना चाहते थे और यदि उन्हें युद्ध-सामग्री मिलती रहती तो युद्ध जारी रख सकते थे। परन्तु जर्मनों में क्रान्ति की अग्नि सुलग रही थी। ठीक इसी समय बेड़े ने विद्रोह कर दिया और ऑस्ट्रिया ने आत्मसमर्पण करके उसका साथ छोड़ दिया। यह देख कर कैसर विलियम सिंहासन त्याग कर हॉलैण्ड भाग गया (९ नवम्बर) और जर्मनी में समाजवादी गणतन्त्रीय सरकार का निर्माण हुआ। राष्ट्रपति विल्सन के प्रस्ताव के आधार पर ११ नवम्बर १९१८ को ११ बजे पूर्वान्ह में उत्तरी फ्रान्स में केम्पेन (Campiegne) के वन में रेल के एक डिब्बे में जर्मनी तथा मित्र-राष्ट्रों के बीच युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए और महायुद्ध का अन्त हुआ। जर्मनी को मित्र-राष्ट्रों के प्रदेश से १४ दिन के अन्दर और राइन के बांये किनारे से ३१ दिन के अन्दर अपनी सेनाएँ हटा लेने का, समस्त युद्ध-बन्दियों को तुरन्त मुक्त कर देने का तथा समस्त पनडुब्बियाँ, ५,००० तोपें, २५,००० मशीन गनें, १,७०० हवाई जहाज़ और १० युद्ध के बड़े जहाज़, १३ बड़े और छोटे क्रूज़र तथा ५० डिस्ट्रयर अर्थात् अपना समस्त बेड़ा समर्पण करना स्वीकार करना पड़ा। विराम-सन्धि की शर्तों को सुन कर जर्मन प्रतिनिधि स्तब्ध हो गये। वे बोले—'यह विराम-सन्धि नहीं, आत्मसमर्पण है।† परन्तु वे विवश थे, उन्हें शर्तें स्वीकार

* Lodge and Horn : A History of Europe, p. 557.

† Mowatt : Contemporary Europe and Overseas, pp. 381-385.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करनी पड़ीं। बेड़ा इंगलैंड में स्कापा फ्लो (Scapa Flow) ले जाया गया जहाँ इंगलैण्ड को आत्मसमर्पण करने के बाद वह डुबो दिया गया।

इस प्रकार चार वर्ष और पन्द्रह सप्ताह के बाद महासमर का अन्त हुआ। जर्मनी ने बड़ी भारी तैयारी और सफलता के पूर्ण विश्वास के साथ युद्ध में प्रवेश किया था। उसके पास संसार की सर्वश्रेष्ठ सेना थी और जब कि मित्र-राष्ट्रों को दूर-दूर के कई मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था और वहाँ सेना तथा युद्ध-सामग्री पहुँचाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था, उसे यह बहुत बड़ा लाभ प्राप्त था कि उसके युद्ध के मोर्चे पास-पास थे और यातायात के साधनों पर उसका पूर्ण अधिकार था। परन्तु इस पर भी उसकी पराजय हुई। इसके कई कारण थे।

जर्मनी की पराजय के कारण—

मित्र-राष्ट्रों और उनके सहयोगियों के विशाल आर्थिक साधनों की दृष्टि से जर्मनी की सफलता रणक्षेत्र में शत्रुओं पर अल्पकाल में ही विजय प्राप्त कर सकने की सामर्थ्य पर निर्भर थी। उसे अपनी इस सामर्थ्य में पूर्ण विश्वास था और उसकी तैयारी भी ऐसी ही थी परन्तु वह शत्रुओं का मुकाबला करने की शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सका जिसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध लम्बा खिंच गया और उसने सहन-शक्ति की परीक्षा का रूप धारण कर लिया। मित्र-राष्ट्रों के धन-जन के साधन अपरमिति थे और उनके मुक़ाबले में लम्बे युद्ध में जर्मनी का टिक सकना असम्भव था और एक बार युद्ध के लम्बे खिंच जाने के बाद उसकी पराजय निश्चित थी।* उसकी जन-शक्ति भीषण संहार से धीरे-धीरे क्षीण होती गई। उसने काफी युद्ध-सामग्री इकट्ठी कर ली थी परन्तु वह भी धीरे-धीरे समाप्त होती गई और कमी आने लगी। उसके पास टैंक नहीं थे और रबड़, चमड़े आदि से लेकर रासायनिक पदार्थों तक सभी वस्तुओं की, जो युद्ध में आवश्यक थीं, कमी थी। इतनी कठिनाइयों होने पर भी १९१८ के पूर्वार्द्ध में वह सफलता के काफी निकट पहुँच गया था। ल्यूडेनडॉर्फ ने युद्ध-कला का अच्छा प्रदर्शन किया था परन्तु हिन्डेनबुर्ग तथा ल्यूडेनडॉर्फ दोनों ने नेपोलियन के इस सिद्धान्त की उपेक्षा की थी कि एक सेनापति को अपनी योजना में विजय तथा पराजय दोनों का विचार करना चाहिये। जर्मन योजना में पराजय की सम्भावना के लिये कोई स्थान नहीं था।† इंगलैंड के बेड़े द्वारा जर्मनी के तटावरोध के कारण उसकी आर्थिक शक्ति भी क्षीण हो गई। सारे

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 306.

† Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, p. 424.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश में भोज्य पदार्थों की बड़ी भारी कमी हो गई थी और लोग भूखों मरने लगे थे जिससे राष्ट्र को मुकाबला करने की शारीरिक एवं नैतिक-शक्ति का ह्रास हो चुका था। अपर्याप्त भोजन एवं युद्ध-सामग्री तथा अपने परिवार के लोगों की कष्ट-कथा से जर्मन सैनिकों का उत्साह शिथिल पड़ गया था और उनमें अनुशासन की भी कमी होने लग गई थी। इतने पर भी जर्मनी को हथियार इस कारण डालने पड़े कि मित्र-राष्ट्रों के आघातों से उसकी सैनिक मशीन टूट-फूट चुकी थी। सैनिक आत्म-समर्पण देश के अन्दर की गड़बड़ और शासन के पतन के कारण नहीं हुआ था, ये बातें तो बाद में हुईं जब कि जनता को अपने अनेक कष्टों को सहते हुए भी पराजय का अपमान सहन करना पड़ा। रूस की बॉल्शेविक क्रान्ति ने भी जर्मनी के पतन में सहायता की। जब क्रान्ति के बाद रूस ने जर्मन युद्ध-बन्दियों को मुक्त किया और वे स्वदेश लौट कर सेना में भरती हुए तो वे अपने साथ साम्यवादी विचार भी लेते आये जिनका प्रभाव जर्मन सेना पर भी पड़ा और उसके उत्साह में शिथिलता आ गई।* अन्त की ओर अमेरिका के युद्ध में शामिल हो जाने से मित्र-राष्ट्रों का पक्ष काफ़ी शक्तिशाली तो हो ही गया था और जर्मनी अपने शत्रुओं के मुकाबले में निर्बल पड़ गया था परन्तु इससे भी अधिक घातक उसका मनोवैज्ञानिक परिणाम निकला क्योंकि उसके बाद जर्मन राष्ट्र को अपनी पराजय निश्चित दिखाई देने लगी। जर्मनी को निर्बल करने में इंगलैण्ड के बेड़े ने भी जबरदस्त काम किया परन्तु उससे युद्ध का निर्णय नहीं हो सका था। यदि अमेरिका युद्ध में प्रवेश न करता तो फ्रान्स की पराजय हो जाती और इंगलैण्ड तथा जर्मनी के बीच गतिरोध बना रहता। 'द्वितीय फ़िलिप, चतुर्दश लुई और नेपोलियन तो इंगलिश चैनल के पार से (इंगलैण्ड से) सहायता पहुँचने पर परास्त हुए थे परन्तु बीसवीं शताब्दी में जर्मनी उस समय तक परास्त नहीं हो सका जब तक कि अटलाण्टिक के पार से सहायता नहीं पहुँची। उसकी वीरता एवं शक्ति का अकाट्य प्रमाण है।'† अन्त में, फ्रान्स की सहनशक्ति तथा इंगलैण्ड और रूस के बलिदान का भी उनकी अन्तिम-विजय में महत्वपूर्ण स्थान था।‡

पेरिस का शान्ति-सम्मेलन—

महायुद्ध तो समाप्त हो गया परन्तु वह अनेक प्रकार की ऐसी भीषण और जटिल राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ छोड़ गया जैसी संसार के सामने

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 306-307.

† Grant and Temperley : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 425.

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 307.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले कभी उपस्थित नहीं हुई थीं। महाद्वीप पर अनेक परम्परागत शासनों* का अन्त हो चुका था, बड़े विशाल प्रदेश नष्ट-भ्रष्ट हो चुके थे, योरोप का आर्थिक जीवन अस्तव्यस्त हो चुका था, असंख्य लोग वर्षों के अपर्याप्त भोजन के कारण बीमार थे या भूख से मर रहे थे और समस्त राष्ट्रों के कोई ८० लाख नवयुवक रणचण्डी की भेंट चढ़ चुके थे। शान्ति स्थापित करने का काम वैसे ही कठिन होता है, परन्तु उस समय इन सभी बातों से वातावरण कटुता एवं घृणा से व्याप्त हो रहा था जिसके कारण शान्ति-स्थापन का कार्य और भी कठिन हो गया था। ऐसी स्थिति में विजेता राष्ट्रों के प्रतिनिधि पेरिस में ऐसी व्यवस्था करने के लिये एकत्रित हुए जिसके द्वारा पराजित राष्ट्रों के साथ प्रतिशोधात्मक न्याय हो सके, राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर राजनीतिक सीमाओं का संशोधन हो सके, विजेता राष्ट्रों की क्षति-पूर्ति हो सके, पराजित राष्ट्रों का निरस्त्रीकरण हो सके और साथ ही स्थायी शान्ति की नींव डाली जा सके।

पेरिस में सभी विजेता राष्ट्रों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए परन्तु रूस और पराजित राष्ट्रों को सम्मेलन में आमंत्रित नहीं किया गया। अमेरिका से स्वयं राष्ट्रपति विल्सन, इंगलैंड से प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज, इटली से प्रधान मन्त्री ऑरलैण्डों तथा जापान से प्रधानमन्त्री सेओंजी सम्मेलन में शामिल हुए। फ्रांस का प्रतिनिधित्व प्रधानमन्त्री क्लीमेन्सो ने किया और वही सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया। ये लोग सम्मेलन के 'पांच बड़े' व्यक्ति थे। इनमें से केवल विल्सन ही ऐसा था जो रणक्षेत्र के भीषण हत्याकाण्ड तथा विनाश के वीभत्स दृश्यों से दूर शान्ति-स्थापन के आदर्श उपायों पर विचार कर रहा था जिन्हें उसने अपने चौदह सिद्धान्तों के रूप में संसार के सामने प्रस्तुत किया था। उसकी सहायता से ही विजेता राष्ट्र विजयी हो सके थे। अतः उसकी स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी और वह अपने सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने का दृढ़ निश्चय करके पेरिस पहुँचा था।

आदर्शवाद और यथार्थवाद का संघर्ष—

परन्तु परिस्थिति आरम्भ से ही उसके आदर्शवाद के प्रतिकूल रही। सर्वप्रथम पेरिस में सम्मेलन का होना ही उसके विपरीत था क्योंकियुद्ध-जन्यक्रोध सबसे अधिक वहीं व्याप्त था और वहाँ ठंडे दिमाग से विचार-विमर्श नहीं हो सकता था। द्वितीय कठिनाई यह थी कि सम्मेलन में रूस और पराजित राष्ट्रों के प्रतिनिधि नहीं थे। तीसरे, आरम्भ से ही उसके सिद्धांतों का उल्लंघन शुरू हो गया। इतने बड़े सम्मेलन में खुले विचार द्वारा कुछ भी निर्णय कर सकना असंभव होने के कारण सम्मेलन ने सन्धि की शर्तों के निर्धारण का कार्य विल्सन और शेष

* जर्मनी, ऑस्ट्रिया, रूस तथा टर्की के साम्राज्य।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चारों बड़े राष्ट्रों के मंत्री तथा विदेश मन्त्रियों से निर्मित दस सदस्यों की परिषद् को सौंपा गया और इस प्रकार विल्सन के सर्वप्रथम सिद्धांत का उल्लंघन किया गया।*

वास्तव में सम्मेलन के सामने सबसे बड़ी कठिनाई विल्सन के अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शवाद और योरोप के विभिन्न विजेता राष्ट्रों की राष्ट्रीय सुरक्षा की तात्कालिक आवश्यकताओं के बीच एक मध्य-मार्ग खोलने की थी।† इन आवश्यकताओं का सबसे बड़ा समर्थक क्लीमेन्सो था जिसे विल्सन के सिद्धांतों में लेशमात्र भी विश्वास नहीं था। वह उनका उपहास करते हुए कहा करता था कि ईश्वर के तो दस ही आदेश हैं परन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति के चौदह आदेश हैं। वास्तव में इन सिद्धांतों में किसी का विश्वास नहीं था। लॉयड जॉर्ज ने हाल ही में 'जर्मनी से क्षति पूर्ति कराओ' के नारे पर सामान्य निर्वाचन में विजय पाई थी और पार्लामेण्ट जर्मनी को चूँसने पर तुली हुई थी। इटली, ग्रीस और रूमानिया गुप्त सन्धियों के अनुसार लूट का अपना भाग चाहते थे। ऐसी अवस्था में विल्सन के सिद्धांतों की धज्जियाँ उड़ गईं और वह राष्ट्रसंघ की स्थापना तथा आत्मनिर्णय के सिद्धांत की स्वीकृति के अतिरिक्त कुछ प्राप्त न कर सका। क्लीमेन्सो की विजय रही और राष्ट्रीय स्वार्थ का पलड़ा ही भारी रहा।

सम्मेलन का आरम्भ—

१८ जनवरी १९१९ को वार्साई के शीशभवन में, जहाँ ४८ वर्ष पहले बिस्मार्क ने जर्मन-साम्राज्य की घोषणा की थी, मित्र-राष्ट्रों एवं उनके सहयोगियों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए और शान्ति-सम्मेलन का विधिवत् उद्घाटन हुआ।‡ सम्मेलन में ३२ राष्ट्र भाग ले रहे थे परन्तु शर्तें निर्धारित करने का काम, जैसा

---

* Jackson : The Between-War World, pp. 9-10.

† Strong : Dynamic Europe, p. 38.

‡ शान्ति-सम्मेलन में रूस को निमंत्रण नहीं दिया गया। विल्सन और लॉयड जार्ज चाहते थे कि रूस के भूतपूर्व साम्राज्य में उस समय जितने राज्य थे उनके प्रतिनिधि आमन्त्रित किये जाँय परन्तु क्लीमेन्सी ने उनका विरोध किया। रूस में उन दिनों गृह-कलह चल रहा था और जो प्रदेश रूस से स्वतन्त्र हो चुके थे वे परस्पर लड़ रहे थे। अन्त में यह निश्चय हुआ कि उन राज्यों में जिन संगठित दलों के हाथों में राजनीतिक अथवा सैनिक शक्ति हो उन्हें अपना गृह-कलह बन्द करके मारमोरा सागर में स्थित प्रिन्किपो द्वीप को अपने प्रतिनिधि मित्र-राष्ट्रों से भेंट करनें के लिये भेजने को कहा जाय। उन्हें निमन्त्रण भेजा गया परन्तु गृह-कलह बन्द नहीं हुआ और प्रिन्किपो का सम्मेलन नहीं हो सका। Gooch: History of Modern Europe, p. 679.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम देख चुके हैं, अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रान्स इटली तथा जापान के प्रतिनिधियों ने ही किया। जापान के प्रतिनिधि केवल शान्तुङ्ग का प्रायद्वीप प्राप्त करने के लिए ही सम्मेलन में उपस्थित हुए थे। अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में वे कुछ नहीं बोले। इटली का प्रतिनिधि ऑलैंण्डो फ्यूम के प्रश्न पर रुष्ट होकर सम्मेलन से हट गया * इस प्रकार प्रायः समस्त व्यवस्था इङ्गलैण्ड, फ्रान्स तथा अमेरिका ने ही की।

विल्सन के १४ सिद्धान्त—

सन्धियों का निर्धारण विल्सन के जिन १४ सिद्धान्तों के आधार पर किया गया था वे निम्नलिखित थे। (१) भविष्य में शान्ति सन्धियाँ प्रकट रूप से की जाँय और गुप्त कूटनीति का अवलम्बन न किया जाय, (२) शान्ति तथा युद्ध दोनों के समय में समुद्रों पर सबके लिये स्वतन्त्रता रहे और वे सबके लिये खुले रहें, (३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मार्ग से आर्थिक बाधाएँ हटा दी जाँय (४) शस्त्रास्त्रों में कमी हो, (५) अधीन लोगों के हित का समुचित ध्यान रखते हुए औपनिवेशिक दावों का निष्पक्ष निर्णय हो, (६) रूस की भूमि केन्द्रीय राष्ट्र छोड़ दें और रूस को विकास के लिए पूर्ण अवसर प्राप्त हो, (७) जर्मनी वेल्जियम को खाली कर दे और अपनी पूर्व स्थिति में पहुँचा दे, (८) इसी प्रकार फ्रेंञ्च भूमि भी खाली करके पूर्व स्थिति में पहुंचा दी जाय और अल्सास-लोरेन फ्रान्स को वापस मिल जाय, (९) राष्ट्रीयता के सिद्धांत के आधार पर इटली की सीमाओं का संशोधन हो, (१०) ऑस्ट्रिया हंगरी के लोगों को स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त हो, (११) सर्बिया, मॉण्टीनोग्रो तथा रूमानिया को केन्द्रीय राष्ट्र खाली करके अपनी पूर्व स्थिति में पहुँचा दें और सर्बिया को समुद्र तट पर निकास-स्थान प्राप्त हो, (१२) टर्की के साम्राज्य के विशुद्ध तुर्की प्रदेशों की प्रभुता सुरक्षित रहे और शेष भागों को स्वायत्त शासन प्राप्त हो और डार्डेनेलीज़ तथा बॉस्फोरस के जलडमरूमध्यों में सभी राष्ट्रों के जहाज़ों को यातायात की स्वतन्त्रता हो, (१३) स्वतन्त्र पोलेण्ड का निर्माण हो और उसे समुद्र तक पहुँचने की सुविधा दी जाय, (१४) छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों को समान रूप से राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा प्रादेशिक अखण्डता का आश्वासन देने के लिये एक राष्ट्र-संघ की स्थापना की जाय।

पेरिस की सन्धि—

चार महीनों के वादविवाद और परिश्रम के बाद जर्मनी के लिए सन्धि की शर्तें निर्धारित हुईं। ६ मई को शान्ति सम्मेलन के खुले अधिवेशन में शर्तों

---

* बाद में तीनों राष्ट्रों के निमन्त्रण पर वह फिर वापस आ गया। Gooch: History of Modern Europe, pp. 666, 684-686.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का मसविदा स्वीकृत हुआ * और दूसरे दिन जर्मनी के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित करके उन्हें स्वीकृति के लिए दिया गया । उन्होंने शर्तों के अत्यन्त कठोर तथा विल्सन के १४ सिद्धान्तों के प्रतिकूल होने की आपत्ति की । मित्र-राष्ट्रों ने उनमें केवल थोड़े से साधारण परिवर्तन किये और २३ जून को जर्मन विधान सभा (Constituent Assembly) ने उन्हें बिना किसी शर्त के स्वीकार कर लिया। पाँच दिन बाद (२८ जून) वार्साई के शीशभवन में जर्मन प्रतिनिधियों ने तथा उसके विरोधी ३१ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने उन पर हस्ताक्षर किये ।† जर्मनी के साथ सन्धि की शर्तों का निर्णय हो जाने के उपरांत अन्य पराजित राष्ट्रों—ऑस्ट्रिया (साँ जर्मै St. Germain) की सन्धि सितम्बर १९१९), बल्गारिया (न्वीय्यी (Neuilly) की सन्धि, नवम्बर), हंगरी (त्रियानों (Trianno) की सन्धि, जून १९२०), तथा टर्की (सेव्र (Sevres) की सन्धि, अगस्त १९२०)— के साथ सन्धियाँ हुई । ये सभी सन्धियाँ सम्मिलित रूप से 'पेरिस की संधि' के नाम से पुकारी जाती हैं । प्रत्येक संधि में राष्ट्र-संघ तथा स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना का भी उल्लेख किया गया । इन सब संधियों के फल-स्वरूप योरोप में निम्नलिखित महान् परिवर्तन हुए और उसका राजनीतिक मानचित्र बदल गया ।‡

---

* इस सन्धि को चीन ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि जापान को शान्तुंग का प्राय-द्वीप दिया गया था जो न्याय की दृष्टि से उसे वापस मिलना चाहिए था । इससे रुष्ट होकर उसने सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये । Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol, II, p. 637.

† पाँच वर्ष पहले ठीक इसी दिन सिराजिवो में ऑस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या हुई थी ।

‡ पेरिस शान्ति-सम्मेलन की हम वियना-काँग्रेस से तुलना कर सकते हैं । दोनों सम्मेलन एक लम्बे युद्ध के बाद योरोप का पुनिर्माण करने के निमित्त हुए थे और दोनों में आदर्शवाद तथा यथार्थवाद का संघर्ष था । वियना में प्रथम एलेक्जेण्डर के आदर्शवाद ने पवित्र संघ को जन्म दिया और पेरिस में विल्सन के आदर्शवाद ने राष्ट्र-संघ स्थापित किया । दोनों ही सम्मेलनों में यथार्थवाद विजयी रहा । वियना-काँग्रेस में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की उपेक्षा करके न्याय्यता एवं शक्तिसन्तुलन के सिद्धान्तों का आश्रय लिया गया था और पेरिस-सम्मेलन में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर व्यवस्था हुई परन्तु दोनों ही में सिद्धांतों का प्रयोग पराजित राष्ट्रों के प्रतिकूल हुआ । दोनों में एक ही सिद्धांत का प्राधान्य रहा—योरोप की भावी शान्ति को सुरक्षित रखना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) जर्मनी से फ्रान्स को अल्सास-लोरेन का प्रदेश, बेल्जियम को यूपेन तथा मालमेडी के नगर, पोलेण्ड को (जिसका नव-निर्माण हुआ) पोसेन का प्रान्त तथा पश्चिमी प्रशा में होकर समुद्र तक एक गलियारा (Corridor) प्राप्त हुए। जर्मनी के सार-प्रदेश पर राष्ट्र-संघ का शासन स्थापित किया गया परन्तु फ्रान्स को उसकी कोयले की खानों पर अधिकार प्राप्त हुआ और पन्द्रह वर्ष के बाद उस प्रदेश का जनमत द्वारा भाग्य-निर्णय करने का निश्चय किया गया। मेमेल का नगर भी जर्मनी को मित्र-राष्ट्रों के सुपुर्द करना पड़ा जो १९२३ में लिथुएनिया को दे दिया गया। पूर्वी प्रशा, ऊपरी साइलेशिया तथा श्लेस्विग को जनमत द्वारा जर्मनी के साथ रहने या न रहने का अधिकार दिया गया। पूर्वी प्रशा तथा दक्षिणी श्लेस्विग जर्मनी के साथ रहे और उत्तरी श्लेस्विग डेन्मार्क के साथ शामिल हो गया। ऊपरी साइलेशिया में काफ़ी गड़बड़ रही और बाद में वह जर्मनी तथा पोलेण्ड के बीच में बाँट दिया गया।

(२) जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी तथा रूस से पोलिश प्रदेशों को ले कर स्वतन्त्र पोलेण्ड का पुनः निर्माण किया गया और उसे बाल्टिक सागर तक पश्चिमी प्रशा में एक गलियारा दिया गया। उसके अन्त में डेन्ज़िग का नगर अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्र नगर घोषित कर दिया और राष्ट्र-संघ के संरक्षण में रख दिया गया।

(३) जर्मनी का समस्त औपनिवेशिक साम्राज्य भी छीन लिया गया और विभिन्न मित्र-राष्ट्रों एवं उनके सहयोगियों को राष्ट्र-संघ की ओर से उनके प्रशासन का अधिकार मिला।

(४) जर्मनी की सेना की संख्या एक लाख कर दी गई और उसे ज़बरदस्ती भरती (Conscription) करने का अधिकार नहीं रहा। उसे अपना बेड़ा इंगलैंड को सुपुर्द करना पड़ा, हेलिगोलैण्ड के अड्डे को नष्ट करना पड़ा, राइन नदी के पूर्व की ओर ३० मील तक के अपने सैनिक किले गिराने पड़े, कील नहर में समस्त राष्ट्रों के जहाज़ों को यातायात का अधिकार देना पड़ा और बाल्टिक सागर के तट पर किले न बनाना स्वीकार करना पड़ा। उसके बेड़े की शक्ति ६ लड़ाई के जहाज़, ६ हल्के क्रूज़र, १२ टॉरपीडो बोट तक सीमित कर दी गई और उसे पनडुब्बियाँ रखने का अधिकार नहीं रहा। इसके अतिरिक्त उसे युद्ध के हरजाने के रूप में एक भारी रकम (जो बाद में ६०,००,००,००० पौंड निश्चित हुई) देना भी स्वीकार करना पड़ा।*

और विजयी राष्ट्रों को पुरस्कार देना। Ketelbey : A History of Modern Times, p. 431.

* Marriott : Europe and Beyond, p. 301.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्धि की शर्तों के पूर्ण पालन तक राइन के बायें किनारे पर मित्र-राष्ट्रों का अधिकार रखा गया। जर्मनी को एक विशिष्ट धारा के अनुसार विश्वयुद्ध का उत्तरदायित्व और मित्र-राष्ट्रों के नागरिकों की जितनी हानि हुई थी उसकी पूर्ति करना भी स्वीकार करना पड़ा।

(५) ऑस्ट्रिया-हंगरी का साम्राज्य भंग कर दिया गया। हंगरी ने ३१ अक्टूबर १९१८ को ही अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। ऑस्ट्रिया को उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त उसके साम्राज्य में से बोहीमिया तथा मोरेविया को मिलाकर चेको-स्लोवेकिया के नये स्वतन्त्र राज्य का निर्माण किया गया। बॉस्निया, हर्जीगोविना तथा क्रोटिया सर्बिया को दे दिये गये और वृहद सर्बिया का नाम यूगो-स्लाविया रखा गया। गेलिशिया का प्रान्त पोलेण्ड को मिला और ट्रान्सिल्वेनिया रुमानिया को दे दिया गया।

(६) इटली को ऑस्ट्रिया से दक्षिणी टिरोल, ट्रेण्ट, ट्रीस्ट और एड्रियाटिक सागर में दो द्वीप प्राप्त हुए।

(७) बल्गारिया से डोब्रूज़ा रुमानिया को, मेसिडोनिया का अधिकांश यूगोस्लाविया को और थ्रेस का तट ग्रीस को मिला।

(८) टर्की का साम्राज्य भी भंग कर दिया गया। हेजाज़ का अरब प्रदेश तथा आर्मेनिया स्वतन्त्र कर दिये; पेलेस्टाइन, मेसोपोटामिया, ट्रान्स-जोर्डान तथा सीरिया अलग करके राष्ट्र-संघ के संरक्षण में ले लिये गये और उसकी ओर से सीरिया के प्रशासन का अधिकार फ्रान्स को तथा शेष तीनों का इङ्गलैंड को दिया गया। थ्रेस, एड्रियानोपल, गेलिपोली, एड्रियाटिक सागर के द्वीप तथा स्मर्ना ग्रीस को दिये गये। डार्डेनेलीज़ तथा बॉस्फ़ोरस के जल डमरुमध्यों के तटों पर की किलेबन्दी तोड़ने का आदेश दिया गया और उनका अन्तर्राष्ट्रीय-करण कर दिया गया। टर्की के पास योरोप में केवल कॉन्स्टेण्टीनोपल और उसके पास का थोड़ा सा प्रदेश बच रहा।*

टर्की के राष्ट्रीय दल ने जिसका नेता मुस्तफ़ा कमाल पाशा था, इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। इंगलैण्ड की स्वीकृति से ग्रीस ने उसका दमन करने का प्रयत्न किया परन्तु कमाल पाशा ने उन्हें परास्त करके स्मर्ना

---

* टर्की की समस्या इङ्गलैंड, फ्रान्स, इटली तथा ग्रीस के पारस्परिक मतभेद के कारण बड़ी पेचीदा थी। पहले की गुप्त सन्धियों द्वारा कान्स्टेण्टीनोपल तथा जलडमरुमध्य रूस को मिलने थे परन्तु वह युद्ध से अलग हो गया था और बोल्शेविक हो गया था। इस कारण कान्स्टेण्टीनोपल टर्की के पास ही छोड़ दिया गया और जलडमरूमध्यों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। Schevill : A History of Europe, p. 737.

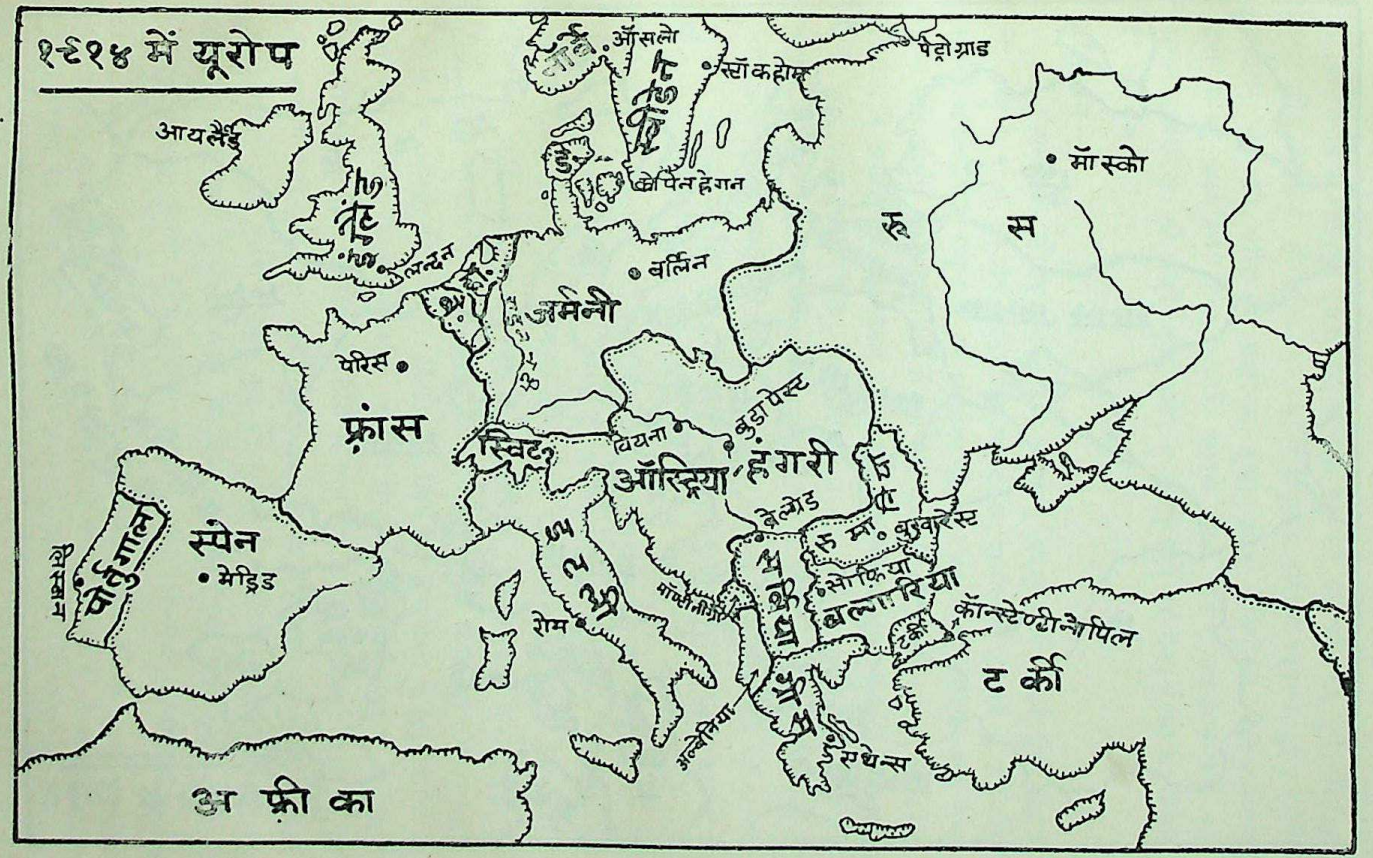

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से निकाल दिया। कमाल की विजय को देख कर सेव्र की सन्धि पर पुनः विचार हुआ और लॉसेन की सन्धि (१९२३) के अनुसार अन्तिम व्यवस्था हुई। इसके अनुसार सेव्र की सन्धि में संशोधन हुआ और गेलिपोली, एड्रियानोपल पूर्वी थ्रेस, आर्मेनिया तथा स्मर्ना वापस मिल गये। जलडमरूमध्यों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण भी नहीं हुआ और न उसके तटों पर सेना रखने का निषेध ही रहा।*

राष्ट्र-संघ—

विल्सन के चौदह सिद्धांतों में अन्तिम, परन्तु स्वयं उसके लिये महत्व की दृष्टि से प्रथम, सिद्धांत अन्तर्राष्ट्रिय झगड़ों का शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा निराकरण के लिए एक राष्ट्र-संघ की स्थापना का था। क्लीमेन्सो, लॉयड जॉर्ज तथा अन्य कई राष्ट्रों के प्रतिनिधियों में ऐसे संघ के लिये कोई उत्साह नहीं था परन्तु विल्सन के आग्रह के फल-स्वरूप सभी राष्ट्र-संघ की स्थापना के लिये तैयार हो गये और जिस अन्तर्राष्ट्रीय समझौते (Covenant) के आधार पर राष्ट्र-संघ की स्थापना की गई, वह पेरिस की शान्ति-सन्धि में उसके अभिन्न अंग के रूप में सम्मिलित किया गया। राष्ट्र-संघ का उद्देश्य प्रत्येक राष्ट्र द्वारा 'युद्ध का आश्रय न लेने की दायित्व की स्वीकृति तथा संगठित राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बंधों में संधि-जन्य दायित्वों के पालन द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की स्थापना करना' था। समझौते की दसवीं धारा के अनुसार प्रत्येक सदस्य राज्य को संघ के समस्त सदस्य राज्यों की अखंडता तथा वर्तमान राजनीतिक स्वतन्त्रता का आदर करने तथा बाह्य आक्रमण से उनकी रक्षा करने का वचन देना पड़ा। बारहवीं धारा के अनुसार सघ के सदस्यों को यह स्वीकार करना पड़ा कि 'यदि उनके बीच कोई ऐसा झगड़ा उपस्थित हो जिससे संघर्ष की सभावना हो, तो वे उस मामले को या तो निर्णय के लिये किसी मध्यस्थ के सुपुर्द करेंगे या संघ की कौंसिल के सामने जाँच के लिये प्रस्तुत करेंगे और मध्यस्थ के निर्णय अथवा कौंसिल की रिपोर्ट की तिथि से तीन महीने तक किसी भी दशा में युद्ध का आश्रय नहीं लेंगे।' सोलहवीं धारा के अनुसार यह ठहराया गया कि 'यदि कोई सदस्य राज्य इसके प्रतिकूल युद्ध का आश्रय लेगा तो यह समझा जायगा कि उसने संघ के अन्य समस्त सदस्यों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया है और संघ (अर्थात् प्रत्येक सदस्य) तुरन्त उससे समस्त व्यापार तथा राजस्व-सम्बन्धी सम्बन्ध तोड़

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 371, बास्फ़ोरस तथा डार्डेनेलोज़ के जलडमरूमध्यों के दोनों ओर केवल थोड़े से अंचलों में सेना रखने का निषेध रहा। Lodge and Horn : A History of Europe, p. 572.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देगा।' आवश्यकता पड़ने पर संघ उसके विरुद्ध सैनिक कार्रवाई भी कर सकता था और चूंकि उसके पास अपनी कोई सेना नहीं थी, संघ की परिषद् प्रत्येक राज्य से आवश्यक थल, नभ या जल सेना की मांग कर सकता था।

संघ का संगठन—

संघ की मुख्य संस्थाएं तीन थीं—(१) परिषद् (Council) जिसमें पाँचों महान् सत्ताओं (अमेरिका, इङ्गलैंड, फ्रांस, इटली तथा जापान) को स्थायी सदस्यता प्राप्त थी और अन्य राज्यों में से सभा द्वारा निर्वाचित चार राज्य अस्थायी सदस्यता वाले सदस्य होते थे। अमेरिका आरंभ से ही संघ में शामिल नहीं हुआ और उसका स्थान खाली रहा। अस्थायी सदस्यों की संख्या बाद में १९२२ में ६, १९२६ में ९ और १९३३ में १० कर दी गई थी। यह एक प्रकार की कार्यपालिका थी। (२) सभा (Assembly) जिसमें छोटे बड़े सभी सदस्य राज्यों को समानता के आधार पर तीन प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था परंतु जिनका मत एक ही होता था। यह एक प्रकार की व्यवस्थापिका सभा थी और संसार की शांति से संबंध रखने वाले किसी मामले पर विचार एवं निर्णय कर सकती थी (३) कार्यालय (Secretariat)। इसी से सम्बद्ध दो संस्थाएं और थीं—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Court of International Justice) तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office) जिसका उद्देश्य संसार में श्रमियों की अवस्था में सुधार करना और उनके हितों की वृद्धि करना था।

राष्ट्र-संघ संगठन की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय सरकार के समान दिखाई देता था। उसमें राज्य के तीनों अवयव—कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका-विद्यमान् थे परन्तु वास्तव में वह विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों का एक अविरत सम्मेलन था। उसका मुख्य प्रयोजन युद्ध रोकना और इस दृष्टि से विभिन्न प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना था परन्तु शान्ति-सन्धियों के अन्तर्गत उसके अन्य कार्य भी थे, यथा सार-क्षेत्र, डेन्ज़िग आदि उसके संरक्षण में लिये हुए प्रदेशों की व्यवस्था करना ;

आदेश प्रथा (Mandate System)—

युद्ध की समाप्ति पर, जैसा हम देख चुके हैं, जर्मनी का औपनिवेशिक साम्राज्य उसने छीन लिया गया था और टर्की के साम्राज्य में से बहुत से प्रदेश अलग करके राष्ट्र-संघ के संरक्षण में ले लिये गये थे। उनकी व्यवस्था के लिये एक नया ढङ्ग निकाला गया। राष्ट्र-संघ ने अपने आदेश (Mandate) द्वारा अपनी ओर से उनके प्रशासन का कार्य मित्र-राष्ट्रों को सौंप दिया। आदेश प्राप्त सत्ताओं का यह कर्त्तव्य रखा गया कि वे उन प्रदेशों के निवासियों के हितों के वृद्धि का प्रयत्न करें और समय-समय पर राष्ट्र-संघ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मेण्डेट्स कमिशन के समक्ष अपने कार्य का विवरण प्रस्तुत करें। इस प्रकार के प्रदेश तीन भागों में विभक्त किए गये। (क) टर्की के प्रदेश। इनमें से पेलेस्टाइन, ट्रान्सजोर्डान तथा मेसोपोटामिया इंगलैण्ड को और सीरिया फ्रान्स के सुपुर्द किए गये। (ख) उष्णकटिबन्धीय अफ्रिका में स्थित जर्मनी के उपनिवेश। जर्मन पूर्वी अफ्रिका (पश्चिमोत्तर भाग को छोड़ कर जो वेल्जियम को दिया गया) इंगलैण्ड को मिला और केमरून्स तथा टोगोलैण्ड इंगलैण्ड और फ्रान्स के बीच विभक्त कर दिये गए। (ग) दक्षिण-पश्चिमी अफ्रिका तथा प्रशान्त महासागर में स्थित जर्मनी के द्वीप। दक्षिण-पश्चिमी अफ्रिका दक्षिण अफ्रिका के यूनियन के सुपुर्द किया गया। क्याऊ-चाऊ में जर्मनी का पट्टा, शाण्तुङ्ग में उसके विशेषाधिकार तथा प्रशान्त महासागर में भूमध्य-रेखा के उत्तर के समस्त जर्मन द्वीप जापान को तथा दक्षिण के द्वीप आस्ट्रेलिया को मिले। सेमाआ द्वीप में स्थिति जर्मन प्रदेश न्यूज़ीलैण्ड को दिया गया।

महायुद्ध के परिणाम—

यह युद्ध वास्तव में एक महायुद्ध था और कई दृष्टि से अभूतपूर्व था। जितने लोग इस युद्ध में सम्मिलित हुए उतने उस समय तक किसी भी युद्ध में शामिल नहीं हुए थे। इसमें नवीनतम और अत्यन्त भयंकर शस्त्रास्त्रों का प्रयोग हुआ, टैङ्क काम में आये, विषैली गैसों का प्रयोग हुआ, हवाई जहाज़ों से गोले बरसाये गए, समुद्र के गर्भ में पनडुब्बियों ने भयंकर विनाश किया और शत्रुओं के प्रहार से असैनिक नागरिक जनता भी न बची। इस युद्ध में प्रायः प्रत्येक राष्ट्र के आबालवृद्ध सभी लोगों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में भाग लिया। जब मैदान में अधिकाधिक सैनिकों की आवश्यकता होने लगी तो बाधित सेवा के नियमानुसार स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, कारखानों, दफ्तरों, खेतों, खानों आदि सभी से सक्षम व्यक्ति युद्ध के कामों में लग गए और उनके रिक्त स्थानों पर वृद्ध लोग, स्त्रियाँ और बच्चे अपनी-अपनी योग्यतानुसार काम करने लगे। इस युद्ध में ३० राष्ट्रों ने और कोई ६½ करोड़ व्यक्तियों ने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया जिनमें से कोई ८५ लाख व्यक्ति मारे गए, ३ करोड़ के लगभग घायल हुए, बन्दी हुए या खो गए। इसमें कोई १० खरब रुपया प्रत्यक्ष रूप से खर्च हुआ और जान-माल की परोक्ष हानि का तो कोई अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता।* मार्च १९१५ तक इंगलैण्ड का दैनिक खर्च मध्यम रूप से १५ लाख पाउण्ड, १९१५-१६ में ४० लाख, १९१६-१७ में ५५ लाख और १९१७-१८ में ६५ लाख पाउण्ड होता था और उसका राष्ट्रीय ऋण युद्ध के अन्त तक ७०८० लाख से बढ़ कर ७४३५० लाख पाउण्ड हो गया था। फ्रांस का

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, pp. 366-367.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रीय ऋण ३४१८८० लाख से बढ़कर १४७४७२० लाख फ्रेंक और जर्मनी का ५०००० लाख से बढ़ कर १६०६००० लाख मार्क हो गया था। इन आँकड़ों से युद्धजनित हानि का ठीक-ठीक अनुमान नहीं हो सकता। जो प्रदेश शत्रुओं के अधिकार में रहे, जैसे उत्तरी फ्रान्स, बेल्जियम, उत्तरी इटली, रूसी पोलेण्ड, सर्बिया, ऑस्ट्रियन गेलिशिया आदि, उनका तो सर्वनाश कर दिया गया था।❀ इतने भारी आर्थिक विनाश के परिणाम-स्वरूप योरोप की जनता को वर्षों तक आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। उपज बहुत कम हो गई, कीमतें बढ़ने लगीं, मजदूरी की दर भी ऊँची उठने लगी, मुद्रा की कीमत गिरने लगी और व्यापार-व्यवसाय अस्तव्यस्त हो गया।

राजनीतिक परिणाम—जनतन्त्र की विजय—

राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में इस युद्ध के बड़े महत्वपूर्ण और किसी अंश तक अचिन्तित परिणाम हुए। इसके फल-स्वरूप योरोप के तीन प्राचीन महान् राजवंश—ऑस्ट्रिया का हॉप्सबुर्ग, प्रशा का हॉहेनत्सॉलर्न तथा रूस का रोमेनॉफ़ राजवंश—नष्ट हो गये। इनके साथ ही जर्मनी के अनेक छोटे-छोटे राजवंश तथा बल्गारिया का राजवंश भी समाप्त हो गये। आगे चल कर १९२३ में टर्की के उसमानी राजवंश का भी अन्त हो गया। इन राजवंशों के अन्त के साथ सर्वत्र निरंकुश एकतन्त्र का भी अन्त हो गया और उसके स्थान पर गणतन्त्र की स्थापना हुई। युद्ध के उपरांत योरोप में दस नये गणतन्त्र स्थापित हुए—जर्मनी, ऑस्ट्रिया, पोलेण्ड, रूस, चेकोस्लोवेकिया, लिथुएनिया, लेटविया, एस्टोनिया, फिनलैण्ड तथा यूक्रेन—और १९२५ में टर्की में भी गणतन्त्र स्थापित हो गया। इंगलैंड, स्पेन, ग्रीस, रूमानिया आदि जिन देशों में वंशानुगत राजा बने रहे वहाँ भी जनतन्त्र को बड़ी तेज़ी से प्रगति होने लगी। इस प्रकार उदारवाद एवं जनतन्त्रवाद की भावना जिसे फ्रेञ्च क्रान्ति ने जन्म दिया था और जो उन्नीसवीं शताब्दी में धीरे-धीरे प्रबल होती जा रही थी और सर्वत्र प्रगति कर रही थी महायुद्ध के बाद फलीभूत हुई और योरोप में सर्वत्र उसका प्रचार हो गया।

राष्ट्रीयता की विजय—

जनतन्त्रवाद के साथ ही राष्ट्रीयता की भावना को भी विजय प्राप्त हुई। पेरिस के शान्ति-सम्मेलन ने योरोप की नवीन राजनीतिक व्यवस्था राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धांत के आधार पर करने का प्रयत्न किया और उसके अनुसार आठ नये राज्यों की सृष्टि की—चेकोस्लोवेकिया, यूगोस्लेविया, हंगरी, पोलेण्ड, लिथुएनिया, लेटविया, एस्टोनिया और

❀ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 307-308.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़िनलैण्ड। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस व्यवस्था से योरोप के प्रत्येक राष्ट्र को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार प्राप्त हो गया और राष्ट्रीयता की समस्या का हल हो गया। इस सिद्धान्त के आधार पर नये राज्यों की सृष्टि अवश्य की गई परन्तु नये राज्यों में भी, आबादी के अत्यधिक मिश्रण के कारण, भिन्न राष्ट्रों के लोग बने रहे और उनकी समस्या बनी रही। एक दूसरी दृष्टि से भी इस सिद्धान्त का प्रयोग अपूर्ण रहा। अवशिष्ट ऑस्ट्रिया पूर्णरूपेण जर्मन था और उसके निवासियों की इच्छा जर्मनी के साथ सम्मिलित होने की थी परन्तु जर्मनी को निर्बल रखने की इच्छा से विजेता राष्ट्रों ने ऑस्ट्रिया को जर्मनी के साथ शामिल नहीं होने दिया। विजेता राष्ट्रों के साम्राज्यों के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त की उपेक्षा की गई और साम्राज्यों में सम्मिलित अधीनस्थ राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ।

युद्ध के दौरान में मित्र-राष्ट्रों की ओर से यह कहा जाता रहा कि युद्ध जनतंत्र के लिये संसार को निरापद बनाने के लिये किया जा रहा था। आरंभ में तो ऐसा मालूम होता था कि वास्तव में सर्वत्र जनतन्त्र विजयी हो चुका था परन्तु यह आशा भ्रमात्मक निकली। युद्ध-काल में असाधारण स्थिति का सामना करने के लिये प्रायः प्रत्येक राज्य में सरकार को असाधारण अधिकार प्राप्त हो गये थे और सरकारें प्रायः एकतंत्र एवं स्वेच्छाचारी हो गईं थीं। युद्ध की समाप्ति के बाद प्रत्येक देश में सरकार को असाधारण राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थिति का सामना करना पड़ा जिसके लिये शिथिल जनतंत्रीय उपाय अपर्याप्त सिद्ध हुए, जनतंत्र की असमर्थता प्रकट होने लगी, उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया आरंभ हुई और कई देशों में जनतंत्र का अन्त हो कर अधिनायकतंत्र स्थापित हो गये। रूस, इटली, स्पेन, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, टर्की आदि अनेक देशों में युद्ध की समाप्ति के कुछ वर्ष बाद ही प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई।

जिस प्रकार इस युद्ध के द्वारा जनतन्त्र की सफलता की आशा की जा रही थी, उसी प्रकार यह भी आशा की जा रही थी कि वैज्ञानिक युग के महायुद्ध के भीषण नर-संहार से संसार सैनिकवाद की भयंकरता और अवांछनीयता समझ लेगा और विभिन्न राष्ट्र अपने झगड़े शांतिपूर्ण उपायों से निपटाने तथा शस्त्रास्त्रों में कमी करके युद्ध की तैयारी में व्यय किये जाने वाले धन को लोक-कल्याण के कामों में व्यय करने की आवश्यकता का अनुभव करने लगेंगे। मित्र-राष्ट्रों का दावा भी था कि वे जर्मनी के सैनिकवाद के विरुद्ध लड़ रहे थे। राष्ट्र-संघ की स्थापना भी इसी दृष्टि से हुई थी। परन्तु यह आशा भी व्यर्थ रही और, जैसा हम आगे देखेंगे, पारस्परिक शंका के कारण विभिन्न राष्ट्र सैनिकवाद के पुजारी ने रहे और निःशस्त्रीकरण के सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामाजिक परिणाम—

सामाजिक क्षेत्र में भी महायुद्ध के बड़े महत्वपूर्ण परिणाम हुए। रणक्षेत्र में सैनिकों की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती रहने के कारण प्रत्येक युद्धरत राष्ट्र के लाखों पुरुष अपने-अपने काम छोड़कर युद्ध में चले गये और उनकी जगह स्त्रियाँ काम करने लगीं। इस प्रकार वे अपनी गृहस्थी के संकुचित जीवन से निकल कर समाज के आर्थिक जीवन में आ पहुँची और उन्होंने कठिन से कठिन काम किये। इससे उनमें आत्मविश्वास बढ़ा और उन्हें अपने महत्व का भी ज्ञान हुआ। उन्होंने राजनीतिक अधिकारों के लिये माँग शुरू की और उन्हें वे अधिकार प्राप्त भी हुए। इस प्रकार युद्ध से स्त्रियों की स्थिति में क्रान्ति हो गई। युद्ध में असंख्य पुरुषों की मृत्यु से प्रत्येक देश में पुरुषों की संख्या कम हो गई और उनकी अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बढ़ गई जिसका पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन पर बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा।

स्त्रियों के समान मज़दूरों में भी अपने महत्व की अनुभूति बढ़ी क्योंकि युद्ध के लिये नाना प्रकार के कारखानों में अस्त्रास्त्र एवं युद्ध की अनेक प्रकार की सामग्रियों को तैयार करके उन्होंने भी युद्ध में काफ़ी महत्वपूर्ण काम किया था। मज़दूर-आन्दोलन पहले भी चल रहा था परन्तु युद्ध के बाद उसने अधिक ज़ोर पकड़ा और मज़दूर वर्ग अब व्यवसायों के संचालन में भाग मिलने की माँग करने लगा।

समाजवाद की प्रगति—

इसके साथ ही समाजवाद की प्रगति हुई। युद्धजनित परिस्थिति से प्रत्येक राज्य में राज्य-समाजवाद की एक प्रकार से अपने आप ही प्रतिष्ठा हो गई थी क्योंकि युद्ध के समुचित संचालन के लिए प्रत्येक देश में सरकार ने आर्थिक जीवन पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। जिन व्यवसायों का युद्ध से सम्बन्ध था उनका संचालन उसने अपने हाथों में ले लिया था और अन्य व्यवसायों पर भी वह कड़ा नियंत्रण रखती थी। युद्ध की समाप्ति पर विभिन्न व्यवसाय फिर से पूँजीपतियों के हाथों में पहुँच गये परन्तु परिस्थिति फिर भी असाधारण बनी रही और राज्य का उनमें अनेक प्रकार का हस्तक्षेप बना रहा। विभिन्न प्रकार के समाजवादी इस स्थिति से सन्तुष्ट न रहे और उनका आंदोलन बढ़ने लगा। रूस में तो बॉलशेविकों ने लेनिन के नेतृत्व में तुरन्त ही अपना शासन स्थापित करके समाजवाद की प्रतिष्ठा कर ली। अन्य देशों में भी समाजवाद का ज़ोर बढ़ा।

सन्धि की समीक्षा—

पेरिस के शान्ति-सम्मेलन का आरंभ अत्यधिक आशापूर्ण वातावरण में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ था परन्तु उसका अन्त व्यापक नैराश्य में हुआ।* यह परिणाम स्वाभाविक एवं अनिवार्य था क्योंकि घोर राष्ट्रीय संकट से उत्पन्न आदर्शवाद उस संकट की समाप्ति पर अधिक नहीं टिकता, विजेता शक्तियों में ईर्ष्या-द्वेष पुनः जागृत हो जाते हैं, और शान्ति के लिए जो त्याग और समझौते किये जाते हैं वे बाद में सबको निराशा-जनक दिखाई देते हैं। सन्धि में फ्रेञ्च हितों का सर्वाधिक ध्यान रखा गया था परन्तु जब क्लीमेन्सो ने फ्रेञ्च विधान-सभा में प्रस्तुत किया तो उसके दोनों भवनों ने उस पर इंगलैण्ड और अमेरिका के गुट के सामने कायरतापूर्वक अपने राष्ट्रीय हितों के बलिदान का दोष लगाया। इटली को जो कुछ प्राप्त हुआ वह उसे अपर्याप्त दिखाई दिया और इटालियन राष्ट्र बड़ा असन्तुष्ट रहा। लॉयड जार्ज भी आलोचना से न बचा। एक ओर तो उस पर अमेरिकन शान्तिवाद के सामने कठोर न्याय का बलिदान करने और दूसरी ओर से फ्रान्स को प्रसन्न करने के लिए जर्मनी पर विनाशकारी सन्धि लादने का दोष लगाया गया। अमेरिकन सीनेट ने राष्ट्र-संघ का, जो विल्सन को समस्त व्यवस्था में सर्वाधिक प्रिय वस्तु मालूम होती थी, विरोध किया और अमेरिका को उसका सदस्य नहीं बनने दिया। छोटे-छोटे राज्य भी असन्तुष्ट थे। सबसे अधिक असन्तोष तो जर्मनी को था। वास्तव में नई व्यवस्था में अनेक त्रुटियाँ थी और उस पर हस्ताक्षर करने वाले राजनीतिज्ञों में से बहुतसों को स्वयं उससे सन्तोष नहीं था। दक्षिणी अफ्रिका के प्रधान-मन्त्री जनरल स्मट्स ने सन्धि पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त कहा था कि मैंने सन्धि पर हस्ताक्षर इसलिए नहीं किये कि मैं उसका अनुमोदन करता हूँ वरन् युद्ध की स्थिति का अन्त करने के लिए किये हैं। उसके मत में इन सन्धियों द्वारा जो प्रादेशिक व्यवस्था हुई थी वह ऐसी थी जिसमें संशोधन की आवश्यकता पड़ेगी और हर्जाने की रकमें भी इतनी भारी थीं कि योरोप के औद्योगिक पुनरुत्थान को गहरी चोट पहुँचाये बिना वे वसूल नहीं की जा सकती थीं।† स्वयं राष्ट्रपति विल्सन ने स्वीकार किया था कि सम्मेलन के कार्य की पुनरावृत्ति आवश्यक होगी। शान्ति-सन्धि पर अपने विचार प्रगट करते हुए मार्शल फॉश ने कहा था कि 'यह शान्ति नहीं है, यह तो बीस वर्ष के लिये युद्ध-विराम-सन्धि है।‡ फ्रॉस की भविष्यवाणी सत्य निकली और बीस वर्ष में ही द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया।

जर्मनी की शिकायतें—

इस सन्धि से सबसे अधिक असन्तोष, जैसा हम अभी लिख चुके हैं, जर्मनी को था। शान्ति सम्मेलन विजित राष्ट्रों के प्रतिनिधि उस समय तक

* Slosson : Europe since 1870, p. 477.
† Dhar : Europe between Two World Wars, p. 72.
‡ Churchill : The Second World War, Vol. I, p. 6.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आमन्त्रित नहीं किये गये थे जब तक कि विजेता राष्ट्रों ने सन्धि की शर्तें निर्धारित नहीं करलीं।* यह सन्धि दोनों के मध्य बातचीत का परिणाम नहीं थी, वरन् विजेता राष्ट्रों द्वारा विजित राष्ट्रों पर जबरदस्ती लादी हुई सन्धि थी। जर्मनी के प्रतिनिधियों को उन शर्तों पर अपने विचार प्रगट करने का अवसर अवश्य दिया गया था और उन्होंने बड़े प्रभावकारी तर्क के साथ सम्पूर्ण सन्धि तथा उसकी विभिन्न धाराओं पर अनेक आक्षेप किये थे। उन्होंने विल्सन के सिद्धान्तों के आधार पर युद्ध स्थगित किया था परन्तु उन्होंने यह आपत्ति की कि सन्धि और विल्सन के सिद्धान्तों, युद्ध के दौरान पर दिये हुए मित्र-राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों के वक्तव्यों तथा अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के सामान्य सिद्धान्तों में बड़ा विरोध था। उन्हों ने कहा कि 'यह वह न्याययुक्त सन्धि नहीं है जिसका हमें वचन दिया गया था। न्यायपूर्ण एवं स्थायी शान्ति के निमित्त जिस आधार को हमने स्वीकार किया था उसके साथ इसका पूर्ण विरोध है। हमारे शत्रु बार-बार कहते रहे हैं कि हम जर्मन राष्ट्र के विरुद्ध नहीं, वरन् उसकी साम्राज्य वादी एवं स्वेच्छाचारी सरकार के विरुद्ध लड़ रहे हैं। उन्होंने बार-बार इस बात को दोहराया है कि इस अपूर्व युद्ध के बाद एक नई प्रकार की शान्ति —पाशविक बल की शान्ति नहीं, औचित्य एवं न्याय की शांति—स्थापित होगी। हमारे शत्रुओं के मुक़ाबले में अब कोई स्वेच्छाचारी सरकार नहीं है। जर्मन साम्राज्य का नया विधान, उसकी लोकप्रिय सरकार का निर्माण प्रजातंत्र के सिद्धांतों के पूर्णतया अनुकूल है, उसमें सैनिकवादी भावना का अभाव भी स्पष्ट है। परंतु संधि के मसौदे में अन्य बातों के समान इन बातों की नितांत उपेक्षा की गई है। किसी साम्राज्यवादी सरकार पर इससे अधिक कठोर शर्तें क्या लादी जा सकती थीं, इसकी कल्पना करना ही कठिन है।'†

उन्होंने बड़े विस्तार से अपनी विशिष्ट शिकायतों का उल्लेख करते हुए कहा कि सार का पूर्णतया जर्मन प्रदेश १५ वर्ष के लिए छीन लिया गया है, ऊपरी साइलेशिया पोलेण्ड को दे दिया गया है यद्यपि पहले साढ़े सात सौ वर्षों से उसका उससे कोई राजनीतिक सम्बन्ध नहीं था। पोसेन और पश्चिमी प्रशा में रहने वाले लाखों जर्मन लोग पोलेण्ड के आधीन कर दिये गये हैं। पूर्वी

---

* शायद उन्हें वियना-काँग्रेस में पराजित फ्रान्स के प्रतिनिधि तेलीराँ की कूट-नीतिक चालों तथा मित्र-राष्ट्रों के पारस्परिक मतभेद से लाभ उठाने के प्रयत्नों का स्मरण था और वे उस इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं चाहते थे। *Slosson : Europe since 1870, p. 444.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 311-312.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रशा और मेमेल जो विशुद्ध रूप से जर्मन हैं, जर्मनी से अलग कर दिये हैं और इसी प्रकार डेन्ज़िग भी पोलेण्ड के प्रभुत्व के अन्तर्गत स्वतन्त्र नगर घोषित कर दिया गया है। इन बातों में किसी एक सिद्धान्त का अवलम्बन नहीं किया गया है, कहीं अविच्छेद्य ऐतिहासिक अधिकार, कहीं जातीय (Ethnographical) आधार और कहीं आर्थिक हितों की दुहाई दी गई है, परन्तु प्रत्येक दशा में निर्णय जर्मनी के प्रतिकूल हुआ है। इस युद्ध में स्वभाग्य-निर्णय के नये सिद्धान्त को जन्म दिया गया है परन्तु इस सिद्धान्त का सार, अल्सास-लोरेन, डेन्ज़िग, मेमेल तथा पोलेण्ड और बेल्जियम को दिये हुए प्रदेशों में उल्लंघन किया गया है। इसके साथ ही जर्मन ऑस्ट्रिया में बसने वाले लाखों जर्मन लोगों को जर्मनी के साथ शामिल होने के अधिकार से, जिसे वे चाहते हैं, वंचित कर दिया गया है और इसी प्रकार जर्मनी की सीमाओं पर निवास करने वाले लाखों जर्मन लोगों को चेकोस्लोवेकिया के नये राज्य में रहने को विवश किया गया है। जर्मनी के उपनिवेशों के प्रश्न का भी न्याय के अनुसार निर्णय नहीं हुआ है। जर्मनी ने उन्हें वैध उपायों से प्राप्त किया है, उनमें उसकी राष्ट्रीय पूँजी लगी हुई है और उसके उद्योगों के लिये बाजार के रूप में तथा उसकी अतिरिक्त जन-संख्या के लिये उनकी आवश्यकता है। वे छीने नहीं जाने चाहिये। जर्मनी राष्ट्र-संघ की ओर से उनका शासन करने के लिये तैयार है। हर्जाने के घोर अनौचित्य की शिकायत करते हुए उन्होंने कहा कि यदि विजेता राष्ट्र जर्मनी पर ऐसा ऋण लादने पर अड़े रहे जिससे उसका भविष्य ही नष्ट हो रहा है तो जर्मन राष्ट्र यही समझेगा कि वह सदा के लिये गुलाम बनाया जा रहा है क्योंकि जर्मन लोग जो कुछ भी करेंगे उसका लाभ स्वयं उनको अथवा उनके बच्चों को नहीं, वरन् दूसरे लोगों को होगा। उन्होंने जर्मनी को समानता के दर्जे पर राष्ट्र-संघ का सदस्य बनाने की माँग की। अन्त में उन्होंने कहा कि वे शक्तियाँ जो मानवमात्र को एकता के सूत्र में ग्रंथित करने के लिये कार्य कर रही हैं इस समय पिछले किसी समय से भी अधिक शक्तिशाली है। इस एकता को संपादित करना इस शान्ति सम्मेलन का ऐतिहासिक कार्य है। जर्मन राष्ट्र अपने पूर्व शत्रुओं से इस अवसर पर समस्त राष्ट्रों तथा समस्त मानव समाज के हितों के नाम में ऐसी सन्धि की माँग करता है जिसे उसकी अन्तरात्मा स्वीकार कर सके। स्थायी शान्ति एक महान् राष्ट्र के दमन और दासत्व के आधार पर स्थापित नहीं हो सकती।‡

मित्र-राष्ट्रों का उत्तर—

मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी की प्रत्येक शिकायत का उत्तर दिया। उन्होंने बत-

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 312-314.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लाया कि संधि की शर्तों का निर्धारण करने में उन्होंने विल्सन के सिद्धान्तों का ही पालन किया था।* न्याय के संबंध में उन्होंने कहा कि जर्मनी न्याय चाहता है और उसे न्याय ही मिलेगा। परन्तु वह न्याय केवल जर्मनी के लिये ही नहीं, सभी लोगों के लिए होना चाहिये—उन लोगों के लिये जो युद्ध में मारे गये और घायल हुए हैं, उन लोगों के लिए जो अनाथ हो गये हैं, उन लोगों के लिए जो युद्ध कालीन ऋण के भार से पिसे जा रहे हैं, उन करोड़ों लोगों के लिये जिनके घर-बार, भूमि, जहाज़ तथा सम्पत्ति को जर्मन बर्बरता ने नष्ट कर दिया है। इसी कारण मित्र-राष्ट्र चाहते हैं कि जर्मनी क्षति पूर्ति करे क्योंकि क्षतिपूर्ति न्याय का सार है। उन्होंने जर्मनी की विशिष्ट शिकायतों का भी उत्तर दिया और स्वीकार किया कि किसी-किसी बात में, सब में नहीं, निर्णय जर्मनी के प्रतिकूल अवश्य हुआ है परंतु इसका कारण यह था कि जर्मन साम्राज्य के बहुत से प्रदेश ऐसे थे जो भूतकाल में अन्यायपूर्वक शामिल कर लिये गये थे। अल्सास-लोरेन फ्रांस को वापस दिया जाना विल्सन का एक सिद्धांत था, सार फ्रांस को इस कारण दिया गया था कि जर्मनी ने उत्तरीपूर्वी फ्रांस की कोयले की खानों का बिल्कुल नाश कर दिया था जिसका बदला इसी प्रकार लिया जा सकता था। अन्य निर्णयों में स्वतंत्र पोलेण्ड की स्थापना, उसे उसके पुराने प्रदेश वापस करने का औचित्य, समुद्र तक उसे निकास का मार्ग देने की आवश्यकता, विभिन्न जातियों के एक साथ बसने से उत्पन्न कठिनाइयाँ आदि का विचार रखा गया था। इस प्रकार का उत्तर देकर मित्र-राष्ट्रों ने प्रत्येक निर्णय का समर्थन किया परंतु इसके साथ ही उन्होंने कई रियायतें, विशेषकर जर्मनी की पूर्वी सीमा के संशोधन करके तथा ऊपरी साइलेशिया में जनमत-संग्रह की व्यवस्था करके, दीं।†

---

* सन्धि विल्सन के १४ सिद्धान्तों के आधार पर अवश्य हुई थी परन्तु जब जर्मनी ने उन सिद्धान्तों के आधार पर सन्धि की थी और विल्सन ने इस प्रार्थना की सूचना इंगलैण्ड और फ्रान्स को भेजी थी तो दोनों देशों के मन्त्रि-मण्डलों ने दो अपवाद के साथ अपनी स्वीकृति दी थी –(१) 'समुद्र की स्वतन्त्रता' के प्रश्न पर वे शांति-सम्मेलन में भाग लेने के पहले कुछ भी नहीं कहना चाहते थे; (२) मित्र-राष्ट्रों की असैनिक जनता की जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति जर्मनी को करना पड़ेगी। Mowat : Contemporary Europe and Overseas, p. 380. इसके साथ ही इटली और ऑस्ट्रिया के बीच जो विराम-सन्धि हुई थी वह इन सिद्धान्तों के आधार पर नहीं हुई थी। Ketelbey : A History of Modern Times, p. 431.

†Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 314-317.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्धि की कठोरता—

मित्र-राष्ट्रों ने सन्धि के औचित्य के विषय में जो कुछ भी कहा वह बहुत कुछ सत्य था परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन्धि की शर्तें अत्यन्त कठोर थीं और उनका उद्देश्य जर्मनी को सदा के लिए ऐसा निर्बल बना देना था कि वह भविष्य में कभी शस्त्र न उठा सके। यहाँ यह बात भी ध्यान रखना चाहिए कि स्वयं जर्मनी ने रूस तथा रूमानिया के साथ जो सन्धियाँ की थीं वे इस सन्धि से किसी प्रकार भी कम कठोर नहीं थी और मित्र-राष्ट्रों ने एक प्रकार से उन्हीं का अनुकरण किया था। किन्तु इस बात से सन्धि की कठोरता कम नहीं होती।* शर्तें ऐसी थीं जिन्हें कोई राष्ट्र न तो स्वीकार ही कर सकता था और न उनका पूर्णतया पालन ही हो सकता था। लाचारी के कारण उसे सन्धि स्वीकार करना पड़ी और एक स्वाभिमानी राष्ट्र को घोर अपमान का कड़ुआ घूँट पीना पड़ा। सार तथा ऊपरी साइलेशिया के औद्योगिक क्षेत्र का छिन जाना, जर्मनी का दो भागों में विभक्त हो जाना और महान् फ्रेडरिक की समस्त विजयों से वंचित हो जाना आदि बातें ऐसी थीं जिसे महान् जर्मन राष्ट्र के लिये चुपचाप सहन करना असंभव था। उसकी सैन्य-शक्ति कम कर दी गई थी और वह बेल्जियम जैसे (उसकी दृष्टि में) नगण्य देश से भी अपने आप को इस सम्बन्ध में हीन नहीं देख सकता था। उसने इस आशा में शस्त्र डाल दिये थे कि उसके इस कार्य के बाद विल्सन के सिद्धांतों के अनुकूल सभी राष्ट्र शस्त्रास्त्र में कमी करेंगे परन्तु ऐसा नहीं हुआ। क्षतिपूर्ति का बड़ा भारी भार उस पर डाला गया परन्तु उसके साथ ही उत्कृष्ट औद्योगिक साधनों से उसे वंचित कर उसका भविष्य में पनपना असंभव कर दिया। वह इस बात पर बड़ा रुष्ट था कि जिस राष्ट्रीय स्वभाग्य निर्णय के सिद्धांत का अन्य राष्ट्रों को लाभ दिया गया उसका जर्मनी के साथ पूर्णतया उल्लंघन किया गया और जर्मन राष्ट्र को जान बूझ कर विभक्त रखा गया। स्वाभिमानी जर्मन राष्ट्र इस अपमान को सहन नहीं कर सकता था और यह स्वाभाविक ही था कि वह भविष्य में फिर युद्ध द्वारा ही अपने अपमान को धोने और अपनी क्षति-पूर्ति का प्रयत्न करे।† इस प्रकार भावी विश्व-युद्ध की बीज वार्साई के सन्धि में आरम्भ से ही

---

* 'एक सफल युद्ध के परिणाम-स्वरूप जो सन्धियाँ अब तक पराजित राष्ट्र पर लादी गई हैं उनमें यह सन्धि कठोरता की दृष्टि से सबसे बढ़ कर थी।' Schevill : History of Europe, p. 733.

† यह बात ध्यान देने योग्य है कि सन्धि पर हस्ताक्षर करने से पहले ही जर्मनों ने उसको भंग करना शुरू कर दिया था। उन्हें अपना बेड़ा समर्पण करना था। वह स्कापा फ्लो में कैद था परन्तु समर्पण करने के पहले ही जर्मन एडमिरल ने उसे डुबो दिया। सन्धि को एक शर्त के अनुसार उन्हें १८७० में छीने हुए फ्रेञ्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विद्यमान थे। ऑस्ट्रिया, हंगरी, बल्गारिया तथा टर्की को भी सन्धि से शिकायतें थीं। परन्तु उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। टर्की ने तो कमाल पाशा के नेतृत्व में लड़कर कुछ शिकायतों का निराकरण कर लिया परन्तु अन्य राज्यों की कोई सुनवाई नहीं हुई।

कुछ विचारणीय बातें—

सन्धि कठोर अवश्य थी और उसकी शर्तें जर्मनी तथा टर्की के लिये तो बहुत अपमानजनक भी थीं। उसमें युद्धकालीन संकटों, भविष्य के डर तथा बदले को प्रचण्ड भावना के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते थे परन्तु उस पर विचार करते समय हमें कई बातों का ध्यान रखना चाहिए। (१) संधि ऐसे समय में की गई थी जब कि शत्रु द्वारा किये हुए भयंकर विनाश, तथा अपार कष्टों की स्मृति विजेता राष्ट्रों में ताज़ी थी और विजित राष्ट्रों के विरुद्ध भावनाएँ बड़ी तीक्ष्ण थीं। विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि, जो सम्मेलन में शामिल हुए थे, स्वतंत्र नहीं थे। उन्हें अपनी-अपनी जनता के, जिसमें तीव्र प्रतिशोध की भावना जागृत हो गई थी, मत और उनकी भावनाओं का लिहाज़ करना पड़ता था। वे उनकी किसी प्रकार भी उपेक्षा नहीं कर सकते थे।* (२) शांति-सम्मेलन में दो विभिन्न विचारों का संघर्ष था। एक ओर तो राष्ट्रपति विल्सन के आदर्शवादी सिद्धान्त थे तथा दूसरी ओर मित्र-राष्ट्रों के स्वार्थ थे जो अपने लिए अधिक से अधिक प्रादेशिक तथा आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे और भविष्य में जर्मनी के उत्पात को असम्भव बना देना चाहते थे। उन्हें अपने स्वार्थों की सिद्धि की चिन्ता थी, स्थायी शांति स्थापित करने की नहीं।† वे यह भूल गये कि शत्रु पर पराजय के साथ-साथ अपमान भी लादना घातक होता है और इस मनोवृत्ति से युद्ध रोका नहीं जा सकता, उल्टे वह अनिवार्य हो जाता है। पराजित राष्ट्र के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार ही भविष्य में शांति को सुनिश्चित कर सकता है। परंतु उस समय इस बात की ओर ध्यान नहीं गया, विल्सन का आदर्शवाद उठा कर ताक में रख दिया गया और विजेता राष्ट्रों के स्वार्थों का पलड़ा ही भारी रहा। (३) स्वयं विजेता राष्ट्रों के स्वार्थों में भी संघर्ष था। उदाहरणार्थ, फ्रांस जर्मनी से अत्यन्त अप्रसन्न था और उसका सर्वनाश चाहता था परंतु इंगलैण्ड, जिसकी इतनी हानि नहीं हुई थी और जिसे भविष्य में जर्मनी से अधिक भय नहीं था, उसके साथ नरमी का व्यवहार

झण्डे फ्रान्स को वापस लौटाने थे किन्तु उन्होंने उनको जला दिया। Hazen : Modern European History, p. 706.

*Scheviil : A History of Europe, p. 729.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 321.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहता था। (४) ऐसे विरोधी हितों में सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता के अतिरिक्त सम्मेलन के सामने एक कठिनाई यह भी थी कि मित्र-राष्ट्रों ने कई राज्यों के साथ गुप्त सन्धि करके उन्हें उदार पुरस्कार का वचन दे कर अपने साथ मिलाया था और उन वचनों का पालन करना आवश्यक था।* (५) वार्साई की सन्धि कई कमिशनों—राजनीतिक, आर्थिक, राजस्व सम्बन्धी, सैनिक तथा नौ सैनिक—द्वारा तैयार की गई थी। अलग-अलग कमीशन ने अपने निर्णय दिये और वे सब सन्धि में शामिल कर लिये गये। यह देखने का प्रयत्न नहीं किया गया कि जर्मनी पर उन सब का सम्मिलित प्रभाव क्या होगा। इसका परिणाम यह हुआ कि सन्धि अत्यन्त कठोर बन गई। (६) सन्धि के कठोर होने का एक कारण यह भी था कि उसकी शर्तों पर बातचीत करते समय विजित राष्ट्रों को अलग रखा गया था। यह अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचार एवं रिवाज़ का उल्लंघन था। १८१४ में वियना सम्मेलन में एकत्रित राज्यों ने सम्मेलन में फ्रान्स को भी आमन्त्रित किया था, परन्तु इस समय ऐसा नहीं गया। यदि विजित राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को शान्ति-चर्चा में सम्मिलित कर लिया जाता तो दोनों पक्ष एक दूसरे को समझते, शर्तों में परिवर्तन भी होता, ग़लतफ़हमियाँ दूर होतीं और असन्तोष भी कम होता। परन्तु ऐसा नहीं हुआ और उसका परिणाम अन्त में जाकर विजेता राष्ट्रों के प्रतिकूल ही हुआ।

किन्तु सन्धि का निर्माण केवल भय और प्रतिशोध की भावनाओं के आधार पर नहीं हुआ, वह कुछ राजनीतिज्ञों के स्वार्थी एवं सनकी विचारों का परिणाम नहीं थी, वरन् विशेषज्ञों के लगभग ६० कमिशनों के परिश्रम से तैयार की गई थी। प्रादेशिक व्यवस्था का आधारभूत सिद्धान्त राष्ट्रीयता का था। ऑस्ट्रिया-हंगरी तथा टर्की के साम्राज्य का भंग तथा प्रशा को भूतपूर्व

* रूस के बॉल्शेविकों ने इन गुप्त सन्धियों को प्रकाशित कर दिया था जिससे जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने वाले राष्ट्रों की साम्राज्यलिप्सा का भण्डाफोड़ हो गया। इङ्गलैंड, फ्रान्स, रूस तथा इटली ने पहले से टर्की के साम्राज्य को आपस में बाँटने की योजना बना ली थीं। जर्मनी के साम्राज्य का भी बटवारा कर लिया गया था और जापान, इंगलैंड, फ्रान्स, दक्षिणी अफ्रिका, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्ड के लिये वही प्रदेश निर्धारित कर लिये गये थे जो उन्हें बाद में मिले। इसी प्रकार लन्दन की संधि के द्वारा इटली के पुरस्कार का भी निश्चय हो गया था। अल्सास-लॉरेन पुनः फ्रांस को दिलवाने की योजना बन चुकी थी। इसके अतिरिक्त राइन नदी के पश्चिम का समस्त प्रदेश भी फ्रान्स को मिलना था। Schevill : A History of Europe, pp. 730-731.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पोलेण्ड के प्रदेशों से वंचित करना इस सिद्धान्त के तार्किक परिणाम थे। कुछ बातों में इस सिद्धान्त का उल्लंघन अवश्य हुआ परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अधिकांश मामलों में इस सिद्धान्त का पालन हुआ और राष्ट्रीयता की दृष्टि से १९१९ के बाद योरोप १९१४ के पहले के योरोप से अधिक सन्तोषजनक था। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कोई भी कार्य ऐसा नहीं हो सकता जिससे सभी लोग सन्तुष्ट हों। शान्ति-सन्धियों में वास्तविक दोष तो यह था कि नवीन प्रादेशिक व्यवस्था के कारण जो आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं उनके निराकरण की कोई व्यवस्था नहीं की गई। एक महायुद्ध द्वारा नष्ट-भ्रष्ट महाद्वीप में नये राज्यों के निर्माण के फल-स्वरूप बारह हज़ार मील लम्बी नई सीमाएँ बन गईं जिनके कारण व्यापार में चुँगी सम्बन्धी रुकावटें पैदा हो गईं और तीव्र आर्थिक राष्ट्रीयता ने नवनिर्माण की स्वाभाविक शक्तियों का गला घोंट दिया। अगले बीस वर्षों में योरोप की कठिनाइयों तथा राजनीतिक अस्थिरता का मुख्य कारण यही था।*

इन आर्थिक कठिनाइयों के अतिरिक्त इन सन्धियों के फल-स्वरूप राष्ट्रीय अल्पमतों की भी बड़ी जटिल समस्या खड़ी हो गई थी जिसके कारण योरोप का राजनीतिक वातावरण अगले वर्षों में बड़ी क्षुब्ध बना रहा और राष्ट्रीय विद्वेष की अग्नि भड़कती रही। लाखों जर्मन तथा मग्यार लोग अपनी मातृभूमि से विलग हो गये थे और राष्ट्रीय स्वभाग्य निर्णय के सिद्धान्त का पालन होते हुए भी केन्द्रीय योरोप के अनेक राज्यों में मित्र-राष्ट्रों के लोग रह गये थे।† राष्ट्रीय विद्वेष महायुद्ध का एक प्रधान कारण था और सन्धि-निर्माता समझते थे कि यदि राष्ट्रीय विद्वेष की अग्नि सुलगती रही तो वह भविष्य में अवश्य भड़क उठेगी। इस भय के निराकरण के लिये पोलेण्ड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, रुमानिया और ग्रीस से अल्पमतों के संरक्षण के लिये सन्धियाँ की गईं और उन्होंने अपने से भिन्न राष्ट्र के अल्पमतों के हितों के संरक्षण का वचन दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश किसी ने भी अपने वचनों का अच्छी तरह पालन नहीं किया और पुराने इतिहास की शिक्षाओं को भूल कर उन्हें परेशान करना शुरू किया ‡

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 322-323.

† ऐसे लोगों की संख्या १९१४ में ४५,०००,००० थी परन्तु १९१९ में नव-निर्माण के फल-स्वरूप वह केवल १६,०००,००० रह गई थी। यह संख्या समस्त योरोप की जनसंख्या की ३ प्रतिशत के लगभग थी। Marriott : Europe and Beyond, p. 300.

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 325.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही वर्षों में योरोप का राजनैतिक वातावरण अत्यन्त अशान्त हो गया और संसार को प्रथम महायुद्ध से भी अधिक भयंकर एवं प्रलयकारी महायुद्ध देखना पड़ा।

———

पाठ्य ग्रन्थ

1. Brandenburg : From Bismark to the World War, London, 1938.
2. Brogan : The Development of Modern France, London, 1945.
3. Cambridge Modern History. Vol, XII, Cambridge, 1938,
4. Carter and Mears : A History of Britain, Oxford, 1937.
5. Dhar : Europe between two World Wars, Madras, 1951.
6. Dickinson : International Anarchy, 1904-12, London, 1937.
7. Fisher : A History of Europe, London. 1946.
8. Gooch : History of Modern Europe, London, 1951.
9. Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, London, 1950.
10. Grey : Twenty-five years, London, 1928.
11. Haldane : Before the War, London, 1920.
12. Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol II, New York, 1932.
13. Hayes and Cole : A History of Europe, Vol. II, New York, 1949.
14. Hazen : Modern European History, New York, 1938.
15. Hearnshaw : Main Currents of Eurapean History, London. 1925.
16. Holland Rose : The Development of European Nations, London, 1916.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

17. Jackson : The Between-War World, London, 1947.

18. Ketelbey : A History of Modern Times, London, 1951.

19. Lipson : Europe in the 19th and 26th Centuries, London, 1949.

20. Lodge and Horn : A History of Europe, 1789--1920, London, 1927.

21. Marriot : A Short History of France, London, 1942.

22. Matriott : Europe and Beyond, London, 1943,

23. Marriott : The Eastern Question, Oxford, 1924.

24. Marriott : The Remaking of Modern Europe, London, 1928.

25. Moon : Imperialism and World Politics, New York, 1947.

26. Mowat : Contemporary Europe and Overseas, London, 1931.

27. Muir : A Short History of rhe British Commonwealth, Vol. II, London, 1934.

28. Petrie : Diplomatic History, 1713-1933. London, 1946.

29. Phillips : Modern Europe. London, 1924.

30. Robertson : Bismarck, London, 1947.

31. Schevill : A History of Europe, New York, 1946.

32. Schuman : International Politics, New York, 1948.

33. Slosson : Europe since 1870, London, 1935.

34. Strong : Dynamic Europe, London, 1945.

35. Trevelyan : British History in the Nineteenth Century and After, London, 1948.

36. Vernadsky : A History of Russia, Philadelphia, 1944.

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो महायुद्धों के बीच

(१९१९-१९३९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १३

बॉल्शेविक क्रान्ति—नवीन रूस

लेनिन का अधिनायक तन्त्र

युद्धोपरान्त समस्या—

प्रथम महायुद्ध तो समाप्त हो गया परन्तु योरोप को शान्ति नहीं मिली। प्रत्येक पराजित राष्ट्र में युद्ध के बाद के कोई चार वर्ष बड़ी अशान्ति के बीते और युद्धपीड़ित जनता को क्रान्ति, राष्ट्रीय संघर्ष या वर्ग-युद्ध के भीषण संकटों का सामना करना पड़ा। जैसा हम देख चुके हैं, महायुद्ध के फल-स्वरूप सर्वप्रथम रूस का साम्राज्य लड़खड़ा कर धराशायी हो गया, सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति सफल हुई और ज़ारशाहों का स्थान साम्यवादी सरकार ने ग्रहण किया। १९१८ से १९२० तक समस्त देश में भयंकर गृह-कलह मचा रहा जिसमें से नवीन रूस का जन्म हुआ। टर्की का साम्राज्य भी नष्ट हो गया और तुर्क क्रान्तिकारियों को मित्र राष्ट्रों के द्वितीय आक्रमण का मुक़ाबला करना पड़ा। अन्त में क्रान्तिकारी विजयी हुए। उन्होंने गणतन्त्र स्थापित किया और १९२३ में विवश होकर मित्रराष्ट्रों को संधि करनी पड़ी। जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य भी युद्ध-विराम सन्धि के पूर्व के सप्ताहों में छिन्न-भिन्न हो गये और कुछ दिनों तक तो बर्लिन, वियना तथा बुडापेस्ट में सर्वहारा वर्ग की क्रांति के परिणामस्वरूप साम्यवाद या कम से कम समाजवाद की स्थापना की सम्भावना दिखाई देती रही परन्तु उन नगरों में मित्रराष्ट्रों का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण ऐसा न हो सका। मित्रराष्ट्रों के सामने उस समय समस्या यह थी कि क्या नवीन व्यवस्था के आधार पर योरोप में शान्ति और समृद्धि के दिन फिर लौट सकेंगे।*

रूस में क्रान्ति की तैयारी—

प्रथम महायुद्ध के बाद के योरोप के इतिहास का हमें रूस से अध्ययन करना है क्योंकि, जैसा हम अभी कह चुके हैं, महायुद्ध का क्रांतिकारी प्रभाव सर्वप्रथम रूस पर ही पड़ा। रूस में कई वर्षों से वे सब कारण विद्यमान् थे जो क्रांति

* Jackson : The Between-War World, p. 27.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में सहायक होते है। क्रान्तिकारियों ने १९०५ में प्रथम प्रयास किया था, उन्हें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी परन्तु जैसा हम पहले देख चुके हैं, उनके पारस्परिक मतभेद के कारण, ज़ार निकोलस ने स्टॉलिपिन की सहायता से फिर प्रतिक्रियावादी शासन स्थापित कर लिया था और महायुद्ध के आरम्भ तक रूस में निर्जीव ड्यूमा के अतिरिक्त क्रांति का कोई चिह्न बाकी नहीं रहा था, किन्तु क्रांति की आग बुझी नहीं थी। महायुद्ध के छिड़ जाने पर राष्ट्र-भक्ति के जोश के सामने क्रांति का जोश दबता हुआ मालूम होता था और बड़े-बड़े क्रांतिकारी भी आशा करने लगे थे कि निरंकुश ऑस्ट्रिया तथा जर्मनी के विरुद्ध उदारवादी फ्रांस तथा इंगलैंड के साथ रूस के सम्मिलित होने से उसका भला ही होगा।* यदि निकोलस योग्य होता और शासन ईमानदार होता तो जनमत को राजभक्त बनाना ऐसी परिस्थिति में सरल था परन्तु इस समय भी रूस-जापान युद्ध के समय के इतिहास की पुनरावृत्ति हुई, अयोग्य एवं भ्रष्ट शासन जनता की राष्ट्रभक्ति के जोश से लाभ न उठा सका और जनता में असन्तोष बढ़ने लगा। रूसी सेनाओं ने युद्ध के आरम्भ में वीरता का प्रदर्शन किया था परन्तु १९१५ से ही उसे रसद की कमी होने लगी थी। शासन के भ्रष्ट अयोग्य अधिकारी युद्ध के लिए एकत्रित की जाने वाली धनराशि को नष्ट कर रहे थे। रूस में युद्ध-सामग्री बनाने के काफी कारखाने नहीं थे और शस्त्रास्त्र मित्रराष्ट्रों से प्राप्त करने पड़ रहे थे। सामग्री दूरस्थ बन्दरगाहों में पड़ी रहती थी, सरकार उसे मोर्चे पर समय पर नहीं भेज पा रही थी और उसके अभाव में सैनिक बेमौत मर रहे थे। युद्ध के आरम्भ से क्रांति तक रूस को जितनी क्षति उठानी पड़ी उतनी किसी भी अन्य राष्ट्र को नहीं पहुँची। सेना को रसद की कमी तो थी ही, शासन के उच्च स्तर पर देशद्रोह की अफ़वाहें भी उसमें फैलने लगीं। ज़ार पर उसकी पत्नी का बड़ा प्रभाव था। वह जर्मन थी और रूस की भक्त होते हुए भी उसे रूसियों की आकांक्षा से सहानुभूति नहीं थी। सेना की उचित व्यवस्था करने की जगह वह ज़ार पर उदारवादियों के दमन तथा प्रतिक्रियावादियों के संरक्षण के लिये दबाव डालती रहती थी। नौकरशाही के ऊँचे अधिकारी जर्मन थे और उन्हें युद्ध के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी। १९१६ के अत्यन्त संकटमय समय में भी प्रधान मन्त्री बोरिस स्टुर्मर (Boris Sturmer) सेना के कामों में इतनी अड़चनें डाल रहा था कि ड्यूमा में उदारवादियों ने उस पर देशद्रोह का अभियोग लगाया।† स्टुर्मर के उत्तराधिकारियों ने भी स्थिति को सम्हालने का कोई

* Slosson : Europe since 1870, p. 389.

† Slosson : Europe since 1870, p. 391.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रयत्न नहीं किया। घोर प्रतिक्रियावादी गृह-मंत्री प्रोटोपॉपॉव अपनी सारी शक्ति उदारवादियों के दमन में लगा रहा था। वह तो प्रांतीय स्वशासन-संस्थाओं (Zemstvos) को भी इसलिये सेना को रसद नहीं भेजने देता था कि उसे रूस में किसी प्रकार के भी ऐच्छिक सहयोग से क्रांति की सम्भावना बढ़ने का भय लगता था। शासन की अयोग्यता को देख कर ड्यूमा ने, यद्यपि उसमें कृषकों और श्रमिकों की अपेक्षा ज़मीदारों का प्रभाव बहुत अधिक था, वैधानिक शासन तथा उत्तरदायी मंत्रिमंडल की माँग की परंतु उसको भंग कर दिया गया और उसके बहुत से सदस्य कारागार में डाल दिये गये। रूस के सभी वर्गों के देशभक्त सुधार की माँग करने लगे परंतु ज़ार और उसका अयोग्य शासन ग़लतियों पर ग़लतियाँ करता चला गया। १९१६-१९१७ के शीतकाल में सारे देश में घोर असंतोष व्याप्त हो गया। उधर तो सेनाओं की निरंतर हार के अपमान से जनता क्षुब्ध थी, इधर अनाज, ईंधन, कपड़े आदि की कमी होने लगी और देश में दुर्भिक्ष की आशंका होने लगी। इस अवस्था के लिए जनता शासन की अव्यवस्था और कुप्रबंध को ही उत्तरदायी समझती थी। असंतोष बढ़ता गया, स्थान-स्थान पर कृषकों के दंगे और मज़दूरों की हड़तालें होने लगीं।*

मार्च की क्रान्ति—ज़ारशाही का अन्त—

इसी अवस्था में अप्रत्याशित रूप से अपने आप ही क्रांति हो गई। उसकी पहले से कोई तैयारी नहीं थी और क्रान्तिकारी दल भी उसके लिये तैयार नहीं थे। उसका तात्कालिक कारण अन्न की कमी के कारण जनता का असन्तोष था।† ७ मार्च १९१७ को भूखे मज़दूरों का एक जुलूस रोटी के नारे लगाता हुआ पेट्रोग्राड की सड़कों पर घूमने लगा और मज़दूरों ने भूख से व्याकुल होकर लूटमार शुरू कर दी सरकार ने सेना को उन पर गोली चलाने का आदेश दिया परन्तु उसे भूखे मज़दूरों से सहानुभूति थी और उसमें भी क्रान्ति की भावना प्रवेश कर गई थी। उसने गोली चलाने से साफ़ इन्कार कर दिया। ८ मार्च को पेट्रोग्राड के कपड़े के कारखानों की मज़दूर स्त्रियों ने रोटी की मांग के साथ हड़ताल कर दी। दूसरे दिन उनके साथ अन्य मज़दूर शामिल हो गये और रोटी के नारों के साथ उन्होंने 'युद्ध बन्द करो' और 'अत्याचारी शासन का नाश हो' आदि नारे भी लगाना शुरू किया।

---

*Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 361-362.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 343,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१० मार्च को आम हड़ताल हो गई और क्रान्तिकारी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होने लगीं। सिपाहियों ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया जिससे मज़दूरों की हिम्मत और भी बढ़ गई। ११ मार्च को ज़ार ने पेट्रोग्राड के हड़तालियों को काम पर वापस जाने का आदेश दिया और ड्यूमा को बरखास्त कर दिया। हड़तालियों ने काम पर जाने से इन्कार कर दिया और सेना ने भी उनके साथ मिल कर 'सैनिकों एवं मज़दूरों की क्रान्तिकारी सोवियत (समिति)' बना ली। ड्यूमा ने भी विसर्जित होने से इन्कार करके और पेट्रोग्राड सोवियत से समझौता करके १४ मार्च को उदारवादी नेता जॉर्ज ल्वाव (George Lvov) के नेतृत्व में एक अस्थायी सरकार बना ली। दूसरे दिन उसकी ओर से एक प्रतिनिधि मण्डल ने ज़ार से मिल कर सिंहासन-त्याग की मांग की। निर्बल ज़ार ने कोई विरोध नहीं किया और चुपचाप सिंहासन त्याग दिया।* इस प्रकार ज़ारशाही का अन्त हुआ और रूस में क्रान्ति हो गई। रूस की क्रान्ति में पेट्रोग्राड ने वही काम कर दिखाया जो फ्रेन्च क्रांति में पेरिस ने किया था और उसी प्रकार राजधानी की घटनाओं के परिणाम को देश ने भी स्वीकार कर लिया। यहाँ भी क्रांति मज़दूरों ने की और सफलता के बाद शक्ति मध्यम वर्ग के हाथों में सौंप दी। इसका कारण यह था कि वे शक्ति अपने पास बनाये रखने में अपने आपको असमर्थ समझते थे, जो सेनाएँ मोर्चे पर थीं उनका रुख अनिश्चित था और ड्यूमा द्वारा नियुक्त शासन से प्रति-क्रांति का भय नहीं मालूम होता था।†

अस्थायी उदारवादी सरकार—

अस्थायी सरकार ने तुरन्त ही भाषण, प्रेस, धर्म, सभा-सोसायटी आदि की स्वतंत्रता घोषित कर दी, राजनीतिक बंदियों को मुक्त कर दिया और राजनीतिक निर्वासितों को पुनः देश में आने की अनुमति मिल गई। साइबेरिया से कोई ८०,००० निर्वासित व्यक्ति लौट आये। मृत्यु की सज़ा बंद कर दी गई, स्वेच्छाचारपूर्ण गिरफ्तारियाँ अवैध घोषित कर दी गईं, यहूदियों के विरुद्ध जितने क़ानून थे वे रद्द कर दिये गये, ग्रीक चर्च के विशेषाधिकार छीन लिये गये, पोलेण्ड को स्वायत्त शासन का वचन दिया गया और फ़िनलैण्ड के वैध अधिकार लौटा दिये गये।‡ उसने नये विधान के निर्माण के लिये शीघ्र ही वयस्क (पुरुष)

---

*Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 362.

†Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 344.

‡Slosson : Europe since 1870, p. 294.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मताधिकार के आधार पर एक विधान-सभा के निर्वाचन की भी घोषणा की। इसके साथ ही उसने नये उत्साह से युद्ध की ओर भी ध्यान दिया।

नई सरकार में बड़े योग्य मंत्री थे। प्रधान-मंत्री ल्वॉव एक उदारवादी ज़मींदार था और जेम्स्त्वो-संघ का सभापति था। युद्ध-मंत्री गुचकॉव ऑक्टोब्रिस्ट दल का नेता था; कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेट दल का नेता मिल्यूकॉव विदेश-मंत्री था और न्याय-मंत्री के पद पर केरेन्स्की था जो मंत्रि-मंडल में एकमात्र समाजवादी था। किन्तु इस सरकार की स्थिति प्रारंभ से ही कठिन थी। उस पर आरंभ से ही एक असफल युद्ध के संचालन का भार आ पड़ा। वह नरम समाजवादियों की सहायता से ही शक्ति अपने हाथ में रख सकती थी। मजदूरों ने शासन तो अपने हाथों में नहीं लिया था परन्तु अपने सोवियतों द्वारा जिनकी स्थापना १९०५ से ही होने लगी थी और जिनमें सैनिकों के भी प्रतिनिधि थे वे शासन पर नियन्त्रण रखते थे * इस प्रकार आरंभ से ही स्थिति बड़ी कठिन थी। शासन तथा सोवियतों में आरंभ से ही मतभेद था। सरकार ऐसी व्यवस्था स्थापित करना चाहती थी जो स्थिर होने के साथ ही उदार हो, जिसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता के साथ ही वैयक्तिक सम्पत्ति की भी गारण्टी हो। परन्तु कृषक, मज़दूर तथा सैनिक चाहते थे कि बड़ी-बड़ी जायदादें ज़मीदारों को मुआवज़ा दिये बिना ही कृषकों में बाँट दी जाँय, सभी महत्त्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो और युद्ध तुरन्त बन्द करके एक आम सन्धि करली जाय। † उदारवादी दिशा में सरकार ने काफ़ी काम किया था परन्तु वास्तविक समस्याएं तो ये ही थीं। इन्हीं समस्याओं को हल न करने के कारण ज़ारशाही का अन्त हुआ था। नई सरकार भी इन्हें हल न कर सकी और उसकी भी वही गति हुई।

असन्तोष—

युद्ध-सामग्री के अभाव के कारण सेना की निरन्तर हार हो रही थी। वह युद्ध से ऊब गई थी और शान्ति चाहती थी। ज़ारशाही के पतन के बाद राष्ट्र का निरन्तर क्षीण होता हुआ उत्साह पुनः बढ़ा और सरकार ने नये

---

* रूस के गरीब लोगों तथा उनके उग्र नेताओं को 'पूंजीवादी' अस्थाई सरकार में विश्वास नहीं था और उन्होंने क़ानूनी संस्थाओं के साथ साथ गाँवों में किसानों की, नगरों में कारखाने वाले मजदूरों की तथा सेना में सैनिकों की क्रान्तिकारी कौंसिलें (सोवियतें) बनाकर अपनी एक अलग व्यवस्था करली थी। ये कौंसिलें क्रान्तिकारी आन्दोलन की केन्द्र थीं। ये इतनी शक्तिशाली थी कि इनकी स्वीकृति के बिना सरकार अपने किसी भी आदेश का पालन नहीं करवा सकती थी। इस प्रकार उन दिनों रूस में एक प्रकार से दोहरा शासन स्थापित हो गया था।

† Slosson : Europe since 1870, p. 393.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्साह से युद्ध का संचालन आरंभ किया। परन्तु शत्रुओं के प्रदेश अपने राज्य में शामिल करने की सरकार की नीति का तीव्र विरोध होने लगा और विदेश-मंत्री मिल्यूकॉव को जो कॉन्स्टेन्टीनोपल को रूस में शामिल करना चाहता था, त्यागपत्र देना पड़ा। अब नरम समाजवादी मंत्रि-मण्डल में शामिल हुए और संयुक्त मंत्रि-मण्डल बना (मई १९१७) जिसमें केरेन्स्की युद्ध-मंत्री बना। उसने सैनिकों में उत्साह फूंकने का प्रयत्न किया और जुलाई में सेना ने आक्रमण भी किया परन्तु वह पूर्णतया असफल रहा। इस समय तक केरेन्स्की प्रधान-मंत्री बन गया था। इस पराजय से उसकी स्थिति बड़ी निर्बल हो गई और क्रान्ति के दूसरे क़दम की तैयारी होने लगी। युद्ध का विरोध बढ़ने लगा और बॉल्शेविकों ने युद्ध-विरोधी प्रचार द्वारा केरेन्स्की सरकार को बदनाम करने में कुछ नहीं उठा रखा।

बॉल्शेविकों के प्रयत्न—

बॉल्शेविकों ने कृषकों के असन्तोष से भी लाभ उठाया। कृषक भूमि चाहते थे परन्तु नई सरकार उनकी माँग को पूरी करने के लिये कुछ नहीं कर रही थी। सरकार की ओर से असतुष्ट होकर उन्होंने ज़मीदारों की जायदादें छीनना, ज़मीदारों और उनके आढ़तियों को मारना और उनके घर जलाना आरंभ कर दिया इससे सारे देश में अराजकता फैल गई और सरकार में विश्वास उठ गया। इस अवस्था में मीरों ग्राम पंचायतों ने ज़ोर पकड़ा और गाँवों में सरकार का काम अपने हाथों में ले लिया। इन संस्थाओं में बॉल्शेविक लोग भारी संख्या में शामिल होने लगे और कृषकों को भूमि देने का वचन देकर उनमें क्रांति का आंदोलन करने लगे। *

उधर कारखानों के मज़दूरों में पहले से ही क्रांतिकारी भावना व्याप्त हो रही थी जिसकी प्रथम अभिव्यक्ति १९०५ की आम हड़ताल में हुई थी। कारखानों में मज़दूरों की सोवियतों का संगठन बड़ी तेजी से हो रहा था। इस प्रकार एक सामाजिक क्रांति के लिये जिन विस्फोटक तत्वों की आवश्यकता होती है वे सब इस समय रूस में विद्यमान् थे—युद्ध से ऊबे हुए सैनिक, असतुष्ट कृषक वर्ग और मज़दूर वर्ग जो समझता था कि क्रांति से वह दासता से मुक्त ही होगा, उसकी हानि कुछ नहीं होनी है। इन सब असंतुष्ट तत्वों को एकत्रित करके मजदूरों के एक गणतंत्र की स्थापना के लिये एक महान् शस्त्र के रूप में उनको संगठित करने का काम बॉल्शेविकों का था।

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 348.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बॉल्शेविक दल—

रूस के राजनीतिक दलों की चर्चा हम पीछे कर आये हैं। उनमें से ऑक्टोब्रिस्ट तथा कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेट आदि दल ऐसे थे जो मार्च की क्रांति से सन्तुष्ट थे और उसे अन्तिम व्यवस्था की तरह मानते थे। परन्तु उनके विपरीत कई प्रकार के समाजवादी लोग थे जो उस क्रांति को प्रथम कदम समझकर और आगे बढ़ना चाहते थे। इन समाजवादी दलों में दो मुख्य और उग्र विचार के थे—सामाजिक क्रान्तिवादी (Social Revolutionaries) जिनका प्रभाव कृषिक वर्ग में अधिक था और सामाजिक प्रजातन्त्रवादी (Sociol Democrats) जो नगरों के कारखाने वाले मजदूरों में अधिक प्रभावशाली थे। सामाजिक प्रजातन्त्रवादी दल में भी १९०३ से मतभेद चला आ रहा था जिसके परिणाम-स्वरूप यह दल दो पृथक् उप-दलों में विभक्त हो गया था। एक दल मेन्शेविको (Menshevik—अल्पमत का था जो मॉर्क्स के साम्यवादी सिद्धान्तों में विश्वास रखते हुए भी उन सिद्धांतों को क्रियान्वित करने के के लिए क्रान्तिकारी उपायों को अनिवार्य नहीं समझते थे और मजदूरों में शिक्षा प्रचार तथा धीरे-धीरे सुधार द्वारा साम्यवाद की स्थापना की सम्भावना में विश्वास करते थे। दूसरा दल बॉल्शेविकों (Bolshevik—बहुमत) का था जिनका विश्वास था कि साम्यवाद की स्थापना क्रान्तिकारी उपायों द्वारा ही हो सकती है। दल के स्वरूप के विषय में भी दोनों में मतभेद था। बॉल्शेविक लोगों की राय थी कि दल छोटा होना चाहिए जिसमें केवल वे ही लोग हों जो अपना पूरा समय दलीय काम के लिए दे सकें और जिन्हें हिंसात्मक क्रांति में विश्वास हो। मेन्शेविक लोग चाहते थे कि दल बड़ा हो जिनमें क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त क्रांति से सहानुभूति रखने वाले भी शामिल हों।* १९१२ तक ये दोनों दल सोश्यल डेमोक्रेटिक दल के सम्मेलनों में शामिल होते रहे परन्तु उस वर्ष यह स्पष्ट हो गया कि वे दोनों साथ-साथ कार्य नहीं कर सकते। अतः दोनों बिलकुल अलग हो गये।

लेनिन और ट्राटस्की—

बॉल्शेविक दल का नेता था ब्लाडिमर युलिएनॉव (Vladimir Ulianov) जो निकोलाई लेनिन (Nikolai Lenin) के नाम से प्रसिद्ध था। वह एक छोटे से कुलीन वंश का था। उसका जन्म १८७० में हुआ था। १७ वर्ष की अवस्था में उसने कज़ान विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। उसके विचार पहले

---

* Jackson : The Between-War World, p. 150.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से ही क्रान्तिकारी थे। कज़ान में अनुकूल वातावरण मिलने से वह पक्का साम्यवादी हो गया। १८९३ में वह सेंट पीटर्सबर्ग पहुँचा। अपनी प्रतिभा से वह शीघ्र ही साम्यवादियों का प्रधान नेता बन गया और भावी क्रांति के लिए मजदूरों का संगठन करने लगा। १८९५ में वह गिरफ़्तार कर लिया गया और कुछ समय तक सेंट पीटर्सबर्ग की जेल में रहने के बाद साइबेरिया को निर्वासित कर दिया गया। १९०० में साइबेरिया से मुक्त हो कर वह रूस लौट आया परन्तु प्रचार कार्य एवं संगठन के लिए एक समाचार पत्र की आवश्यकता और रूस में पत्र प्रकाशित करने की कठिनाइयों का अनुभव करके वह स्विट्ज़रलैंड चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने जनीवा से इस्क्रा नामक एक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया जिसकी प्रतियाँ गुप्त रूप से रूस में पहुंचने लगी। मार्च १९१७ को क्रांति के समय वह स्विट्ज़रलैंड में ही था। क्रांति का समाचार सुन कर वह जर्मनी की सहायता से रूस पहुंच गया। उसकी अनुपस्थिति में बॉल्शेविक दल के विचार उग्र नहीं रहे थे। वे पूँजीवाद के विनाश की जगह स्वेच्छाचारी शासन तथा सामन्तवाद के विनाश को ही अपना लक्ष्य मान रहे थे। लेनिन के आ जाने पर परिस्थिति एक दम बदल गई। इसी समय बॉल्शेविक दल का एक दूसरा यहूदी नेता लियों ट्रॉटस्की (Leon Trotsky) भी जो अमेरिका में प्रवास कर रहा था रूस को वापस लौट आया। इन दोनों के आ जाने से बॉल्शेविक दल में नई जान आ गई। उन्होंने मज़दूरों, कृषकों और सैनिकों की सोवियतों में घुसकर प्रचार और संगठन का कार्य शुरू किया।

लेनिन के विचार—

लेनिन के विचार बड़े स्पष्ट तथा अडिग थे और सर्व साधारण को वह उन्हें बड़ी अच्छी प्रकार समझाता था। वह बड़ा प्रभावशाली और दृढ़निश्चय था। उसने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि हमें पार्लामेण्टरी गणतंत्र की आवश्यकता नहीं, हम मध्यमवर्गीय प्रजातंत्र नहीं चाहते और मजदूरों, सिपाहियों तथा किसानों के प्रतिनिधियों की सोवियत को छोड़, हमें किसी अन्य प्रकार की सरकार की आवश्यकता नहीं है।' क्रांति के पहले दौर में शक्ति मध्यम वर्ग के हाथों में पहुँच चुकी थी। अब शक्ति को मज़दूरों तथा गरीब कृषकों के हाथों में तुरन्त ही पहुँचाने की तैयारी करना आवश्यक है। 'मध्यम-वर्गीय प्रजातन्त्रीय' क्रान्ति को 'समाजवादी क्रांति में परिणत करना है जिसमें भूमिपति तथा पूँजीपति दोनों ही सम्पत्तिहीन कर दिये जाँयगे।* लेनिन के विचार उस समय प्रत्येक व्यक्ति को बड़े उग्र एवं असंभव मालूम होते थे और उसके दल के अन्य नेताओं पर

*Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 350.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनके विचार में सामन्तवादी समाज से एक दम साम्यवादी समाज का निर्माण असंभव था। वे मार्क्स के सिद्धान्त के अनुसार सामन्तवाद तथा साम्यवाद के बीच में पूंजीवाद और प्रजातन्त्र की मंज़िलों को आवश्यक समझते थे और रूस की तत्कालीन परिस्थति उन्हें क्रान्ति के लिए सर्वथा अनुपयुक्त दिखाई देती थी। परन्तु लेनिन समझता था कि रूस में क्रान्ति का समय आ चुका था। वह स्पष्ट देख रहा था कि रूस में कृषकों के सहयोग के बिना क्रान्ति नहीं हो सकेगी। अतः उसने उन्हें तुरन्त ही भूमि देने का वचन देकर अपनी ओर मिला लिया और कारखानों के मजदूरों तथा कृषकों को मिलाकर मध्यमवर्गीय सरकार के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा कायम किया और तुरन्त ही युद्ध बन्द करने की घोषणा करके सैनिकों का सहयोग भी प्राप्त कर लिया। बॉल्शेविक दल के सदस्यों की संख्या अधिक नहीं थी, उसके पास धन भी कम था और पढ़े लिखे बुद्धिजीवी लोग भी उससे दूर ही रहते थे परन्तु उसके 'शान्ति, भूमि और रोटी' के नारों और अत्यन्त उत्साहपूर्ण प्रचार कार्य ने इन कमियों की पूर्ति कर दी। उसके प्रचारक और दूत निरन्तर और बड़े उत्साह से जनता में, कारखानों में, खेतों में, दफ्तरों में, सेना में सब जगह घुसकर प्रचार कर रहे थे।

बॉल्शेविक क्रान्ति का प्रथम प्रयत्न—

बॉल्शेविक दल तो इस प्रकार आगे बढ़ रहा था, उधर सरकार कुछ नहीं कर पा रही थी और उसकी स्थिति उत्तरोत्तर कमजोर होती जा रही थी। इन्ही दिनों देश में भोजन, औद्योगिक उत्पादन तथा यातायात सम्बन्धी कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं और सरकार अत्यधिक अप्रिय होती जा रही थी। इस परिस्थिति में बॉल्शेविक दल ने शासन अपने हाथ में लेने का अच्छा अवसर देखकर जुलाई १९१७ में सशस्त्र प्रदर्शन किया परन्तु सरकार ने उसे बड़ी सरलता से दबा दिया।‡ इस प्रकार बॉल्शेविकों को आसानी से दबा सकने के कारण सरकार उनके खतरे को तुच्छ समझने लगी और उनके विरुद्ध दमन-नीति का प्रयोग करने लगी। बॉल्शेविक आन्दोलन गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया और उसके कई नेता गिरफ्तार कर लिये जिनमें ट्रॉट्स्की भी था। लेनिन भेष बदल कर भाग गया और फिनलैण्ड पहुँच गया।

प्रति-क्रांति का प्रयास—

बॉल्शेविकों का भय दूर हो जाने से सेना के कुछ अफ़सरों को प्रति-

---

‡ लेनिन इस प्रयत्न के विरुद्ध था। उसके तीव्र विरोध करने पर भी बॉल्शेविकों ने यह प्रयत्न किया था। Langsam : The World since 1914, p. 547.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्रान्ति करके सत्ता अपने हाथ में लेने का मौका मिला और प्रधान सेनापति जनरल कॉर्निलॉव ने सितम्बर के आरम्भ में शासन पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। यह प्रयत्न तो विफल हुआ परन्तु इसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे चिन्ता होने लगी कि प्रतिक्रियावादी लोग बलपूर्वक क्रान्ति का अन्त करना और फिर से स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना करना चाहते है। उसे केरेन्स्की की सरकार पर भी शंका होगई और वह बाल्शेविकों की ओर झुकने लगी। सरकार ने भी इस प्रतिक्रियावादी प्रयत्न से भयभीत होकर साम्यवादी नेताओं का समर्थन प्राप्त करने के लिये ट्रॉट्स्की को मुक्त कर दिया। जुलाई के दमन के बाद भी बाल्शेविकों का प्रचार रुका नहीं था। ट्रॉट्स्की ने मुक्त होकर खुल्लमखुल्ला क्रान्ति का प्रचार करना और कृषकों, मजदूरों तथा सैनिकों की सोवियतों पर अधिकार करने का प्रयत्न शुरू किया। मॉस्को तथा पेट्रोग्राड की सोवियतों में उन्हें बहुमत प्राप्त हो गया। लेनिन भी रूस वापस पहुँच गया था। सरकार धीरे-धीरे जनता का समर्थन खोती जा रही थी। यह स्थिति देखकर लेनिन ने समझ लिया कि बॉल्शेविकों का समय आ गया है और वह तुरंत शासन-सत्ता छीनने का आग्रह करने लगा। उसके कई साथियों को भय था कि दूसरा प्रयत्न भी कहीं पहले प्रयत्न की तरह विफल न हो जाय। उनका विचार था कि केवल पेट्रोग्राड तथा मॉस्को में बाल्शेविक दल सत्ता छीन सकता है परन्तु उसे देश भर में जनता का सहयोग प्राप्त नहीं हो सकेगा। लेनिन का विश्वास था कि कृषकों को भूमि देते ही वे उनका समर्थन करने लगेंगे। अन्त में लेनिन की विजय हुई और द्वितीय क्रान्ति की तैयारी होने लगी।

बॉल्शेविक क्रान्ति—

बॉल्शेविकों की कोई विशेष डरावनी तैयारी नहीं थी। उनके पास कोई २५,००० सशस्त्र स्वयंसेवक थे जो सुशिक्षित सेना के सामने ठहर नहीं सकते थे परन्तु उन्होंने पेट्रोग्राड में स्थित सेना को, जिसे मोर्चे पर भेजे जाने का डर लग रहा था, अपनी ओर मिला लिया था। इस प्रकार सरकार बिलकुल अरक्षित दशा में थी और उसने विरोध का कोई प्रयत्न नहीं किया। ७ नवम्बर १९१७ को सूर्योदय से बहुत पहले दो बजे बॉल्शेविकों के स्वयंसेवकों की छोटी-छोटी टुकड़ियों ने पेट्रोग्राड में फैलकर रेलवे स्टेशन, सरकारी बैंक, टेलिफ़ोन एक्सचेञ्ज, पोस्ट ऑफिस तथा अन्य सरकारी भवनों पर चुपचाप अधिकार कर लिया और अस्थायी सरकार के भवन को भी घेर लिया। केरेन्स्की भाग गया और सरकार के अन्य सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। सत्ता बोल्शेविकों के हाथों में पहुँच गई और दूसरी क्रांति हो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गई जिसमें रक्त का एक बूँद भी नहीं बहा। केरेन्स्की सरकार के पतन का कारण उसके शत्रुओं का बल नहीं, स्वयं उसकी असहाय अवस्था थी।*

लेनिन के उद्देश्य—

सत्ता हस्तगत करने के उपरान्त लेनिन ने अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए अपने सामने चार उद्देश्य रखे। (१) जर्मनी से संधि करके युद्ध बंद करना, (२) अपने सिद्धांतों के अनुकूल व्यापक आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन करना, (३) ऐसी व्यवस्था करना जिससे समस्त सत्ता बॉल्शेविक दल के हाथों में रहे और (४) रूस में बाहरी सत्ताओं के हस्तक्षेप को रोकना।

प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रांति के दूसरे दिन ही उसने समस्त युद्धरत राष्ट्रों तथा उनके शासकों से युद्ध कम से कम तीन महीने के लिये बंद करके तथा शत्रुओं के प्रदेश को छीनने और युद्ध का हर्जाना वसूल करने का विचार त्याग कर एक न्यायपूर्ण तथा प्रजातान्त्रिक संधि के लिए तुरंत बातचीत आरंभ करने का अनुरोध किया। मित्रराष्ट्रों ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया परंतु जर्मनी ने उसे स्वीकार कर लिया। परंतु जर्मनी की स्वीकृति आंशिक थी। रूस उससे ब्रेस्टलिटोव्स्क की संधि करके युद्ध से अलग तो हो गया परंतु उसे अपने बहुत से प्रदेशों से हाथ धोना पड़ा। सैनिक युद्ध से ऊब चुके थे। युद्ध बंद हो जाने से वे प्रसन्न हो गये और लेनिन के समर्थक बन गये।

द्वितीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी उसने एक आदेश के द्वारा ज़मींदारों की समस्त भूमि बिना मुआविज़ा दिये छीन ली और उसे राष्ट्र की सम्पत्ति घोषित करके किसानों को दे दी। इस आदेश से कृषक वर्ग प्रसन्न होकर बॉल्शेविकों की ओर हो गया और प्रतिक्रांति का डर न रहा।

उसने एक दूसरे आदेश द्वारा समस्त निजी कारखानों को ज़ब्त करके सरकारी घोषित कर दिया और उत्पादन तथा क्रय-विक्रय की व्यवस्था मज़दूरों की कमिटियों के हाथों में सौंप दी। इस प्रकार मज़दूर वर्ग भी संतुष्ट हो गया। इसके साथ ही उसने रूस के आधीनस्थ राष्ट्रों (पोल, फ़िन आदि) को राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के अधिकार का वचन देते हुए 'राष्ट्रों के अधिकारों की घोषणा' जारी करके उन्हें भी अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया।†

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 354.

† Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol, II. p. 671.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसके साथ ही उसने ऑर्थोडॉक्स चर्च, जो कि प्रतिक्रिया का गढ़ था, बंद करके उसकी समस्त सम्पत्ति छीन ली। पुरानी सरकार के समस्त कर्मचारी निकाल दिये गये और उस समय के जितने सार्वजनिक ऋण थे उन सब को अस्वीकार कर दिया गया। आगे चल कर सभी लोगों के लिए काम करना भी अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार उसने रूस की पुरातन काल से बनी हुई समस्त सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं को निर्मूल करके बिलकुल नई व्यवस्था कर दी।

सोवियत विधान—सर्वहारावर्ग का अधिनायकतन्त्र—

क्रांति के दूसरे दिन ही सोवियतों की अखिल-रूसी काँग्रेस ने केरेन्स्की की सरकार को पदच्युत करने तथा सोवियत सरकार के निर्माण की घोषणा करके लेनिन नेतृत्व में मंत्रिमंडल (Council of Peoples' Commissars) की स्थापना कर दी थी परंतु अभी विधान बनना बाक़ी था। केरेन्स्की की सरकार ने नवीन विधान के निर्माण के निमित्त नवम्बर में एक विधान सभा के निर्वाचन की व्यवस्था की थी। अपने प्रति किसी को शंका न हो इस दृष्टि से लेनिन ने निर्वाचन में कोई बाधा नहीं डाली। निर्वाचन वयस्क मताधिकार तथा प्रत्यक्ष एवं गुप्त मतदान की प्रणाली के अनुकूल हुआ और उसमें सामाजिक क्रांतिकारियों के 'बॉल्शेविकों' से दुगने स्थान प्राप्त हुए।* जब विधान-सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ (जनवरी १९१८) तो बॉल्शेविक सैनिकों ने उसको भंग कर दिया।‡ इसके उपरांत बॉल्शेविक दल की सेन्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव कमिटी ने एक कमिशन नियुक्त किया जिसने सोवियत आधार पर नवीन विधान का निर्माण किया (जुलाई १९१८) जिसके अनुसार रूसी सोश्यलिस्ट फ़ेडरेटेड सोवित रिपब्लिक की घोषणा की गई। इस विधान का मूल सिद्धांत यह था कि 'समस्त सत्ता पर गाँवों तथा नगरों की सोवियतों में सम्मिलित श्रमिकों का अधिकार है।'

इसके अनुसार प्रत्येक गाँव में किसानों की तथा प्रत्येक नगर में औद्योगिक मज़दूरों की सोविआतें (कौंसिलें) स्थापित हो गईं। औद्योगिक मज़दूर व्यवसाय के आधार पर अपने प्रतिनिधि चुनते थे, प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों से नहीं। खान खोदने वाले, लोहे का काम करने वाले, सैनिक, आदि सब अलग-अलग अपने प्रतिनिधि चुनते थे। इन स्थानीय सोवियतों के ऊपर

* Langsam : The World since 1914, p. 548.

‡ Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe. Vol. II, p. 671.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़िला सोवियत, फिर काउण्टी-सोवियत, प्रादेशिक सोवियत और प्रान्तीय काँग्रेस होती थी जिनमें नीचे की सोवियतों के प्रतिनिधि होते थे। सबसे ऊपर सोवियतों की अखिल-रूसी काँग्रेस थी जिसके हाथ में राज्य की सर्वोच्च सत्ता थी।

इस काँग्रेस में एक हज़ार से ऊपर सदस्य थे जिसमें काम ठीक तरह से नहीं हो सकता था। अतः यह एक सेन्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव कमिटी का निर्वाचन करती थी जो 'गणतंत्र की सर्वोच्च विधायक, प्रशासक तथा नियंत्रक संस्था थी'। यह कमिटी मंत्रिमंडल (Council of Commissars) नियुक्त करती थी जिसके हाथ में रूस का वास्तविक शासन था, हॉलांकि उसके कामों पर सेण्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव कमिटी की स्वीकृति आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त ४० सदस्यों की एक सभा 'प्रेसिडियम' (Presidium) थी जो सेण्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव कमिटी के अवकाश के दिनों में मंत्रिमंडल पर नियंत्रण रखती थी।

लेनिन का अधिनायकतन्त्र—

विधान की दृष्टि से सर्वोच्च संस्था तो काँग्रेस थी परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, कानून बनाने तथा मंत्रिमंडल की नियुक्ति का काम सेण्ट्रल एक्ज़ीक्यूटिव कमिटी के हाथों में था जिसमें लेनिन का प्राधान्य था। सर्वहारावर्ग की सोवियतों के आधार पर विधान का निर्माण करके उसे 'सर्वहारावर्ग के अधिनायकतंत्र' का रूप दिया गया था, परन्तु इस प्रकार वह वास्तव में एक व्यक्ति—लेनिन—का अधिनायकतत्र बन गया।

मताधिकार १८ वर्ष की या उससे अधिक अवस्था वाले उन समस्त स्त्री-पुरुष नागरिकों को प्राप्त हो गया जो उत्पादक श्रम के द्वारा जीविका कमाते हों। वे लोग जो मुनाफे के लिये मजदूरी पर काम कराते थे, जिनके पास श्रम के अतिरिक्त आय के अन्य साधन थे, निजी व्यापार करने वाले, पादरी लोग, ज़ार के परिवार वाले और पुरानी सरकार के लोग मताधिकार से वंचित कर दिये गये। इस प्रकार राजनीतिक सत्ता केवल सर्वहारा वर्ग के हाथों में ही रह गई और वह भी अधिकतर कारखाने वाले मजदूरों के, क्योंकि मतदान प्रणाली भी इस प्रकार की रखी गई थी जो किसानों की अपेक्षा कारखानों के मजदूरों के अधिक अनुकूल थी जिन पर बॉल्शेविकों का प्रभाव था और अखिल-रूसी काँग्रेस का संगठन भी ऐसा रखा गया था कि उसमें गाँवों के प्रतिनिधियों की अपेक्षा शहरों के प्रतिनिधियों का प्राधान्य रहे।† इस प्रकार विधान द्वारा राज्य की समस्त सत्ता बॉल्शेविक दल के हाथों में केन्द्रित हो गई।

† Hazen : Modern European History, pp. 796-797.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गृह-कलह और विदेशियों का आक्रमण—

इस प्रकार लेनिन ने प्रथम तीन उद्देश्यों की पूर्ति की परन्तु चतुर्थ उद्देश्य की पूर्ति उतनी सरल नहीं थी। अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भी उसने जो कुछ किया था उसे देश की समस्त जनता ने स्वीकार नहीं किया था। जिन लोगों की सम्पत्ति और सत्ता छिन गई थी वे क्रान्ति को चुपचाप सहने वाले नहीं थे। प्रजातन्त्रवादी लोग भी बॉल्शेविकों के विरोधी थे। साम्यवादी होते हुए भी मेन्शेविक लोग तक इस क्रान्ति के विरोधी थे। इस प्रकार देश के अन्दर बॉल्शेविकों के अनेक प्रकार के विरोधी थे जो क्रांति का नाश चाहते थे। इन विभिन्न प्रकार के क्रांतिविरोधियों—कुलीनों, पादरियों, प्रजातंत्रवादियों, ज़ार के समय के अफ़सरों, मेन्शेविकों आदि के विरुद्ध तीन वर्ष तक (१९१७-१९२०) बॉल्शेविकों को भीषण संघर्ष करना पड़ा। इसके साथ ही उनका संकट इस कारण और भी बढ़ गया कि मित्र राष्ट्र भी उन्हें सहायता दे रहे थे। मित्र-राष्ट्र अनेक कारणों से नाराज़ थे। रूस ने युद्ध से अलग होकर जर्मनी से संधि कर ली थी जिसके परिणाम-स्वरूप वह पूर्व की ओर से निश्चिंत होकर अपनी सारी शक्ति को पश्चिमी और दक्षिण मोर्चों पर लगा रहा था। लेनिन ने ज़ार के समस्त राष्ट्रों से लिये हुए ऋणों को अस्वीकार कर दिया था और वह विश्व-क्रांति की बात भी कर रहा था। उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त मित्र-राष्ट्र इस कारण भी क्रांतिविरोधियों का समर्थन कर रहे थे कि वे बॉल्शेविकों का दमन करके जर्मनी के विरुद्ध फिर से पूर्वी मोर्चा खोलना चाहते थे। उन्होंने रूस की सोवियत सरकार को मानने से इन्कार करके ब्रेस्ट-लिटोयव्स्क की संधि को अस्वीकार कर दिया, रूस के आस-पास आर्थिक घेरा डाल दिया और सेना, धन तथा युद्ध-सामग्री से क्रान्तिविरोधियों की सहायता करना आरम्भ कर दिया।† मित्र राष्ट्रों की सहायता से क्रान्तिविरोधियों ने कई जगह—साइबेरिया में एडमिरल कोल्चक के नेतृत्व में, दक्षिणी रूस में जनरल डेनिकिन के नेतृत्व में, यूक्रेन में जनरल रेङ्गल (Wrangle) के आधिपत्य में तथा बाल्टिक सागर के क्षेत्र में यूडेनिख (Yudenich) के नेतृत्व में—बॉल्शेविक अथवा रक्त (Red) सरकार के विरुद्ध 'श्वेत' (White) सरकारें स्थापित करलीं। इसी प्रकार की सरकारें फ़िनलैण्ड तथा पश्चिमी सीमा पर भी स्थापित कर ली गईं। मित्र-राष्ट्रों ने भी रूस पर आक्रमण कर दिया। फ़्रान्स ने ओडेसा ले लिया, इङ्गलैण्ड ने बाकू छीन लिया, जापान ने पूर्वी साइबेरिया पर अधिकार कर लिया, अमेरिका ने भी आर्केञ्जिल तथा व्लाडीवॉस्टॉक लेने में सहायता दी,

† Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 672.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूमानिया ने बेसरेबिया पर अधिकार कर लिया और एस्टोनिया, लेटविया, लिथुएनिया, फ़िनलैण्ड तथा काकेशस के पार के प्रान्तों ने स्वतन्त्रता की घोषणा करदी ।* इस प्रकार बॉल्शेविकों को एक साथ ही भयंकर गृह-कलह तथा विदेशी युद्ध का सामना करना पड़ा । विदेशियों का आक्रमण तो अधिक भीषण नहीं था क्योंकि वर्षों से लड़ते-लड़ते वे इतने बेदम हो गये थे कि उनमें रूस के विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति लगाने की सामर्थ नहीं थी ।† परन्तु गृह-कलह बड़ा भंयकर था जो तीन वर्ष तक चलता रहा । दोनों ओर से बड़े वीभत्स अत्याचार होते रहे और बेचारी जनता बॉल्शेविकों के 'लाल' आतंक और उनके विरोधियों के 'श्वेत' आतंक से त्रस्त होती रही । बॉल्शेविकों ने जुलाई १६१८ में ज़ार निकोलस तथा उसके परिवार की हत्या कर दी और अपने समस्त विरोधियों को बड़ी निर्दयतापूर्वक नष्ट कर दिया ।$ उन्होंने एक क्रान्तिकारी न्यायालय (Cheka) की स्थापना की जिसने हजारों क्रान्तिविरोधियों को कड़ी से कड़ी सज़ाएँ दीं । क्रान्तिविरोधियों की सेनाओं में रूसियों के अतिरिक्त हज़ारों की संख्या में अंग्रेज, फ्रेंच, इटालियन, सर्वियन, चेक, पोल, अमेरिकन, जापानी आदि सैनिक थे । शत्रुओं के आक्रमण की भंयकरता को देख कर ट्रॉटस्की ने एक बड़ी शक्तिशाली 'लाल' सेना का संगठन किया जिसके जोश और जिसकी वीरता के सामने क्रान्तिविरोधी न ठहर सके और अन्त में बॉल्शेविकों की विजय हुई ।

तीन वर्ष की भंयकर मारकाट के बाद रूस को शांति मिली, परंतु उससे कष्टों का अन्त नहीं हुआ । मित्र राष्ट्रों ने उसका आर्थिक बहिष्कार करके उसका व्यापार बन्द कर दिया था और बाहर से उसे सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ मिलना बन्द हो गया था उद्योग धन्धे नष्ट हो गये थे और इसके साथ ही १६२१-२२ में भंयकर अकाल पड़ा जिसमें कोई ५० लाख आदमी मर गये ।‡ इस प्रकार बॉल्शेविक क्रांति ने लाखों प्राणियों की बलि ली और जो क्रांति

---

* Langsam : The World since 1914, pp. 551-552.

† Schevill : A History of Europe, p. 761.

$सिंहासन-त्याग के बाद से ही द्वितीय निकोलस, उसकी पत्नी, उसका पुत्र और उसकी चार पुत्रियाँ कैद थीं । कुछ समय बाद वे लोग साइबेरिया में कैद रखे गये और १६१८ के आरम्भ में यूराल पर्वत में स्थित इकेटरिनबर्ग नामक स्थान को भेज दिये गये । १६ जुलाई १६१८ को वहाँ के स्थानीय अधिकारियों ने इस विश्वास में कि कोल्चक उधर ही बढ़ रहा था, उन सब को गोली से उड़ा दिया । Hazen : Modern European History, p. 739.

‡ Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p.385.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आरम्भ में नितान्त रक्तहीन थी वह अन्त में संसार के इतिहास की अत्यन्त भंयकर खूनी क्रान्ति प्रमाणित हुई। ट्राट्स्की ने पेट्रोग्राड सोवियत के समक्ष अपनी सफलता की रिपोर्ट पेश करते हुए कहा है कि 'लोग कहते थे कि विद्रोह क्रान्ति को रक्त के समुद्र में डुबो देगा परंतु क्रान्ति हो गई और एक भी मृत्यु नहीं हुई। विश्व के इतिहास में ऐसी क्रान्ति का एक भी उदाहरण नहीं मिलता जिसका इतनी विशाल जनसंख्या से सम्बन्ध हो और जो इतनी रक्तहीन हो।' परन्तु बाद में उसी को कहना पड़ा कि रूस को क्रान्ति की बड़ी मंहगी कीमत चुकानी पड़ी। 'लाखों आदमी मारे गये, दक्षिणी तथा पूर्वी रूस नष्ट हो गये, देश के उद्योग धन्धों का सर्वनाश हो गया और जनता को 'लाल आतंक' का त्रास सहना पड़ा।*

पोलेण्ड का आक्रमण—

रूस की आन्तरिक कठिनाइयों को देखकर पोलेण्ड ने रूस पर आक्रमण कर दिया था (१९१९)। गृह-कलह को समाप्त करके लाल सेना पोलेण्ड पर टूट पड़ी और वारसा के द्वार तक बढ़ती चली गई। बॉल्शेविकों की इस प्रगति को देख कर पश्चिमी योरोपीय राष्ट्र चिन्तित हो उठे। उन्हें यह भय उत्पन्न हो गया कि कहीं बॉल्शेविक सेना जर्मनी में घुस कर वहाँ उनके द्वार पर ही साम्यवाद की प्रतिष्ठा न कर दे। इस आशंका से भयभीत होकर फ्रान्स और इगलैंड ने पोलेण्ड को सहायता दी और उसकी सहायता से पोलिश सेनाओं ने लाल सेना की प्रगति को रोक कर उसे विस्चुला नदी के किनारे परास्त कर पीछे खदेड़ दिया।† अन्त में रिगा की सन्धि (१९२०) के द्वारा रूस को पुराने पोलेण्ड का वह भाग भी जो उसके पास अभी बना हुआ था, उसे वापस करना पड़ा और पोलेण्ड की सीमा वार्साई की सन्धि द्वारा निर्धारित पूर्वी सीमा से बहुत आगे बढ़ गई।$ बॉल्शेविक लोग राष्ट्रों के स्वभाग्यनिर्णय का सिद्धान्त मानते थे, अतः उन्होंने बाल्टिक प्रदेश के समस्त राष्ट्रों के इस अधिकार को

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20 Centuries, p. 354.

† Schuman : International Politics, p. 868.

$विस्चुला की लड़ाई को कुछ लोग मार्न की लड़ाई के समान ही इतिहास की निर्णायक लड़ाइयों में गणना करते हैं। जिस प्रकार मार्न की लड़ाई ने पश्चिमी योरोप को जर्मन सैनिकवाद के भय से मुक्त कर दिया उसी प्रकार विस्चुला की लड़ाई ने मध्य-योरोप की रूसी साम्यवाद से रक्षा कर दी। Somervell : Between the Wars, p. 75.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वीकार करके फ़िनलैण्ड, लिथुएनिया, एस्टोनिया तथा लेटविया की स्वतन्त्रता भी स्वीकार कर ली और उनसे मैत्री-सन्धि कर ली (१९२१-२२)।*

बॉल्शेविक विजय के कारण—

बॉल्शेविक की विजय के अनेक कारण थे। उन्हें रूस की विशाल कृषक जनता तथा कारखानों के मज़दूरों का पूर्ण समर्थन प्राप्त था क्योंकि उन्हें भय था कि यदि बॉल्शेविक लोग हार गये तो ज़मींदार लोग उनसे फिर भूमि छीन लेंगे और पूँजीपति लोग फिर कारखानों पर अधिकार कर लेंगे। उनकी विजय का दूसरा कारण रूस का विस्तार था। एक छोटे से देश में शत्रु उन्हें सरलता से घेर कर नष्ट कर सकते थे परन्तु रूस जैसे विशाल, विस्तृत देश में यह सम्भव नहीं था। युद्ध लम्बा खिंच गया और ट्रॉट्स्की ने उससे लाभ उठाकर अपनी विशाल लाल सेना का संगठन कर लिया जिसके सैनिकों में क्रान्ति का जोश कूट-कूट कर भरा हुआ था और जिसकी जोशीली चोटों के सामने 'श्वेत' सेनाएँ न टिक सकीं। उधर मित्र-राष्ट्र युद्ध से थके हुए थे। उनमें मतभेद होने के कारण पारस्परिक सहयोग का भी अभाव था, अतः उनका हस्तक्षेप प्रभावकारी न हो सका। श्वेत सेनाओं ने जनता पर अत्याचार भी बहुत किया। इसके साथ ही देशभक्त लोग अपने देश में विदेशी सेनाओं को देखकर क्रान्ति-विरोधियों को देशद्रोही समझने लगे और उनके विरुद्ध बॉल्शेविक सरकार की सहायता करने लगे। क्रान्ति-विरोधियों के नेता भी बड़े अयोग्य और भ्रष्ट थे। मित्र-राष्ट्रों के देशों में भी मजदूरों ने उत्पात करना आरम्भ कर दिया था जिसे देख कर उन्होंने अपनी सेनाएँ गृह-कलह समाप्त होने के पहले ही वापिस बुलाकर क्रान्ति-विरोधियों को मझधार में छोड़ दिया।†

बॉल्शेविक क्रान्ति और फ्रेञ्च क्रान्ति—

इस प्रकार तीन वर्ष तक बॉल्शेविक क्रान्ति के सामने जीवन-मरण का प्रश्न बना रहा। परन्तु अन्त में वह विजयी हुई। नवम्बर की बॉल्शेविक क्रान्ति रूसी क्रान्ति का दूसरा चरण थी। वास्तव में १९१७ में रूस में दो क्रान्तियाँ हुईं। प्रथम (मार्च) क्रान्ति राजनीतिक क्रान्ति थी जिसने स्वेच्छाचारी ज़ारशाही का अन्त करके राजनीतिक प्रजातन्त्र की स्थापना की। द्वितीय

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 675.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 365.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(नवम्बर)* अथवा बॉल्शेविक क्रान्ति सामाजिक क्रांति थी जिसने प्रजातन्त्रीय गणतंत्र का विनाश करके संसार के प्रथम मज़दूर गणतन्त्र की प्रतिष्ठा की और रूस की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किया। १६१७ की रूसी क्रान्ति की १७८६ की फ्रेञ्च क्रान्ति से तुलना की जा सकती है। दोनों देशों में क्रान्ति के कारणों में एक निर्बल राजा, प्रतिक्रियावादी जर्मन रानी, भूमि का भूखा कृषक वर्ग, अप्रिय पादरी वर्ग तथा कुलीन वर्ग का स्थान मुख्य था। दोनों ही देशों में क्रान्ति के बाद अल्पजीवी उदारवाद स्थापित हुआ जिसका स्थान शीघ्र ही उग्र सैद्धान्तिकों द्वारा प्रभावित आतंक के शासन ने ले लिया। परन्तु दोनों में भिन्नताएँ भी थीं। फ्रान्स एक सुसंगठित तथा अत्यन्त देशभक्त राष्ट्र था किन्तु रूस अनेक परस्पर विरोधी राष्ट्रों का एक विशाल साम्राज्य था। फ्रांस की क्रान्ति का आरम्भ शांति में हुआ, यद्यपि उसका अंत युद्ध में हुआ; रूस में क्रान्ति युद्ध के दौरान में और वर्षों के असफल युद्ध की थकान के बाद हुई। फ्रांस के उग्रतम प्रयोग भी वैयक्तिक सम्पत्ति के आधार पर हुए परन्तु, जैसा हम आगे देखेंगे, रूस ने समस्त उद्योगों को समाजवादी आधार पर स्थापित करने का प्रयत्न किया।$ फ्रान्स और रूस दोनों जगह क्रान्ति का आरम्भ मध्यम वर्ग ने किया परन्तु फ्रांस में मध्यम-वर्ग ने कृषकों की माँग को तुरन्त पूरी करके उन्हें नवीन राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था का समर्थक बना लिया परन्तु रूस में मध्यम वर्ग कृषकों की माँग को पूरी करके मजदूरों के विरुद्ध संघर्ष में उनका समर्थन प्राप्त नहीं कर सका। बॉल्शेविक क्रान्ति और 'मज़दूरों का आधिपत्य' इसी असमर्थता का तार्किक परिणाम था।‡

युद्धकालीन साम्यवाद (War Communism)—१६१८-१६२१—

बॉल्शेविकों ने सत्ता हस्तगत करते ही मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुकूल आर्थिक व्यवस्था करने का प्रयास आरम्भ कर दिया था और कृषि-व्यवस्था तथा उद्योगों के क्षेत्र में महान् परिवर्तन कर दिया था। ज़मीदारों से भूमि छीनकर राज्य की भूमि घोषित कर दी थी और किसानों में बाँट दी गई

---

* उन दिनों रूस का केलेण्डर अन्तर्राष्ट्रीय (तथा वर्तमान रूसी) केलेण्डर से १३ दिन पीछे था। हमने वर्तमान् केलेण्डर के अनुसार तिथियों एवं महीनों का उल्लेख किया है। पुराने केलेण्डर के अनुसार प्रथम क्रान्ति फ़र्वरी में और द्वितीय क्रान्ति ऑक्टोबर में हुई थी।

$ Slosson : Europe since 1870, p. 388.

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 351.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गई थी। राज्य ने अपनी ओर से कृषि का कोई प्रबन्ध नहीं किया था। इसी प्रकार उद्योगों के क्षेत्र में नई सरकार ने 'मजदूरों के नियंत्रण' की नीति का आरम्भ किया था जिसके अनुसार मजदूरों के प्रतिनिधि अपने-अपने कारखानों के संचालन में मालिकों के साथ भाग लेने लगे।*

उद्योगों के क्षेत्र में—

परन्तु दोनों ही क्षेत्रों में यह व्यवस्था संतोषजनक प्रमाणित नहीं हुई। कारखानों के संचालन में दोनों पक्षों के झगड़ों के कारण बाधा पड़ने लगी और जून १९१८ में सरकार को प्रत्येक कारखाने में अपनी ओर से एक व्यवस्थापक नियुक्त करना पड़ा। इसके साथ ही एक नियत पूँजी से अधिक वाले कारखानों, अर्थात् समस्त बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले कारखानों को राज्य की सम्पत्ति घोषित करके सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। इसके बाद धीरे-धीरे छोटे छोटे कारखानों के साथ भी यही नीति बरती जाने लगी। १९२० में एक आदेश द्वारा वे समस्त कारखाने जिनमें ५ मज़दूरों से अधिक काम करते थे और जो यांत्रिक शक्ति का स्तैमाल करते थे और वे कारखाने जो यांत्रिक शक्ति का प्रयोग नहीं करते थे परन्तु जिनमें दस मज़दूरों से अधिक काम करते थे सरकार के हाथों में ले लिये गये। इस प्रकार कारख़ानों का समस्त उत्पादन सरकार ने अपने हाथों में लेकर जनता को अपनी ओर से माल देना आरम्भ किया। आरम्भ में तो यह वितरण मुफ़्त किया जाता था। जनता के कामों में आने वाली समस्त वस्तुएँ, मकान, सवारी आदि चिट्ठियों पर मिलने लगी।† इस प्रकार से व्यापार बन्द हो गया और १९१८ में सरकारी आदेश से निषिद्ध घोषित कर दिया गया। बैंक भी बंद कर दिये गये और रुपये के लेन देन के काम के लिए एक सरकारी बैंक (Peoples' Bank) स्थापित किया गया जिसके लिये वास्तव में कोई विशेष काम नहीं रहा। मुद्रा बन्द तो नहीं की गई परन्तु अनाप शनाप नोटों के प्रचलन से और उपर्युक्त व्यवस्था के कारण वह बेकार सी हो गई।‡ परन्तु यह नवीन व्यवस्था भी सन्तोषप्रद नहीं हो सकी। अभी तक उद्योग-धन्धों का संचालन पूँजीपति निजी लाभ की दृष्टि से करते थे और उत्पादन अच्छी प्रकार होता था परन्तु अब लोगों को काम करने के लिये किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं रहा। मज़दूरों पर सरकार को सख्ती करनी पड़ी और १९२० में 'अनिवार्य श्रम' के

---

* Vernadsky : A History of Russia, p. 285.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 306,

‡ Vernadsky : A History of Russia, p. 286.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदेश द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के लिये काम करना अनिवार्य हो गया। इन सब उपायों के होते हुए भी उत्पादन कम होता ही गया। १९२० में औद्योगिक उत्पादन १९१३ के उत्पादन का केवल १३ प्रतिशत रह गया। यातायात की व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई जिसके कारण जो कुछ भी उत्पादन होता था उसका भी वितरण ठीक-ठीक नहीं हो पाता था। दैनिक उपयोग की वस्तुओं का प्रायः बिल्कुल अभाव हो गया और जनता में त्राहि-त्राहि मच गई।

कृषि के क्षेत्र में—

कृषि के क्षेत्र में जो व्यवस्था की गई थी वह भी सन्तोषजनक नहीं थी। ज़मीदारों से भूमि तो छीन ली गई थी परन्तु उनकी समस्त भूमि किसानों में नहीं बाँटी जा सकी क्योंकि उसमें से बहुत सी भूमि तो ऐसी ही थी जिसे किसान पहले से ही लगान पर जोतते थे। उसका कुछ भाग ऐसा भी था जिसे ज़मीदार स्वयं जोतते थे। वह अब सरकारी हो गया था। इस व्यवस्था के बाद किसानों के पास जितनी भूमि थी वह पहले से एक तिहाई अधिक अवश्य थी किन्तु इससे उनकी स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। जनसंख्या बढ़ गई थी और भूमिहीन किसानों को भी भूमि दी गई थी। इससे व्यक्तिगत खेतों की संख्या तो काफ़ी बढ़ गई थी परन्तु खेत बहुत छोटे-छोटे थे। कोई-कोई खेत ३०-४० एकड़ तक के थे परन्तु साधारणतया खेत १०-११ एकड़ से अधिक बड़े नहीं थे। इस प्रकार ज़मीदारों की निजी जायदादें तोड़ दी गई थीं, किसानों को अब जमीदारों को लगान नहीं देना पड़ता था और भूमिहीन किसानों को भी भूमि प्राप्त हो गई थी तिस पर भी बहुत से ऐसे लोग जो अधिक भूमि चाहते थे असन्तुष्ट ही बने रहे।

राज्य ने अपनी ओर से कृषि करने की कोई व्यवस्था नहीं की थी। किसान पहले की तरह खेती करते रहे परन्तु अब ज़मीदारों को लगान देने की जगह उन्हें अपने खाने लायक तथा बीज के लिये अनाज को छोड़ कर उपज का शेष भाग सब सरकार को देना पड़ता था। यह उन्हें बुरा लगता था। गृह-युद्ध के दिनों में किसानों की दशा काफ़ी खराब हो गई। दोनों तरफ़ की सेनाएँ उनसे ज़बरदस्ती अनाज छीन लेती थीं और उन्हें अनेक प्रकार से परेशान करती थीं जिससे उन्होंने खेती कम कर दी। १९१६ में जहाँ ७,४०,००,००० टन अनाज उत्पन्न हुआ था, वहाँ १९१९ में उपज ३,००,००,००० टन ही रह गई थी और देश में भूखों मरने की नौबत आ गई। इस पर १९२० और १९२१ में सूखा पड़ गया और १९२१ में दक्षिण-पूर्वी भाग में फ़सल बिल्कुल नहीं हुई जिसके परिणामस्वरूप अत्यन्त भयंकर अकाल पड़ा। अनुमान किया जाता है कि उसमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई ५० लाख आदमी मर गये। भूख से मृत्यु और भी अधिक होती परन्तु बाहर के देशों से, विशेषकर अमेरिका से, अन्न की बड़ी भारी सहायता मिली जिसने लाखों प्राणियों को बचा लिया।

परिणाम—

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि देश में बॉल्शेविक सरकार की आर्थिक नीति से बड़ा असन्तोष फैला और १९२०-२१ में किसानों ने कई जगह विद्रोह कर दिया। असन्तोष इतना व्यापक था कि क्रॉनस्टाट में स्थित सोवियत बेड़े के नाविकों ने तक, जो क्रान्ति के समर्थक थे, विद्रोह कर दिया और नया विधान बनाने के लिये एक विधान-सभा का निर्वाचन कराने और मुक्त व्यापार फिर से आरंभ करने की माँग की।*

नई आर्थिक नीति (New Economic Policy—NEP) **१९२१-२८—**

लेनिन को इन विद्रोहों का दमन करने में बड़ी क्रूरता बरतनी पड़ी। उसने उनका दमन तो कर दिया परन्तु वह इस स्थिति को देख कर चिन्तित हो गया। वह बड़ा दूरदर्शी और यथार्थवादी था। उसने मार्च १९२१ में कम्यूनिस्ट पार्टी के कन्वेन्शन में भाषण देते हुए कहा—'हम ऐसी दरिद्रता तथा ऐसे विनाश की अवस्था में पहुँच गये हैं, हमारे किसानों तथा मज़दूरों की उत्पादन शक्ति का इतना ह्रास हो गया है कि हमें उत्पादन बढ़ाने के लिये प्रत्येक (सिद्धांत की) बात को अलग रख देना चाहिये।' उसने साम्यवादी व्यवस्था में परिवर्तन करने और पूँजीवादी व्यवस्था की ओर वापस लौटने का निश्चय करके 'नई आर्थिक नीति' का श्रीगणेश किया (१९२१)। यह पूँजीवादी व्यवस्था की ओर वापस लौटना अवश्य था, परन्तु वह इसे पराजय नहीं, बल्कि आगे चलकर पूरी शक्ति से आगे बढ़ने की दृष्टि से अपनी शक्ति को संगठित करने के लिये पीछे हटना समझता था।

नई नीति के अनुसार कृषि, उद्योग तथा व्यापार सभी क्षेत्रों में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। किसानों से अब तक उनकी उपज का जो आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद बचा हुआ अतिरिक्त भाग ले लिया जाता था उसकी जगह कर लिया जाने लगा और उन्हें अपने बचे हुए माल को बाज़ार में बेचने और उसका रुपया अपने पास रखने की अनुमति मिल गई। इससे खेरिज व्यापार भी आरंभ हो गया और जुलाई १९२१ में सरकार ने देश के अन्दर खुले व्यापार की अनुमति

* Vernadsky : A History of Russia, p. 293.

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दे दी, हालाँकि विदेशी व्यापार पर से उसने अपना नियंत्रण नहीं हटाया। खेरिज़ व्यापारी बाज़ार में लाभ की दृष्टि से क्रय-विक्रय करने लगे।

इसके साथ ही उद्योगों के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले कारखानों पर तो सरकार का नियंत्रण रहा परन्तु छोटे-छोटे निजी कारखानों को स्वतन्त्रता मिल गई और अब वे अपनी इच्छानुसार उत्पादन कर सकते थे और बेच सकते थे। देश में पूँजी की कमी थी जो विदेशों से ऋण लेकर ही पूरी की जा सकती थी। अतः एक सीमा तक विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिये रियायतें दी गईं। पहले कारखानों को कच्चा माल, मशीनें आदि सरकार की तरफ़ से मुफ्त मिलते थे। अब वह प्रथा बन्द कर दी गई और अब सब प्रकार के—सरकारी तथा निजी—कारखानों को प्रत्येक वस्तु खरीदनी पड़ती थी। इस प्रकार मुद्रा का फिर से प्रयोग होने लगा और रुपये के लेन-देन का कार्य फिर से शुरू हुआ। पहले जनता को आवश्यकता की वस्तुएँ सरकार की ओर से मिलती थीं। अब यह प्रथा भी बन्द हो गई। अनिवार्य श्रम का नियम भी रद्द हो गया।

नई व्यवस्था से उद्योगों और कृषि में फिर से जान आ गई और उत्पादन बड़ी जल्दी बढ़ने लगा। इस व्यवस्था से किसी सीमा तक पूँजीवाद की पुनः स्थापना हो गई थी, परन्तु देश के आर्थिक जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार ने अपना नियंत्रण नहीं छोड़ा। विदेशी व्यापार, बैंक, खानें, वन, रेलवे तथा बड़े-बड़े कारखाने सरकार ने अपने हाथ में ही रखे। इसके साथ ही नई व्यवस्था स्थायी व्यवस्था नहीं थी और निजी प्रयत्न को जो स्वतन्त्रता दी गई थी वह केवल अल्पकालिक थी। सरकार को विश्वास था कि उत्पादन तथा विनिमय के सरकारी साधनों के परिपक्व हो जाने पर निजी प्रयत्न के समस्त क्षेत्रों पर सरकार का आधिपत्य स्थापित हो सकेगा।

लेनिन की मृत्यु—

क्रान्ति के बाद लेनिन ने बड़ा घोर परिश्रम किया था। वास्तव में क्रान्ति उसी के कारण सफल हो सकी थी। उसने बॉल्शेविक सत्ता की स्थापना के बाद से ही जो अनेक भीषण संकट उपस्थित हुए उनको बड़ी वीरता के साथ झेला और नई व्यवस्था को मज़बूत पाये पर स्थापित किया। वह नवीन रूस का सच्चे अर्थ में जन्मदाता था। १९२२ से ही कठोर परिश्रम के कारण उसका स्वास्थ्य गिरने लग गया था। मई १९२२ में उसे आंशिक पक्षाघात हुआ। उससे तो वह अच्छा हो गया परन्तु मार्च १९२३ में उसे फिर पक्षाघात हुआ जिससे वह सम्हल नहीं सका और २१ जनवरी १९२४ को उसका देहान्त हो गया। रूस की जनता ने उसका एक अवतारी पुरुष की तरह आदर किया। मॉस्को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में क्रेमलिन प्रासाद के निकट उसके लिये एक भव्य स्मारक तैयार किया गया जिसमें उसका शव मसाले में सुरक्षित करके एक काँच की सन्दूक में रखा गया। रूस की जनता के लिए वह एक महान् तीर्थस्थान है और हजारों लोग आज भी उसके दर्शनार्थ वहाँ जाते हैं। उसी के सम्मान में पेट्रोग्राड का नाम बदल कर लेनिनग्राड कर दिया गया।

लेनिन के बाद—

लेनिन की मृत्यु के बाद प्रश्न यह था कि उसका उत्तराधिकारी कौन हो। कम्यूनिस्ट पार्टी में उस समय चार व्यक्ति मुख्य थे—ज़िनोवीव, कामानेव, स्टालिन तथा ट्रॉट्स्की-इनमें से प्रथम तीन नेतृत्व के अयोग्य दिखाई देते थे। ज़िनोवीव अच्छा राजनीतिज्ञ था, कामानेव प्रभावशाली वक्ता था परन्तु दोनों अस्थिर थे। स्टालिन पार्टी का सेक्रेटरी था और बड़ा दृढ़ व्यक्ति था परन्तु उतना विख्यात नहीं था। ट्रॉट्स्की जन्मजात् नेता था और संसार में विख्यात था। लाल सेना के संगठन तथा क्रान्ति-विरोधियों के दमन में उसने बड़ा ज़बरदस्त काम किया था और वह युद्ध-सचिव भी था। परन्तु उसके कई शत्रु थे।* लेनिन की मृत्यु के बहुत पहले से दल के कई लोग उसे अलग करने का प्रयत्न कर रहे थे। जब लेनिन नहीं रहा, तो कम्यूनिस्ट पार्टी ने शासन सत्ता किसी एक व्यक्ति के हाथों में न सौंपकर ज़िनोवीव, कामानेव तथा स्टॉलिन तीनों को सम्मिलित रूप में सौंपी। स्टॉलिन बड़ा चतुर था। उसने ट्रॉटस्की को युद्ध-मंत्री के पद से हटाकर मामूली पदों पर रखा और पार्टी में अपनी स्थिति को धीरे-धीरे दृढ़ करके ज़िनोवीव तथा कामानेव को पीछे छोड़ समस्त सत्ता अपने हाथों में ले ली, हालाँकि उसने प्रधानमन्त्री पद ग्रहण नहीं किया।$

स्टालिन—

स्टॉलिन का जन्म १८७९ में जॉर्जिया प्रान्त में स्थित गोरी नामक नगर में एक कृषक के परिवार में हुआ था। उसका पिता चमार का काम करता था। उसका पिता उसे पादरी बनाना चाहता था परन्तु वह बड़ी छोटी आयु

---

*Vernadsky : A History of Russia, p. 326.

$ लेनिन प्रधान मन्त्री था। उसके बाद १९२४ से १९३० तक रिकोव और १९३० से १९४१ तक मोलोटोव प्रधान-मंत्री रहा। द्वितीय महायुद्ध के दिनों में जर्मन आक्रमण के कुछ सप्ताह पहले परिस्थिति की गम्भीरता को देखकर मई १९४१ में स्टॉलिन ने प्रधानमंत्री का पद ग्रहण किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में ही मार्क्सवाद के प्रभाव में आगया और लेनिन का भक्त बन गया। वह सोश्यल डेमोक्रेटिक पार्टी में शामिल हो गया। १९०० से १९१७ तक उसने बड़े कष्ट उठाये। वह ६ बार पकड़ा गया जिसमें ५ बार वह अपनी चतुराई से निकल भागा। अन्तिम बार वह १९१३ में पकड़ा गया और साइबेरिया के उत्तरी भाग में कैद रखा गया। १९१७ में क्रान्ति के समय वह वहीं था। क्रान्ति के फलस्वरूप वह मुक्त हुआ। वह अत्यन्त साहसी, आत्म-निर्भर, मौन और फौलाद के समान कठोर था। उसका असली नाम जोसेफ़ विसेरियोनोविच जुगाश्विली था परन्तु लेनिन ने उसका नाम स्टालिन रखा जिसका अर्थ होता है फ़ौलाद (Steel)। यह नाम बिलकुल उपयुक्त था और इसी नाम से वह इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। गृह-युद्ध के समय में उसने बड़ा भारी काम किया था। १९२१ में क्रानस्टाट के बेड़े के विद्रोह को उसी ने दबाया था। उसकी सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप लेनिन ने उसे कम्यूनिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी का अत्यन्त महत्वपूर्ण पद दिया। इस पद पर रह कर उसने अपने शत्रुओं को निर्मूल किया और अधिनायकीय सत्ता अपने हाथ में रखी।

बॉल्शेविक दल में फूट—

लेनिन का विश्वास था कि महायुद्ध के फल-स्वरूप पश्चिमी देशों में पूँजीवाद समाज नष्ट हो जायगा। इसके साथ ही अधिकांश बॉल्शेविक नेता समझते थे कि रूस में क्रान्ति होने के साथ ही संसार के अन्य देशों में क्रान्ति का सिलसिला आरम्भ हो जायगा। अतः वे विश्व-क्रान्ति के लिये तैयारी करना अपना कर्तव्य समझते थे और उसकी तैयारी के लिए उन्होंने समस्त देशों के साम्यवादी दलों को सम्मिलित करके १९१९ में तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (Third International) की स्थापना की जिसका प्रधान कार्यालय मास्को में रखा गया।* उसका काम विभिन्न देशों के मज़दूरों

*प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की स्थापना स्वय मार्क्स ने १८६४ में की थी। वह केवल दस वर्ष तक चला। उसके उपरान्त १८८९ में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की स्थापना हुई जिसका प्रधान महायुद्ध के आरम्भ के साथ अन्त हो गया। महायुद्ध की समाप्ति के बाद उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न हुआ पर वह पनप न सका। ये दोनों सम्मेलन समाजवादी थे और उनका कार्यक्रम सौम्य एवं विकासवादी था। लेनिन ने जिस सम्मेलन की स्थापना की उसका कार्यक्रम बिलकुल भिन्न था परन्तु मार्क्स की स्मृति का आदर करके उसने इसका नाम तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय रखा, हालाँकि वह वास्तव में प्रथम साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन था। इसी कारण साधारण बोलचाल में यह सम्मेलन कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनल अथवा संक्षेप में कॉमिण्टर्न कहा जाता रहा। Schevill : A History of Europe, p. 772.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को पूँजीवाद के विनाश तथा मज़दूरों (सर्वहारा) के आधिपत्य की स्थापना के लिये सब प्रकार की सहायता देना था। सम्मेलन के सभापति ज़िनोवीव ने उसी वर्ष घोषणा की थी कि एक वर्ष के अन्दर सारा योरोप साम्यवादी हो जायगा। परन्तु यह आशा पूर्ण नहीं हुई। रूस में तो कई कारणों से, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, साम्यवादी क्रान्ति सफल हो सकी थी परन्तु अन्य देशों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की जड़ इतनी गहरी थी कि रूस से चलने वाली क्रान्तिकारी आँधी उसे हिला नहीं सकी उधर रूस में बॉल्शेविक लोग आरम्भ से ही अपनी ही मुसीबतों में इतने फँस गये थे और अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाने में ही इतने व्यस्त थे कि उन्हें विश्व-क्रान्ति के लिए अन्य देशों में प्रयत्न करना असम्भव मालूम होता था।

ट्राटस्की और स्थायी—क्रान्ति—

इस प्रश्न पर बॉल्शेविक नेताओं में आरंभ से ही मतभेद था परंतु लेनिन के देहावसान के बाद उनमें फूट पड़ गई। प्रश्न यह था कि सोवियत रूस को अन्य देशों में क्रान्ति भड़काने का प्रयत्न जारी रखना चाहिये या उसे अपने यहाँ ही राष्ट्रीय समाजवादी समाज के निर्माण में अपनी सारी शक्ति लगानी चाहिए। कुछ लोग, जिनका नेता ट्रॉट्स्की था और बॉल्शेविक दल में जिनका अल्पमत था, विश्व-क्रान्ति के लिए प्रयत्न जारी रखने के पक्ष में थे। ट्रॉट्स्की का कहना था कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए होने के कारण तथा निम्नकोटि की संस्कृति और मध्यमवर्गीय कृषकों के हितों की विभिन्नता के कारण रूस समाजवाद के लिए तैयार नहीं था। इसके साथ ही उसका कहना था कि पूँजीवादी संसार में एक एकाकी समाजवादी राज्य टिक नहीं सकेगा क्योंकि उसे सदा उसकी ओर से आक्रमण या आर्थिक बहिष्कार का डर लगा रहेगा। समाजवादी क्रान्ति की समस्या सारतः अन्तर्राष्ट्रीय है क्योंकि संसार के समस्त राष्ट्र एक दूसरे पर आश्रित हैं और संसार का बाज़ार एक है जिसमें कोई देश एक प्रकार का माल तैयार करता है तो दूसरा दूसरे प्रकार का। कोई भी देश आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया स्वावलम्बी नहीं है ऐसी परिस्थिति में यह सम्भव नहीं है कि एक देश में समाजवादी व्यवस्था हो और अन्य सब देशों में पूँजीवाद और उनमें व्यापारिक क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग हो। पूँजीवादी देशों के बीच अकेला समाजवादी देश टिक नहीं सकता। इन कारणों से वह 'स्थायी क्रान्ति' का समर्थक था और कहता था कि राष्ट्रीय क्रान्तियों की शृङ्खला में रूसी क्रान्ति को पहली कड़ी मानना चाहिये और विश्वक्रान्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।*

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 358.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्टालिन और 'केवल एक देश में समाजवाद'—

बॉल्शेविक दल के अधिकाँश सदस्य, जिनका नेता ज़ोज़ेफ़ स्टालिन था, इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते थे। स्टालिन 'स्थायी क्रान्ति' के स्थान पर 'केवल एक ही देश में समाजवाद' (Socialism in one country) स्थापित करने के पक्ष में था। उसका कथन था कि जब विश्व-क्रान्ति संभव नहीं हो रही है तो सोवियत रूस को अपने यहाँ एक समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहिये ताकि विश्व के सामने समाजवाद का एक व्यावहारिक उदाहरण उपस्थित किया जा सके और उसकी सफलता को देख कर अन्य राष्ट्र उसका अनुकरण कर सकें। उसके विचार में अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा की सबसे बड़ी सेवा यही हो सकती थी।* उसे विश्वास था कि रूस केवल अपने ही प्रयत्न से समाजवादी व्यवस्था स्थापित कर सकता है और पूँजीवादी संसार में एक स्वतन्त्र समाजवादी समाज अकेला ही ठहर सकता है।

ट्रॉट्स्की और स्टालिन में अन्य बातों के साथ वैयक्तिक कृषि के सम्बन्ध में भी बड़ा तीव्र मतभेद था। वास्तव में वह 'नई आर्थिक नीति' का घोर विरोधी था। उसकी राय में नई नीति का अवलम्बन करके बॉल्शेविक लोग साम्यवाद से दूर हटते जा रहे थे और राज्य पूंजीवाद की स्थापना कर रहे थे। नई नीति के कारण विदेशी पूंजीपतियों को रूस में फिर रियायतें प्राप्त हो गई थीं, व्यापारी लोग निजी व्यापार द्वारा फिर धनी होते जा रहे थे, देहात में धनी किसान (कुलक) अन्न इकट्ठा कर रहे थे, करों की अदायगी में बेईमानी कर रहे थे और पुराने ज़मीदारों के स्थान पर उनका एक नया ज़मीदार वर्ग बनता जा रहा था जो मज़दूरों से अपने खेतों पर काम करवाकर धनी होता जारहा था।† उसे भय था कि यह नई मध्यश्रेणी फिर से पूँजीवाद को जन्म देगी जिससे बॉल्शेविक व्यवस्था संकट में पड़ जायगी। वह इस नई नीति का अन्त कर देना चाहता था। परन्तु स्टालिन इन दोषों को देखते हुए भी नई नीति के परित्याग के लिये तैयार नहीं था क्योंकि वह किसानों को, जो रूस की जनता के ८० प्रतिशत थे सन्तुष्ट रखना चाहता था। उनके असहयोग के कारण देश में अन्न की बेहद कमी हो गई थी और इसी कारण लेनिन ने नई नीति का आरंभ किया था। स्टालिन उसका परित्याग करके फिर से अन्न-संकट पैदा नहीं करना चाहता था। ट्रॉट्स्की किसानों को मूर्ख एवं रूढ़िवादी समझ कर उनकी उपेक्षा

* Schuman : International Politics p. 871.
† Jackson : The Between-War World, p. 168.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करना चाहता था । यह केवल कारखानों के मजदूरों के साथ ही काम करने के पक्ष में था जो पहले से ही साम्यवादी थे। उसका विचार था कि किसान भी आगे चलकर साम्यवादी हो जायेंगे। तब तक उनकी उपेक्षा की जा सकती थी। स्टालिन भविष्य में साम्यवाद की सफलता के लिए कुछ समय तक विदेशी पूँजी तथा विदेशी सहायता को आवश्यक समझता था परन्तु ट्रॉट्स्की पूँजीवाद से किसी प्रकार का भी समझौता करना विश्वासघात समझता था।*

क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीयता पर रूसी राष्ट्रीयता की विजय—

दोनों नेताओं में यह संघर्ष वर्षों तक चलता रहा। दोनों में सिद्धान्त की दृष्टि से ही मतभेद नहीं था, उनमें प्राधान्य के लिए प्रतिस्पर्धा भी थी। कम्यूनिस्ट पार्टी का सेक्रेटरी होने के कारण स्टालिन का दलीय सङ्गठन पर पूर्ण नियत्रण था। उसने धीरे-धीरे ट्रॉट्स्की और उसके अनुयायियों के विरुद्ध प्रचार करके उनका पक्ष निर्बल कर दिया। टॉट्स्की पहले तो युद्ध-मंत्री के पद से हटा दिया गया और साधारण पदों पर रखा गया। परन्तु उसका विरोध कम नहीं हुआ। कम्यूनिस्ट पार्टी के पन्द्रहवें कन्वेंशन ने १९२७ में दलीय एकता को अत्यन्त आवश्यक और सर्वोपरि समझकर ट्रॉट्स्की को दल में से निकाल दिया। १९२९ में वह देश से निर्वासित कर दिया गया। पहले तो वह टर्की गया और बाद में अमेरिका चला गया जहाँ मेक्सिको में १९४० में एक हत्यारे की छुरी ने उसका अन्त कर दिया। ट्रॉट्स्की के सिद्धांत बॉल्शेविक सिद्धांत के प्रतिकूल घोषित कर दिये गये और उसके अनुयायी बड़ी निर्दयतापूर्वक समाप्त कर दिये गये। ट्रॉट्स्की का कम्यूनिस्ट दल से निकाला जाना वैसे ही एक असाधारण घटना थी क्योंकि वह एक महान् और प्रख्यात नेता था। परन्तु एक दूसरी दृष्टि से इस घटना का रूस के इतिहास में बड़ा भारी महत्व है। ट्रॉट्स्की क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीयता का समर्थक था और स्टालिन रूसी राष्ट्रीयता का। स्टालिन की विजय क्रांतिकारी अन्तर्राष्ट्रीयता पर रूसी राष्ट्रीयता की विजय थी।†

———

* Hazen : Modern European History, p. 803.
† Vernadsky : A History of Russia, p. 330.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १४

नवीन रूस

स्टालिन का अधिनायकतंत्र

रूसी राष्ट्रीयता—

रूसी राष्ट्रीयता की विजय का अर्थ यह था कि अब विश्व-क्रान्ति की ओर से मुँह मोड़ कर कम्यूनिस्ट दल रूसी राष्ट्र को स्वावलम्बी एवं सुदृढ़ बनाने पर कटिबद्ध हो गया था। तभी वह पूंजीवादी संसार में टिक सकता था। जिस कन्वेन्शन ने ट्रॉट्स्की के बहिष्कार का निश्चय किया था, उसने देश की सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था पर अच्छी तरह विचार किया था। उसे रूसी आर्थिक व्यवस्था में बड़ी कमज़ोरियाँ दिखाई दे रही थीं। नई आर्थिक नीति से देश की कृषि तथा उद्योग-धन्धों ने काफ़ी उन्नति कर ली थी और उत्पादन १९१३ के स्तर पर पहुँच गया था। परन्तु इतने से ही सन्तुष्ट हो जाना क्रान्ति की व्यर्थता को स्वीकार कर लेना था। इतनी उन्नति होते हुए भी वास्तव में कृषि और उद्योग-धंधों की अवस्था अच्छी नहीं थी।

'नई आर्थिक व्यवस्था' की कमज़ोरियाँ—

कृषि के क्षेत्र में धनी किसानों (कुलकों) की ओर से ट्रॉट्स्की को जो भय था वह वास्तव में विचारणीय था। कृषि की उपज भी देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त नहीं थी। १९२८ में खाद्यान्नों की बड़ी कमी हो गई थी और सरकार को बाहर से अन्न मंगाकर भोज्य-पदार्थों का राशनिंग आरंभ करना पड़ा था।* इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि वैयक्तिक कृषि की व्यवस्था सन्तोष-प्रद नहीं थी। रूस पहले अपनी बड़ी-बड़ी जायदादों से आवश्यकता से बहुत अधिक अन्न पैदा करता था और बहुत से परिमाण में अन्न बाहर भेज कर उसके बदले में मशीनें तथा कारखानों के लिए अनेक प्रकार का कच्चा माल मंगवाया करता था। परन्तु अब अन्न बाहर भेज कर उसके बदले दूसरा माल मंगवाना तो दूर रहा, शहरों को भोजन तक मिलने में कठिनाई हो रही थी। उपज बढ़ाना आवश्यक था और यह तभी हो सकता था कि जब कि खेती बड़े पैमाने पर तथा नवीन वैज्ञानिक ढंग से हो। परन्तु नवीन वैज्ञानिक तरीके छोटे-छोटे बिखरे हुए खेतों में काम में नहीं ला सकते थे और इस कारण छोटे-छोटे

* Lipson: Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 363.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेतों को एकत्र करके बड़े-बड़े फार्म बनाना आवश्यक था अर्थात् वैयक्तिक कृषि को तिलाञ्जलि देकर सामूहिक कृषि की व्यवस्था आवश्यक थी जिससे उत्पादन बढ़ाने के साथ ही कुलकों का विनाश हो सकता था और नगरों की भाँति गांवों में भी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना द्वारा अब तक किसानों और मजदूरों में जो भेद था वह मिटाया जा सकता था तथा समस्त देश में एकसी समाजवादी व्यवस्था की जा सकती थी।

उद्योगों की दशा भी अच्छी नहीं थी। उद्योगों की उन्नति के लिए पूँजी आवश्यक थी परन्तु देश के अन्दर पूँजी नहीं थी और विदेशों से भी पर्याप्त मात्रा में पूँजी नहीं मिल रही थी। किसानों के पास धन था परन्तु वे अपनी हानि करके उद्योगों की उन्नति करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिये भी कृषि की नई व्यवस्था आवश्यक थी ताकि पूंजी की कमी पूरी हो सके और बाहर से आवश्यक वस्तुएं मंगाई जा सकें।

आर्थिक नियोजन—

एक बात और थी। पूँजीवादी संसार में रूस अकेला ही समाजवादी देश था और उसे पूँजीवादियों के आक्रमण का डर रहता था। सेना के पदाधिकारी शस्त्रास्त्र तथा युद्ध-सामग्री तैयार करने पर ज़ोर दे रहे थे।* परन्तु शस्त्रास्त्र-निर्माण के लिये देश के अन्य उद्योग-धन्धों की उन्नति आवश्यक थी। बॉल्शेविक नेता आरम्भ से ही अच्छी तरह समझे हुए थे कि यदि रूस के प्राकृतिक साधनों का संगठित विकास नहीं हुआ तो उसे सदा पूँजीवादी सत्ताओं की दया पर रहना पड़ेगा। लेनिन ने कहा था कि 'यदि हम अपने बड़े-बड़े उद्योगों को संगठित न कर सके तो समाजवादी राज्य की तरह तो क्या, एक सभ्य राज्य की तरह भी जीवित नहीं रह सकेंगे।'† उसने आरम्भ से ही विद्युत शक्ति के विकास के लिये १९२० में एक कमिशन नियुक्त किया था। उसका कोई परिणाम नहीं निकला परन्तु औद्योगिक विकास की आवश्यकता बॉल्शेविक लोग महसूस करने लग गये थे। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पहले उत्पादन की समस्त व्यवस्था कारखानों के पूँजीपति स्वामी करते थे परन्तु जब समस्त बड़े उद्योग सरकार के हाथ में पहुँच गये तो उत्पादन की योजना बनाना आवश्यक हो गया।

---

*Vernadsky : A History of Russia, p. 334.

†Jackson : The Between-War World, p. 172.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंचवर्षीय योजना—

अतः राष्ट्र की समस्त आर्थिक क्रियाओं का निर्देशन तथा उत्पादन का निर्धारण करने के लिये १९२५ में एक नियोजन कमीशन (Planning Commision-Gosplan) नियुक्त किया गया जिसने बड़े विचारपूर्वक एक पंचवर्षीय योजना बनाई जिसका उद्देश्य उद्योगों की उन्नति करके राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाकर उसकी स्वतन्त्रता को सुदृढ़ बनाना और विपुल उत्पादन द्वारा सर्वहारा वर्ग की भौतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति करना था।* १९२८ में पंचवर्षीय योजना पर कार्य आरम्भ हुआ। उसका लक्ष्य १९३३ तक कोयले तथा तेल का उत्पादन दुगना, लोहे का उत्पादन तिगुना, विद्युत्-शक्ति का चार गुना, कृषि की उपज का ड्यौढ़ा तथा औद्योगिक उत्पादन को दुगने से अधिक करना, समस्त व्यक्तिगत खेतों के पंचमांश को सामूहिक आधार पर ले आना, हर जगह कृषि-सम्बन्धी मशीनें पहुँचाना, समस्त बालक-बालिकाओं के लिये पाठशालाएं खोलना और बेकारी को निर्मूल कर देना रखा गया। †

कृषि का राष्ट्रीयकरण—

इस प्रकार इस योजना द्वारा देश की कृषि तथा उद्योग-धन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के प्रयत्न का आरम्भ हुआ।

कृषि के क्षेत्र में सरकार का लक्ष्य ड्यौढ़ा उत्पादन करना और समस्त व्यक्तिगत खेतों के पंचमांश को सामूहिक आधार पर ले आना था। परन्तु सरकार प्रत्येक क्षेत्र में लक्ष्य से बहुत आगे निकल जाने का निश्चय कर चुकी थी। कृषि में ऐसा ही हुआ। सरकार ने कृषि के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की और व्यक्तिगत खेतों की जगह दो प्रकार के—सरकारी और सामूहिक—फ़ार्म बनाये जाने लगे। सरकारी फ़ार्म खोलने का प्रयोजन तो मुख्यकर यह था कि देश की विस्तृत वीरान या ऊसर भूमि को खेती के काम में लाने का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जाय। सामूहिक फ़ार्मों का निर्माण कई किसानों के खेतों को एक में मिला कर किया गया जिसमें सब किसानों को मिलकर सहयोगपूर्वक काम करना था। यह कार्य बड़ी तेजी और कठोरता के साथ होने लगा। अपनी भूमि तथा कृषि के समस्त साधनों के छिन जाने से किसान, विशेषकर धनी किसान (कुलक), बड़े असन्तुष्ट हुए और विरोध करने लगे। परन्तु सरकार ने बड़ी निर्दयता के साथ उनका

---

*Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 368.

† Slosson : Europe since 1870, p. 549.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दमन किया। उनकी ज़मीनें, मकान, पशु, कृषि के औज़ार आदि, यहाँ तक कि उनकी निजी वस्तुएँ भी छीन ली गईं, बहुत से गोली से उड़ा दिये गये और कई उनके गाँवों से निकाल दिए गये। कुलकों का तो इस प्रकार दमन हुआ और छोटे किसानों पर भी सामूहिक फार्मों में शामिल होने के लिये नाना प्रकार से दबाव डाला गया। यह काम भी इतनी तेज़ी से हुआ कि एक वर्ष (१९२९-३०) के अन्दर आधे से अधिक खेतों का सामूहिककरण हो गया। परन्तु यह गति बहुत तेज़ थी। एक ओर तो किसान विद्रोही हो गये और दंगे करने लगे तथा दूसरी ओर सरकार इतने सामूहिक फार्मों के लिये आवश्यक संख्या में मशीनें प्रस्तुत नहीं कर सकीं। अतः सरकार को अपनी गति धीमी करनी पड़ी। फिर भी १९३७ तक ३२ प्रतिशत खेत, जो २,२०,००,००० कृषक परिवारों के अधिकार में थे, शामिल करके ढाई लाख सामूहिक फार्म बना दिये गये; केवल २० लाख कृषक परिवारों के पास अपने निजी खेत बच रहे।*

सामूहिक खेती—

सामूहिक फार्म तीन प्रकार के हैं—(१) प्रथम प्रकार के फ़ार्म ऐसे हैं जिनमें किसान अपनी ज़मीन सम्मिलित करके शामिल खेती करते हैं और पैदावार को आपस में बाँट लेते हैं। ज़मीन तो सब की शामिल रहती है परन्तु हल, जानवर आदि किसानों के अपने ही होते हैं। ऐसे फ़ार्मों में केवल भूमि और श्रम का ही सामूहिककरण हुआ है। (२) दूसरी प्रकार के फ़ार्म 'आर्टेल' (Artel) कहलाते हैं जिनमें भूमि और श्रम के साथ पूँजी का भी सामूहिक-करण हुआ है। इनमें सब लोग अपने-अपने खेतों को शामिल करके मिल कर काम तो करते ही हैं, इसके साथ-साथ जानवर, हल, खेती-सम्बन्धी मकान आदि भी शामिल रहते हैं। केवल रहने के मकान, साग-भाजी उत्पन्न करने की क्यारियाँ, गायें, भेड़ें, बकरियाँ मुर्गियाँ आदि उनके अपने होते हैं। (३) तीसरे प्रकार के फ़ार्म 'कम्यून' (Commune) कहलाते हैं जिनमें सभी वस्तुओं का सामूहिककरण कर दिया गया है और किसानों की कोई निजी वस्तु नहीं होती। मकान, पशु आदि सभी सम्मिलित सम्पत्ति माने जाते हैं, भोजन भी सब साथ करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति सम्मिलित भण्डार से अपनी आवश्यकता की वस्तुएं प्राप्त करता है। इस प्रकार इसमें उत्पादन के साथ-साथ वितरण का भी समाजीकरण हो गया और यह सामूहिक फ़ार्मों का सबसे बढ़ा हुआ रूप है।

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 365.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन तीनों प्रकार के .फार्मों में से दूसरे प्रकार के .फार्मों का ही अधिक प्रचार है। इसकी व्यवस्था के लिए एक तो सभी सदस्यों की सामान्य सभा होती है और एक प्रबन्धकारिणी समिति होती है। प्रत्येक फ़ार्म को अपनी उपज में से सरकार द्वारा पहले से ही निश्चित मात्रा सरकार को देनी पड़ती है और उसके बाद बची हुई वस्तुओं को वह खुले बाज़ार में बेच सकता है। इससे प्राप्त धन को किसान अपने श्रम के अनुपात में बाँट लेते हैं।

समीक्षा—

सामूहिक .फार्मों की व्यवस्था द्वारा बॉल्शेविक सरकार ने समाजीकरण की ओर बहुत बड़ा कदम उठाया था परन्तु वास्तव में सामूहिक .फार्मों की समाजवादी संस्थाओं में गणना नहीं की जा सकती क्योंकि कानूनी दृष्टि से भूमि राज्य की सम्पत्ति होते हुए भी वह किसानों की सहकारी समितियों के हाथों में है और उनके परिश्रम का लाभ (मुनाफ़ा) उनके पास ही रहता है। यह सत्य है कि वहाँ सरकारी .फार्म भी हैं जिन पर काम करने वालों को मज़दूरी मिलती है और जिनकी पैदावार सरकार की होती है परन्तु इस प्रकार के .फार्मों में समस्त कृषि भूमि का दशमान्श भी नहीं है। इन .फार्मों को साम्यवादी संस्थाओं की कोटि में भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि कम्यूनों को छोड़कर अन्य प्रकार के .फार्मों में उत्पादन का वितरण काम करने वालों की आवश्यकता के अनुसार नहीं, बल्कि श्रम के अनुसार होता है। इसके साथ ही जलवायु, भूमि की प्रकृति, नगरों की निकटता आदि कारणों से लाभ में जो असमानताएँ उत्पन्न होती हैं उनका इस व्यवस्था से निराकरण नहीं हो सका है और जहाँ कुछ फ़ार्म अत्यन्त समृद्ध हैं और करोड़पति फ़ार्म (Millionaire Kolkhosi) कहे जाते हैं वहाँ अन्य .फार्म गरीब बने हुए हैं। इस प्रकार इस नई व्यवस्था में कुलकों तथा अन्य स्वतन्त्र किसानों के विनाश के बाद भी धन तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की विषमता बनी हुई है‡ परन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि नई व्यवस्था से रूस ने बहुत उन्नति की है।

उद्योगों का राष्ट्रीयकरण—

कृषि की तो इस प्रकार नई व्यवस्था की गई। योजना को सफल बनाने के लिए उद्योगों का भी पुनः संगठन आवश्यक था। जैसा हम देख चुके हैं, नई आर्थिक नीति के अनुसार बड़े-बड़े कारखाने तो सरकार ने अपने नियन्त्रण में रखे थे परन्तु छोटे कारखाने पूँजीपतियों के हाथों में पहुँच गये थे। उनका

‡Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 366.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुनः सङ्गठन आवश्यक था। सरकार ने सीधे अपनी ओर से कोई व्यवस्था करने की जगह उन पर दबाव डालना आरम्भ किया। उनके लिए कच्चा माल प्राप्त करने के मार्ग में कठिनाइयाँ डाली जाने लगीं जिससे विवश होकर निजी उत्पादकों को शामिल होकर ट्रस्ट बनाने पड़े। कुछ समय बाद इन ट्रस्टों को शामिल करके १९ बड़े सिण्डीकेट बना दिए गये जिनके हाथों में रूस के उद्योगों के अधिकांश का नियन्त्रण आ गया। जब उद्योग केन्द्रीकरण की इस स्थिति में पहुँच गये तो सरकार के लिए उन्हें अपने नियन्त्रण में ले आना सरल हो गया।*

पंचवर्षीय योजना के आरम्भ तक उद्योगों की यह व्यवस्था हो चुकी थी। अब सरकार ने सिण्डीकेटों को पंचवर्षीय योजना को कार्यान्वित करने का भार सौंपा। अब सिण्डीकेट 'कॉम्बिनेशन' (Combinations) कहलाने लगे। प्रत्येक कारखाने को अपने ट्रस्ट के निरीक्षण में योजना के अन्तर्गत जो काम उसे दिया जाता था उसे पूरा करना पड़ता था। उसे बतला दिया जाता था कि उसे कौन सा कच्चा माल मिलेगा, उसकी कीमत क्या होगी, मजदूरी की दर क्या होगी और वह नियत कीमत पर नियत परिमाण में माल सरकार को देने का भार अपने ऊपर ले लेता था। व्यवसायों के लिए पूँजी की व्यवस्था तीन प्रकार से होती थी। प्रत्येक ट्रस्ट अपने मुनाफे का कुछ अंश रिजर्व फण्ड में रखता था जो पूँजी की तरह काम में लाया जाता था, बैंकों से ऋण भी लिया जाता था और सरकार भी सहायता देती थी। कारखानों में जितना लाभ होता था उसका एक भाग सरकार ले लेती थी, कुछ रिज़र्व फण्ड में जमा कर दिया जाता था और शेष मजदूरों के कल्याण तथा शिक्षण-सम्बन्धी कार्यों में खर्च किया जाता था। इस व्यवस्था में सरकार एक व्यवसाय के मुनाफे से दूसरे व्यवसायों को सहायता दे सकती थी। वस्तुओं की कीमतें सरकार द्वारा निर्धारित की जाती थी। सरकार का लक्ष्य आवश्यक उत्पादन था, मुनाफ़ा नहीं। अतः सरकार के लिये यह भी सम्भव था कि यदि वह किसी सार्वजनिक हित की दृष्टि से आवश्यक समझे तो किसी वस्तु को लागत से भी कम मूल्य पर बेच दे।

द्वितीय और तृतीय पंचवर्षीय योजनायें—

योजना पर बड़े उत्साह से काम हुआ, पाँच वर्ष का काम चार वर्ष में ही हो गया और कई दिशाओं में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। मेग्निटोगोर्स्क का फौलाद का विशाल कारखाना और नीप्रोस्ट्रॉय (Dnieprostroi) का विद्युत् शक्ति का कारखाना जो इस योजना के अन्तर्गत बने संसार के बड़े-बड़े

* Jackson : The Between-War World, p. 169,

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारखानों में गिने जाते हैं। कोयला, लोहा तथा फ़ौलाद के क्षेत्रों में लक्ष्य पूरा नहीं हुआ परन्तु तेल तथा मशीनरी का उत्पादन लक्ष्य से भी बढ़ गया। अन्य क्षेत्रों में भी काफी उन्नति हुई जिससे प्रोत्साहित होकर सरकार ने प्रथम योजना के दौरान में ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना तैयार कर ली जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को बिगड़ती देखकर शस्त्रास्त्र-निर्माण पर अधिक ज़ोर दिया गया और १९३३ से उस पर कार्य आरम्भ किया गया। इन दोनों योजनाओं के परिणाम-स्वरूप रूस का उत्पादन १९३८ तक १९२८ के उत्पादन से लगभग पाँच गुना बढ़ गया और औद्योगिक उत्पादन में रूस का स्थान संसार में अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र, जर्मनी तथा इङ्गलैण्ड के बाद चौथा हो गया। लोहा, फौलाद तथा कुछ अन्य वस्तुओं में तो वह इङ्गलैण्ड से भी आगे निकल गया।* १९३८ में तृतीय पंचवर्षीय योजना आरम्भ की गई परन्तु अगले ही वर्ष महायुद्ध छिड़ जाने से उस पर कार्य न हो सका।

त्रुटियाँ—

ये पंचवर्षीय योजनाएँ काफ़ी सफल रहीं परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने में कुछ त्रुटियाँ भी रहीं। उत्पादन की गति पर अत्यधिक जोर देने से उत्पादन बढ़ तो बहुत गया परन्तु बहुत सी वस्तुएँ हल्की और खराब बनीं। माल इतना इकट्ठा हो गया कि रेलगाड़ियाँ उन्हें ढो न सकीं। बड़ी-बड़ी बहुमूल्य मशीनों को अनुभवहीन एवं अशिक्षित मजदूरों तथा किसानों के हाथों में दे देने से बड़ी हानि हुई। ये सब त्रुटियाँ स्वाभाविक थीं परन्तु सरकार ने इनका दोष 'मध्यवर्गीय मनोवृत्ति के इञ्जीनियरों' पर मढ़ा जो उसके विचार में क्राँति को असफल बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। बहुत से इञ्जीनियर तथा विशेषज्ञ गिरफ्तार कर लिए गये, उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें कारावास या मृत्यु का दण्ड मिला। विदेशी इञ्जीनियर देश से निर्वासित कर दिये गये।† किसानों को भी सामूहिक फार्मों में सम्मिलित होने के लिए बहुत परेशान किया गया और, जैसा हम देख चुके हैं, कुलकों को तो बिलकुल ही नष्ट कर दिया गया।

समीक्षा—

जिस प्रकार सामूहिक फार्मों की गणना समाजवादी तथा साम्यवादी संस्थाओं में नहीं की जा सकती उसी प्रकार सोवियत कारखाने भी साम्यवादी

---

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, pp. 387-388,

† Slosson : Europe since 1870, pp. 550-551.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं कहे जा सकते। सोवियत कारखाना 'औद्योगिक प्रजातन्त्र' नहीं है। उस पर मजदूरों की संस्थाओं का कोई नियन्त्रण नहीं होता, हालाँकि उसका संचालन मजदूरों के हित में होता है। रूस में ट्रेड यूनियनों का काम मजदूरों के हितों के संरक्षण के लिये प्रयत्न करना नहीं, बल्कि उत्पादन की वृद्धि करना है। मजदूरों पर तीन प्रकार का नियन्त्रण है। प्रत्येक कारखाने में मैनेजर होता है जो उसके संचालन के लिये उत्तरदायी होता है। एक फैक्टरी कमिटी होती है जो ट्रेड यूनियन का प्रतिनिधित्व करती है और एक कम्यूनिस्ट पार्टी के स्थानीय सदस्यों की समिति होती है। मज़दूर पर इनका 'त्रिविध नियन्त्रण' होता है परन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी के कठोर अनुशासन के कारण कारखाने में भी अनुशासन बना रहता है और उत्पादन को बढ़ाने के प्रयत्नों में संघर्ष प्रायः नहीं होता। मजदूरों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है और इसी कारण जब तक उत्पादन यथेष्ट मात्रा में न होने लगे तब तक के लिये 'प्रत्येक को अपनी आवश्यकतानुसार मिले' इस साम्यवादी सिद्धान्त की उपेक्षा करके 'प्रत्येक को अपने श्रम के अनुसार मिले' इस समाजवादी सिद्धान्त का पालन किया जाता है। मजदूरों को उनकी आवश्यकतानुसार वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती, उन्हें काम के अनुसार मज़दूरी मिलती है।

रूस के बड़े-बड़े कारखानों का तो राष्ट्रीयकरण हो गया है परन्तु छोटे-छोटे व्यवसाय बहुत से ऐसे हैं जिन्हें व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से करते हैं और इस प्रकार रूस के सभी औद्योगिक मज़दूर वृत्ति पाने वाले मज़दूर नहीं है। लाखों कारीगर ऐसे हैं जो घरेलू उपयोग की वस्तुएँ स्वतन्त्र रूप से, अपनी ही पूँजी से और अपने ही औज़ारों से बनाते हैं और उन्हें बेचकर स्वयं उनके लाभ का उपभोग करते हैं। बहुत से स्वतन्त्र कारीगर मिलकर अपनी सहकारी समितियाँ बना लेते हैं और परस्पर सहयोग करके अधिक लाभ उठाते हैं।* परन्तु इस व्यवस्था में शोषण के अभाव के कारण कोई आपत्ति नहीं उठती।

शिक्षा—

पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के विकास के लिए भी स्थान रखा गया था। बॉल्शेविक सरकार केवल राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में ही क्रान्ति नहीं चाहती थी, नई व्यवस्था की सफलता के लिये बौद्धिक क्रान्ति को भी अनिवार्य समझती थी। रूसी जनता को यथोचित शिक्षा के अभाव में सारे प्रयास का विफल हो जाना निश्चय था। पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य

---

*Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 369.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निरक्षरता को दूर कर देना था और इस कार्य में उसे विस्मयजनक सफलता प्राप्त हुई। ज़ार के समय में उच्च वर्ग के बालक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे, साधारण जनता के लिये शिक्षा अलभ्य थी। परन्तु अब उनकी शिक्षा की व्यवस्था हुई। सरकार की योजना ३ से १६ वर्ष तक की आयु के समस्त बालक-बालिकाओं के लिये शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य बना देने की थी। १९१४ में रूस की ७३ प्रतिशत जनता निरक्षर थी परन्तु १९३२ तक निरक्षर जनता केवल ९ प्रतिशत रह गई। १९१४ में प्राथमिक पाठशालाओं में ७० लाख और माध्यमिक पाठशालाओं में ५ लाख विद्यार्थी पढ़ते थे परन्तु १९३२ में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या १ करोड़ ९० लाख और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वालों की ४५ लाख से ऊपर थी।*

योजना का लक्ष्य केवल साक्षरता ही नहीं था। नये-नये उद्योगों के लिये शिल्पियों का प्रशिक्षण भी करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कारखानों के साथ स्कूल (Technicium) खोले गये जिनमें १५ से १८ वर्ष तक की आयु के लड़के कक्षाओं में तो सैद्धान्तिक और कारखानों में व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करते थे। इनके ऊपर टेकनिकल हाई स्कूल खोले गये जिनमें विश्वविद्यालय की कोटि की शिक्षा की व्यवस्था की गई। प्रौढ़ मजदूरों के लिये भी शिक्षा की व्यवस्था की गई।

उच्च शिक्षा की ओर भी सरकार ने पूरा ध्यान दिया। समस्त प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये सोवियत सरकार जितना अनुदान देती है, उतना शायद किसी भी देश में नहीं दिया जाता। वैज्ञानिक शिक्षा के साथ पुरातत्व, भाषाओं, स्थापत्य, इतिहास आदि के अध्ययन को भी खूब प्रोत्साहित किया जाता है। इतिहास के अध्ययन के सम्बन्ध में यह आपत्ति की जाती है कि उसमें मार्क्सवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं पढ़ाया जाता और पूँजीवादी देशों की वर्तमान अवस्थाओं को जान बूझ कर गलत समझाया जाता है। सोवियत अधिकारी इसका यही उत्तर देते हैं कि पूंजीवादी देशों में इतिहास में केवल राजाओं, पादरियों तथा सैनिकों की कहानियों के अतिरिक्त कुछ नहीं होता और पूँजीवादी दायरे से बाहर की बातों को गलत रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

धर्म—

अनात्मवादी मार्क्सवाद के अनुयायी होने के कारण बॉल्शेविक लोगों को धर्म से द्रोह है। धर्म को वे केवल अन्धविश्वास ही नहीं, प्रतिक्रिया का एक

---

* Jackson : The Between-War World, p. 180.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जबरदस्त अस्त्र समझते हैं। उनका विचार है कि पूँजीवादियों ने धर्म का अफ़ीम की तरह इसलिये आविष्कार किया है कि साधारण जनता उसके नशे में बेसुध होकर पारलौकिक जीवन के सुखस्वप्नों को देखती रहे, जीवन के असली प्रश्नों को जिनका भौतिक कल्याण से सम्बन्ध है भूल कर अपने कष्टों को ईश्वर की इच्छा मानता रहे और उनके प्रतिकार का उपाय न करे। रूस में ऑर्थोडॉक्स चर्च का जो इतिहास रहा उससे भी बॉल्शेविक लोग उससे बहुत नाराज़ थे क्योंकि चर्च सदा ही ज़ार के निरंकुश शासन और अत्याचार का समर्थन करता रहता था। अतः सत्ता प्राप्त करते ही उन्होंने चर्च पर आक्रमण किया। सरकार ने उसकी समस्त सम्पत्ति ज़ब्त कर ली और चर्च की पाठशालाओं को तोड़ दिया। पादरी मतदान के अधिकार से वंचित कर दिये गये और जब उन्होंने विरोध करके लोगों को भड़काना शुरू किया तो बहुत से पादरी क़ैद कर लिये गये और बहुतसों को प्राणदण्ड मिला। बहुत से देश छोड़ कर भाग निकले। राज्य का चर्च से सम्बन्ध तोड़ दिया गया। बहुत से ज़ब्त किये हुए गिरजाघर तोड़ दिये गये और बहुत से सामाजिक क्लबों में परिवर्तित कर दिये गये। बहुत से गिरजाघर बने भी रहे परन्तु उनमें धार्मिक उपासना के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं हो सकता था। विवाह, जन्म, मृत्यु आदि संस्कारों पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं रहा। आरम्भ में तो सभी नागरिकों को धार्मिक तथा धर्म-विरोधी प्रचार की स्वतन्त्रता की घोषणा की गई परन्तु बाद में यह स्वतन्त्रता रद्द कर दी गई और नास्तिकवाद को छोड़ कर अन्य किसी मत के प्रचार का निषेध कर दिया गया।* नास्तिकवाद के प्रचार के लिये बॉल्शेविकों की ओर से निरीश्वर-सभाएँ खोली गईं जिनका काम नुमायशों, चित्रों, तथा अन्य तरीकों से धर्म की खिल्ली उड़ाना था। बच्चों की शिक्षा में धर्म का कोई स्थान न होने के कारण बड़े होने पर उन्हें तो धर्म से कोई प्रेम नहीं रहा, परन्तु पुराने लोगों की भावनाएँ नहीं बदलीं और वे अपने पुराने ढंग से ही उपासना करते रहे। इतना प्रयत्न करते हुए भी सरकार धार्मिक समाजों (Congregations) को पूर्णतया नष्ट न कर सकी। वे केवल बने ही नहीं रहे, द्वितीय विश्वयुद्ध के छिड़ने के बाद तो उन्होंने थोड़ी बहुत उन्नति भी कर ली है।†

धर्म से तो बाल्शेविकों को द्रोह है और उन्होंने ईसाई मत को नष्ट करने में कुछ नहीं उठा रखा। परन्तु अब रूस में ईसा का स्थान मार्क्स तथा

---

* Hazen : Modern European History, p. 807.

† Schevill : A History of Europe, p. 770.

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेनिन ने ले लिया है। घर-घर में उनके चित्र हैं जिनके सम्मुख दीपक जलाये जाते हैं और स्थान-स्थान पर लेनिन की विशाल मूर्तियाँ खड़ी हुई हैं जिनके प्रति रूसी जनता बड़ी श्रद्धा प्रकट करती है। मॉस्को में लेनिन का शव मशाले से सुरक्षित करके रखा हुआ है और प्रतिवर्ष लाखों स्त्री-पुरुष वहाँ उसके दर्शनार्थ जाते हैं।

सोवियत विधान—

अखिल रूसी कांग्रेस ने १९१८ में जिस विधान का निर्माण किया था उसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। उस समय रूसी साम्राज्य के बहुत से प्रदेश विद्रोही हो रहे थे और अलग हो गये थे। अतः वह विधान केवल असली रूस (प्राचीन मस्कोवी राज्य) के लिये ही था। परन्तु यह गृह-युद्ध के सिलसिले में बॉल्शेविकों ने उनमें से बहुत से प्रदेश जीत लिये थे। जब गृह-युद्ध समाप्त हुआ और शान्ति स्थापित हो गई तो उन्होंने उन प्रदेशों को शामिल करके १९२३ में एक नया विधान बनाया और 'रूसी सोश्यलिस्ट फ़ेडरेटेड सोवियत रिपब्लिक' (R .S. F. S. R.) की जगह 'सोवियत सोश्यलिस्ट रिपब्लिक्स के यूनियन' (U. S. S. R.)—सोवियत समाजवादी गणतन्त्रों के संयोग—की स्थापना की। उस समय इसमें केवल चार गणतन्त्र थे। नया विधान प्रायः वैसा ही था जैसा १९१८ का था।

नई आर्थिक नीति तथा उसके बाद स्टालिन की नीति के परिणाम-स्वरूप रूस ने सब प्रकार से उन्नति कर ली थी। सोवियत व्यवस्था में स्थिरता एवं दृढ़ता आ गई थी और उसके विरोधियों का भी अन्त हो चुका था। उस समय तक अन्य कई प्रदेश भी इस व्यवस्था में सम्मिलित हो चुके थे। अतः १९३६ में स्टालिन ने एक नया विधान बनाया जिसके अनुसार वैधानिक क्षेत्र में महान् परिवर्तन हो गया।

स्टालिन विधान—

नये विधान में 'सोवियत समाजवादी गणतन्त्रों के संयोग' की परिभाषा 'मज़दूरों तथा किसानों के समाजवादी राज्य' के रूप में की गई। उसके अनुसार रूस समान अधिकार वाले ११ सोवियत समाजवादी गणतन्त्रों के ऐच्छिक संयोग के आधार पर निर्मित संघीय राज्य है और प्रत्येक विधायक गणतन्त्र को संघ से स्वतन्त्रतापूर्वक अलग हो जाने का अधिकार प्राप्त है।

पार्लामेण्ट—

इस विधान के अनुसार अखिल-रूसी कांग्रेस तोड़ दी गई और राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सर्वोच्च सत्ता 'सर्वोच्च सोवियत' (Supreme Soviet--संघीय पार्लामेण्ट) में निहित है जिसमें समान अधिकार वाले दो सदन हैं – (१) यूनियन की सोवियत (Union Soviet) जिसके सदस्यों की संख्या लगभग ५७० है और जिसका निर्वाचन सीधा जनता द्वारा चार वर्ष के लिये होता है ; (२) अंगभूत राष्ट्रों की सोवियत (Soviet of Nationlities) जिसके सदस्यों की संख्या प्रायः प्रथम सदन के बराबर ही होती है और जिसका निर्वाचन चार वर्ष के लिए संघ के अङ्गभूत विभिन्न राष्ट्रों, जातियों एवं राज्यों के मतदाताओं द्वारा होता है।

अध्यक्ष-परिषद् (Presidium)—

राष्ट्र के अध्यक्ष का पद एक व्यक्ति को न देकर एक परिषद् को दिया गया जिसका नाम 'प्रेसीडियम' (Presidium) है। इसमें एक अध्यक्ष, ग्यारह उपाध्यक्ष, चौबीस सदस्य तथा एक मन्त्री (सेक्रेटरी) होता है। अध्यक्ष राष्ट्रपति भी कहलाता है। इसका निर्वाचन पार्लामेण्ट करती है और पार्लामेण्ट के विश्रामकाल में उसके अधिकार प्रेसीडियम को ही रहते हैं।

मन्त्रि-मण्डल—

राज्य की वास्तविक कार्यपालिका संस्था मंत्रि-मण्डल (Council of Peoples' Commissars) है जिसका प्रत्येक सदस्य शासन के एक विभाग का अध्यक्ष होता है। मन्त्रिमण्डल पार्लामेण्ट के प्रति और उसके विश्राम काल में प्रेसीडियम के प्रति उत्तरदायी होता है।

आधारभूत अधिकार—

विधान द्वारा नागरिकों को कुछ 'आधारभूत अधिकार' प्राप्त हैं प्रत्येक नागरिक को अधिकार है कि वह काम कर सके ; काम के बीच में विश्राम पा सके ; बीमारी, वृद्धावस्था, अथवा अपाहिज हो जाने की अवस्था में मुफ्त चिकित्सा और निर्वाह खर्च पा सके ; शिक्षा प्राप्त कर सके ; राष्ट्रीयता, जाति अथवा लिंग-भेद के विचार के बिना प्रत्येक क्षेत्र में समानता प्राप्त कर सके ; अपने धर्म का स्वतन्त्रतापूर्वक पालन कर सके और धर्म-विरोधी प्रचार कर सके ; भाषण, प्रेस, सभा-सोसायटी, प्रदर्शन आदि की उसे स्वतन्त्रता हो; और उसके शरीर तथा घर के साथ छेड़छाड़ न हो।

अठारह वर्ष से अधिक आयु वाले समस्त पुरुषों एवं स्त्रियों को 'जो उत्पादक कार्य' करते हैं या सेना में भरती हैं स्थानीय सोवियतों के सदस्यों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्वाचन में मत देने का अधिकार है। विधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि समस्त संघ की 'भूमि, खनिज सम्पत्ति, नदियाँ, झीलें समुद्र आदि, जंगल, कारखाने, खानें, रेल, जल तथा वायु-यातायात, बैंक, यातायात के साधन, राज्य द्वारा संगठित कृषि-सम्बन्धी बड़े कारोबार, स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के कारोबार, नगरों तथा और औद्योगिक बस्तियों के प्रधान निवास-गृहों की सम्पत्तियाँ' राज्य की अर्थात् समस्त जनता की सम्पत्ति हैं। परन्तु इसके साथ ही काम करने से जो आमदनी होती है और बचत होती है उस पर तथा रहने के मकान और व्यक्तिगत उपयोग तथा आराम की वस्तुओं पर तथा नागरिकों की वैयक्तिक सम्पत्ति को विरासत में पाने का प्रत्येक नागरिक का अधिकार क़ानून द्वारा सुरक्षित रखा गया है।

सर्वहारावर्ग के आधिपत्य का अन्त और प्रजातन्त्र की स्थापना—

इस विधान के निर्माण से पहले रूस में 'सर्वहारावर्ग का आधिपत्य' (Dictatorship of the Proletariat) था जिसका अर्थ, लेनिन के अनुसार, 'राजसत्ता प्राप्त करने के उपरान्त समाज के (तत्कालीन) सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे के विनाश के लिये सर्वहारावर्ग का वर्गीय संघर्ष' था। उसमें मताधिकार केवल मज़दूरों, सैनिकों तथा किसानों को प्राप्त था और ज़ार के समय के पुराने राज्य-कर्मचारी, पादरी, मज़दूरों से पारिश्रमिक पर काम कराने वाले लोग, निजी व्यापारी तथा धनी किसान (कुलक) मताधिकार से वंचित थे। संघर्ष-काल में यह बात स्वाभाविक थी, परन्तु समस्त क्रान्ति-विरोधी तत्वों के दमन के बाद उस व्यवस्था की आवश्यकता न रहने से शासन को उदार बनाना सम्भव हो सका जिसमें पूर्वोक्त वर्गों को अधिकार विहीन रखने की आवश्यकता न रही।

रूस में इसके पहले नाम के लिये तो सर्वहारावर्ग का आधिपत्य था परन्तु वह वास्तव में कम्यूनिस्ट दल का आधिपत्य था क्योंकि वास्तविक सत्ता उसी के हाथों में थी; वही ऐसी शक्ति थी जो सर्वहारावर्ग का निर्देशन कर सकती थी। अब ऊपर से देखने में तो स्थिति बदल गई। सर्वहारावर्ग के आधिपत्य का अन्त कर दिया गया और निर्वाचन के वर्गीय आधार के स्थान पर 'सार्वलौकिक, समान तथा सीधे मताधिकार' की व्यवस्था द्वारा प्रजातन्त्रीय विधान की प्रतिष्ठा की गई। इस विधान में प्रजातन्त्र के सभी आधारभूत सिद्धान्त मौजूद हैं और स्टालिन ने दावा किया था कि संसार में सोवियत प्रजातन्त्र ही एक मात्र सच्चा प्रजातन्त्र है। परन्तु उसमें व्यवस्थापक, कार्यपालक तथा न्याय-विभागों में कोई वास्तविक पार्थक्य नहीं है और कार्यपालिका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के रूप में कोई सारभूत परिवर्तन नहीं किया गया।* वास्तव में, इस नये विधान में भी कम्यूनिष्ट दल का प्राधान्य अक्षुण बना रहा क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई दूसरा राजनीतिक दल नहीं हो सकता था।

कम्यूनिस्ट दल—

कम्यूनिस्ट दल बड़ा ही सुसंगठित, शक्तिशाली और अनुशासन-सम्पन्न दल है। इस दल का वही व्यक्ति सदस्य हो सकता है जिसे मार्क्स तथा लेनिन के सिद्धान्तों में अटल विश्वास हो, जो दल के अनुशासन का पूर्णतया पालन करने को तैयार हो और उम्मेदवारी की अवधि में जो दल के लिए अपने उत्साह एवं अपनी लगन का पूर्ण प्रमाण दे सके। सभी सदस्यों को निरन्तर क्रियाशील रहना पड़ता है और अपने आचरण को 'अनिंद्य' रखना पड़ता है। इन गुणों से युक्त लोग अधिक नहीं मिलते और इस कारण कम्यूनिस्ट दल के सदस्यों की संख्या अधिक नहीं है। १९३९ में १७ करोड़ की जनसंख्या में से दल के सदस्यों की कुल संख्या २५ लाख के लगभग थी। कम्यूनिस्ट लोग सदस्यों की संख्या को उतना महत्व नहीं देते जितना उनकी लगन, दल-भक्ति; दृढ़ता आदि गुणों को। दल के संगठन का आधार भी संघ के संगठन की तरह स्थानीय सोवियत है। प्रत्येक कारखाने, दफ्तर और गाँव में दल की एक शाखा होती है जो प्रान्तीय या प्रादेशिक कमिटियों के लिये अपने प्रतिनिधि चुनती है और प्रान्तीय कमिटियाँ अखिल-संघीय पार्टी काँग्रेस के लिए प्रतिनिधि भेजती है। यह काँग्रेस एक केन्द्रीय कमिटी का निर्वाचन करती है जिसकी एक उपसमिति 'पोलिटिकल ब्यूरो' (Politburo) होती है जिसमें नौ सदस्य रहते हैं। यह ब्यूरो समस्त संघ के लिए सर्वोच्च सत्ता का केन्द्र है। यही देश के लिए मुख्य नीतियों का निर्धारण करता है और अपनी पार्टी के संगठन, जासूसों, गुप्त पुलिस, स्वेच्छाचारपूर्ण गिरफ्तारियों एवं हत्याओं आदि के द्वारा स्थानीय शाखाओं से लेकर ऊपर तक उन नीतियों का पालन करवाता है। सिद्धान्त की दृष्टि से तो कम्यूनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार अलग-अलग हैं परन्तु व्यवहार में इन दोनों में कोई भेद नहीं है। जिसका पार्टी में प्राधान्य है उसका देश में भी प्राधान्य है और वही देश पर अधिनायक की तरह शासन करता है। लेनिन तथा स्टालिन की शक्ति पार्टी में उनके प्राधान्य पर ही आधारित थी। कम्यूनिस्ट पार्टी समस्त शासन, आर्थिक व्यवस्था एवं सांस्कृतिक साधनों पर नियन्त्रण रखती है। देश में कोई भी

---

* Grant and Temperley : Europe in the 19th and 20th Centuries; p. 473.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण निर्णय पार्टी के आदेशों के बिना नहीं हो सकता। पार्टी का अनुशासन बड़ा कठोर है और प्रत्येक सदस्य को सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों में दलीय नीति का पालन करना पड़ता है और उसे किसी विषय में निर्णय हो जाने के बाद उसकी आलोचना करने या उसका विरोध करने की स्वतन्त्रता नहीं है। प्रत्येक जगह पार्टी के सदस्यों की एक समिति (गुट) होती है और वे स्थानीय सोवियतों, ट्रेड यूनियनों, सहकारी समितियों, आर्टेलों तथा अन्य संस्थाओं की सभाओं में नेतृत्व करते हैं, प्रशासनीय तथा आर्थिक संस्थाओं के उच्च पदों पर वे ही रहते हैं, प्रत्येक क्षेत्र में नीति-निर्धारण करते हैं और उन नीतियों का पालन करवाने का भार भी उन्हीं पर रहता है।

पार्टी में विरोध बिलकुल सहन नहीं किया जाता और बड़े से बड़े आदमी को भी बिना पक्षपात के दण्ड दिया जाता है। दण्ड प्रायः मृत्यु का ही हुआ करता है। ट्रॉट्स्की की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। स्टालिन उसके उग्र विचारों से सहमत नहीं था। इस कारण क्रान्ति तथा गृह-युद्ध के समय की उसकी महान् सेवाओं का विचार किये बिना १९२७ में वह दल से निकाल दिया गया और १९२९ में देश से भी निर्वासित कर दिया गया। ट्रॉट्स्की के साथ भी जिसने स्टालिन को देश के आर्थिक उत्थान के लिए ख़तरा दिखाई देता था, नष्ट कर दिये गये, बहुत-सों पर तो कोई खुला मुकदमा भी नहीं चलाया गया। अगस्त १९३६ में ज़िनोवीव और कामेनेव पर जो १९२४ में लेनिन की मृत्यु के बाद से स्टालिन के साथ रूस का शासन कर रहे थे, मुक़दमा चलाया गया। वे दोषी ठहराये गये और मृत्यु-दण्ड के भागी हुए। उनका अपराध यह बतलाया गया था कि उन्होंने स्टालिन, वोरोशिलॉव तथा ट्रॉट्स्की के प्रधान विरोधियों की हत्या के लिए प्रयत्न किया था। इस प्रकार के विद्रोहियों की खोज जारी रही और १९३७ में लाल सेना के मार्शल तुख़चेव्स्की तथा सात अन्य जनरल मुकदमे के बाद गोली से उड़ा दिये गये और सैकड़ों अफसर सेना से हटा दिये गये। बॉल्शेविकों के शत्रु इन सब बातों से यह समझते थे कि सोवियत व्यवस्था भंग हो रही है और लाल सेना कम्यूनिस्ट द्रोहियों के कारण निर्बल है और यह सोचकर प्रसन्न थे। कई लोग यह समझते थे कि ये सब अ.फसर सोवियत विदेश-नीति में परिवर्तन करने का प्रयत्न कर रहे थे जिसका उद्देश्य रूस को .फ्रान्स से अलग करके जर्मनी की ओर ले जाना था। इन दिनों जर्मनी में हिटलर सर्वेसर्वा था और १९१९ की जर्मनी की पराजय के प्रतिशोध की तैयारी कर रहा था। उस डर से .फ्रान्स और रूस परस्पर सहयोग करने का प्रयत्न कर रहे थे। इन हत्याओं का कारण कुछ भी रहा हो परन्तु उनका एक परिणाम यह अवश्य हुआ कि .फ्रान्स के सैनिक अधिकारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूस के साथ सैनिक सहयोग की बातचीत करने में अनिच्छा प्रकट करने लगे और रूस की ओर से अनेक प्रयत्न होने पर भी दोनों देशों के सैनिक अधिकारियों में बातचीत न हो सकी।❀

विदेश-नीति—कामिन्टर्न—

क्रान्ति के उपरान्त बॉल्शेविकों को आशा थी कि योरोप में शीघ्र ही सर्वत्र क्रान्ति हो जायगी और विश्व-क्रान्ति के लिए प्रयत्न करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जैसा हम पहले देख चुके हैं, तृतीय (साम्यवादी) अन्तर्राष्ट्रीय (कॉमिन्टर्न) की मॉस्को में स्थापना की। सम्मेलन का मुख्य कार्यालय मॉस्को में रहा। यह एक स्वतन्त्र संस्था थी और इसमें सभी देशों के साम्यवादी दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे परन्तु उसका मुख्य कार्यालय मॉस्को में होने के कारण रूस के बॉल्शेविक नेताओं का उसमें प्राधान्य था और संसार में प्रायः सभी राष्ट्र उसे रूस के वैदेशिक विभाग का ही दफ्तर समझते थे। चूँकि कॉमिन्टर्न की स्थापना समस्त वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को उलट कर एक संसार-व्यापी साम्यवादी समाज की रचना के लिए हुई थी, अतः सभी उसे और उसके साथ ही रूस को आशंका की दृष्टि से देखते थे। ऐसी स्थिति में क्रान्ति के बाद के कुछ वर्षों तक रूस की अन्य राष्ट्रों से कोई मैत्री नहीं हो सकती थी।

लेनिन की नीति में परिवर्तन—जर्मनी के सम्बन्ध—

परन्तु जब लेनिन ने युद्धकालीन साम्यवाद की नीति का अवलम्बन किया तो रूस के वैदेशिक सम्बन्धों में सुधार की सम्भावना दिखाई देने लगी। लेनिन अन्य देशों से, जो अभी तक उसका बहिष्कार करते चले आ रहे थे, सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था और रूस के पुनर्निर्माण के कार्य के लिए विदेशी पूँजी की सहायता चाहता था। यह देख कर पूँजीवाद राष्ट्रों के राजनीतिज्ञ तथा धनकुबेर लोग रूस के पुनर्निर्माण में आर्थिक सहायता करके अपने लाभ की बातें सोचने लगे। परन्तु कोई भी राष्ट्र रूस से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने की बात तब तक नहीं सुनना चाहता था जब तक रूस कॉमिन्टर्न के संसार-व्यापी साम्यवादी प्रचार को

❀ Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, pp. 473-474,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रोकने का वचन न दे दे। लेनिन ने यह वचन दे दिया और योरोप के देशों से व्यापारिक समझौते करने का मार्ग खुल गया। * इसी दृष्टि से अप्रेल १९२२ में जिनोआ में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें रूस का विदेश-मन्त्री चिचरिन (Tchitcherin) सम्मिलित हुआ। चिचरिन ने रूस के युद्ध के पहले और युद्ध-काल के समस्त ऋणों को स्वीकार करने तथा विदेशियों की जब्त की हुई सम्पत्ति को वापस लौटाने या उसका मुआविज़ा देने का वचन दिया और उसके बदले में रूस की सोवियत सरकार को तुरन्त विधिवत् मान्यता प्रदान करने और भारी ऋण देने की मांग की। परन्तु विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक मतभेद के कारण सम्मेलन सफल न हो सका। फिर भी उससे एक लाभ यह अवश्य हुआ कि जर्मनी और रूस में पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न हुई और दोनों के बीच रेपालो (Rapallo) की सन्धि हुई जिसके अनुसार जर्मनी ने सोवियत सरकार को वैध मान्यता प्रदान की, दोनों ने युद्ध के समय भी क्षति-पूर्ति के दावों तथा युद्ध-पूर्व ऋणों को छोड़ दिया और दोनों के बीच सामान्य व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। (१६ अप्रेल १९२२) † इसके पहले ही फ़िनलैण्ड, एस्टोनिया, लेटविया, लिथुएनिया, पोलेण्ड, टर्की, फ़ारस तथा अफ़गानिस्तान ने अपनी-अपनी सीमाएँ निर्धारित करते समय सोवियत सरकार को मान्यता प्रदान कर दी थी, और १९२१ में इङ्गलैण्ड के साथ भी उसकी व्यापारिक सन्धि हो चुकी थी, हालाँकि दोनों के बीच राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका था। जर्मनी ही सर्वप्रथम बड़ा राज्य था जिसने रूस के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया था।

विभिन्न राज्यों से सम्बन्ध की स्थापना—जर्मनी ने रूस के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करके अन्य राज्यों के लिये मार्ग खोल दिया। १९२४ में इंगलैण्ड में रेम्ज़े मेक्डॉनेल्ड के नेतृत्व में मज़दूर दल का मंत्रिमंडल बना जिससे इंगलैण्ड की विदेश-नीति में परिवर्तन हुआ। वह रूस को राष्ट्र-सङ्घ से अलग रखने की नीति का विरोधी था और इंगलैण्ड का उसके साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। वह मानता था कि कॉमिन्टर्न की कार्यवाहियों के कारण इस कार्य में कठिनाई अवश्य थी परन्तु उन कठिनाइयों को दूर करने का एकमात्र उपाय उसे रूस के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेने में ही दिखाई देता था जिससे उसके साथ सीधी बातचीत द्वारा मामले निपटाये जा सकें। इसी समय फ़्रान्स में भी समाजवादी दल की जीत हुई और योरोप

---

* Schevill : A History of Europe, p. 772.

† Vernadsky : A History of Russia, p. 298.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा रूस के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया। सर्वप्रथम फ़र्वरी के आरम्भ में इङ्गलैण्ड ने रूस की सोवियत सरकार को वैध स्वीकार किया। उसके बाद इटली (७ फ़र्वरी), नॉर्वे (१५ फ़र्वरी), ऑस्ट्रिया (२५ फ़र्वरी), स्वीडेन (१५ मार्च), चीन (३१ मई), डेन्मार्क (१८ जून), मेक्सिको (४ अगस्त), और फ़्रान्स (२८ अक्टूबर) की भी वैध मान्यता उसे प्राप्त हो गई। उस वर्ष जर्मनी से कुछ तनातनी रही और जब १९२५ में जर्मनी ने लोकार्नो में इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स तथा इटली से पारस्परिक सुरक्षा-सम्बन्धी सन्धि कर ली तो रूस को उसके प्रति शंका उत्पन्न हो गई। फिर भी उसने उसके साथ समझौते की पुनरावृत्ति कर ली जिसके द्वारा दोनों ने तटस्थता क़ायम रखने और एक दूसरे पर आक्रमण न करने के परस्पर वचन दिये।*

स्टालिन की नीति—अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति—

जब स्टालिन रूस का सर्वेसर्वा बन गया तो उसके वैदेशिक सम्बन्ध और भी अच्छे हो गये। स्टालिन रूस के पुनर्निर्माण में अपनी समस्त शक्ति लगाना चाहता था जिसके लिए शान्ति की आवश्यकता थी और इस कारण उसकी विदेश नीति का मुख्य लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये प्रयत्न करना और उसके द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित करना था।†

उस समय योरोप में वातावरण भी शान्तिपूर्ण था। १९२८ में पेरिस में संयुक्त राष्ट्र, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, इटली, जापान, फ़्रान्स तथा चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, रूमानिया आदि ने केलॉग-ब्रियाँ समझौते पर हस्ताक्षर करके अपनी राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में युद्ध के परित्याग की घोषणा की थी और १९२९ के अन्त तक उस पर ५३ राष्ट्रों के हस्ताक्षर हो चुके थे। रूस ने भी इस घोषणा को पूर्वी योरोप में कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया और अपने पड़ौसी देशों को इसी प्रकार के समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिये आमंत्रित किया। फर्वरी १९२९ में रूस, पोलेण्ड, रूमानिया, लेटविया, एस्टोनिया, लिथुएनिया, टर्की तथा फारस ने परस्पर वचन दिया और समझौते (Litvinov Protocol) पर हस्ताक्षर किये। इसके बाद शीघ्र ही उसने पड़ौसी तथा अन्य राज्यों से 'अनाक्रमण समझौते' (Non-aggression pacts) करना आरम्भ किया और १९३०-३१ में फ़िनलेण्ड, लेटविया, लिथुएनिया, एस्टोनिया, पोलेण्ड तथा फ़्रान्स से इस प्रकार के समझौते किये। उसने इङ्गलैंड

*Dhar : Europe between the Two-World Wars, p. 294.
†Vernadsky : A History of Russia, p. 349.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से भी सन्धि कर ली (१९३०) और इटली से भी मित्रता की सन्धि की चर्चा आरम्भ की जो १९३३ में फलीभूत हुई और उससे भी मित्रता स्थापित हो गई।* १९३३ में संयुक्त राष्ट्र ने भी उसे मान्यता प्रदान कर दी।

राष्ट्रसंघ से सहयोग—

इस प्रकार अन्य देशों के साथ सन्धियाँ करने के अतिरिक्त वह राष्ट्रसंघ के द्वारा भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहता था। आरम्भ में तो बॉल्शेविक लोग राष्ट्रसंघ को साम्यवाद के विनाश के लिये पूँजीवादी राष्ट्रों का एक षडयन्त्र समझते थे परन्तु अब रूस धीरे-धीरे उसके सम्पर्क में आने लगा। राष्ट्रसंघ का सदस्य न होते हुए भी उसके प्रतिनिधि १९२७ से उसके आर्थिक सम्मेलनों में सम्मिलित होने लगे, उसके अनेक कार्यों में सहयोग करने लगे और निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भी भाग लेने लगे। अन्त में १९३४ में इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, इटली तथा अन्य कई छोटे योरोपीय राज्यों के समर्थन से वह राष्ट्रसंघ का सदस्य बना लिया गया और उसे कौंसिल की स्थायी सदस्यता भी प्राप्त हो गई।

हिटलर का उदय और स्टालिन की नीति—फ्रान्स तथा इंगलैण्ड से घनिष्टता बढ़ाने का प्रयत्न—

इन्हीं वर्षों में दो घटनाएँ ऐसी हो चुकी थीं जो आगे चल कर विश्व की शान्ति के लिये घातक सिद्ध हुईं। १९३१ में सुदूर पूर्व में जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण किया और शीघ्र ही उस पर अपना प्राधान्य स्थापित कर लिया। इधर योरोप में जर्मनी में वाइमर गणतन्त्र का अन्त हो गया और उसके स्थान पर नात्सी-शासन स्थापित हो गया। इन वर्षों में अन्य राज्यों से रूस के सम्बन्ध सुधर सके उसका कारण शायद यही दो घटनाएँ थीं।$ स्टालिन को इन दोनों घटनाओं में रूस के लिये संकट मालूम हो रहा था। जापानी लोग मंगोलिया की ओर बढ़ रहे थे और हिटलर की आँखें यूक्रेन प्रदेश पर लगी हुई थीं। उसने अपनी पुस्तक 'मेरे संघर्ष' (Mein Kampf) में लिखा था—'हम युद्ध के पहले की औपनिवेशिक तथा व्यापारिक नीति का परित्याग करके भावी प्रादेशिक नीति की ओर क़दम उठाते हैं। यदि हम आज योरोप में नई भूमि और नये प्रदेश की बात करते हैं तो हम मुख्यकर रूस तथा उसके सीमावर्ती अधीनस्थ राज्यों के बारे में ही सोच सकते हैं।'† स्टालिन के सामने

---

* Barbara Ward : Russia Foreign Policy, p. 13.

$ Vernadsky : A History of Russia, p. 365.

† Mein Kampf (Murphy), p. 360.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़ी कठिन समस्या थी। रूस की सैनिक तैयारी अभी बिल्कुल साधारण थी और वह खूब अच्छी तरह समझता था कि यदि रूस को अकेले युद्ध करना पड़ा तो उसकी विजय संदिग्ध थी। अतः वह अन्य राष्ट्रों से मित्रता जोड़ना अत्यन्त आवश्यक समझता था। इसी आवश्यकता की अनुभूति के कारण उसने उपर्युक्त समझौते किए, राष्ट्रसंघ की सदस्यता भी प्राप्त की और फ्रान्स तथा इंगलैण्ड से घनिष्टता बढ़ाने का प्रयत्न किया। राष्ट्रसंघ ने प्रवेश करने के बाद तुरन्त ही (दिसम्बर, १९३४) रूस के विदेश-मन्त्री लिटविनोव तथा फ्रेञ्च विदेश-मन्त्री लावाल में जनीवा में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार दोनों ने पूर्वीय योरोप की सुरक्षा के लिए सहयोग करने का वचन दिया। कुछ दिन बाद चेकोस्लोवाकिया भी इस व्यवस्था में सम्मिलित हो गया। इन समझौतों के फलस्वरूप दोनों पक्षों में घनिष्टता बढ़ने लगी और २ मई १९३५ को फ्रान्स और रूस के बीच सन्धि हो गई जिसके अनुसार यह तय हुआ कि यदि कोई योरोपीय राज्य दोनों में से किसी पर अकारण आक्रमण करे तो दूसरा उसकी सहायता करेगा। दो सप्ताह बाद ऐसी ही सन्धि चेकोस्लोवाकिया से भी की गई, परन्तु इस सन्धि के अनुसार रूस सहायता देने के लिए उसी समय बाध्य था जब फ्रान्स भी पूर्व सन्धि के अनुसार उसकी सहायता करता। इस प्रकार फ्रांस और रूस के बीच हिटलर के उत्थान के कारण परस्पर सहयोग होने लगा परन्तु सन्धि हो जाने पर भी पूर्ण सहयोग के मार्ग में कठिनाई थी। फ्रान्स के रूढ़िवादियों में रूस के प्रति अभी भी शंका मौजूद थी* और इंगलैण्ड भी सशंक था। वास्तव में, जैसा हम आगे चल कर देखेंगे, इंगलैण्ड हिटलर के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करना चाहता था, बल्कि उसे सन्तुष्ट करना चाहता था। फ्रांस इंगलैण्ड के सहयोग के बिना कोई कदम नहीं उठाना चाहता था। ऐसी दशा में जर्मनी के विरुद्ध रूस को फ्रांस तथा इंगलैण्ड का सहयोग मिलना संदिग्ध ही था। हिटलर भी इस बात को अच्छी तरह जानता था। उसने इटली के साथ मिलकर रूस के प्रयत्नों को विफल करने और योरोप की बॉल्शेविज़्म से रक्षा करने का बीड़ा उठाया।‡ जब स्पेन में जनरल फ्रेंको ने गणतन्त्रीय सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया (जुलाई १९३६) तो जर्मनी और इटली दोनों ने फ्रेंको को सहायता दी। रूस चाहता था कि फ्रांस और इङ्गलैंड हस्तक्षेप न करने की नीति का वहीं तक अवलम्बन करें जहाँ तक जर्मनी और इटली कर रहे थे और उसके साथ गणतन्त्रीय सरकार की सहायता करें परन्तु

---

* Vernadsky : A History of Russia, p. 366.

‡ Barbara Ward : Russian Foreign Policy, p. 21.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे तटस्थता की आड़ में चुप बैठे रहे और इस प्रकार गणतन्त्र के विनाश में सहायता करते रहे।‡

इङ्गलैण्ड और फ्रांस के रुख से प्रोत्साहित होकर हिटलर ने आस्ट्रिया हड़प लिया और चेकोस्लोवाकिया को भी हड़पने का प्रयत्न किया। उसके साथ फ्रांस की सन्धि थी जिसके अनुसार फ्रांस चेकोस्लोवाकिया की रक्षा करने के लिए बाध्य था। रूस सन्धि के अनुसार उसकी रक्षा के लिए तैयार था परन्तु वह उसकी सहायता तभी कर सकता था जब कि फ्रान्स पहले सहायता पर पहुँचता। परन्तु चूंकि इङ्गलैण्ड हिटलर को सन्तुष्ट करना चाहता था और फ्रांस इङ्गलैंड के सहयोग के बिना कोई कदम नहीं उठाना चाहता था, रूस कुछ नहीं कर सका। फ्रांस और इङ्गलैण्ड ने रूस को शामिल किये बिना ही जर्मनी और इटली के साथ 'म्यूनिख-समझौता' कर लिया जिसके फल-स्वरूप चेकोस्लोवाकिया का अङ्ग-भङ्ग हो गया। (सितम्बर १९३८) और रूस को पश्चिमी प्रजातन्त्रों से सहयोग करने की नीति की व्यर्थता अच्छी तरह प्रकट हो गई।§

रूस की कठिनाई—

अब रूस की स्थिति बड़ी कठिन हो गई। अक्टूबर १९३६ में जर्मनी तथा इटली में मित्रता (Rome-Berlin Axis) स्थापित हो गई थी। नवम्बर १९३६ में जर्मनी ने जापान से कॉमिन्टर्न-विरोधी सन्धि (Anti-Commintern Pact) कर ली थी और १९३७ में इटली भी उस सन्धि में शामिल हो चुका था इस प्रकार रूस पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर से शत्रुओं द्वारा घिरा हुआ था। फ्रांस से उसे सहायता की कोई आशा नहीं थी। इतना ही नहीं, म्यूनिख में चेकोस्लोवाकिया के अङ्गभङ्ग के सम्बन्ध में इङ्गलैण्ड और फ्रान्स ने जर्मनी तथा इटली से जो समझौता किया था उसका स्पष्ट अर्थ यह था कि उन्होंने जर्मनी को पूर्व की ओर बढ़ने की छूट दे दी थी। इस प्रकार रूस बिल्कुल अकेला पड़ गया था और उसकी स्थिति बड़ी खतरनाक हो गई थी।

जर्मनी से अनाक्रमण-सन्धि—

जब मार्च १९३९ में हिटलर ने अवशिष्ट चेकोस्लोवाकिया को भी हड़प लिया और उसकी हेकड़ी बढ़ती गई तो इङ्गलैण्ड को अपनी भूल मालूम हुई और उस पर रोक लगाने की दृष्टि से उसने पोलेण्ड को अखण्डता की गारन्टी दी। फ्रान्स ने भी उसका साथ दिया। इसके साथ ही दोनों ने रूस से भी सहयोग की

---

‡ Schuman : International Politics, p. 876.

§ Ingram : Years of Crisis, p. 169.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रार्थना की। स्टालिन को अब इन दोनों देशों की सरकारों में कोई विश्वास नहीं रह गया था फिर भी वह उनसे बातचीत करने लगा परन्तु इंगलैण्ड केवल रूस को फंसाना चाहता था। इंगलैण्ड ने पोलेण्ड को गारन्टी दे रखी थी और वह चाहता था कि रूस भी उसे गारण्टी दे। परन्तु रूस चाहता था कि पोलैण्ड के साथ बाल्टिक सागर के तटीय राज्यों को भी इङ्गलैण्ड और फ्रान्स गारण्टी दें। इंगलैण्ड और फ्रान्स इस बात के लिए तैयार नहीं हुए।* इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि यदि जर्मनी बाल्टिक सागर के तटीय देशों पर आक्रमण करता और उनमें से होकर रूस पर चढ़ दौड़ता तो इंगलैण्ड और फ्रान्स उसकी सहायता के लिए बाध्य नहीं थे।† ऐसी परिस्थिति में स्टालिन उनकी मनोवृत्ति को अच्छी तरह ताड़कर आत्मरक्षा की दृष्टि के साथ ही साथ जर्मनी से भी बात कर रहा था। इंगलैण्ड और फ्रान्स तो रूस को बहकाने में ही लगे रहे, उधर उसने २३ अगस्त १९३९ को जर्मनी से समझौता कर लिया जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि दोनों में से कोई भी एक दूसरे पर अकेले या किसी से मिलकर आक्रमण नहीं करेगा।§ इस प्रकार स्टालिन ने उस समय की अत्यन्त भीषण परिस्थिति में रूस को युद्ध की ज्वाला से दूर रखने का प्रयत्न किया। जब सितम्बर १९३९ में जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया और द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो रूस तटस्थ रहा।

नई व्यवस्था के परिणाम—

रूस को अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त होने के कारण उसकी परिवर्तित विदेश-नीति के साथ-साथ उसकी आश्चर्यजनक उन्नति, शक्ति एवं स्थिरता भी थी। बीस वर्ष के अन्दर लेनिन और स्टालिन के महान् नेतृत्व में रूस की जनता ने अपने देश को जो क्रान्ति के समय अत्यन्त पिछड़ा हुआ था समृद्ध एवं समुन्नत बनाकर संसार की एक प्रधान शक्ति बना दिया। क्रान्ति के बाद वर्षों तक पूँजीवादी देश उसकी उन्नति के विषय में सन्देह प्रगट करते रहे और इस आशा में रहे कि वह शीघ्र ही अपने विनाशकारी प्रयोग को त्याग कर फिर से उन्हीं के ढंग पर आ जायगा परन्तु उनकी आशा व्यर्थ रही। द्वितीय महायुद्ध में जो गौरवपूर्ण भाग उसने लिया उसके द्वारा उसने अपनी उन्नति एवं शक्ति का

---

*Vernadsky : A History of Russia, p. 393.

†Schuman : International Politics, p. 878.

§Vernadsky : A History of Russia, p. 394. रूस के साथ इंगलैण्ड और फ्रान्स की जो सन्धि चर्चा १९३८ में चलती रही उसका पूर्ण विवरण Falsifiers of History, Moscow, 1948 में पृष्ठ २७-४१ पर दिया हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

असंदिग्ध प्रमाण दिया। इस उन्नति के लिए जनता को बड़ा भयंकर बलिदान करना पड़ा। पुरानी व्यवस्था को समूल नष्ट करके एक अपरिवर्तनशील समाज में बिलकुल नई व्यवस्था करने का कार्य बिना बलिदान के नहीं हो सकता था। बॉल्शेविक नेताओं को अपने अनेक शत्रुओं का बड़ी निर्दयतापूर्वक नाश करना पड़ा जिसमें लाखों व्यक्तियों को अपने प्राणों तथा सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ा। अपनी योजनाओं को सफल करने के लिए नेताओं को कठोर अनुशासन से काम लेना पड़ा और सहयोग न देने वालों को कड़ी सज़ाएँ देनी पड़ीं। सहयोग देने वालों को भी अपनी आवश्यकता की वस्तुओं के अभाव में बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े। परन्तु इस महान् बलिदान के फल-स्वरूप रूस का कायापलट हो गया। द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ (१९३९) के पहले तक दो पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश में जीवन के अनेक क्षेत्रों में बड़ी ज़बरदस्त उन्नति हुई। कृषि नवीन एवं वैज्ञानिक ढंग से होने लगी और उपज पहले से बहुत बढ़ गई। अनेक प्रकार के बड़े-बड़े कारखाने खुले और रूस की संसार के बड़े-बड़े उद्योग प्रधान देशों में गणना होने लगी। देश के प्राकृतिक साधनों का खूब उपयोग हुआ, देश की समृद्धि बढ़ी और आर्थिक दृष्टि से, विशेषकर भोज्य पदार्थों और बड़े उद्योगों की दृष्टि से, रूस स्वावलम्बी हो गया। जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठा और उसे अनेक प्रकार की सामाजिक सेवाएँ प्राप्त होने लगीं। वृद्धावस्था, बीमारी तथा अपाहिज अवस्था में व्यक्ति को सरकार की ओर से निर्वाह व्यय मिलता है, मुफ्त चिकित्सा होती है, काम के घन्टे कम हो गये हैं, वर्ष में वेतन-सहित छुट्टी मिलती है, प्रत्येक व्यक्ति को काम मिलने की गारण्टी है, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था है जिससे निरक्षरता का प्रायः मिट गई है। इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने और जनता की आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति करने में नई व्यवस्था को काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है।

समीक्षा—

बॉल्शेविक क्रान्ति संसार के इतिहास में एक महान् घटना है। उसके द्वारा मार्क्स के सिद्धान्त के अनुकूल एक विशाल समाज की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक रचना में आमूलचूल परिवर्तन करने का प्रयत्न किया गया है। क्रान्ति के नेताओं ने कुछ ही वर्षों में अपने देश में ज़मींदारों और पूँजीपतियों को निर्मूल कर दिया, कारखानों एवं भूमि का राष्ट्रीयकरण कर दिया और व्यक्तिगत प्रयत्न व्यक्तिगत श्रम पर आधारित किसानों और छोटे छोटे शिल्पियों के छोटे-छोटे व्यवसायों में ही रह गया है। निजी लाभ की भावना का दमन कर दिया गया है और व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा शोषण का अन्त हो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है। इस प्रकार बॉल्शेविक नेताओं ने जो व्यवस्था की है वह पूँजीवादी व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है।

परन्तु इस नवीन व्यवस्था की अनेक प्रकार से समालोचना की जाती है। यह कहा जाता है कि सोवियत रूस को हम वर्गविहीन राज्य नहीं कह सकते। यह तो सत्य है कि पूंजीपतियों तथा जमींदारों के विनाश से उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर स्थिर समाज की पुरानी व्यवस्था नष्ट हो गई है जिसमें एक वर्ग शोषकों का और दूसरा शोषितों का था, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझा जा सकता कि अब रूस में केवल एक ही वर्ग रह गया है। अब पुराने वर्गों के स्थान पर नये वर्ग बन गये हैं। नौकरशाही, कुशल शिल्पियों तथा समृद्ध सामूहिक कृषकों का एक नया शासक वर्ग बन गया है जिसमें लाखों व्यक्ति है जिनकी आमदनी सर्व-साधारण लोगों से अधिक है। इस नये सम्पन्न वर्ग का उत्पन्न होना इस बात का प्रमाण है कि रूस समाजवादी सिद्धान्तों से फिर पूँजीवादी सिद्धान्तों की ओर लौट रहा है। जिस सर्वहारा वर्ग को क्रांति के फल-स्वरूप सर्वोच्च अवस्था में पहुँचाने की योजना थी वह अब भी निम्न स्तर पर ही बना हुआ है। ऊपर से देखने में मज़दूर मज़दूरी पर काम करने वाला गुलाम नहीं वरन् स्वतन्त्र काम करने वाला है परन्तु वास्तव में पूँजीपतियों के हाथों से कारखानों को राज्य के हाथ में कर लेने से उसकी दशा में कोई अन्तर नहीं हुआ है। उसे अब भी एक निश्चित वृत्ति पर निश्चित समय के लिये काम करने के लिये मजबूर किया जाता है। सरकारी कारखानों की आन्तरिक व्यवस्था सारतः पूंजीवादी व्यवस्था से भिन्न नहीं है। व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा शोषण भी बन्द नहीं हुआ है क्योंकि उच्च वर्ग के लोगों के व्यक्तिगत नौकर भी हैं।

यह भी कहा जाता है कि उत्पादन के क्षेत्र में लाभ की भावना न रहते हुए भी वितरण के क्षेत्र में वह भावना बनी हुई है और अधिक काम करके अधिक कमाने के लिये प्रोत्साहन तथा विशिष्ट कुशलता के लिये अधिक पुरस्कार देकर आर्थिक व्यक्तिवाद को जानबूझकर प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार काम करने वालों की आमदनियों में असमानता विद्यमान् है जिससे कम परिश्रमिक पाने वाले गरीब मजदूरों से सन्तोष है और जिस वर्ग-संघर्ष का यह व्यवस्था दावा करती है वह फिर से उत्पन्न हो गया है। आलोचक लोग यह भी कहते हैं कि जनता का जीवन-स्तर पश्चिमी देशों की तुलना में नीचा है, व्यक्तिगत उपयोग की वस्तुओं की कमी है, मजदूरों में कुशलता की भी कमी है और वे अन्य देशों के मज़दूरों के मुकाबले में कम उत्पादन कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकते हैं। समष्टि रूप से उत्पादन देश की विशाल जनसंख्या के लिये काफी नहीं होता और जो उत्पादन होता है वह भी निम्न कोटि का होता है।

नई व्यवस्था के विरुद्ध एक आपत्ति यह भी की जाती है कि नागरिक के व्यक्तिगत अधिकार सुरक्षित न होने से आर्थिक सुरक्षा केवल दासता का चिन्हमात्र ही है। १९३६ के विधान में नागरिक के आधारभूत अधिकारों की गारण्टी दी गई है परन्तु वे गारण्टियाँ प्रायः व्यर्थ सी हैं। उदाहरणार्थ, प्रत्येक नागरिक को मतदान की स्वतन्त्रता है परन्तु मत एक ही पार्टी के उम्मीदवारों की सूची के लिये दिया जा सकता है और निर्वाचन में विरोधी उम्मीदवार खड़े नहीं हो सकते। इसी प्रकार भाषण की भी स्वतन्त्रता है परन्तु सोवियत संगठन के मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध कोई विचार प्रकट नहीं किये जा सकते। यह सत्य है कि सरकार जनता को प्रशासन के विषय में अपने विचार प्रकट करने के लिये आमन्त्रित करती है और जिन बातों पर उसने कोई निर्णय नहीं किया है उन पर वाद-विवाद भी होने देती है परन्तु लोग इस भय से अपने स्वतंत्र विचार प्रकट नहीं कर सकते कि कहीं उन पर प्रतिक्रान्तिवादी होने का अपराध नहीं मढ़ दिया जाय। यही समाचारपत्रों की स्वतंत्रता के विषय में कही जा सकती है। व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतन्त्रता भी पुलिस के विशाल संगठन तथा उसकी कठोर कार्रवाइयों के सामने व्यर्थ सी है। वहाँ किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता अथवा जीवन तक सुरक्षित नहीं।*

प्रत्युत्तर--

द्वितीय महायुद्ध के पहले तक इन आक्षेपों में से बहुत से आक्षेपों सत्य थे। परन्तु हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि कोई भी व्यवस्था सर्वथा निर्दोष नहीं होती और आदर्श व्यवस्था असम्भव है। बॉल्शेविकों का ध्येय साम्यवादी व्यवस्था स्थापित करना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करेगा और अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुओं को प्राप्त कर सकेगा। अभी वे समाजवादी व्यवस्था स्थापित कर पाये हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम के अनुपात में पारिश्रमिक प्राप्त करता है। रूस में जनता की अवस्था में जो उन्नति हुई है उसका कुछ वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं और वह प्रशंसनीय है। रूस के नागरिकों को आर्थिक सुरक्षा प्राप्त है और यदि हम स्वतन्त्रता शब्द को उसके निषेधात्मक अर्थ—रुकावट का अभाव—में न समझकर उसके विध्यात्मक अर्थ—उन्नति के अवसरों की उपस्थिति—में समझें तो यह मानना पड़ेगा कि रूस में अन्य किसी

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 373-376.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश की अपेक्षा नागरिक को स्वतन्त्रता अधिक प्राप्त है। आर्थिक सुरक्षा के अभाव में केवल वैयक्तिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं होता। किसी भी व्यवस्था का मूल्य उससे सम्बद्ध लोगों पर उसका जो प्रभाव पड़ता है उससे ही आँका जा सकता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि रूस की जनता सन्तुष्ट है। जिस दृढ़ता एवं भक्ति के साथ रूस की जनता ने द्वितीय महायुद्ध में अपनी सरकार के साथ सहयोग किया और अपनी व्यवस्था की रक्षा के लिए बलिदान किया वह जनता के सन्तोष का अकाट्य प्रमाण है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १५

वार्साई की सन्धि पर अमल

जर्मन गणतन्त्र (१९१८-१९२८)

जर्मन क्रांति—

महायुद्ध के अन्तिम दिनों में बिल्हेम्सहेविन के बेड़े के नाविकों के विद्रोह के साथ ही जर्मनी में क्रांति आरम्भ हो गई थी (२८ अक्टूबर)। शीघ्र ही अन्य स्थानों के नाविकों ने भी विद्रोह कर दिया। उधर बेवेरिया में कुर्त इज़नर (Kurt Eisner) ने ८ नवम्बर को बेवेरिया के समाजवादी गणतन्त्र की घोषणा की और उसी दिन बर्लिन में भी विद्रोह हो गया। जर्मनी में विद्रोह की अग्नि इतनी शीघ्र फैल गई यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जर्मन लोग अन्तिम विजय की आशा में अपार कष्ट सह रहे थे परन्तु अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करने के साथ आशा कमज़ोर पड़ने लगी थी और पराजय से तो वह बिलकुल ही भङ्ग हो गई। पर्याप्त भोजन के अभाव में लोगों में नैतिक एवं शारीरिक दुर्बलता बढ़ गई थी और उसके कारण उनकी निराशा तीव्रतर हो गई थी। ऐसी अवस्था में रूस से आने वाले जर्मन कैदियों के साम्यवादी विचारों ने लोगों पर बड़ा प्रभाव डाला।* सैनिक पराजय, युद्धकालीन कष्ट तथा रूसी क्रान्ति के उन्मादकारी प्रभाव—इन सब बातों के सम्मिलित प्रभाव से जर्मन जनता अपने सम्राट् के विरुद्ध, जिसके कारण उसे युद्ध के कष्ट उठाने पड़े थे, बिगड़ खड़ी हुई। यह देखकर सम्राट् अपने उदारवादी प्रधान मन्त्री बादेन के प्रिन्स मेक्स के समझाने पर सिंहासन छोड़ कर हॉलैण्ड चला गया (१० नवम्बर)। उसके एक दिन पहले ही बर्लिन में सामाजिक प्रजातन्त्रीय दल ने गणतन्त्र की घोषणा कर दी थी और मेक्स के पद-त्याग पर उसके प्रमुख नेता एबर्त (Ebert) ने प्रधान मन्त्री का पद ग्रहण करके एक अस्थायी सरकार का निर्माण कर लिया था जिसने ११ नवम्बर को युद्ध-विराम के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किये।

---

* ल्यूडेनडॉर्फ ने, जिसने लेनिन को जर्मनी में हो कर रूस चला जाने दिया था लिखा है कि 'मुझे इस बात का कभी विचार तक नहीं आया कि रूसी क्रांति एक दिन हमारी ही जड़ खोद देगी। हमारे शत्रुओं ने हमें क्राँति दी।' Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 378.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वहारा-अधिनायकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न—

जर्मनी को गणतन्त्र घोषित कर देने से ही उसकी कठिनाइयों का अन्त नहीं हुआ। कुछ महीनों तक पराजित और थके हुए जर्मनी की दशा एक सुव्यवस्थित सभ्य समाज की अपेक्षा एक पागलखाने से अधिक मिलती जुलती थी।* सत्ता सोश्यल डेमोक्रेट लोगों ने हस्तगत की थी और उन्हीं के साहस तथा समझदारी पर बहुत कुछ निर्भर था। परन्तु दुर्भाग्यवश उस दल में एकता नहीं थी। युद्धकाल में ही उसमें फूट पड़ गई थी। उसके अधिकाँश लोग दक्षिण पक्षीय थे जिनका नेता एबर्त था और जो पार्लामेण्टरी प्रजातन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। शेष लोग, जिनका अल्पमत था, वामपक्षीय थे जिनका झुकाव क्रान्ति की ओर था और जो साम्यवादियों से मेल करना चाहते थे। साम्यवादी जिनका नेता कार्ल लीबक्नेख्त (Karl Liebknecht) था,† रूस के प्रबल प्रचार के प्रभाव में थे और सोवियत ढङ्ग पर मज़दूरों की सरकार स्थापित करने के लिये आतुर हो रहे थे। कुछ ही सप्ताह में वामपक्षीय समाजवादी, लोग साम्यवादियों में शामिल हो गये और गृह-युद्ध छिड़ गया। स्थान-स्थान पर मज़दूरों तथा सिपाहियों की कौंसिलें बन गईं और साम्यवादियों ने सर्वहारावर्ग का अधिनायकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न किया।‡

परन्तु दक्षिणपक्षीय समाजवादी लोग जनता के मध्यवर्ग का सहयोग प्राप्त कर सके और उसकी सहायता से साम्यवादियों का दमन करके गणतन्त्र की रक्षा कर सके। साम्यवादी नेता लीबक्नेख्त तथा रोज़ा लुक्सेमबुर्ग मार डाले गये और साम्यवादी प्रयत्न विफल हो गया।$

Schevill : A History of Europe, p. 739.

† इसका उपनाम स्पार्टेकस था और उसके अनुयायी स्पार्टेसिस्ट (Spartacist) कहलाते थे।

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 379.

$ समाजवादी सरकार ने इस साम्यवादी प्रयत्न का दमन जनरल लुतवित्स के नेतृत्व में सेना की सहायता से किया था। लुतवित्स पुराने ढंग का पक्का राजसत्तावादी प्रशियन था। इसी लुतवित्स ने अगले वर्ष गणतन्त्र का बलपूर्वक अन्त करने का प्रयत्न किया था। उस समय तो यह समझा गया कि साम्यवादियों के दमन से गणतंत्र की स्थिति सुदृढ़ होगई परन्तु बाद की घटनाओं से यह प्रकट हो गया कि यह प्रतिक्रान्ति की दिशा में पहला क़दम था। १९२४ मे हिन्डेनबुर्ग का राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन दूसरा क़दम था और १९३८ में हिटलर का सत्तारूढ़ होना तीसरा तथा अन्तिम क़दम था। Somervell : Between the wars, pp. 92-100.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विधान-सभा—

जनवरी के अन्त में राष्ट्रीय विधान सभा के लिये निर्वाचन हुआ जिसमें दक्षिणपक्षीय समाजवादी (Social Democrats) प्रजातन्त्री (Democrats) तथा सेण्ट्रिस्ट्र लोग (Centrist) अधिक संख्या में पहुँचे परन्तु बहुमत किसी दल का नहीं हुआ।* इस नरम विचारों की प्रजातन्त्रीय सभा का प्रथम अधिवेशन विधान निर्माण के लिये वाइमर (Weimar) में हुआ जहाँ के शान्त वातावरण में विचार कर सकना सम्भव था। सोश्यल डेमोक्रेट दल के सदस्यों की संख्या सभा में अधिक थी परन्तु उसका बहुमत न होने के कारण उसने अन्य मध्य-वर्गीय दलों से मिलकर अपना बहुमत कर लिया और एक सम्मिलित मंत्रि-परिषद् का निर्माण किया।

कठिनाइयाँ—

परन्तु वाइमर-सभा के सामने बड़ी विकट कठिनाइयाँ उपस्थित थीं। उसे तीन काम करने थे—आन्तरिक विरोध का दमन करना, मित्र-राष्ट्रों से सन्धि करना और गणतन्त्र के लिये स्थायी विधान का निर्माण करना। साम्य-वादी लोग दब अवश्य गये थे परन्तु निर्मूल नहीं हुए थे। औद्योगिक केन्द्रों में उनका प्रभाव था और उन्होंने कई जगह उपद्रव करवाये। उधर बेवेरिया में

---

*विधान-सभा के निर्वाचन के समय तक सभी पुराने राजनीतिक दलों ने अपना नये सिरे से संगठन कर लिया था और कुछ दलों ने अपने नाम भी बदल डाले थे। पुराने कंजर्वेटिव लोगों ने अपने दल का नाम जर्मन नेशनल पीपुल्स पार्टी (नेशनलिस्ट) रखा। ये लोग राजसत्तावादी थे। पुराने नेशनल लिबरल लोगों ने, जिनमें अधिकतर व्यवसायी लोग थे, स्ट्रेस्मेन के नेतृत्व में जर्मन पीपुल्स पार्टी का निर्माण किया। यह दल भी राजसत्ता का समर्थक था परन्तु आन्तरिक शान्ति और राष्ट्रीय एकता के हित में गणतन्त्र के साथ सहयोग करने को तैयार था। सेन्ट्रिस्ट (Centrists) लोगों ने अर्ज़बर्गर के नेतृत्व में अपना नाम क्रिश्चियन डेमोक्रेट रखा परन्तु कुछ दिनों बाद उसे बदलकर अपना पुराना नाम ही रख लिया। ये लोग प्रजातंत्रीय गणतन्त्र के पक्ष में थे। पुराने वामपक्षीय नेशनल लिबरल और प्रोग्रेसिव लोगों ने मिलकर एक नये दल--डेमो क्रेटिक पार्टी—का निर्माण किया जिसका नेता प्रख्यात अर्थशास्त्री और बेंकर शाख्त (Schacht) था। ये लोग मध्यवर्गीय गणतन्त्र के समर्थक थे। सोश्यलिस्ट लोगों के बहुमत दल ने अपना नाम सोश्यल डेमोक्रेट रखा और सम्पत्ति तथा उद्योगों के क्रमिक समाजीकरण की अपनी नीति जारी रखी। सोश्यलिस्ट लोगों का अल्पमत दल--इंडि-पेण्डेण्ट सोश्यलिस्ट—शीघ्रातिशीघ्र राष्ट्रीयकरण चाहता था। स्पार्टेसिस्ट लोगों ने अपना नाम जर्मन कम्यूनिस्ट पार्टी रखा। इन लोगों ने चुनाव में भाग नहीं लिया। Langsam : The world since 1914, p. 405.

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Foundation, Chandigarh

ईज़नर के नेतृत्व में सोवियत ढंग के गणतन्त्र की स्थापना हुई। परन्तु मध्यम-वर्गीय दलों के सहयोग से सरकार इन उपद्रवों का तथा बेवेरिया के गणतन्त्र का दमन करने में सफल हो सकी और जर्मनी की साम्यवाद से रक्षा कर सकी। इस अराजकता के साथ ही देश में भुखमरी भी फैल रही थी और लाखों आदमी मर रहे थे जिसका वह कुछ इलाज नहीं कर पा रही थी।* सबसे बढ़ कर विकट परिस्थिति तो उसके सामने उस समय उपस्थित हुई जब उसे वार्साई की अपमानजनक सन्धि स्वीकार करने का आदेश दिया गया। पहले तो सभी ने सन्धि का तीव्र विरोध किया परन्तु जब मित्र-राष्ट्रों ने फिर युद्ध छेड़ने की धमकी दी तो विवश होकर उसे स्वीकार करना पड़ा।§ इस कारण देश में उसकी बड़ी अपकीर्ति हुई परन्तु वह कर ही क्या सकती थी ?

वाइमर-विधान—पार्लामेण्टरी प्रजातन्त्र—

ऐसी विकट परिस्थिति में विधान-सभा विधान-निर्माण का कार्य करती रही। यदि सभा ऐसी परिस्थिति का सामना करने के लिए अधिनायकतन्त्र की स्थापना कर देती तो स्वाभाविक ही होता परन्तु उसने प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों को अपनाया और जुलाई तक नया विधान तैयार कर लिया जिसके अनुसार बिस्मार्क तथा द्वितीय विलियम द्वारा स्थापित सैनिक स्वैरतन्त्र को समाप्त करके उसके स्थान पर पार्लामेन्टरी प्रजातन्त्र की प्रतिष्ठा की गई। १४ अगस्त को नये विधान की घोषणा हुई। इसके अनुसार कार्यपालिका का अध्यक्ष एक राष्ट्रपति रखा गया जिसके लिये २० वर्ष या इससे अधिक आयु वाले प्रत्येक स्त्री-पुरुष के मत से सात वर्ष के लिये निर्वाचन की व्यवस्था की गई। उसके नीचे और उसी के द्वारा नियुक्त एक मन्त्रिपरिषद् रही जो पार्लामेंट की लोक-सभा के प्रति ज़िम्मेदार रखी गई। पार्लामेंट के दो भवन रखे गये-प्रथम, लोक-सभा (Reichstag) जिसका निर्वाचन ४ वर्ष के लिए समस्त वयस्क जनता के प्रत्यक्ष एवं गुप्त मतदान द्वारा होना निश्चित किया गया और द्वितीय, राज्य-परिषद् (Reichsrat) जिसमें गणतन्त्र के समस्त विधायक राज्यों (१८) के प्रतिनिधि होते थे। राज्य-परिषद् के अधिकार सीमित थे और उसका मुख्य काम इङ्गलैंड के लार्ड-भवन के समान लोक-सभा की जल्दबाज़ी पर रुकावट लगाना था। क़ानून बनाने तथा वित्तीय मामलों पर लोकसभा का पूर्ण अधिकार था और मंत्रि-परिषद् भी उसी के प्रति उत्तरदायी थी। लोकसभा अविश्वास के प्रस्ताव

---

* Jackson : The Between-War World, p. 33.

§ Schevill : A History of Europe, p.740.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्वारा मन्त्रि-परिषद् को अलग कर सकती थी। राष्ट्रपति साधारणतया नाममात्र का अध्यक्ष था और उसके प्रत्येक आदेश पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर होना आवश्यक था। हाँ, संकट काल में वह संकट कालीन घोषणा करके अपने आदेशों द्वारा ही शासन कर सकता था।

वाइमर-विधान संसार के अधिकतम प्रजातन्त्री विधानों में से था।* उसमें निर्वाचन की व्यवस्था अनुपातिक पद्धति पर की गई थी जिसके अनुसार प्रति ६० हज़ार मतों के लिए एक प्रतिनिधि चुना जाता था और किसी मतदाता का मत व्यर्थ नहीं जाता था। आर्थिक हितों की रक्षा के लिए मज़दूरों तथा पूँजी पतियों के प्रतिनिधियों की एक राष्ट्रीय आर्थिक परिषद् (National Economic Council) की भी व्यवस्था की गई जिसका काम राष्ट्रीय पार्लामेंट को आर्थिक एवं सामाजिक मामलों में परामर्श देना था। विधान के अनुसार समस्त स्त्री-पुरुषों को पूर्ण राजनीतिक समानता और धर्म, भाषण, प्रेस तथा समुदाय की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इनके साथ ही विशेष परिस्थितियों में आरम्भिक (Intiative), जनमत-संग्रह (Referendum) तथा प्रत्याह्वान (Recall) की भी व्यवस्था की गई। समस्त अंगभूत राज्यों का विधान भी इसी प्रकार प्रजातन्त्रीय बना दिये गये।

बिस्मार्क ने साम्राज्य के लिए जिस विधान का निर्माण किया था उसमें अंगभूत राज्यों को कई स्थानीय अधिकार प्राप्त थे परन्तु इस विधान में उन्हें ऐसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुए और इस प्रकार गणतन्त्रीय जर्मनी का विधान साम्राज्य-विधान से भी अधिक केन्द्रीभूत था।$ समस्त जर्मनी को एक करने का कार्य जो बिस्मार्क ने किया था वह एक प्रकार से अधूरा था। उसकी कमी इस विधान ने पूरी की।

गणतन्त्र की कठिनाइयाँ—राजसत्तावादी प्रयत्न—

विधान तो बन गया परन्तु अगले कुछ वर्षों तक गणतन्त्र को अनेक संकटों का सामना करना पड़ा और उसका भविष्य संदिग्ध बना रहा। जर्मनी के समग्र उग्रपन्थियों को उससे घृणा थी। साम्यवादी लोग गणतन्त्र का नाश करके सर्वहारावर्ग का अधिनायकतन्त्र चाहते थे परन्तु लीबक्नेख्त की मृत्यु के बाद से वे निर्बल हो गये थे। दूसरी ओर राज्य-सत्तावादी लोग हॉहेन्त्सॉलर्न वंश को फिर से सिंहासनारूढ़ करना चाहते थे। वे चुप वहीं बैठे और अगले वर्ष ही

---

* Jackson : The Between-War World, p. 34.

$ Schevill : A History of Europe, p. 741.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन्होंने बर्लिन में गणतन्त्र को समाप्त करने का प्रयत्न किया। १२ मार्च १९२० को एक सेनानायक लुतवित्स ने ८,००० सैनिक लेकर बर्लिन पर अधिकार कर लिया और वुल्फ़गेंग फ़ॉन केप (Wolfgang Von Kapp) को गणतन्त्र का राष्ट्रपति घोषित कर दिया। सरकार के पास कोई सेना नहीं थी। उसे बर्लिन छोड़ना पड़ा। राज-सत्तावादियों का यह प्रयत्न सफल हो जाता परन्तु बर्लिन के मज़दूरों ने उसका विरोध किया और अपनी ही ओर से सामान्य हड़ताल कर दी।† सरकार ने भी उनके कार्य का अनुमोदन किया। बर्लिन का सारा काम बन्द हो गया। पानी तथा रोशनी मिलना बन्द हो गया और ट्राम, रेल आदि सवारियाँ भी बन्द हो गईं। केप तथा उसके अनुयायी बर्लिन छोड़कर भाग गये और इस प्रकार बर्लिन के मज़दूरों ने अपने नये विधान और गणतन्त्र दोनों की रक्षा कर ली।

राष्ट्रव्यापी नैराश्य—

वाइमर-गणतन्त्र का संकट यहीं समाप्त नहीं हुआ। ये दिन घोर राष्ट्रीय अपमान तथा आर्थिक संकट के थे। संसार जर्मन जनता को युद्ध के लिए दोषी ठहरा रहा था और जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय समाज से बहिष्कृत सा था। जिन समितियों में उसके भाग्य का निर्णय हो रहा था। उनमें उसके प्रतिनिधि बुलाये तक नहीं जाते थे। राष्ट्र-संघ में उसे कोई स्थान नहीं मिला था। उसकी भूमि पर विदेशी सेनाएँ अधिकार किए हुये थीं और देश में अनेक विदेशी कमिशन उससे वार्साई की सन्धि द्वारा लादे गये दायित्वों को पूरा करने के लिए मौजूद थे जिनके आदेशों का उसे पालन करना पड़ता था। आर्थिक स्थिति निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। एक ओर तो आर्थिक दुर्दशा तथा दूसरी ओर नाना प्रकार के राष्ट्रीय अपमान के कारण समस्त राष्ट्र में घोर निराशा और उदासी व्याप्त हो रही थीं।

आर्थिक दुर्दशा—

आर्थिक दुर्दशा के कई कारण थे। जर्मनी को अपार धन-राशि युद्ध के हर्ज़ाने के रूप में देनी पड़ रही थी। हर्जाना उद्योग से प्रचुर मात्रा में उत्पादन करके ही दिया जा सकता था परन्तु उसके उद्योग युद्धकाल में अस्त-व्यस्त हो गये थे और युद्ध के बाद औद्योगिक महत्व के अच्छे-अच्छे प्रदेश उसके हाथ से निकल चुके थे। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के उत्पादन के साधन क्षीण हो गये थे और इस पर उसे, जैसा हम अभी देखेंगे, रूर-क्षेत्र के मज़दूर हड़तालियों को

§ Jackson : The Between War World, p. 35.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्थिक सहायता देने में अपार व्यय हो रहा था। ऐसी दशा में यही सम्भव था कि सरकार ऋण ले, कर बढ़ावे और अधिक से अधिक पत्र-मुद्रा जारी करे। उसने यही किया। परन्तु पत्र-मुद्रा के अत्यधिक प्रसार के कारण उसके सिक्के—मार्क—की क़ीमत गिरती गई यहाँ तक कि उसका कोई मूल्य ही नहीं रह गया। साधारण समय में इङ्गलैण्ड का एक पौंड २० मार्क के बराबर होता था अर्थात् एक मार्क एक शिलिङ्ग के बराबर होता था परन्तु दिसम्बर १९२१ में एक पौंड ७७० मार्क के बराबर, अगस्त १९२२ में ३,००० मार्क के बराबर, दिसम्बर १९२२ में ३४,००० मार्क के बराबर और १९२३ के अन्त तक तो एक अरब ९० करोड़ के बराबर हो गया।* जर्मन जनता में हाहाकार मच गया।

युद्ध की क्षतिपूर्ति—

वार्साई में जर्मनी से वसूल किये जाने वाले हर्जाने की रकम निश्चित नहीं की जा सकी थी क्योंकि विजेता राष्ट्रों में इस विषय में बड़ा मतभेद था। बाद में कुछ सम्मेलनों में उसका निश्चय करने के प्रयत्न हुए परन्तु उनमें भी केवल इसके अतिरिक्त कि कुल हर्जाने का ५२ प्रतिशत फ़्रान्स को, २२ प्रतिशत इङ्गलैंड को, १० प्रतिशत इटली को, ८ प्रतिशत बेल्जियम को मिले और शेष रक़म अन्य सहायक राज्यों में बाँट दी जाय कुछ निश्चित नहीं हुआ।‡ अन्त में एक क्षति-पूर्ति कमिशन नियुक्त किया गया। अमेरिका ने वार्साई की सन्धि को स्वीकार नहीं किया था, इस कारण इस कमिशन में अमेरिका का कोई प्रतिनिधि नहीं था जो विजेता राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के लोभ पर अंकुश लगाता। फलतः क्षति-पूर्ति की रक़म का निश्चय इंगलैण्ड, फ़्रांस, इटली तथा बेल्जियम के प्रति-निधियों ने किया और जर्मनी के सिर पर ६६,००,०००,००० पौंड (१३,२०,-००,०००,००० सोने के मार्क) का क़र्ज़ लाद दिया और प्रतिवर्ष २० करोड़ सोने के मार्क तथा समस्त जर्मन निर्यात का २६ प्रतिशत देने का आदेश दिया। इतनी क्षतिपूर्ति असम्भव थी परन्तु प्रतिशोध तथा जर्मनी को नष्ट कर देने की भावना के सामने सम्भव-असम्भव का विचार नहीं टिक सका। जिन दिनों (१९१८) इंङ्गलैण्ड में जर्मन-विरोधी-भावना अत्यधिक उग्र थी उन दिनों में भी इंगलैण्ड के राजस्व विभाग ने कहा था कि जर्मनी अधिक से अधिक २०,००,०००,०००

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 380.

‡Carr : International Relations between the Two World wars, p. 53.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पौंड दे सकता है।* जर्मन सरकार इस निर्णय से बड़े असमञ्जस में पड़ गई। कुछ लोगों का इरादा अदायगी से बिलकुल इन्कार कर देने का था परन्तु अन्त में इस विचार से सरकार ने क्षतिपूर्ति की इतनी भारी रक़म देना स्वीकार कर लिया कि सचाई के साथ अदायगी करने का प्रयत्न करने से ही शत्रुओं की मनोवृत्ति बदली जा सकेगी और जर्मनी के साथ न्याय हो सकेगा। उसने ३१ अगस्त १९२१ को पहली किश्त भी अदा कर दी।

रूर पर आक्रमण—

इन किश्तों की अदायगी के लिये सरकार के पास एकमात्र उपाय अपरिमित संख्या में पत्रमुद्रा जारी करते रहना ही था परन्तु जब इस प्रकार मार्क का कोई मूल्य ही नहीं रहा तो उसके लिये हर्जाना देना असम्भव हो गया और सरकार ने ३ वर्ष के लिये हर्जाने की रकम की अदायगी स्थगित करने (Moratorium) की माँग की (नवम्बर १९२२)। इंगलैण्ड तो जर्मनी को मोहलत देना चाहता था क्योंकि वह अपने जर्मन व्यापार को बनाये रखना चाहता था परन्तु फ़्रान्स का प्रधान मन्त्री पुंकारे राज़ी नहीं हुआ। उसने यह कह कर कि जर्मनी ने क्षतिपूर्ति से बचने के लिये मार्क के मूल्य को गिरा दिया है, मोहलत देने से इन्कार कर दिया। बेल्जियम भी इसके लिये तैयार नहीं हुआ। पुंकारे ने यह कह कर कि जर्मनी की नीयत साफ़ नहीं है और वह जानबूझ कर अदायगी नहीं करना चाहता, वार्साई की सन्धि की एक शर्त के अनुसार ११ जनवरी १९२३ को बेल्जियम की सेना के साथ अपनी सेना भेज कर रूर के औद्योगिक क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।† यह क्षेत्र जर्मनी का सबसे बड़ा महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र है और एक प्रकार से उसका औद्योगिक हृदय ही है। इंगलैण्ड ने फ़्रान्स के इस कार्य का समर्थन नहीं किया

* Jackson: The Between-War World, p. 37. प्रख्यात अंग्रेज अर्थशास्त्री कीन्ज़ (Keynes) की राय थी कि जर्मनी की अधिक से अधिक सामर्थ्य २,००,००,००,००० पौंड देने की थी, हालांकि जैसी स्थिति थी उसमें यह रक़म भी वह अदा नहीं कर सकता था। उसने कहा कि कई लोग इस रक़म को बहुत छोटी समझते हैं परन्तु उन्हें जर्मनी की फ़्रान्स से तुलना करके देखना चाहिये। १८७१ में फ़्रांस की सम्पत्ति १९१३ में जर्मनी की जितनी सम्पत्ति थी उसकी आधी से कुछ कम कूती जाती थी। ऐसी अवस्था में यदि जर्मनी से ५०,००,००,००० पौंड लिये जाते तो यह धनराशि प्रायः उतनी ही होती जितनी फ़्रान्स को १८७१ में देनी पड़ी थी। Keynes: Economic Consequences of the Peace, pp. 186-187.

† Schevill: A History of Europe, p. 744.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और उसके रुख से प्रोत्साहित होकर जर्मनी ने फ्रान्स के इस कार्य को क़ानून के विरुद्ध बतलाकर रूर क्षेत्र के समस्त सरकारी कारखानों के कर्मचारियों एवं मज़दूरों से हड़ताल करके काम बिलकुल बन्द कर देने को प्रोत्साहित किया और उन्हें वेतन तथा मज़दूरी देने का वचन दिया। फलतः जर्मन कर्मचारियों एवं मज़दूरों ने फ्रान्स के साथ असहयोग किया और रूर-क्षेत्र में सब उद्योग-धन्धे बन्द हो गये। फ्रान्स ने सख्ती की परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इस समय समस्त संसार फ्रान्स के इस कार्य को निन्दनीय समझ रहा था। फ्रान्स की जनता ने भी उसका समर्थन बन्द कर दिया। वह देख रही थी कि रूर पर अधिकार करने में बड़ा व्यय हो रहा था और लाभ बहुत कम हो रहा था। इसके अतिरिक्त इस कार्य से फ्रान्स संसार की, और विशेषकर इंगलैंड की, सहानुभूति एवं सद्भावना खोता जा रहा था। पुंकारे को इस परिस्थिति से यह अनुभूति होने लगी कि जर्मनी से इस प्रकार दबाव डालकर क्षतिपूर्ति नहीं कराई जा सकती। अन्य मित्रराष्ट्रों को भी यह अनुभव होने लगा और उनकी मनोवृत्ति में परिवर्त्तन हुआ। इधर जर्मन सरकार भी आर्थिक बोझ से बुरी तरह दबी जा रही थी और जर्मनी की आर्थिक दुर्दशा सीमा पर पहुँच चुकी थी। वह समझने लगी थी कि प्रतिरोध की नीति केवल असफल ही नहीं हो रही थी, उससे जर्मन जनता के कष्ट भी बढ़ते जा रहे थे। इस प्रकार दोनों पक्षों की मनोवृत्ति बदली और मित्रराष्ट्र जर्मनी को चूंसने की नीति में परिवर्तन करने के लिये विवश हो गये। उन्होंने क्षतिपूर्ति के प्रश्न को राजनीति के उत्तेजना पूर्ण वातावरण से हटाकर आर्थिक विशेषज्ञों की एक कमिटी को सौंपने का निश्चय किया। इस समिति ने पेरिस में १९२४ के आरम्भ में कार्य प्रारम्भ किया। उसमें ग़ैरसरकारी तौर पर अमेरिकन प्रतिनिधि मण्डल भी शामिल हुआ जिसका अध्यक्ष चार्ल्स जी० डॉवेस (Charles. G. Dawes) था। वही समिति का अध्यक्ष भी था। जैसा हम अगले अध्याय में देखेंगे, इस समिति ने एक योजना—डॉवेस योजना—प्रस्तुत की जिसमें जर्मनी की वार्षिक किश्त बहुत कम कर दी गई, मार्क की स्थिति सुधारने के लिये उसे अन्तर्राष्ट्रीय ऋण दिया गया और फ्रान्स तथा बेल्जियम से अपनी सेनाएँ रूर प्रदेश से हटा लेने को कहा गया। दोनों ने अपनी सेनाएँ हटा लीं और परिस्थिति के सुधार की आशा बँधी।

नई नीति—

मित्र-राष्ट्रों ने १९१८ से १९२३ तक, जैसा हम अभी देख चुके हैं, जर्मनी के विरुद्ध प्रतिशोधात्मक नीति का पालन किया था परन्तु उसका अभीष्ट परि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

णाम नहीं निकला। उन्हें अपनी भूल मालूम होगई। जर्मनी की दुर्दशा का परिणाम समस्त योरोप पर पड़ रहा था और पुनर्निर्माण का काम रुक रहा था। वे समझ गए कि जब तक जर्मनी की यह दुर्गति रहेगी तब तक न तो उनकी क्षति पूर्ति हो सकेगी और न योरोप का नवनिर्माण ही हो सकेगा। दोनों बातों के लिये जर्मनी के असहयोग की जगह उसके सहयोग की आवश्यकता थी। अतः १९२४ से उन्होंने योरोप के पुनर्निमाण के कार्य में जर्मनी के साथ सहयोग करने की नीति स्वीकार की और इस प्रकार उस वर्ष योरोपीय इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ।*

यह सहयोग दो बातों के कारण सम्भव हो सका। प्रथम तो डावेस-योजना के कारण तनाव कम हो रहा और दूसरे, इसी समय फ्रान्स तथा जर्मनी दोनों देशों में शासन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में पहुंच गया था जो सहयोग में विश्वास करते थे। फ्रान्स में मई १९२४ के नये निर्वाचन के फलस्वरूप पुंकारे का मन्त्रिमण्डल पदच्युत हो गया और उसकी जगह हेरियो का नया मन्त्रिमण्डल बना जिसमें एरिस्तीद ब्रियाँ (Arstide Briand) विदेश-मंत्री नियुक्त हुआ। वह पुंकारे की नीति का विरोधी था। पुंकारे की नीति का आधार था फ्रांस की सुरक्षा की चिन्ता और वह समझता था कि फ्रांस की सुरक्षा जर्मनी को निर्बल बनाकर तथा उसे चारों ओर से घेर कर ही सुनिश्चित की जा सकती थी। इसी दृष्टि से उसने पिछले महा-युद्ध के अनुभव की उपेक्षा करके जर्मनी के अनेक पड़ौसियों से सैनिक समझौते करना शुरू कर दिया था। ब्रियाँ समझता था कि इस प्रकार जर्मनी सदा के लिये फ्रांस का शत्रु हो जायगा और फ्रांस की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं रह सकेगी। उसके विचार में सुरक्षा का अधिक अच्छा और कारगर उपाय स्वयं जर्मनी से ही मेल करना था। उधर जर्मनी में इसी समय गुस्तव स्ट्रेस्मन (Gustav Stresemann) प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त हुआ। वह जर्मनी के वहिष्कार का अन्त करके उसे संसार के विभिन्न राज्यों में फिर से समानता के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहता था। वह समझौते की नीति में विश्वास करता था। वह समझता था कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये मित्र-राष्ट्रों को सन्तुष्ट करना आवश्यक था और उसका एकमात्र उपाय यह था कि जर्मन राष्ट्र अपने त्याग द्वारा उन्हें आश्वासन दे कि जर्मनी वार्साई की सन्धि के दायित्वों को पूरा करेगा। उसे विश्वास था कि सन्धि की शर्तों में सुधार दायित्वों को पूरा करने के प्रयत्न द्वारा ही कराया जा सकता था। स्ट्रेस्मान ने रूर-क्षेत्र के असहयोग को बन्द कर दिया

* Jackson : The Between-War World, p. 40.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और सब लोगों को काम पर भेज कर फ्रान्स को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। इसके साथ ही अर्थ-मन्त्री शाख्त (Schacht) ने मुद्रा में स्थिरता लाने का प्रयत्न शुरू किया। उसने पुराने मार्क के स्थान पर नया मार्क (Rentenmark) जारी किया और पुराने मार्क वापस लेकर उनकी जगह नये मार्क दे दिये परन्तु इस प्रकार जर्मन जनता के पास जितना भी धन था वह सब छिन गया क्योंकि एक नया मार्क करोड़ों पुराने मार्कों के बदले में मिलता था। अब किसी के पास कोई बचत का रुपया नहीं रहा और मध्यम वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग में कोई भेद नहीं रह गया। मुद्रास्फीति और रेण्टेनमार्क ने मुनाफ़ाखोर-वर्ग को मिटा कर साम्यवाद का काम कर दिया।* यह सब तो हुआ परन्तु इससे मार्क की पुरानी क़ीमत लौट आई, जनता में विश्वास उत्पन्न हुआ और मित्र-राष्ट्रों को भी विश्वास हो गया कि जर्मनी अपने ऋण को चुकाने का प्रयत्न कर रहा है।

गणतन्त्र का अन्त करने का तीसरा प्रयत्न—

स्ट्रेस्मेन मित्र-राष्ट्रों को तो आश्वासन दे सका परन्तु वह उग्रवादियों को अपनी नीति के पक्ष में न कर सका। हम देख चुके हैं कि राजसत्तावादियों ने १९२० में गणतन्त्र को समाप्त करने का असफल प्रयत्न किया था। वे और कई प्रकार के लोग अपनी समाजवादी सरकार की शत्रुओं को सन्तुष्ट करने की नीति के घोर विरोधी थे। उन्होंने पिछले वर्षों में इस नीति के समर्थकों में से कई लोगों को समाप्त कर दिया था जिनमें से एबर्त† का प्रधानमन्त्री शीडमेन (Scheidemann) भी था। १९२३ के नवम्बर में उन लोगों ने म्यूनिख में एक षड्यंत्र रचा और बर्लिन पर चढ़ाई करने की योजना बनाई। इस षड्यन्त्र के नेता प्रख्यात जनरल ल्यूडेनडॉर्फ और एक (उस समय तक) अज्ञात व्यक्ति हिटलर थे। परन्तु षड्यन्त्रकारियों में आपस में ही मतभेद था और म्यूनिख की पुलिस ने उसे सरलता से दबा दिया। प्रमुख षड्यन्त्रकारी पकड़े गये परन्तु बेवेरिया के न्यायालयों ने उन्हें हल्की सज़ा देकर छोड़ दिया।§ हिटलर को पाँच वर्ष का कारावास मिला।

डावेस-योजना—

एक ओर तो स्ट्रेस्मेन और शाख्त मित्र-राष्ट्रों को आश्वासन देने का

---

* Ingram : Years of Crisis, p. 37.

† एबर्त नये विधान के आरम्भ होने पर राष्ट्रपति निर्वाचित हो गया था।

§ Hazen : Modern European History, p. 767.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयत्न कर रहे थे, दूसरी ओर, जैसा हम देख चुके हैं, पेरिस में डावेस-समिति जर्मनी की आर्थिक दशा में सुधार करने की योजना बना रही थी। मई १९२४ तक डावेस-योजना तैयार हो गई। इस समय फ्रान्स तथा जर्मनी दोनों ही देशों में ब्रियाँ तथा स्ट्रेस्मेन के प्रभाव से समझौते के अनुकूल वातावरण तैयार हो चुका था। उधर इंगलैण्ड में भी इसी समय लेबर-दल का मंत्रिमंडल बन चुका था। जिसमें रेम्ज़े मेक्डॉनेल्ड प्रधान-मन्त्री था। ये सभी लोग प्रगतिशील विचार के थे जिसके परिणाम स्वरूप डावेस-योजना स्वीकृति हुई। डावेस-समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि जर्मनी उसी दशा में क्षति-पूर्ति कर सकता है जबकि उसके उद्योग-धन्धे अच्छी प्रकार उत्पादन करें। अतः उसे प्रति वर्ष माल तथा सोने के रूप में अपनी राष्ट्रीय आय का कुछ प्रतिशत देना चाहिए। उसके उद्योग को सम्हालने तथा राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए उसने सुझाव दिया कि मित्र-राष्ट्र जर्मनी को पूँजी उधार दें। इन सिद्धान्तों के आधार पर उसने निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं—(१) जर्मनी प्रथम वर्ष में १,०००,०००,००० सोने के मार्क दें। यह रकम प्रति वर्ष बढ़ती रहे यहाँ तक कि १९२९ में यह बढ़ कर ढाई गुनी हो जाय और उसके बाद वह प्रति वर्ष २,५००,०००,००० सोने के मार्क देता रहे। (२) यह अदायगी रेल्वे बॉन्ड, इंडस्ट्रियल डिबेञ्चर तथा अप्रत्यक्ष करों से होने वाली आमदनी से की जाय। (३) उद्योगों की उन्नति के लिए जर्मनी को तुरन्त ही ८००,०००,००० सोने के मार्क का ऋण दिया जाय। (४) अपने आर्थिक जीवन में जर्मनी स्वतन्त्र रहे और (५) रूर के क्षेत्र को फ्रान्स तथा बेल्जियम छोड़ दें।*

इस योजना का मुख्य गुण यह था कि इसमें जर्मन उद्योगों की उन्नति के लिये गुञ्जायश रखी गई थी। प्रति वर्ष दी जाने वाली क्षति-पूर्ति की रकम अधिक तो थी परन्तु फिर भी अदा की जा सकती थी। किन्तु इस बात का निर्णय नहीं किया गया कि जर्मनी को कुल कितनी रकम देना है और कब तक देना है। ऐसी योजना जर्मन जनता को सन्तुष्ट नहीं कर सकती थी, हालाँकि उससे जर्मनी को सम्हलने में सहायता अवश्य मिली। जर्मन लोगों को अपनी कर्ज़दारी का अन्त कहीं नज़र नहीं आ रहा था। वे समझ रहे थे कि वे अपने उद्योगों की उन्नति करके जो कुछ उत्पादन करेंगे और बचावेंगे वह सब विदेशियों की भेंट चढ़ाना पड़ेगा। ऐसी परिस्थिति में उनकी निराशा और कटुता की भावना ज्यों की त्यों बनी रही। फिर भी इस योजना पर अमल होने के

* Carr : International Relations between the Two World Wars, pp. 82-83 ; Jackson : The Between-War World, pp. 41-42.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ जर्मनी की आर्थिक दशा सुधरने लगी। उसे बाहर से खूब ऋण मिलने लगा। जर्मन उद्योगों का नये सिरे से नये ढंग से पुनर्निर्माण हुआ और वहाँ अनेक प्रकार के बड़े-बड़े कारखाने खुल गये जिनमें अटूट परिमाण में उत्पादन होने लगा। जर्मन म्यूनिसिपैलिटियों ने भी ऋण लेना शुरू किया और जर्मन नगरों का नवनिर्माण होने लगा। जर्मनी को यह ऋण अमेरिका और इङ्गलैण्ड के बाज़ार में ख़ूब मिलता था। अमेरिका में तो अपरिमित अतिरिक्त पूँजी मौजूद थी और पूँजीपति बे-सोचे समझे ऋण दे रहे थे। जर्मनी ने इस स्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाया। उसने विदेशी धन से क्षति-पूर्ति की वार्षिक किश्तें अदा कीं और इसके साथ ही अपने उद्योगों की ज़बरदस्त उन्नति की। चार-पाँच वर्षों में ही वह अपनी स्थिति को सम्हाल कर अपनी पूर्व स्थिति में पहुँच गया और संसार के बाज़ार उसके माल से फिर पटने लगे।

लोकार्नो की सन्धियाँ—

संसार के बाज़ारों में जर्मनी की इतनी अच्छी साख हो जाने का कारण उसकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में सुधार था। डॉवेस-योजना के अमल में आने से फ़्रान्स तथा जर्मनी की पारस्परिक कटुता कम हो चली थी, उसके स्थान पर सौहार्द की भावना उत्पन्न होने लगी थी और परस्पर सहयोग की इच्छा जागृत हो रही थी। इससे लाभ उठाकर स्ट्रेस्मेन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रस्ताव किया* जिसका सबने स्वागत किया और जर्मन तथा मित्र-राष्ट्रों के प्रतिनिधि अक्टूबर १९२५ में स्विट्ज़रलैंड में लोकार्नो नामक स्थान पर एक सम्मेलन में एकत्र हुए। इस सम्मेलन में ५ सन्धियाँ हुईं पहली चार सन्धियाँ इक़रारनामों में के रूप थीं जिनमें एक पक्ष तो जर्मनी का था और दूसरे पक्ष में क्रमशः फ़्रान्स, बेल्जियम, पोलैंड तथा चेकोस्लोवाकिया थे। इन इक़रारनामों के अनुसार दोनों पक्षों ने अपने समस्त विवादों का मध्यस्थों द्वारा निर्णय करवाने का वचन दिया। पाँचवीं सन्धि सबसे अधिक महत्वपूर्ण और प्रथम महायुद्ध के बाद के बीस वर्षों में कूटनीति की सबसे बड़ी विजय थी।† यह पश्चिमी योरोप की सुरक्षा अर्थात् फ़्रान्स की सुरक्षा के लिये थी और जर्मनी, फ़्रान्स,

---

*जर्मनी बहुत पहले से फ़्रांस से समझौता करने का प्रयत्न कर रहा था। १९२३ में उसने राइन-सीमा की पारस्परिक गारण्टी का प्रस्ताव फ़्रांस के सामने रखा था। परंतु पुंकारे ने उसे ठुकरा दिया था। १९२३ में जर्मनी ने फिर दो बार इसके लिए प्रयत्न किया किंतु उसका प्रयत्न विफल रहा। इस बार इंगलैंड की मध्यस्थता से सफलता मिली। Ingram : Years of Crisis, p. 55.

†Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 381.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेल्जियम, इटली तथा इंगलैंड के बीच हुई। इसके द्वारा जर्मनी ने वार्साई की सन्धि द्वारा निर्धारित फ्रान्स तथा बेल्जियम की पूर्वी सीमाओं को सदा के लिये स्वीकार कर लिया, अर्थात् उसने अल्सास-लोरेन पर अपना दावा त्याग दिया। उसने राइन प्रदेश (Rhineland) को सैन्य-विहीन दशा में बनाये रखने का भी वचन दिया। सभी राष्ट्रों ने फ्रांस तथा बेल्जियम की पूर्वी सीमाओं की गारण्टी दी। जर्मनी और फ्रान्स दोनों ने इस सीमा पर आत्मरक्षा को छोड़ अन्य किसी कारण से परस्पर युद्ध न करने का वचन दिया और प्रत्येक को यह अधिकार मिला कि यदि दूसरा पक्ष बिना कारण युद्ध छेड़ेगा तो वह अन्य हस्ताक्षर करने वाले राज्यों से सैनिक सहायता प्राप्त कर सकेगा। लोकार्नो की सन्धि के फलस्वरूप दो बातें ऐसी हुईं जो योरोप में शान्ति स्थापित करने में सहायक हुईं।* ध्यान रहे कि जर्मनी ने वार्साई की संधि को स्वेच्छा से कभी स्वीकार नहीं किया था। परन्तु यह संधि उसने स्वेच्छा से स्वयं बातचीत करके की थी और उसने स्वेच्छा से ही अपनी पश्चिमी सीमा स्वीकार कर ली थी। अब वह यह नहीं कह सकता था कि सन्धि उस पर जबरदस्ती से लादी हुई सन्धि थी। अतः जर्मनी की एक शिकायत दूर हो गई। इसके साथ ही फ्रान्स को भी अपनी पूर्वी सीमा की सुरक्षा की गारण्टी मिल गई जो उसकी नीति का लक्ष्य था अब दोनों के लिये परस्पर वैमनस्य के लिये कोई कारण नहीं रह गया। इस सन्धि से योरोप के राजनीतिक वातावरण में पुनः शान्ति आई, निराशा के बादल उड़ गये और जनता ने उसका बड़े हर्ष और सन्तोष से स्वागत किया।†

---

* Jackson : The Between-War World, p. 42,

† Schevill : A History of Europe, p. 747. इन संधियों के परिणाम राष्ट्र-संघ के इकरारनामे तथा वार्साई की संधि दोनों के लिये बड़े घातक निकले। प्रथम, इन सन्धियों के कारण यह धारणा बनने लगी कि वार्साई की सन्धि से उत्पन्न दायित्व उतने बन्धनकारी नहीं थे जितने स्वेच्छा से स्वीकृत दायित्व थे। द्वितीय, इंगलैण्ड कुछ सीमाओं की गारण्टी देने के लिये तैयार था परन्तु अन्य सीमाओं की गारण्टी देने के लिये राजी नहीं था। इससे प्रकट हुआ कि सुरक्षा की दृष्टि से सीमाएं दो कोटि की हो गईं इंगलैण्ड राष्ट्र संघ के इकरारनामे के अन्तर्गत अपने समस्त दायित्वों को पूर्ण करने के लिये सदा तैयार रहने की बात तो करता रहा परन्तु लोकार्नो की संधि से यह धारणा बन गई कि पूर्वी योरोप में सन्धियों द्वारा निर्धारित सीमाओं की रक्षा के लिये वह युद्ध नहीं करेगा। इस प्रकार इस सन्धि से योरोपीय राज्यों में यह धारणा काम करने लगी कि वार्साई की सन्धि तभी बन्धनकारी होगी जबकि स्वेक्षा से किये हुए समझौतों द्वारा उसकी पुष्टि हो जाय। इसके साथ ही यह भी सोचा जाने लगा कि किसी भी सरकार से ऐसी सीमाओं की रक्षा के लिये सैनिक कार्यवाही करने

CC-0. Agamnigam Digital Foundation Foundation, Chandigarh

जर्मनी का राष्ट्र-संघ में प्रवेश, १९२६—

लकार्नो की संधि का दूसरा परिणाम यह हुआ कि मित्र-राष्ट्रों ने उसे राष्ट्र-संघ में शामिल कर लिया (सितम्बर, १९२६) और उसे कौंसिल में इंगलैंड, फ्रान्स, इटली और जापान के साथ स्थायी आसन मिला। इससे जर्मनी को संसार के राज्यों में पुनः सम्मानित स्थान प्राप्त हो गया और उसकी इस सम्बन्ध की शिकायत भी मिट गई। इसके साथ ही जर्मनी को राष्ट्र-संघ में शामिल करके मित्र-राष्ट्र अब 'जर्मनी के युद्ध-दोष' पर ज़ोर नहीं दे सकते थे। इस प्रकार लोकार्नो की संधि ने फ्रान्स को सुरक्षा की गारण्टी देकर और जर्मनी को अन्तर्राष्ट्रीय राज्य-समाज में पुनः सम्मानित स्थान देकर तथा समानता के पद पर प्रतिष्ठित करके योरोप में शान्ति स्थापित करने में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। एक अर्थ में यह कहना अधिक सत्य होगा कि प्रथम महायुद्ध का अन्त १९१९ की वार्साई की सन्धि से नहीं वरन् १९२५ की लोकार्नो की संधि से हुआ।

मित्र-राष्ट्रों के आपसी कर्ज़—

कर्ज़ (क्षतिपूर्ति के रूप में) अदा करने की समस्या केवल जर्मनी के सामने ही नहीं थीं। मित्र-राष्ट्रों ने भी आपस में एक दूसरे को कर्ज दिया था परन्तु सबसे अधिक कर्ज संयुक्तराष्ट्र ने दिया था। उसने कोई दस अरब डॉलर से अधिक कर्ज योरोपीय मित्र-राज्यों को दिये थे जिनमें सबसे बड़े ऋणी इंगलैंड (४ अरब), फ्रान्स (४ अरब,) तथा इटली (२ अरब) थे। यह ऋण बहुत भारी था परन्तु संयुक्तराष्ट्र उसे छोड़ने के लिये बिल्कुल तैयार नहीं था। हाँ, वह ब्याज में कमी करने के लिये तैयार था। सभी कर्जदार राष्ट्रों ने पहले तो बड़ी शिकायत की परन्तु अन्त में उन सब ने अमेरिका से समझौता कर लिया जिसके अनुसार ६२ वार्षिक किश्तों में उन्होंने अपना समस्त ऋण चुकाने का वचन दिया।‡ इस ऋण का जर्मनी से ली जाने वाले क्षतिपूर्ति से कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु ऋणी राज्यों का कहना था कि वे जर्मनी से हर्जाने की रकम वसूल करके ही संयुक्त राष्ट्र की वार्षिक किश्त दे सकते थे, क्योंकि उनकी आर्थिक दशा काफ़ी खराब थी।

की आशा नहीं की जा सकती जिसमें उनका कोई सीधा हित न हो। दस वर्ष बाद सभी राज्य इसी धारणा पर काम करने लगे। Carr : International Relations Between the Two World Wars, pp. 96-97.

* Jackson : The Between-War World, p. 43.

‡ Schevill : A History of Europe, p. 748.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यंग योजना, १९२९—

डावेस-योजना के अनुसार जर्मनी की वार्षिक किश्त कम कर दी गई थी; फिर भी वह बहुत अधिक थी। इसके अतिरिक्त वह केवल एक संकट-कालीन योजना थी। उसका आशय फ़्रान्स को अप्रसन्न किये बिना जर्मनी को साँस लेने का मौक़ा देना था और इसी कारण उसमें जर्मनी से वसूल की जाने वाली कुल रकम निश्चित नहीं की गई थी।* उसमें स्वयं इस बात की सिफ़ारिश की गई थी कि उपयुक्त अवसर पर समूचे प्रश्न पर पुनः विचार हो और जर्मनी की देनदारी का अन्तिम निर्णय किया जाय। अतः इस प्रश्न पर अन्तिम निर्णय करने के लिये एक अमेरिकन ओवेन डी० यंग (Owen D. Young) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई (१९२९)। इस समिति ने मित्र-राष्ट्रों के दावों तथा शाख्त द्वारा प्रस्तुत जर्मनी के प्रस्तावों पर विचार करके उन दोनों के बीच एक समझौते के रूप में अपनी योजना प्रस्तुत की जिसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि जर्मनी ३७ वर्ष तक प्रतिवर्ष ५२१,५००,००० डॉलर दे तथा उसके उपरान्त २२ वर्ष तक ३९१,२५०,००० डॉलर प्रतिवर्ष के हिसाब से दे और इस प्रकार ५९ वर्ष में क्षतिपूर्ति की समस्त रकम अदा करदे। इस योजना के अनुसार क्षतिपूर्ति की पूरी रक़म घटा कर मूल रकम से एक चौथाई कर दी गई। जर्मनी ने इस योजना को स्वीकार कर लिया और इससे बदले में इंगलैंड, फ़्रान्स तथा बेल्जियम की जो सेनाएँ जर्मनी में युद्धविराम के बाद से ही मौजूद थीं वे हट गईं और जर्मनी को बारह वर्ष बाद विदेशी सेनाओं के अधिकार से मुक्ति मिली।‡

दिखावटी समृद्धि—

ऊपर से देखने में १९२४ से १९२९ तक जर्मनी में समृद्धि के लक्षण दिखाई दे रहे थे। स्ट्रेसमेन के प्रयत्न से मित्रराष्ट्रों की सद्भावना प्राप्त हो रही थी, क्षतिपूर्ति की रक़म अदा हो रही थी, फ़्रान्स ने रूर-क्षेत्र खाली कर दिया था, उद्योग-धन्धे बड़ी जल्दी-जल्दी उन्नति कर रहे थे और युद्ध से पूर्व की स्थिति में पहुँच गये थे। स्ट्रेसमेन की नीति के कारण जर्मनी की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में भी सुधार हुआ था और संसार के राष्ट्रों में उसे फिर से समानता का पद प्राप्त हो चुका था। सत्तारूढ़ सम्मिलित दल (Republican Coalition) को १९२४ में तो २ करोड़ ९० लाख मत में से १ करोड़ ८० लाख मत मिले थे परन्तु १९२८

---

* Schuman : International Politics, p. 498.

‡Schevill : A History of Europe, p. 748.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के सामान्य निर्वाचन में वह ३ करोड़ १० लाख मत में से २ करोड़ ३० लाख मत प्राप्त कर सका था जिससे उसकी लोकप्रियता और शक्ति प्रकट हो रही थी।*

आन्तरिक निर्बलता—

परन्तु जर्मनी की यह समृद्धि और गणतन्त्रीय सरकार की शक्ति केवल दिखावटी थी। उसका कोई ठोस आधार नहीं था, आर्थिक समृद्धि बाहर से प्राप्त ऋण पर आधारित थी और सरकार सम्मिलित थी जो किसी भी संकट के समय छिन्न-भिन्न हो सकती थी। जनता आन्तरिक सुधारों की माँग कर रही थी परन्तु सम्मिलित सत्तारूढ़ दल में इतने प्रकार के लोग थे कि आन्तरिक सुधार के सम्बन्ध में वे किसी एक स्थिर नीति का अवलम्बन नहीं कर सकते थे और न वे अपने विरोधियों का ही दृढ़तापूर्वक सामना कर सकते थे जिनकी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। गणतन्त्रीय सरकार के दो प्रकार के विरोधी थे। एक ओर तो साम्यवादी लोग थे जिन्होंने १९१९ में गणतन्त्र को पलटने का प्रयत्न किया था। उनका नेता अर्न्स्ट थालमेन (Ernst Thalmann) था और जिन्होंने विधिपूर्वक साम्यवादी दल का निर्माण कर लिया था। साम्यवादियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही थी। यद्यपि उनमें लेनिन या स्टालिन के समान कोई प्रतिभाशाली नेता नहीं था तो भी वे लोग जितना शोर मचाते थे और वर्तमान व्यवस्था को नष्ट करने की जो बातें करते थे उनसे दक्षिणपक्षीय रूढ़िवादियों को संगठन करने के लिये बहाना मिल रहा था।

दक्षिणपक्षीय विरोध का आरम्भ प्रशा के कुलीनवर्ग ने किया था और धीरे-धीरे उन्होंने एक गणतन्त्र तथा प्रजातन्त्र विरोधी राष्ट्रीय दल संगठित कर लिया था। ये लोग रूढ़िवादी तथा राजसत्तावादी थे। वे गणतन्त्रीय आदर्शों के स्थान पर 'सम्मान और कर्तव्य' के पुराने राजसत्तावादी आदर्शों की शिक्षा दे रहे थे और अपनी निजी सेना संगठित कर रहे थे। एक दल राष्ट्रीय समाजवादियों (National Socialists--Nazi) का था जिसका नेता हिटलर था। इस दल के सिद्धान्त मोटी तौर से राष्ट्रीय दल के समान ही थे और उसकी भी एक निजी स्वयंसेवक सेना थी। परन्तु इस दल का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था। इसके कई नेता रूढ़िवादी थे और कई समाजवादी तथा क्रान्तकारी थे। स्वयं हिटलर उन दिनों सिद्धान्तों की परवाह नहीं करता था। वह शक्ति एकत्र करना चाहता था और सब प्रकार के असन्तुष्ट लोगों को अपने दल में शामिल होते हुए देख कर प्रसन्न था। समाजवादी

* Hayes: A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 711.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेताओं के प्रभाव से भिन्न मध्यम वर्ग के असंतुष्ट नवयुवक बड़ी संख्या में उसके साथ हो गये थे और गोरिंग जैसे रूढ़िवादी नेताओं के कारण उसे बड़े-बड़े उद्योगपतियों से धन मिल रहा था।*

जर्मनी का जो औद्योगिक पुनर्निर्माण हो रहा था उसके फल-स्वरूप भी गणतंत्र के विरोधियों की संख्या बढ़ रही थी। उद्योग नवीन ढंग पर संगठित हो रहे थे और उन्नत मशीनों के प्रयोग के कारण उनमें कम मज़दूरों से ही काम चल सकता था। इस कारण मज़दूर वर्ग में अधिकाधिक लोग बेकार होते जा रहे थे और साम्यवादियों में शामिल होते जा रहे थे। इस प्रकार साम्यवादियों की संख्या तो बढ़ती जा रही थी परंतु, जैसा हम अभी कह चुके हैं, सुयोग्य नेताओं के अभाव में उनका विरोध प्रभावकारी नहीं था।

राष्ट्रीय दल के लोगों ने १९२० और १९२३ में गणतन्त्र को नष्ट करने के प्रयत्न किये थे परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। १९२५ के आरम्भ में ही राष्ट्रीय दल ने बड़ी चतुराई से गणतंत्र के लिये बड़ी अशुभसूचक सफलता प्राप्त कर ली। समाजवादी राष्ट्रपति एबर्त की मत्यु के बाद उस पद के लिये जो निर्वाचन हुआ उसमें उन्होंने अपनी ओर से फ़ील्ड-मार्शल हिण्डेनबुर्ग को खड़ा किया और उसे निर्वाचित करवा लिया। वह पूर्ण रूढ़िवादी था और 'साम्राज्य, सेना, भूमिपति वर्ग तथा ल्यूथरन चर्च' का पुजारी था।† राष्ट्रीय दल के लोग समझते थे कि रूढ़िवादी राष्ट्रपति की सहायता से वे गणतंत्र का विनाश कर सकेंगे परन्तु आरम्भ में वह गणतन्त्र की रक्षा की शपथ का पूर्ण रीति से निर्वाह करते हुए लोक-सभा के गणतंत्रीय बहुमत से सहयोग करता रहा। इस प्रकार राष्ट्रीय दल की अभिलाषा पूरी नहीं हुई और गणतन्त्र पर कोई संकट नहीं आया।

इस प्रकार १९२९ तक गणतंत्र का भविष्य अच्छा मालूम हो रहा था और किसी को भी आशंका नहीं थी कि वह शीघ्र ही खतरे में पड़ने वाला था। उसी वर्ष अक्टूबर में दो घटनाएं हुईं जो गणतन्त्र के लिये घातक सिद्ध हुईं। ३ अक्टूबर को जर्मनी के उद्धारक तथा शांतिवादी विदेश-मंत्री स्ट्रेस्मेन की मत्यु हो गई जिसके साथ शान्तिवादी विदेश नीति भी समाप्त हो गई। दूसरी घटना थी न्यूयॉर्क में वॉल स्ट्रीट के बैंकों का दिवाला निकलना (२४ अक्टूबर) जिससे संसार में आर्थिक संकट शुरू हुआ और जर्मनी को बाहर से सस्ती पूँजी मिलना बन्द हो गया। इन दोनों घटनाओं का परिणाम हम आगे देखेंगे।

---

* Jackson : The Between-War World, p. 45.
† Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II. p. 394.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १६

आर्थिक संकट

महायुद्ध से उत्पन्न कठिनाइयों पर योरोप १९२९ के आरम्भ तक विजय प्राप्त कर चुका था और सर्वत्र वातावरण बड़ा आशावादी था। जर्मनी फिर से अपने पैरों पर खड़ा हो गया था, नये राज्यों में स्थिरता आगई थी, प्रायः प्रत्येक राज्य में मुद्रा सन्तुलित हो गई थी, कारखानों में कम मज़दूरों के प्रयत्न से हमेशा से अधिक उत्पादन हो रहा और रूस ने क्रान्तिजन्य भीषण कठिनाइयों का सामना करके अपने करोड़ों लोगों के उत्थान के लिये पंचवर्षीय योजना पर कार्य आरम्भ कर दिया था। '१९२९ तक यद्यपि कुछ देश सापेक्ष दृष्टि से गिर चुके थे, तो भी समष्टि रूप से संसार की दशा पहले से बहुत अच्छी थी और वह बड़े वेग से ऐसी समद्धि की ओर बढ़ता जा रहा था जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।'❀

आर्थिक सङ्कट—

परन्तु यह एक महान् भ्रम था। दो वर्ष के अन्दर जर्मनी में क्रांति की सम्भावना दिखाई देने लगी, नये राज्यों में प्रजातंत्रों के स्थान पर अधिनायक-तन्त्र स्थापित हो गये, प्रायः प्रत्येक देश में मुद्रा की स्थिरता लुप्त हो गई और उसमें अत्यन्त चंचलता आगई, सब जगह सिक्का कम हो गया, कीमतें गिरने लगी और बैंकों के लिये रुपया अदा करना कठिन हो गया। अनेक बैंकों का दीवाला निकल गया, बहुत सी कम्पनियाँ बिगड़ गईं, कारखाने बन्द हो गये और लाखों मज़दूर बेकार हो गये। गोदामों में माल भरा पड़ा था परंतु उसे खरीदने वाला कोई नहीं था। लोगों को सब तरह के माल की आवश्यकता थी परन्तु उनके पास पैसा नहीं था। कर वसूल नहीं होते थे और सरकारी आमदनी कम हो गई। सब जगह सरकारी बजटों में घाटा पड़ने लगा। संसार का व्यापार आधा रह गया।

योरोप, बल्कि समस्त संसार, के सामने आर्थिक संकट मुँह बाये खड़ा था। ऐसा क्यों हुआ, इसका उत्तर ठीक-ठीक अभी तक नहीं दिया जा सका है।

❀ Sir Arthur Salter quoted in Jackson : The Between-War World, p. 120.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह माना जाता रहा कि पूँजीवादी व्यवस्था में अभिवृद्धि और मन्दी का चक्र चलता रहता है। अभिवृद्धि (Boom) के बाद मन्दी (Depression) आती है और मन्दी के बाद फिर अभिवृद्धि आ जाती है। महायुद्ध के बाद का समय (१९२०-२४) राजनीतिक तथा आर्थिक गड़बड़ का था जिससे संसार के व्यापार में मन्दी आई। आर्थिक या राजनीतिक घटनाओं में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। इस अवधि में राजनीतिक दृष्टि से सबसे खराब समय १९२३ में था जबकि फ्रान्स ने रूर-प्रदेश पर आक्रमण किया। आर्थिक क्षेत्र में भी स्थिति बड़ी संकटग्रस्त रही। संसार की वित्त-व्यवस्था युद्ध के कारण तो पहले से ही बिगड़ चुकी थी। उसके बाद युद्ध-कालीन ऋणों तथा क्षतिपूर्ति के दावों के कारण वह और भी बिगड़ गई। इससे पराजित राष्ट्रों को तो कष्ट हुआ ही, उनकी दुर्दशा का प्रभाव विजेता राष्ट्रों पर भी बुरा पड़ा।

इस मन्दी के बाद १९२४-१९२९ तक का समय संसार के व्यापार में अभिवृद्धि का रहा। इस समय में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति सुधरी। लोकार्नो की संधि हुई और योरोप के अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में आशा का संचार हुआ।

परन्तु इस अभिवृद्धि का आधार ठोस नहीं था। अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के सुधर जाने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का अभाव था। प्रत्येक देश में राजनीतिक राष्ट्रीयता के साथ आर्थिक राष्ट्रीयता का भी ज़ोर था। प्रत्येक ने ऊँचे-ऊँचे आयात कर लगा कर अपने यहाँ दूसरे देशों के माल के आने पर रुकावट लगा रखी थी और व्यापार की स्वतन्त्रता बहुत कम हो गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही मन्दी आरम्भ हुई जो १९२९ से १९३४ तक रही।

कारण—

यह मन्दी और उससे उत्पन्न आर्थिक दुर्दशा अत्यन्त भयङ्कर थी और संसार के इतिहास में अभूतपूर्व थी। भिन्न-भिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसके भिन्न-भिन्न कारण बताये हैं। कुछ लोगों की राय थी कि इन आर्थिक कठिनाइयों का कारण संसार के विभिन्न देशों में सोने की कमी थी। युद्धकाल में अमेरिका के व्यापार ने अभूतपूर्व उन्नति की थी। उसने अन्य राष्ट्रों को कर्ज़ भी अपार दिया था। इस कर्ज़ की अदायगी अधिकतर सोने में हो रही थी। फ्रान्स को क्षतिपूर्ति की रकम का अधिकांश मिल रहा था और वह उसे भी सोने के रूप में प्राप्त हो रहा था। इस प्रकार युद्धकालीन ऋण और क्षतिपूर्ति के कारण संसार का सोना संयुक्तराष्ट्र तथा फ्रान्स में जमा हो रहा था और अनुमान किया जाता है कि संसार में उस समय जितना सोना था उसका ६० प्रतिशत संयुक्त राष्ट्र तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ्रान्स के पास था।* इससे संसार में सोने की कमी हो गई थी। सोने की कमी से विभिन्न देशों में सिक्के की कीमत बढ़ गई और माल की कीमतें गिर गईं जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा। कुछ लोगों की राय थी कि चाँदी अत्यधिक परिणाम में हो जाने से चीन तथा भारतवर्ष जैसे देशों की, जहाँ सिक्के का आधार सोने की जगह चाँदी था, खरीदने की ताकत कम हो गई और सारी कठिनाई की जड़ यही कमी थी।†

यह भी कहा जाता है कि उत्पादन के तरीकों में निरन्तर वैज्ञानिक उन्नति होने के कारण एक ओर तो औद्योगिक तथा कृषि सम्बन्धी उत्पादन आवश्यकता से बहुत अधिक बढ़ गया जिसका कोई खरीदार नहीं था और दूसरी ओर कारखानों में उन्नत मशीनों के काम में आने के कारण कम मज़दूरों से काम होने लगा। असंख्य मज़दूर बेकार हो गये और उनकी खरीदने की शक्ति कम हो गई।

इस संकट का एक कारण यह भी था कि युद्धोत्तर काल में आर्थिक राष्ट्रीयता के अत्यधिक प्रभाव के कारण विभिन्न देशों में स्वदेशी वस्तुओं को ही खरीदने और बाहर से आने वाली वस्तुओं के प्रयोग को कम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। सरकारें बाहर से आने वाले माल पर भारी कर लगा रही थीं, उसकी मात्रा नियत और मर्यादित कर रही थीं तथा अन्य अनेक प्रकार के नियन्त्रण लगा रही थीं जिससे उनका विदेशी व्यापार कम हो रहा था और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को क्षति पहुँच रही थी।

योरोपीय आर्थिक व्यवस्था की निर्बलता—

योरोप की स्थिति में विशेषकर इस समय दो बड़ी कमज़ोरियाँ थीं। प्रथम बात तो यह थी कि अब यान्त्रिक उत्पादन में योरोप का एकाधिकार नहीं रहा था। युद्ध काल की कठिनाइयों के कारण जापान, भारतवर्ष, ब्रिटिश डॉमिनियन जैसे देशों ने फ्रान्स, जर्मनी, इंगलैण्ड आदि देशों में खरीदने की जगह स्वयं अपनी आवश्यकता की बहुत सी वस्तुएँ बनाना शुरू कर दिया था। इस समय कनाडा, रूस आदि देश इतना सस्ता अन्न उत्पन्न कर रहे थे कि योरोप के कृषि प्रधान देश दामों में उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। पूर्वी योरोप—रुमानिया, बल्गारिया, हँगरी और किसी सीमा तक पोलेण्ड और यूगोस्लाविया-के लोग अपने खेतों की उपज को बाहर भेज कर अपनी जीविका

* Jackson : The Between-War World, p. 121.

§ Langsam : The World Since 1914, p. 156.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चलाते थे। परन्तु वहाँ उत्पादन का खर्च अधिक था और इस कारण पुराने पैमाने पर वे अपना माल बाहर नहीं भेज सकते थे। अतः वे बाहर से माल भी कम खरीद सकते थे। उन्हें बाहर के माल पर भारी कर लगाना पड़ता था। इसका प्रभाव योरोप के उद्योगप्रधान देशों पर बड़ा बुरा पड़ा क्योंकि वे अपना माल इन्हीं देशों में बेचने की आशा करते थे। इस प्रकार कृषि-प्रधान देशों की गरीबी का प्रभाव शेष देशों पर बुरा पड़ा। नये राष्ट्रों की आर्थिक राष्ट्रीयता ने भी, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, भारी आयात-कर लगाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया।

योरोप की आर्थिक स्थिति की दूसरी निर्बलता यह थी कि उन दिनों योरोप ऋण लेकर अपना काम चला रहा था। अनुमानतः जर्मनी ने डॉवेस-योजना के कार्यान्वित होने के बाद (१९२४) से १९२९ तक विदेशों से ९० करोड़ पौंड ऋण लिया था जिसमें से अधिकांश अमेरिका से प्राप्त हुआ था। इस ऋण की सहायता से उसके व्यवसाय अच्छी तरह चल रहे थे, व्यापार उन्नति कर रहा था और उनकी आमदनी से वह क्षतिपूर्ति की किश्तें चुका रहा था। इन पाँच वर्षों में उसने कोई ५० करोड़ पौंड रुपया क्षतिपूर्ति में अदा किया था और ४० करोड़ पौंड की उसे बचत हुई थी।* इस प्रकार १९२९ तक जर्मनी में समृद्धि पैदा हो गई थी। परन्तु इसका आधार विदेशों से प्राप्त ऋण था और उसके जारी रहने के लिये आवश्यक था कि उसे बाहर से, मुख्यकर अमेरिका से, यथेष्ट परिमाण में ऋण मिलता रहे। परन्तु तब तक अमेरिका वालों ने अपनी सम्पत्ति अपने देश के व्यवसायों में ही लगाना आरम्भ कर दिया था और उनमें अपना रुपया बाहर लगाने के लिये उत्सुकता नहीं रही थी। इस पर, जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, १९२९ के अक्टूबर में न्यूयॉर्क के बैंकों का दीवाला निकल गया और साहूकारों का बहुत सा धन डूब गया। इस घटना के संसार पर दो प्रभाव पड़े। प्रथम तो उन देशों को ऋण मिलना बन्द होगया जो उससे निरन्तर ऋण लेकर ही अपना कार्य चला रहे थे। जर्मनी को १९२८ में एक अरब डालर ऋण मिला था। १९२९ में वह ५० करोड़ ही रह गया और उस वर्ष के अन्त तक तो वहाँ के साहूकार अपनी छोटी अवधि के ऋण की अदायगी मांगने लगे।† इसके साथ ही इस घटना का दूसरा प्रभाव संसार की कीमतों पर हुआ। अब अमेरिका पुराने परिणाम में खरीदारी नहीं कर सकता था। इस पर १९३० में उसने भारी मात्रा के आयात-कर लगाकर

* Carr : International Relations between the Two World Wars, p. 134.

† Jackson : The Between-War World, p. 122.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विदेशी माल के आयात पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि संसार में कीमतें गिरने लगी और १९३० तक १९२८ की कीमतों की आधी रह गईं। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में प्रत्येक ऋण दुगना हो गया।

आर्थिक अव्यवस्था और बेकारी—

इस स्थिति का संसार के सभी देशों पर असर हुआ। ऋण लेकर काम चलाने वाले देशों की तो आर्थिक व्यवस्था बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गई। पूँजी तथा सिक्के की कमी हो गई, कीमतें गिरने लगी, कारखानों में घाटा होने लगा, लाखों मजदूर बेकार हो गये, विदेशी व्यापार घट गया और सरकार को अपना बजट पूरा करना कठिन हो गया। जर्मनी के बजट में ६ करोड़ पौंड का घाटा रहा। उसे १० करोड़ पौंड की वार्षिक किश्त अदा करनी थी और विदेशों के ऋण पर उसे ६ करोड़ पौंड वार्षिक ब्याज देना पड़ता था। १९२९ में जर्मनी ने ६३ करोड़ पौंड का माल बाहर भेजा था परन्तु १९३२ में वहाँ से केवल २८ करोड़ पौंड का माल ही भेजा जा सका। ऐसी अवस्था में सरकार को घाटा रहना और कारखानों का बन्द होना स्वाभाविक ही था। १९३२ में जर्मनी में बेकारों की संख्या ५६ लाख तक पहुँच गई।* अन्य देशों का भी यही हाल हो रहा था।

योरोपीय संघ की स्थापना का प्रयत्न—

इस स्थिति को सम्हालने के लिये एक उपाय यह था कि संसार के राज्य आर्थिक क्षेत्र में परस्पर सहयोग करते। कई तरफ से कई प्रकार के प्रस्ताव हुए परन्तु सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव फ्रान्स के विदेश मन्त्री ब्रियाँ का था जिसने योरोप का एक आर्थिक संघ निर्माण करने का प्रस्ताव किया (१९३०)। राष्ट्र संघ की एसेम्बली में इस पर विचार भी हुआ परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला क्योंकि कई राज्यों को इसमें फ्रान्स का योरोप पर प्राधान्य स्थापित करने का कुचक्र दिखाई देता था। अतः ऑस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री ने प्रादेशिक समझौतों का प्रस्ताव किया। ऐसेम्बली में इस प्रस्ताव का स्वागत हुआ और १९३१ में योरोप की राजधानियों में आर्थिक सम्मेलन हुए परन्तु आर्थिक प्रतिस्पर्धा और राष्ट्रीय ईर्ष्या के कारण कोई महत्वपूर्ण समझौता न हो सका। केवल ऑस्ट्रिया और जर्मनी के बीच एक आर्थिक संघ बनाने के लिये समझौता हुआ परन्तु फ्रान्स ने यह कह कर कि जर्मनी इस प्रकार

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 393.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऑस्ट्रिया को शामिल करना चाहता है उसका बड़ा विरोध किया और समझौता कार्यान्वित न हो सका।*

ऑस्ट्रिया में संकट—

इन दिनों ऑस्ट्रिया की आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी और मई १९३१ में वियना के सबसे बड़े बैंक (Credit Anstalt) का दिवाला निकल गया। इंगलैंड और जर्मनी ने उसकी सहायता करने का प्रयत्न किया परन्तु व्यर्थ। इसके बाद जर्मनी का नम्बर आया। साहूकारों ने वहाँ के बैंकों से भी रुपया निकालना शुरू किया।

जर्मनी में संकट—

ऐसी स्थिति में अमेरिका के प्रेसिडेण्ट हूवर ने संसार के आर्थिक पुनरुद्धार के लिए १ जुलाई से समस्त युद्धकालीन ऋण, क्षतिपूर्ति तथा सहायतार्थ दिये गये ऋण आदि की अदायगी को एक वर्ष के लिये स्थगित करने का प्रस्ताव किया। फ्रांस ने इसका विरोध तो किया परन्तु अन्य सभी देशों ने उसे स्वीकार किया।† किन्तु इससे जर्मनी को कोई सहायता नहीं मिल सकी। १३ जुलाई को जर्मनी के प्रमुख बैंक (Darmstadter und Nationalbank) का दीवाला निकल गया और १४ जुलाई को सरकारी आदेश से अन्य सब बैंक बन्द कर दिये गये।

इङ्गलैण्ड में संकट—

जर्मनी को सहायता देने की पेरिस और लण्डन में बात चल रही थी कि इंगलैण्ड के बैंकों पर संकट आ गया। बैंक ऑफ इंगलैण्ड में संसार के प्रायः प्रत्येक देश का रुपया जमा रहता है। सभी राष्ट्रों ने वहाँ से अपना रुपया निकालना शुरू किया और बैंक ऑफ इंगलैंड को पेरिस तथा न्यूयार्क से कई करोड़ पौंड उधार लेना पड़ा। उस समय वहाँ मज़दूर दलीय सरकार थी। उसने त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय सरकार का निर्माण किया गया जिसने पौंड का सोने से सम्बन्ध तोड़कर स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया। इस पर अनेक देशों को भी जिनकी आर्थिक व्यवस्था पौंड से जुड़ी हुई थी, ऐसा ही करना पड़ा। १९३१ के अन्त तक आर्थिक संकट पराकाष्ठा को पहुँच गया।

---

* Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, pp. 339-343.

† Langsam : The World Since 1914, p. 162.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीमतें निम्नतम स्तर पर पहुँच गईं और संसार की आर्थिक एवं व्यापारिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। शायद फ्रांस को छोड़ सर्वत्र भय और निराशा व्याप्त हो गई और कोई भी नहीं समझ पा रहा था कि इस संकट से मुक्ति किस प्रकार मिलेगी।*

लौसेन-सम्मेलन—

संकट से मुक्ति पाने के उपायों पर विचार करने के लिये इंगलैण्ड वेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इटली और जापान के प्रतिनिधि लौसेन (Lausanne) में एकत्र हुए (जून १९३२)। तीन सप्ताह के विचार के बाद यह निर्णय हुआ कि जर्मनी पर क्षतिपूर्ति का जितना ऋण है वह रद्द कर दिया जाय और उसके बदले जर्मनी योरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये ३ अरब मार्क दे। इस निर्णय के द्वारा यंग-योजना के अनुसार जर्मनी की जितनी देनदारी थी उसके ९० प्रतिशत की छूट मिल गई। इस छूट का कारण उदारता नहीं, वरन् विश्व-व्यापार को फिर से चेताने की आवश्यकता थी। समृद्धि व्यापार तथा सुरक्षा पर निर्भर थी और सुरक्षा क्षतिपूर्ति को रद्द करके ही निश्चित की जा सकती थी। इस निर्णय का सर्वत्र बड़ा स्वागत हुआ परन्तु इसके साथ ही इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली तथा वेल्जियम ने आपस में मिलकर अलग से एक समझौता किया कि इस निर्णय पर अमल तभी हो सकेगा जब कि विभिन्न राज्य उसका पुष्टीकरण कर लें और पुष्टीकरण तभी हो सकेगा जब कि स्वयं उनका उन राज्यों से कोई सन्तोषजनक समझौता हो जायगा जिनके वे ऋणी थे। वे सभी राज्य संयुक्त-राष्ट्र के ऋणी थे। वे चाहते थे कि संयुक्त-राष्ट्र अपने समस्त कर्जों की छूट दे दे। संयुक्त-राष्ट्र इसके लिये तैयार नहीं हुआ और लौसेन का समझौता कार्यान्वित न हो सका। स्थिति पहले जैसी ही हो गई। जर्मनी को बाहर से ऋण मिलना असम्भव था। इस कारण उसने क्षतिपूर्ति की किश्तें अदा करना बन्द कर दिया। यह देख कर अन्य राज्यों ने भी अपने-अपने ऋण की अदायगी बन्द कर दी।†

लन्दन सम्मेलन—

लॉसेन सम्मेलन में आर्थिक संकट पर विचार करने के लिये एक विश्व-सम्मेलन करने के लिये राष्ट्र-संघ से प्रार्थना की गई थी। इस प्रार्थना पर राष्ट्र संघ ने जून १९३३ में एक सम्मेलन लण्डन में आमंत्रित किया जिसमें ६४ राज्य

---

* Jackson : The Between-War World, p. 155.
† Langsam : The World since 1914, pp. 164-162.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्मिलित हुए। सम्मेलन की सफलता मुख्यकर मुद्रा में स्थिरता लाने की समस्या के सन्तोषजनक समाधान पर निर्भर थी। इसके साथ ही यह आवश्यक था कि व्यापार के क्षेत्र में संरक्षण की नीति का अन्त करके विभिन्न राज्य परस्पर सहयोग करें और आयात-करों को कम करें। अमेरिका, इङ्गलैण्ड तथा अन्य कई देश कई दूसरी बातों में मतभेद रखते हुए भी इस बात में एकमत थे। परन्तु जिस प्रकार निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों में फ्रान्स इस बात पर अड़ता था कि शस्त्रास्त्रों में कमी तभी हो सकती है जब कि सुरक्षा की समस्या हल हो जाय उसी प्रकार इस सम्मेलन में भी फ्रान्स इस बात पर अड़ गया कि आयत-करों को कम करने के विषय में कोई समझौता करने के पहले मुद्रा में स्थिरता लाई जाय। अन्य कई राज्यों ने भी उसका समर्थन किया।* परन्तु इस समय तक अमेरिका की बैंकिंग-व्यवस्था बिलकुल अस्तव्यस्त हो चुकी थी और कोई डेढ़ करोड़ मज़दूर बेकार हो चुके थे। ४ मार्च १९३३ को रूज़वेल्ट राष्ट्रपति बन चुका था और उसका सबसे पहला कार्य चार दिन के लिये समस्त बैंक बन्द कर देना था। अप्रैल में उसने डॉलर का सोने से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया था। सम्मेलन के आरम्भ होने के बाद रूज़वेल्ट ने अपनी नीति बदल दी और २२ जून को अमेरिका के प्रतिनिधि-मण्डल ने सम्मेलन में घोषणा की कि वाशिंगटन सरकार की राय है कि अभी मुद्रा में स्थिरता लाने का प्रयत्न करने का समय नहीं है। अमेरिका के इस रुख से सम्मेलन विफल हो गया और भंग हो गया।†

इस प्रकार सम्मेलन असफल रहा और आर्थिक संकट को दूर करने का कोई उपाय नहीं हो पाया। परन्तु इस समय तक संकट की उग्रता अपने आप ही कम हो चली थी। कई देशों ने मुद्रा-प्रसार की नीति का अवलम्बन करके अपने सिक्कों की कीमतें गिरा ली थीं जिससे वस्तुओं की क़ीमतें बढ़ने लगीं थीं। इतने दिनों से कारख़ानों के बन्द पड़े रहने के कारण माल का परिमाण भी कम हो गया था। विभिन्न राज्यों में शस्त्रास्त्र तथा युद्ध की सामग्रियों के निर्माण का काम शुरू हो जाने से कारख़ानों को फिर से काम मिलने लगा था और बेकारी दूर हो चली थी। इसका कारण राजनीतिक था।

आर्थिक संकट के राजनीतिक परिणाम—

आर्थिक संकट ने संसार के उद्योग-धन्धों तथा व्यापार-व्यवसाय को तो

---

*Carr : International Relations between the Two World Wars, p. 150.

†Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, pp. 277-78.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्तव्यस्त कर दिया था, उसका बड़ा महत्वपूर्ण परिणाम राजनीतिक क्षेत्र में भी हुआ था। किसी भी देश की आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध होता है और दोनों परस्पर एक दूसरे पर बड़ा प्रभाव डालती हैं। प्रथम मन्दी के समय में (१९२०-२४) इटली में मुसोलिनी ने प्रजातन्त्र की हत्या करके अपना फ़ासिस्ट शासन स्थापित किया। दूसरी मन्दी (१९२९-३४) विश्वव्यापी थी और उसने संसार भर में राजनीतिक उथल-पुथल मचा दी। आर्थिक संकट के कारण जनता को जो कष्ट उठाने पड़ रहे थे उनका इलाज करने के लिये आवश्यक था कि देश के समस्त आर्थिक जीवन को सरकार अपने नियन्त्रण में लेकर उचित व्यवस्था करे। अतः इन दिनों सर्वत्र सरकारों ने अपने हाथों में अत्यधिक शक्ति ले ली। इसके साथ ही जनता यह आशा करती थी कि सरकार के बदलने से अवस्था में सुधार हो सकेगा। ऐसे भीषण संकट के समय पार्लामेण्टरी प्रजातन्त्र निर्बल प्रमाणित होता है। इस कारण इन दिनों प्रायः प्रत्येक देश में न्यूनाधिक मात्रा में अधिनायकतन्त्र स्थापित हो गये। जिन देशों में प्रजातंत्र वर्षों से प्रतिष्ठित था वहाँ अधिनायकतंत्र स्थापित नहीं हुआ परन्तु पार्लामेण्टरी पद्धति स्थगित कर दी गई और सरकार के हाथों में अत्यधिक शक्ति दे दी गई। इस प्रकार वहाँ भी वस्तुतः अधिनायकतंत्र स्थापित हो गया। इंगलैण्ड में मज़दूरदलीय सरकार के स्थान पर सर्वदलीय राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई जो अधिनायकतंत्र से किसी प्रकार कम नहीं थी।* अमेरिका के प्रेसिडेण्ट रूसवेल्ट को अपरिमित अधिकार प्राप्त हो गये।† जहाँ प्रजातन्त्र नया ही था और जड़ नहीं कर पाया था वहाँ उसके स्थान पर अधिनायकतंत्र की स्थापना हो गई। जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हंगरी, स्पेन, पोलेण्ड, यूगोस्लाविया, रुमानिया, बल्गारिया, ग्रीस, पोर्तुगाल, एस्टोनिया, लेटविया आदि अनेक राज्यों में किसी न किसी रूप में अधिनायकतंत्र स्थापित हो गये।

———

* Jackson : The Between War World, p. 130.

†Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p. 282.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १७

जर्मन गणतन्त्र का विनाश

नात्सी अधिनायकतन्त्र की स्थापना

आर्थिक संकट का परिणाम—

आर्थिक संकट का प्रभाव जर्मनी पर सबसे अधिक विनाशकारी हुआ। यह अत्यन्त आवश्यक था कि उसे बाहर से धन मिले और उसको ऋण देने वाले देश उसके साथ कुछ रियायत करने के लिये तैयार हों। इन दोनों बातों के अभाव में उसका सर्वनाश निश्चित था। दुर्भाग्यवश स्ट्रेस्मेन जो जर्मनी के लिये ये रियायतें समझाबुझाकर प्राप्त कर सकता था, मर चुका था और उधर फ्राँस में जर्मनी के साथ सहयोग करने की नीति में विश्वास करने वाले ब्रियाँ के स्थान पर तार्द्यू (Tardieu) प्रधान मन्त्री बन गया था जो उसके साथ किसी प्रकार की भी रियायत करने के लिए तैयार नहीं था। जर्मनी की दशा बड़ी जल्दी-जल्दी गिरने लगी, व्यवसाय असफल होने लगे और बेकारी बढ़ने लगी। बेकारों की संख्या जो १९२८ में ही १३,५०,००० थी, बढ़ कर १९३० में ३१,५०,००० और १९३२ में ५६,००,००० हो गई।* जर्मनी के १६ से ३२ वर्ष तक की आयु वाले आधे युवक बेकार हो गये।

गणतन्त्र पर संकट—

ऐसे भयंकर संकट से गणतन्त्र की निर्बलता प्रकट हो गई। अभी तक सोश्यल डेमोक्रेट दल अन्य दलों की सहायता से बड़ी सफलतापूर्वक जर्मनी को उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ा रहा था परन्तु इस संकट का सामना वह न कर सका। फ्रांस की कठोर नीति से गणतन्त्र कमजोर पड़ने लगा और उन लोगों का जोर बढ़ने लगा जो वार्साई की सन्धि और उसकी समस्त शर्तों का अन्त कर देने में ही जर्मनी का कल्याण देखते थे। देश में यह विश्वास जड़ पकड़ने लगा कि वार्साई-सन्धि की शर्तों के पालन से ही, जिसके स्ट्रेस्मेन तथा गणतन्त्र दोनों ही समर्थक थे, जर्मनी का यह सर्वनाश हो रहा था। ऐसी दशा में सम्मिलित दल छिन्न-भिन्न होने लगा। देश में विरोध बढ़ने लगा और दक्षिणपक्षीय तथा

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 393.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वामपक्षीय अतिवादी दल जोर पकड़ने लगे। कुछ डेमोक्रेटिक लोग और राष्ट्रीय उदार दल के लोग (जिन्होंने लोक दल (People's Party) के नाम से अपना नया संगठन कर लिया था) अलग होकर दक्षिणपक्षीय दलों में शामिल होने लगे और कई डेमोक्रेट लोग वामपक्ष की ओर झुक कर कम्यूनिस्ट दल में शामिल होने लगे। देश के सामने प्रश्न यह था कि कौन सा दल इस निकम्मे गणतन्त्र का अन्त करके वार्साई की सन्धि में संशोधन करा सकता था। साम्यवादी दल की शक्ति बढ़ रही थी परन्तु उसका लक्ष्य केवल मज़दूरों का ही हित था और वे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की बात करते थे जो उस समय जर्मनों को, जिन्हें प्रत्येक राष्ट्र उस समय घृणा करता हुआ दिखाई देता था, घृणित मालूम होती थी। राष्ट्रीय दल (Nationalists) के भी अनुयायी काफी थे परन्तु उनके सामने भी समस्त जर्मन राष्ट्र का नहीं वरन् उसके कुछ ही व्यक्तियों-जमीदारों तथा उद्योगपतियों—का ही हित था।* उस समय केवल एक ही उदीयमान दल था जो जर्मनी का उद्धार कर सकता था। वह उग्र राष्ट्रीयता का पुजारी होते हुए एक ऐसे सामाजिक कार्यक्रम का समर्थक था जो छोटे पूँजीपतियों को, जो दरिद्र हो गये थे, और भूखों मरते हुए मजदूरों को समान रूप से आकर्षक मालूम होता था। इसी द्विविध कार्यक्रम के कारण उसने अपना नाम राष्ट्रीय समाजवादी (National Socialist—Nazi) दल रखा था। इस दल का कार्यक्रम तो इतना आकर्षक था परन्तु यदि उसे एक जबरदस्त नेता न मिलता जो वार्साई के अन्याय से जनता को मुक्त करने तथा सबको प्रचुर मात्रा में रोटी तथा काम देने का वचन देकर लाखों की भीड़ को मन्त्रमुग्ध कर सकता था तो वह कुछ नहीं कर सकता था। परन्तु उसे ऐसा प्रतिभाशाली नेता मिल गया। वह था एडॉल्फ हिटलर।

एडॉल्फ हिटलर—

हिटलर का जन्म १८८९ में एक निम्न मध्यम वर्ग के परिवार में ऑस्ट्रिया के एक गाँव में हुआ था। उसका पिता गरीब था और उसे उचित शिक्षा नहीं दे सकता था। अपने पिता की मृत्यु हो जाने से बारह वर्ष की अवस्था में वह अनाथ होगया। वह गृह-निर्माण कला की शिक्षा प्राप्त करना चाहता था और इसी दृष्टि से वह वियना के आर्ट स्कूल में प्रवेश करना चाहता था। परन्तु वह प्रवेश परीक्षा में सफल नहीं हो सका और उसे अपना पेट भरने के लिए मज़दूरी का आश्रय लेना पड़ा। वह कभी कारीगरों के यहाँ काम करता, कभी मकानों पर रंग करता

* Jackson : The Between-War World, p. 126.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और इस तरह कुछ दिनों तक वियना में दिन बिताता रहा। परन्तु मज़दूर लोग उससे घृणा करते थे और इस कारण वह वियना छोड़कर म्युनिख़ चला गया (१९१२)। परन्तु वियना छोड़ने से पहले वह कई बातों से घृणा करना सीख गया था। उसे 'यहूदियों, सोश्यल डेमोक्रेट लोगों, चेक लोगों, पार्लामेण्टरी संस्थाओं तथा हाप्सबुर्ग राजवंश' से ऐसी घृणा हो गई जिसका जीवन भर उस पर प्रभाव बना रहा था।* उसे समाचारपत्र पढ़ने का बड़ा शौक था। और ऑस्ट्रिया के उत्तेजनापूर्ण समाचारपत्रों ने जिनमें ऑस्ट्रिया-हंगरी की अनेकानेक जातीय समस्याओं की चर्चा रहती थी, उसे जर्मन राष्ट्रीयता का अनन्य पुजारी तथा समाजवाद के अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धांतों का कट्टर शत्रु बना दिया। वह यहूदियों से भी घृणा करने लगा क्योंकि उसके विचार में समाजवाद का अस्तित्व उन्हीं पर निर्भर था और वे ही उसका प्रचार करते रहते थे। समाजवादियों के साथ उसे उदारवादियों एवं शान्तिवादियों से भी घृणा हो गई। म्यूनिख़ के वातावरण में उसे यह विश्वास हो गया कि समस्त जर्मनों को राजनीतिक दृष्टि से एक होना चाहिये और कभी न कभी ऑस्ट्रिया बृहत्तर जर्मनी में शामिल होगा। अतः उसने अपनी ऑस्ट्रियन नागरिकता का परित्याग कर दिया और जब महायुद्ध आरम्भ हुआ तो वह सेना में भरती हो गया। उसे विश्वास था कि इस युद्ध के परिणामस्वरूप बृहत्तर जर्मनी का जन्म होगा परन्तु जब युद्ध में जर्मनी की पराजय हुई तो उसे बड़ी निराशा हुई। वह युद्ध में घायल हो गया था और उसे वीरता के लिये 'आयरन क्रॉस' भी प्रदान हुआ था। जब वह पॉमरेनिया के एक अस्पताल में पड़ा हुआ था, उसे युद्ध-विराम की सूचना मिली। उसे सुन कर वह आपे से बाहर हो गया और समस्त घटनाओं पर विचार करते हुए उसने निष्कर्ष निकाला कि जर्मन सेना न तो पराजित ही हुई थी और न वह पराजित की ही जा सकती थी। उसकी पराजय का कारण उसके नेताओं का धोखा देना-पीठ में छुरा भोंकना था। इसी प्रकार के विचार जर्मनी के दक्षिणपक्षीय राजनीतिज्ञों में प्रचलित थे। उसका विश्वास था कि यदि नेता योग्य हों तो जर्मन सेना अब भी अपने शत्रुओं को नष्ट कर सकती है।

कार्यक्रम--

इस दृढ़ विश्वास के साथ और राजनीति में प्रवेश करने का दृढ़ निश्चय करके हिटलर अस्पताल से निकला। वह सेना के एक जासूस का काम करता

*Ensor in Gordon : The Background and Issues of the War, p. 80.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ म्युनिख की सड़कों में घूमता फिरता था। इसी सिलसिले में वह कुछ ऐसे नवयुवकों के सम्पर्क में आया जिनके विचार उसी के विचारों जैसे थे और जिन्होंने अपना एक गुट (German Workers' Party) बना रखा था। हिटलर ने इस गुट को संगठित करने का इरादा किया। कुछ ही महीनों में उसके साथियों की संख्या बढ़ गई और उसने सफलता के लिये आवश्यक चार बातों—(१) दलीय कार्य क्रम, (२) दलीय सेना, (३) दलीय समाचारपत्र तथा (४) दल के आकर्षक नाम की व्यवस्था कर डाली।* फर्वरी १९२० में उसने म्युनिख में एक कमरा (Beer Cellar) किराये पर लिया और उसमें अपने अनुयायियों की एक सभा करके अपने दल के लिये एक कार्यक्रम निश्चित किया जिसमें २५ बातें थीं जो संक्षेप में यहूदी-विरोधी, मुनाफाखोर विरोधी, विदेश-विरोधी, वाइमर-विरोधी, तथा वार्साई, विरोधी थीं।† इस कार्यक्रम में वासाई-सन्धि की निन्दा की गई, समस्त जर्मन भाषा-भाषियों को एक वृहत्तर जर्मनी में शामिल करने की माँग प्रस्तुत की गई, जर्मनी के जो उपनिवेश छीन लिये गये थे, उन्हें वापस लौटा देने तथा जर्मनी को फिर से पूर्ण शस्त्रीकरण करने देने की माँग की गई। उसमें समस्त यहूदियों को विदेशी कह कर उन्हें नागरिकता से वंचित करने पर ज़ोर दिया गया और साम्यवाद, उदारवाद तथा पार्लामेण्टरी प्रजातन्त्र की निन्दा करके ऐसे आर्थिक सुधारों का प्रस्ताव किया गया जिससे मज़दूर तथा निम्न मध्यम वर्ग के लोग संतुष्ट हो सकें।$ संक्षेप में, यह कार्यक्रम उग्रवाद तथा राष्ट्रीयतावाद का सम्मिश्रण था।

दलीय सेना--

इस कार्यक्रम के निर्माण के साथ उसने दलीय सेना का सङ्गठन भी आरम्भ किया जिसके दो अंग थे। उसके एक भाग (Sturm Abteilungen—S. A.) के लोग तो भूरे रंग की कमीज़ (Brown Shirts) पहनते थे, उनकी एक बाँह पर लाल पट्टा रहता था जिस पर स्वस्तिक का चिन्ह रहता था। इन लोगों का काम प्रचार के लिए प्रदर्शन-मार्च करने के अतिरिक्त दलीय सभाओं की रक्षा करना तथा विरोधी दलों, विशेष कर सोश्यल डेमोक्रेटों और साम्यवादियों की सभाओं को बलपूर्वक भंग करना था। सेना का दूसरा भाग कुछ चुने हुए लोगों का होता था (Schuiz Stafflen—S.S.) जो काले रंग

* Strong : Dynamic Europe, p. 347.
† Jackson : The Between-War World, p. 127.
$ Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II. p. 395,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की कमीज़ पहनते थे। ये लोग दलीय नेताओं के अंग-रक्षक होते थे और उन्हें जो आदेश दिये जाते थे उनका पूर्णतया पालन करते थे। धीरे-धीरे यह सेना बड़ी अच्छी सुसंगठित सेना बन गई। १९२० के अन्त में उसने अपने दल का एक बड़ा नाम रखा—राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन मज़दूर दल (National Socialist German Workers' Party) और अपना एक समाचार पत्र (Peoples' Observer, or Guardian) भी प्रकाशित करना शुरू कर दिया।

हिटलर ने इस प्रकार संगठित रूप में कार्य आरम्भ किया। वह बड़ा अच्छा वक्ता था और बड़ी-बड़ी भीड़ों को अपने भाषण के जादू से मुग्ध कर सकता था। उसके जोशीले भाषणों से जनता में बड़ा जोश उत्पन्न होता था। उसके अनुयायियों की संख्या बड़ी जल्दी बढ़ने लगी और उसमें सभी प्रकार के लोग शामिल होने लगे। जब १९२३ में फ्रेंच सेना ने रूर पर अधिकार कर लिया तो उसने दक्षिणी जर्मनी के अन्य असन्तुष्ट गुटों से सम्पर्क स्थापित करके निकम्मी गणतन्त्रीय सरकार को पलट देने का प्रयत्न किया। ल्यूडेनडॉर्फ भी उसके साथ हो गया परन्तु जैसा हम देख चुके हैं, यह प्रयत्न असफल रहा। हिटलर पकड़ लिया गया और उसे ५ वर्ष की सज़ा हुई।

'मेरा संघर्ष'—

कारागार में हिटलर को अपनी स्थिति एवं कार्यक्रम पर विचार करने का अवकाश मिला। उसने अनुभव किया कि बलपूर्वक शासन पलटने का कार्यक्रम गलत था और भविष्य में अपनी सेना का चुपचाप संगठन करते हुए तथा कानूनी व्यवहार के परदे में अपने लक्ष्य को गुप्त रखते हुए वैधानिक रीति से आगे बढ़ने का निश्चय किया। यहीं उसने अपनी आत्मकथा 'मेरा संघर्ष' (Mein Kampf) का प्रथम भाग लिखा जिसमें उसने बहुमत शासन की पार्लामेण्टरी पद्धति की तीव्र निन्दा करते हुए विशुद्ध जर्मन प्रजातन्त्र की अपनी कल्पना प्रस्तुत की जिसका अर्थ था 'जनता द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने नेता का निर्वाचन और अलग-अलग प्रश्नों पर मत संग्रह के स्थान पर व्यक्ति (नेता) का शासन।' उसमें उसने नात्सी दल के जन्म एवं विकास का वर्णन किया और भावी कार्यक्रम का भी चित्र दिया। वह बड़ी सही भविष्यवाणी थी। उसमें निर्दिष्ट कार्यक्रम की बहुत कम ऐसी बातें थीं जिन्हें उसने आगे चलकर कार्यान्वित नहीं किया हो।* जर्मनी के विस्तार का कार्यक्रम प्रस्तुत करते समय

* Strong : Dynamic Europe, p. 349.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने आत्मनिर्णय के सिद्धान्त की दुहाई देते हुए कहा कि जर्मन राज्य में समस्त जर्मन-भाषियों को शामिल होना चाहिए। आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के साथ ही शाश्वत न्याय के सिद्धान्त का भी उसने प्रतिपादन किया जिसका अर्थ था कि जर्मनी के लिए 'रहने के लिए स्थान' (Lebenstrum) होना चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार उसे अ-जर्मन-भाषियों को जर्मन साम्राज्य में शामिल कर लेने में कोई संकोच नहीं था। उसने कहा कि राजनीतिक सीमाओं के सामने हमें शाश्वत न्याय की सीमाओं को नहीं भूल जाना चाहिए और राष्ट्रीय समाजवाद का लक्ष्य जर्मन राष्ट्र के लिए इतना प्रादेशिक विस्तार करना चाहिए जिसमें हमारे लोग रह सकें। उसने बतलाया कि यदि जर्मनी का प्रादेशिक विस्तार किसी दशा में हो सकता है तो पूर्व में, रूस तथा उसके सीमावर्ती राज्यों की दिशा में। आगे चल कर १९३६ में अपने एक भाषण में इसी सम्बन्ध में कहा कि 'यदि अपार प्राकृतिक सम्पत्ति से युक्त यूराल पर्वत, विस्तृत और मूल्यवान साइबेरिया के वन और अन्न का भंडार यूक्रेन जर्मनी में शामिल हो, तो नात्सी नेतृत्व में जर्मनी समृद्ध हो जायगा और हम इतना उत्पादन करेंगे कि प्रत्येक जर्मन के पास आवश्यकता से भी अधिक होगा।' फ्रान्स की चर्चा करते हुए उसने लिखा कि 'फ्रान्स जर्मन राष्ट्र का अनन्तकालीन घातक शत्रु है।'§

नात्सी दल का विस्तार—

हिटलर को पाँच वर्ष के कारावास की सज़ा हुई थी परन्तु वह १९२४ के अन्त में ही मुक्त कर दिया गया। १९२५ से १९२९ तक वह अपने विचारों के आधार पर अपने दल को संगठित एवं विस्तृत करता रहा और प्रचार करता रहा। सब जगह नात्सीदल की शाखाएँ खुल गईं और समस्त देश में उसका जाल सा बिछ गया। इस समय जर्मनी की स्थिति भी अनुकूल थी। राष्ट्रीय दल के लोग, जो अधिकतर उच्च वर्गीय थे, वार्साई की सन्धि तथा फ्रांस को सन्तुष्ट करने की नीति के विरोध में उससे सहमत थे। मध्यम वर्ग के लोग जो १९२२-२३ के आर्थिक संकट में नष्ट हो गये थे और बाद में पनप नहीं सके थे, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सर्वहारावर्ग में परिणत हो गये थे और राजनीतिक दृष्टि से उग्रवादी बन गये थे। परन्तु वे न तो समाजवादियों में शामिल हो सके क्योंकि उनके विचार में उनके विनाश का एक मात्र कारण वे ही थे और न वे साम्यवादियों में शामिल हो सकते थे जिनके 'लाल' अतिवाद (Extremism) से उन्हें भय लगता था। ऐसे व्यक्तियों के लिए

§Lipson : Europe in the 19th and 20 Centuries, pp. 383-384.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नात्सी दल में शामिल होना स्वाभाविक ही था जो राष्ट्रीय पुनरुद्धार के लिये प्रयत्न कर रहा था, जिसकी श्रम करके आजीविका कमाने वालों के साथ सहानुभूति थी और जो विशेषाधिकारयुक्त वर्गों के प्रतिकूल था, चाहे वे कुलीन हों, उद्योगपति हों अथवा धनकुबेर हों।*

नात्सी दल को १९२९ का आर्थिक वरदान सिद्ध हुआ। जैसा हम देख चुके हैं, उस संकट के प्रभाव से जर्मनी को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रह था। बहुत से कारखाने बन्द होगये थे और लाखों मजदूर बेकार हो गये। हिटलर को अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये बड़ा अच्छा अवसर मिला। उसने बतलाया कि जर्मनी की समस्त कठिनाइयों एवं समस्याओं का एकमात्र कारण गणतन्त्र था जिसमें एक प्रकार के स्वार्थों और दलबन्दियों को मनमानी करने की सुविधा रहती है। समाजवाद राष्ट्रीय दृष्टि से घातक है। जर्मनी की कठिनाइयों का अन्त तभी हो सकेगा जब कि समस्त जर्मन जनता गणतन्त्र तथा वार्साई की सन्धि के विरुद्ध उठ खड़ी होगी और समस्त जर्मनों को एक राजनीतिक सूत्र में ग्रन्थित कर लेगी। उसने जनता को उसका साथ देने के लिये आमन्त्रित किया और वार्साई की सन्धि की कालिमा धो देने, जर्मनी के राष्ट्रीय सम्मान में वृद्धि करने तथा प्रत्येक व्यक्ति को काम और रोटी देने का वचन दिया। इस प्रचार का जनता के सभी वर्गों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और नात्सी दल की शक्ति बड़ी जल्दी बढ़ने लगी। निम्न मध्य-वर्ग के लोग तो उसमें बड़ी संख्या में शामिल हो ही रहे थे, अब रूढ़िवादी राष्ट्रीय दल के लोग भी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये उसके साथ शामिल होने लगे। उद्योगपति तथा धनी लोग भी साम्यवाद की बढ़ती हुई बाढ़ को रोकने के उद्देश्य से उसका समर्थन करने लगे। १९२९ के निर्वाचन में नात्सी दल को लोक-सभा में केवल १२ स्थान मिले थे परन्तु १९३० के निर्वाचन में उसे कोई ६५ लाख मत प्राप्त हुए और लोक सभा के ५७६ सदस्यों में से उसके १०७ सदस्य निर्वाचित हुए। इस निर्वाचन में बहुमत (१४३) तो सोश्यल डेमोक्रेट दल का ही रहा परन्तु नात्सी दल दूसरे नम्बर पर आगया।‡ १९३२ में उसे अपनी शक्ति की परीक्षा करने का दूसरा अवसर मिला जब कि राष्ट्रपति हिन्डेनबुर्ग की अवधि समाप्त हुई और उसके रिक्त पद के लिये निर्वाचन हुआ। गणतन्त्रों ने अपनी स्थिति की रक्षा के लिये हिन्डेनबुर्ग को ही फिर खड़ा किया। उसके मुकाबले में हिटलर और साम्यवादी दल का नेता थालमेन (Tholmann)

---

* Strong : Dynamic, Europe, p. 352.

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 385.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी खड़े हुए। थालमेन को ३७ लाख, हिटलर को एक करोड़ ३४ लाख और हिण्डेनबुर्ग को २ करोड़ मत मिले। गणतन्त्रियों की विजय हुई और हिन्डेनबुर्ग फिर राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। तरन्तु उनकी स्थिति की निर्बलता इसी बात से प्रकट हो गई कि उन्हें एक रूढ़िवादी प्रख्यात सैनिक को, जिसे समस्त रूढ़िवादियों का समर्थन प्राप्त था, अपना उम्मेदवार बनाना पड़ा। उसी वर्ष लोक-सभा का भी नया निर्वाचन हुआ जिसमें नात्सी दल के २३०, सोश्यल डेमोक्रेट दल के १३३ और कम्यूनिस्टों के ८९ सदस्य चुने गये। नात्सीदल को लोक-सभा में बहुमत तो प्राप्त नहीं हुआ परन्तु वह स्पष्टतः सबसे बड़ा दल बन गया।

हिटलर प्रधानमन्त्री के पद पर—

इस प्रकार हिटलर वैधानिक रीति से आगे बढ़ते हुए ऐसी स्थिति में आ गया जिसमें राष्ट्रपति को अपना प्रधान मन्त्री बनने के लिये आमन्त्रित करना पड़ा। हिटलर ने इस शर्त पर आमंत्रण स्वीकार किया कि उसे पार्लामैंट के समर्थन के बिना ही शासन करने का अधिकार प्राप्त हो। हिन्डेनबुर्ग ने यह शर्त स्वीकार नहीं की और हिटलर ने प्रधानमन्त्री बनने से इन्कार कर दिया। किन्तु बाद में वह शक्ति का लोभ संवरण नहीं कर सका और उसने जनवरी १९३३ में प्रधान मन्त्री पद स्वीकार कर लिया और रूढ़िवादी राष्ट्रीय दल से मिलकर एक सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनाया।* इन दिनों हिन्डेनबुर्ग, जो अपने प्रथम कार्यकाल में निष्पक्ष रहा था, रूढ़िवादियों के प्रभाव में आता जा रहा था। वे लोग देख रहे थे कि जर्मनी की दशा उत्तरोत्तर बिगड़ती जा रही थी और समझ रहे थे कि यदि राष्ट्रीय दल के हितों की रक्षा करना है और साम्यवादी अधिनायकतन्त्र को दूर रखना है तो उसका एक मात्र उपाय नात्सीदल के साथ सहयोग करना है। उनको विश्वास था कि पद की जिम्मेदारी सिर पर आ जाने से नात्सी नेताओं का जोश ठण्डा पड़ जायगा। यह भी सम्भव था कि राजनीतिक अनुभव न होने से वे मन्त्रिमण्डल में राष्ट्रीय दल के अनुभवी सहयोगियों के प्रभाव में आ जायँगे। परन्तु वे हिटलर को ठीक-ठीक समझ नहीं सके।* आगे चलकर, जैसा हम अभी देखेंगे, उसने लोक-सभा के समस्त अधिकार अपने हाथों में ले लिये, सम्मिलित मंत्रिमण्डल का अन्त कर दिया (जुलाई, १९३३) और अपना एकछत्र शासन स्थापित कर लिया।†

* Strong : Dynamic Europe, p. 354.

† Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 387.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिटलर के उद्देश्य—

हिटलर ने जर्मनी को तीन बातें करने अर्थात् (१) एकता, (२)समृद्धि और (३) अन्य राष्ट्रों के साथ समानता प्रदान करने का वचन दिया था और बड़े विश्वास के साथ कहा था कि यदि मैं चार वर्ष के अन्दर अपने वचन को पूरा न कर सकूँ तो मैं सहर्ष प्राणदण्ड के लिये तैयार रहूँगा।* उसने अपना वचन पूरा कर दिखाया।

जर्मनी में एकता की स्थापना—

हिटलर के लिये जर्मनी की एकता का अर्थ था उसका पूर्णतया नात्सीकरण। इस दिशा में जो पहला कदम उसने उठाया वह था लोकसभा में अपने लिये स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना। उसने मार्च १९३३ में लोकसभा का नया निर्वाचन कराया और उसमें अपनी सफलता सुनिश्चित करने के लिये सभी प्रकार के उपाय किये। अपने मंत्रिमंडल में उसने अपने चुने हुए साथी रखे जिनमें एक हरमन गोरिंग (Hermann Goaring) था जो गृह-मंत्री बना। गोरिंग ने अनेक प्रान्तीय गवर्नरों और पुलिस के अधिकारियों को निकालकर उनकी जगह नात्सी अधिकारी नियुक्त किये। उसने राज्य की पुलिस तथा अपनी निजी सेना के द्वारा अपने विरोधियों पर सब प्रकार से दबाव डाला। जिन दिनों निर्वाचन के लिए तैयारी हो रही थी उन्हीं दिनों एक षड्यंत्र हुआ और २८ फरवरी को लोक-सभा भवन में आग लग गई। इस घटना से हिटलर ने पूरा-पूरा लाभ उठाया। उसने यह बतलाकर कि यह काम साम्यवादियों का था और साम्यवादी विप्लव का सूचक था, उन्हें खूब बदनाम किया। इसके साथ उसने राष्ट्रपति से अनुरोध करके नागरिक स्वतन्त्रता पर ज़बरदस्त प्रतिबन्ध लगा दिये और भाषण, मुद्रण, सभा करने आदि की स्वतन्त्रताएँ छीन लीं। साम्यवादी दल गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया, प्रमुख साम्यवादी नेता गिरफ्तार कर लिये गए और उन पर लोक सभा भवन में आग लगाने का अभियोग चलाया गया। परन्तु अभियोग प्रमाणित नहीं हुआ और वे मुक्त कर दिये गये।† किन्तु

---

* Jackson : The Beeween-War World, p· 135.

† कई बातों से यह मालूम होता था कि यह कार्य साम्यवादियों को बदनाम करने के लिये स्वयं नात्सियों ने किया था। लोक-सभा भवन तक पहुँचने के सब मार्गों पर पहरा था। केवल एक मार्ग ही अरक्षित था। गोरिंग के मकान से एक सुरंग उस भवन के नीचे पहुँचती थी और उसी में होकर यह काम हो सकता था। न्यायालय में एक आधे पागल डच व्यक्ति (Von der Lubbe) ने, जिसने आग लगाई थी, साम्यवादियों से अपना सम्पर्क स्वीकार किया परन्तु एक बार उसने अच्छी दशा में आने पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिटलर का उद्देश्य पूरा हो गया। जनता साम्यवादी क्रान्ति की विभीषिका से भयभीत हो गई और निर्वाचन में नात्सीदल को ४४ प्रतिशत मत प्राप्त हुए। उसे अजेय बहुमत तो प्राप्त नहीं हो सका परन्तु उसने लोकसभा के लिये निर्वाचित ८१ साम्यवादी सदस्यों को अयोग्य घोषित करके निकाल दिया और लोक-सभा में अपना असंदिग्ध बहुमत बना लिया।*

गणतन्त्र के विनाश का कार्य आरम्भ—

हिटलर की विजय गणतन्त्र की पराजय थी। शक्ति प्राप्त करते ही उसने गणतन्त्र के विनाश का कार्य आरम्भ कर दिया। गणतन्त्रीय राष्ट्र-ध्वजा हिन्डेनबुर्ग के आदेश से अलग कर दी गई और उसके स्थान पर पुराने जर्मन साम्राज्य के झण्डे तथा नात्सी दल के 'स्वस्तिक' युक्त झण्डे की प्रतिष्ठा हुई। २३ मार्च को लोक-सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ जिसमें हिटलर ने स्वय उपस्थित होकर चार वर्ष के लिये लोक-सभा की समस्त सत्ताएँ अपने लिये माँगीं। लोक-सभा उसकी धमकी से डर गई और एक क़ानून पास करके उसने अपनी समस्त सत्ता हिटलर को सौंप दी। लोक-सभा यह प्रार्थना करके अनिश्चित काल के लिये भङ्ग हो गई कि राष्ट्रपति के अधिकार बने रहें और पार्लामेण्ट के दोनों भवनों का नाम बना रहे।† इस प्रकार हिटलर सर्वेसर्वा हो गया और जर्मनी में वैधानिक शासन के स्थान पर एक व्यक्ति का स्वैरतन्त्र शासन स्थापित हो गया। अब उसने जर्मनी का नया नाम तृतीय-साम्राज्य (Third Reich)—रखा और गणतन्त्र का अन्त हो गया।§

हिटलर प्रधानमन्त्री के साथ राष्ट्रपति भी—

लोक-सभा ने हिटलर से राष्ट्रपति के अधिकारों को बनाये रखने की

इन्कार भी किया था। Ingram : Years of Crisis, p. 116. स्वयं गोरिंग ने, जिस पर आग लगाने का दोष लगाया गया था, कहा कि 'मुझे साम्यवादियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये इसकी आवश्यकता नहीं थी। उनके वीभत्स कारनामों को देख कर मैं तो पहले से उनके विनाश पर तुला हुआ था। इस घटना से तो मुझे केवल जल्दी करनी पड़ी। 'Goering': Germany Reborn, p. 134.

* Jackson : The Between-War World p. 135.

† Hazen : Modern European History, p. 778.

§ नात्सी दल की इतिहास की कल्पना में इसके पहले जर्मनी में दो साम्राज्य हो चुके थे—एक तो पवित्र रोमन साम्राज्य और दूसरा प्रथम विलियम का साम्राज्य Schevill : A History of Europe, p. 793.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रार्थना की थी परन्तु उसने डेढ़ वर्ष के अन्दर राष्ट्रपति के अधिकार भी स्वयं अपने हाथों में ले लिए। अगस्त १९३४ में राष्ट्रपति हिण्डेनबुर्ग की मृत्यु हो गई। हिटलर ने इस घटना का उपयोग करके गणतन्त्र के इस अन्तिम चिन्ह (राष्ट्रपति के पद) को भी नष्ट कर दिया। उसने उसके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए निर्वाचन नहीं करवाया और राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री (चान्सलर) दोनों पदों को एक ही पद में सम्मिलित कर देने की घोषणा की। बड़ी चतुराई से उसने इस कार्य के लिए जनमत-सग्रह द्वारा राष्ट्र की अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस समय तक वह राष्ट्र की आँखों में बहुत ऊँचा उठ चुका था। राष्ट्र ने ३ करोड़ ८० लाख से अधिक (प्रायः ९० प्रतिशत) मत द्वारा उसके कार्य को स्वीकार किया।† अब हिटलर निस्संकोच यह दावा कर सकता था कि उसका शासन जनता के विश्वास पर आधारित था। अब वह जर्मनी का राष्ट्रपति तथा प्रधान मंत्री दोनों ही था और समस्त राजसत्ता उसी के हाथों में केन्द्रित हो गई थी।

सर्वस्वायत्तवादी व्यवस्था—

इस प्रकार सत्तारूढ़ होते ही हिटलर ने जर्मनी की व्यवस्था बदलना, समस्त शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रित करना और अपने समस्त विरोधियों का दमन करके जर्मनी का नात्सीकरण आरम्भ किया। जिस नई व्यवस्था की उसने स्थापना की वह सर्वस्वायत्तवादी (Totalitarian) थी जिसका आधार 'एक दल' एक नेता तथा उसका अनियन्त्रित शासन' था। सर्वस्वायत्त-वादी तथा प्रजातन्त्रीय राज्यों में प्रमुख भेद यह है कि जहाँ प्रजातंत्रीय राज्य में अनेक राजनीतिक दल होते हैं, वहाँ सर्वस्वायत्तवादी राज्य में केवल एक ही दल हो सकता है जो शासन का समर्थक होता है। आरम्भ में ही एक आदेश द्वारा उसने नात्सी दल को छोड़ अन्य समस्त राजनीतिक दलों को भङ्ग कर दिया और जुलाई १९३३ तक जर्मनी में नात्सी दल ही एकमात्र राजनीतिक दल रह गया।

लोक-सभा को पंगु करने के बाद उसने साम्राज्य के अंगभूत राज्यों की धारासभाओं की भी वही दशा कर दी। उन्हें अपने राज्य की मंत्रि-परिषदों के कामों की आलोचना करने का अधिकार नहीं रहा और मंत्रि-परिषदों को धारा-सभाओं के परामर्श किये बिना ही कानून बनाने का अधिकार मिल गया, चाहे वे कानून स्पष्टतः अवैधानिक ही क्यों न हों। इस प्रकार धारासभाओं

† Slosson : Europe since 1870, p. 698.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अपने राज्यों में कोई अधिकार नहीं रहा। हिटलर स्वयं राज्यों के गवर्नरों की नियुक्ति करता था और उन्हें आदेश देता था। इस प्रकार जर्मनी में पार्लामेण्टरी शासन का अन्त हो गया, समस्त कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका सत्ताएँ हिटलर के हाथों में केन्द्रित हो गईं और उसका अधिनायकतंत्र स्थापित हो गया।* पार्लामेण्ट अब भी विद्यमान् थी और नियमानुकूल उसके अधिवेशन भी होते थे परन्तु उसके सभी सदस्य नात्सी दल के होते थे और उनका मुख्य काम नेताओं के भाषण सुनना और सरकार की ओर से प्रस्तुत बिलों तथा प्रस्तावों को बड़े उत्साहपूर्वक स्वीकार करना ही रह गया। सब प्रकार की नागरिक स्वतंत्रतायें छीन ली गईं। प्रेस, रेडियो, सिनेमा, स्कूलों, विश्वविद्यालयों आदि की स्वतन्त्रताएँ नष्ट कर दी गई और विचारों की अभिव्यक्ति तथा समस्त प्रकार के आर्थिक एव सामाजिक कार्यों पर कड़ा सरकारी नियन्त्रण लग गया। मज़दूरों के यूनियन मार्क्सवादी सिद्धांतों के प्रभाव में होने के कारण तोड़ दिये गये, उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और सब मजदूरों के लिये एक यूनियन बना दिया गया जिसका अध्यक्ष एक अत्यन्त कठोर नात्सी नेता था।†

नागरिक स्वतन्त्रताओं का इस सीमा तक लोप हो गया कि व्यक्ति को शारीरिक स्वतन्त्रता तक का अधिकार नहीं रहा। कोई व्यक्ति कभी भी गिरफ्तार किया जा सकता था और अपराध की जाँच के बिना ही अनिश्चित काल तक कारागार में रखा जा सकता था। विरोधियों के दमन के लिये तथा जनता पर आतङ्क जमाने के लिए अनेक प्रकार के कठोर उपाय काम में लाये जाते थे। जिन पर सन्देह किया जाता था उनके लिए विशेष प्रकार के कारागार (Concentration Camps) बनाये गये जहाँ कैदियों को नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते थे और यातनायें सहनी पड़ती थीं। जो लोग अधिक खतरनाक समझे जाते थे वे तुरन्त गोली से उड़ा दिये जाते थे।

नात्सी शिक्षा—

विचारों की अभिव्यक्ति रोकने में हिटलर के प्रचारमन्त्री डॉक्टर गोबल्स (Goebbels) ने बड़ा जबरदस्त काम किया। उसने अप्रेल १९३४ तक कोई १३५० समाचार पत्र बन्द कर दिये।‡ उसने प्रचार के समस्त साधनों पर अधि-

---

* Hazen : Modern European History, pp. 780-781.

† Schevill : A History of Europe, p. 793f.

Jackson : The Between- War World, p. 136.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कार कर लिया और उनसे केवल नात्सी विचारों का ही प्रचार होने लगा। शिक्षा की व्यवस्था पर भी सरकारी नियन्त्रण हो गया और शिक्षालयों द्वारा विद्यार्थियों पर नात्सीवाद थोपा जाने लगा।

पाठ्यक्रमों में मुख्य लक्ष्य रखे गये—(१) नात्सी जातीय सिद्धान्तों की शिक्षा, (२) जर्मन राष्ट्र की 'महान् परम्पराओं, इतिहास तथा संस्कृति का वर्णन, (३) राजनीतिज्ञ सैनिक (Politician-Soldier) के आदर्श तथा 'सैनिक-भावना' की अभिवृद्धि और (४) खेल-कूद तथा फ़ार्मों और केम्पों में अनिवार्य श्रम द्वारा शरीर को बलिष्ठ बनाना।* स्कूलों और विश्वविद्यालयों में यह शिक्षा दी जाने लगी कि जर्मन जाति संसार की सर्वश्रेष्ठ जाति है और वह समस्त संसार पर राज्य करने के लिए ही उत्पन्न हुई है। यह बात तभी हो सकती है जब कि समस्त जर्मन जनता अपनी उत्कृष्टता और अपने जातीय उद्देश्य (मिशन) को ध्यान में रखते हुए एक नेता का अनुसरण करे और जातीय उद्देश्य की पूर्ति में अपना सर्वस्व अर्पण करके सहयोग करे। इस प्रकार शिक्षा द्वारा जर्मनी के बालक-बालिकाओं के मस्तिष्क में उत्कृष्ट जातीयता (Racialism)—जर्मन जाति का उत्कृष्टता तथा अन्य जातियों, विशेषकर यहूदियों, की निकृष्टता—के भाव भरे जाने लगे और जर्मन जीवन का आदर्श बन गया—'एक जाति, एक भाषा, एक संस्कृति तथा एक नेता'।

अनार्यों का दमन—

विशुद्ध जातीयता पर नात्सी लोग बहुत ज़ोर देते थे। बड़े ज़ोरों से इस बात का प्रचार किया जाने लगा कि जर्मन जाति 'विशुद्ध आर्य' जाति है और रक्त की विशुद्धता ही राष्ट्रीयता का मुख्य लक्षण है। केवल वे लोग ही जर्मनी के नागरिक हो सकते हैं जिनकी नसों में विशुद्ध आर्य रक्त बहता है। इस सिद्धान्त के अनुसार वे सब लोग नागरिकता के अधिकार से वंचित कर दिये गये जो जर्मनी में पैदा हुए और बड़े हुए थे, जो जर्मन भाषा बोलते थे, जर्मनी में शिक्षित हुए थे, जीवन के जर्मन ढङ्ग में विश्वास करते थे और जर्मनी के लिए अपने प्राणों को होमने के लिए तैयार थे परन्तु जिनकी नसों में अनार्य रक्त बहता था। इस सिद्धान्त का प्रयोग यहूदियों के साथ तो हुआ ही, अन्य अनार्य ईसाई भी इसके शिकार हुए।† उनके नागरिकता के समस्त अधिकार छिन गये,

---

* Langsam : The World since 1914, p. 453.

‡ यहूदियों के विरुद्ध नात्सियों को कई शिकायतें थी स्वयं गोरिंग ने लिखा है कि यहूदियों के विरुद्ध हमें केवल यही शिकायत नहीं है कि जर्मनी के व्यवसायों और पेशों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन्हें न मत देने का अधिकार था, न वे राजकीय पदों पर काम ही कर सकते थे और न वे शिक्षक, वकील, डॉक्टर आदि का काम ही कर सकते थे। इस प्रकार सरकार की नीति अनार्य लोगों को सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन की आवश्यक सुविधाओं से तथा उनकी आजीविका के साधनों से वंचित करके उन्हें देश छोड़ कर चले जाने को विवश करने की थी। लाखों व्यक्ति इस क्रूर नीति के शिकार बने। यहूदियों के साथ तो आगे चल कर वर्ताव अत्यन्त क्रूर हो गया। वे हज़ारों की संख्या में गिरफ्तार किये जाने लगे, इनकी दुकानें लूट ली गईं, वे कारागार में डाल दिये गये जहाँ उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ीं। हजारों ही अपनी प्राण-रक्षा के लिए जर्मनी छोड़-छोड़ कर भाग गये।‡

ईसाइयों का दमन—

यहूदी तथा अनार्य ईसाई लोग ही नात्सियों की क्रूरता के शिकार नहीं

में वे अपनी संख्या के अनुपात से बहुत अधिक स्थान घेरे हुए हैं, वे जर्मन पूँजी के स्वामी बने हुए हैं, उन्होंने जर्मनी का सूदखोरी और भ्रष्टाचार द्वारा रक्त-शोषण किया है तथा उन्होंने मुद्रा-स्फीति द्वारा जर्मनी का गला घोंटा है। हमारी मुख्य शिकायत तो यह है कि मार्क्सवादियों तथा साम्यवादियों का नेतृत्व उन्होंने ही किया है, वे ही उन समाचार-पत्रों के सम्पादक रहे हैं, जिन्होंने उन सब वस्तुओं के विरुद्ध विष उगला है और घृणा फैलाई है जिन्हें जर्मन लोग पवित्र मानते हैं और 'जर्मन' 'राष्ट्रीय' जैसे शब्दों तथा सम्मान स्वतन्त्रता, विवाह और देशभक्ति की भावनाओं के अर्थ का अनर्थ करके उपहास किया है। Hermann Goering : Germany Reborn, pp. 130-131.

‡ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 395-396, यहूदियों पर नात्सियों ने काफ़ी अत्याचार किया था परन्तु उन अत्याचारों के वर्णन में प्रायः बड़ी अतिशयक्ति रही है। १९३६-३७ तक यहूदियों की दशा बहुत बुरी नहीं थी। उस समय तक कोई एक लाख यहूदी लोग देश छोड़कर भाग गये थे परन्तु ८ लाख फिर भी बचे हुये थे। उनको आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी, और राज्य उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करता था। कन्हैयालाल वर्मा : नाज़ी जर्मनी, पृष्ठ ८१।

एक अँग्रेज पत्रकार Norman Hillson ने भी लगभग उसी समय जर्मनी का दौरा किया था। उससे एक सामान्यतया सम्पन्न यहूदी ने बातचीत करते हुए कहा था—'यह बात तो ठीक है कि हमारी स्थिति अब उतनी अच्छी नहीं है जितनी पहले थी, परन्तु हम चुप रहते हैं, नियमों को मानते हैं, अपना काम करते हैं और हमसे कोई छेड़खानी नहीं करता। हम जर्मनी नहीं छोड़ सकते. यह कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि ··· आखिर मैं जर्मन हूँ और जो बात मेरा देश चाहता है उसे मुझे स्वीकार करना चाहिये, चाहे वह मुझे रुचिकर हो या न हो। कई यहूदी लोग और समस्त साम्यवादी लोग अपने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं।' Norman Hillson : I speak of Germany, p. 16.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए। रोमन केथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट लोग उनकी एकरूपता (Uniformity) की कल्पना में ठीक नहीं बैठते थे। नात्सियों की राज्य की कल्पना में व्यक्ति की केवल एक ही भक्ति हो सकती थी—राज्य के प्रति, परन्तु केथोलिक लोग रोम के पोप को, जो जर्मनी से बाहर का था, अपना गुरु मानते थे और उसके प्रति भक्ति रखते थे। नात्सीवाद के शिक्षा-सम्बन्धी तथा जातीय सिद्धान्त रोमन केथोलिक चर्च की शिक्षाओं से मेल नहीं खाते थे, अतः केथोलिक चर्च उनका विरोध करता था। इस कारण केथोलिक लोगों पर भी नात्सियों ने अत्याचार करना आरम्भ किया। प्रोटेस्टेण्ट लोग भी उनके कोप से नहीं बचे। परन्तु ईसाइयों के दमन में हिटलर को विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी।*

नात्सी दल की शुद्धि—

इस प्रकार हिटलर ने अपने समस्त विरोधियों का दमन करके अपनी स्थिति निष्कंटक बना ली। परन्तु अभी तक पूर्ण एकता स्थापित नहीं हो पाई थी क्योंकि स्वयं नात्सी दल में कई प्रकार के लोग थे जो विभिन्न कारणों से उसकी तरफ़ आकर्षित हुए थे। उनमें से कई लोग ऐसे थे जो उसके समाजवादी नाम से आकर्षित हुए थे परन्तु हिटलर को बड़े-बड़े उद्योगपतियों का समर्थन प्राप्त हो रहा था और वह अपने कार्यक्रम के समाजवादी भाग को कार्यान्वित करने के लिये अभी कोई चेष्टा नहीं कर रहा था। अतः उन लोगों ने आर्थिक सुधारों पर ज़ोर देना आरम्भ किया। उनका नेता 'भूरी कुरती' वाले (S.A.) सैन्य दल का अध्यक्ष अर्न्स्ट रोम (Erast Roehm) था। हिटलर अपने दल के अन्दर मतभेद सहन नहीं कर सकता था। रोम पर हिटलर की हत्या करने और नात्सी व्यवस्था को बलपूर्वक नष्ट करने के लिये षड्यन्त्र रचने का दोष लगाया गया। रोम रात में सोते हुए ही गिरफ्तार कर लिया गया और अपने साथियों के साथ मार डाला गया। सैकड़ों व्यक्तियों को, जिन पर शंका थी, प्राणदण्ड मिला। (३० जून, १९३४)।‡ इस प्रकार हिटलर ने अपने दल की 'शुद्धि' करके दलीय एकता सुनिश्चित की। उसने आरम्भ से ही एक गुप्त पुलिस (Geheime Staatspolizie--Gestapo) का संगठन कर लिया था। यह षड्यन्त्र देखकर वह अधिक सतर्क हो गई और उसने अपने कठोर अध्यक्ष हिमलर (Heinrich Himmler) के नेतृत्व में भयंकर आतंक का राज्य स्थापित कर दिया। उसके हज़ारों जासूस सर्वत्र घूमते रहते थे ताकि इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति न हो सके।

---

* Schevill : A History of Europe, p. 797.

‡ Ingram : Years of Crisis, p. 109.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार बड़े क्रूर और कठोर उपायों से उसने अपनी और अपने शासन की सुरक्षा सुनिश्चित की। अब उसका अपने दल पर असंदिग्ध प्राधान्य स्थापित हो चुका था और उसके बाहर भी उसका कोई राजनीतिक प्रतिस्पर्धी नहीं बचा था। यदि कहीं से उसे भय था तो वह सेना की ओर से ही रह गया था। परन्तु अगस्त १९३४ में जैसा हम देख चुके हैं, राष्ट्रपति का पद ग्रहण करके वह वैधानिक रूप से सेना का सर्वोच्च अध्यक्ष बन गया और उसने उसके अधिकारियों से अपने प्रति भक्ति की शपथ लेकर यह डर भी मिटा दिया। यह सोचना बिलकुल ग़लत होगा कि हिटलर ने जर्मनी की एकता केवल आतंक के द्वारा ही स्थापित की। उसे जनता का समर्थन प्राप्त था और जनता की ओर से इन क्रूरताओं का कोई विरोध नहीं हुआ।* वह जर्मनी के उत्थान के लिये जो कुछ कर रहा था उससे जनता सन्तुष्ट थी।

समृद्धि के प्रयत्न—

हिटलर ने एकता के साथ ही जर्मनी को समृद्धि प्रदान करने का भी वचन दिया था। साधारण मनुष्य के लिये समृद्धि का अर्थ केवल इतना ही था कि उसे काम मिले। उस समय कोई ६० लाख आदमी बेकार थे। उसने बेकारी दूर करने का भी प्रयत्न किया। इस समस्या का किसी एक प्रकार से समाधान नहीं हो सकता था। नात्सियों ने अपनी नीति के पालन में अनेक प्रकार के जो कार्य किये उन सबसे बेकारी दूर करने में सहायता मिली। उन्होंने लेबर केम्प खोले, दलीय सङ्गठन का बड़ा विस्तार किया, स्त्रियों को घर के बाहर के काम से अलग करके उनका कार्य सन्तान उत्पन्न करने तथा घरेलू कार्य तक ही सीमित कर दिया, सेना में वृद्धि की, यहूदियों, मार्क्सवादियों तथा अन्य अवाञ्छनीय लोगों को देश से निकाला जिनकी खाली जगहों पर हज़ारों आदमियों को काम मिला। इन सब कामों से कोई २० लाख बेकारों को काम मिल गया।* शेष बेकार व्यक्तियों के लिए नाना प्रकार के सार्वजनिक निर्माण के काम आरम्भ हुए, पुनः शस्त्रीकरण का कार्य (पहले तो गुप्त रूप से और बाद में प्रकट रूप से) आरम्भ हुआ। क़िले बनाये जाने लगे, शस्त्रास्त्र बनाने के कारखाने शुरू किये गये और युद्ध में काम आने वाले समुद्री जहाज़ तथा वायुयानों का काम बड़े पैमाने पर आरम्भ हुआ। अनिवार्य सैनिक शिक्षा आरम्भ की गई। देश की समस्त आर्थिक व्यवस्था राज्य के

---

‡ Jackson : The Between-War World, pp. 137-138.

$ Jackson : The Between-War World, pp. 138-139.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नियन्त्रण में ले ली गई। १९३६ में रूस का अनुकरण करके उसने जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के लिये एक चार-वर्षीय योजना पर कार्य आरम्भ किया। कच्चे माल की कमी के कारण यह योजना सफल नहीं हो सकी परन्तु कुछ दिशाओं में उसे सफलता प्राप्त हुई। प्रथम, उपलब्ध साधनों का अधिकाधिक उपयोग होने लगा और द्वितीय, विज्ञान की सहायता से कृत्रिम रबड़, तेल, कपास, ऊन आदि वस्तुएँ जिनके लिये जर्मनी अन्य देशों पर निर्भर रहता था, बनाई जाने लगीं। वह स्पष्टतः युद्ध के लिये जर्मनी को तैयार करना चाहता था और इस दृष्टि से युद्ध-सामग्री तैयार करने के लिये सभी आवश्यक पदार्थों का उत्पादन अपने देश के अन्दर ही करना चाहता था। उसने आयात निर्यात पर भी पूर्ण नियन्त्रण लगाया और युद्धसामग्री बाहर से मँगा कर एकत्र करना आरम्भ किया।

इन उपायों से बेकारी की समस्या तो हल हो गई परन्तु देश में समृद्धि उत्पन्न न हो सकी। फिर भी युद्ध के बाद के १५-१६ वर्षों में जो अवस्था थी उससे कहीं अच्छी अवस्था इस समय अधिकांश लोगों की थी। इससे हिटलर को सामान्य जनता का समर्थन प्राप्त हो गया।* इसके साथ ही उसने अपने तीसरे वचन को पूरा करने के लिये अपनी विदेश नीति के क्षेत्र में जो सफलता प्राप्त की उसको देखकर जनता समृद्धि के अभाव को बिलकुल भूल गई और उसकी अनन्य भक्त बन गई।

नात्सीवाद की सफलता के कारण—

हिटलर की परराष्ट्र-नीति का वर्णन करने के पहले यह अच्छा होगा कि हम उसकी इस असाधारण सफलता के कारण देख लें।

(१) प्रायः यह कहा जाता है कि नात्सीवाद का जन्म वार्साई की कठोर सन्धि के कारण हुआ। जनता समझती थी कि उस सन्धि से जर्मन राष्ट्र का घोर अपमान हुआ था और उसके साथ महान् अन्याय हुआ था। जर्मन लोग अपने पूर्व गौरव को पुनः प्राप्त करना चाहते थे और वे किसी नेता का अनुसरण करने के लिये तैयार थे जो देश के अपमान को धोकर उसके राष्ट्रीय गौरव का पुनरुत्थान कर सकता। हिटलर ऐसा ही व्यक्ति था और जर्मन जनता उसका साथ देने को सहर्ष तैयार हो गई। परन्तु यदि हम ज़रा ध्यान-पूर्वक देखें तो इस बात में कोई विशेष सार नहीं मालूम होता। यह तो सत्य है कि वार्साई की सन्धि अत्यन्त अपमानजनक थी और विजेता राष्ट्र उसे बिलकुल

* Strong : Dynamic Europe, p. 359.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पददलित कर देना चाहते थे। परन्तु गणतन्त्र की सोशल डेमोक्रेटिक सरकार ने स्ट्रेस्मेन के नेतृत्व में जर्मनी की स्थिति बहुत कुछ सुधार ली थी। १९२५ में लोकार्नो की सन्धियों द्वारा जर्मनी को पुनः योरोप के राज्यों में समानता का पद प्राप्त हो चुका था और १९२६ में उसे राष्ट्र-सङ्घ की सदस्यता तथा उसकी कौंसिल के स्थायी सदस्य का सम्मानपूर्ण पद प्राप्त हो गया था। रूर-क्षेत्र से फ्रांस और बेल्जियम की सेनाएँ हट गई थीं और १९३० तक जर्मनी से समस्त विदेशी सेनायें भी हटाली गई थीं। १९३१ में क्षतिपूर्ति का दायित्व भी प्रायः समाप्त हो चुका था और, जैसा हम आगे देखेंगे, १९३२ में शस्त्रास्त्रों के सम्बन्ध में भी अन्य राज्यों के साथ समानता का उसका दावा स्वीकार हो चुका था यदि वार्साई के राष्ट्रीय अपमान के कारण उसका उदय हुआ होता तो युद्ध की समाप्ति के बाद के प्रथम तीन-चार वर्षों में होना चाहिये था जब कि राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की दृष्टि से जर्मनी की दशा अत्यन्त हीन थी, परन्तु उसका उदय उस समय हुआ जब कि जर्मनी की बेड़ियों की अन्तिम कड़ियाँ काटी जा रही थीं। जर्मनी की प्रमुख शिकायतों में क्षति-पूर्ति के दायित्व का बिलकुल अन्त कर देना और अपने उपनिवेशों को पुनः प्राप्त करना ही रह गया था। क्षति-पूर्ति के विषय में भी १९३२ में प्रधान-मन्त्री ब्रूनिंग ने यह घोषित कर दिया था कि जर्मनी भविष्य में क्षतिपूर्ति की शेष रकम कभी अदा नहीं करेगा। ऐसी दशा में वार्साई की सन्धि को नात्सी-वाद के जन्म का प्रधान कारण मानना ठीक नहीं होगा। हाँ, हम उसे सहायक कारण मान सकते हैं क्योंकि उससे साहसिक लोगों को उग्र राष्ट्र-भक्ति का दावा करने और गणतन्त्रीय सरकार को देश-द्रोही कह कर उसकी निन्दा करने का अवसर मिलता था।* फिर भी जर्मन जनता अपने पराजयजन्य अपमान तथा वार्साई के अन्याय को भूल नहीं सकी थी। फ्रान्स का निरन्तर विरोध, रूर का झगड़ा, राइनलैण्ड पर शत्रुओं का कब्ज़ा, सार-प्रदेश, क्षतिपूर्ति का प्रश्न, सुरक्षा एवं निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी झगड़े—ये सब बातें ऐसी थीं जिनके कारण कई प्रकार के लोगों के हृदयों में क्रोध की अग्नि धधकती रहती थीं। इन सब बातों के होते हुए भी गणतन्त्रीय सरकार की समझौते की नीति और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जर्मनी का मामला दृढ़ता से पेश करने की असमर्थता अनेक देश-भक्तों, विशेषकर नवयुवकों और युद्ध में भाग लेने वाले युवक सैनिकों, को बड़ी अखरती थी।† ऐसी अवस्था में भावुक जर्मन जनता हिटलर के जोशीले भाषणों के प्रवाह में बह जाती थी और वार्साई की सन्धि को फाड़ फेंकने, समस्त

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 388.

‡ Langsam : The World since 1914, p. 439.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जर्मन जनता को एक वृहत्तर जर्मनी में शामिल करने, तथा अपने खोए हुए उपनिवेशों को पुनः प्राप्त करने के वचनों का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ता था और वह खुशी से उसका साथ देने के लिए तैयार हो गई।

(२) नात्सीवाद की सफलता का दूसरा कारण जर्मनी में साम्यवाद का बढ़ता हुआ संकट बतलाया जाता है। इस कारण में भी अधिक सार नहीं दिखाई देता। यदि साम्यवाद से जर्मन जनता आकर्षित होती तो उन्हीं दिनों में उसे स्वीकार कर लेती जब कि उसकी सेना परास्त हो चुकी थी और उसका सम्राट् भाग रहा था। साम्यवादियों ने उस समय सर्वहारावर्ग का शासन स्थापित करने का प्रयत्न भी किया था परन्तु उसे जर्मन जनता का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ और उनका प्रयास विफल हुआ। यह तो सत्य है कि जर्मनी में साम्यवादियों का ज़ोर बढ़ रहा था फिर भी ऐसा नहीं मालूम होता कि बहुसंख्यक जर्मन जनता उनकी ओर आकर्षित हो चुकी थी।* किन्तु इसके साथ यह बात भी सत्य है कि उस समय भावी साम्यवादी क्रान्ति की आशंका काफ़ी फैली हुई थी जिसे फैलाने में शायद नात्सियों ने ही अधिक भाग लिया था क्योंकि उससे उन्हें जर्मनी के धनकुबेरों तथा उद्योगपतियों का समर्थन और अपने प्रचार के लिए प्रचुर मात्रा में धन प्राप्त हो रहा था। साम्यवाद के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें करके जर्मन जनता के दिलों में वे लोग डर बैठाते रहते थे। साम्यवाद की अन्तर्राष्ट्रीयता जर्मन राष्ट्रीयता के लिये घातक थी। इसके साथ ही जर्मनी के साम्यवादी रूस के आज्ञाकारी सेवक थे। ऐसी दशा में साम्यवादी जर्मनी रूस के आधीन होता। इस प्रकार की बातों से जर्मन जनता साम्यवाद से बहुत डरने लगी।

(३) उसकी सफलता का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण तत्कालीन आर्थिक संकट था जिसके कारण देश के अनेक वर्ग दुःखी एवं असन्तुष्ट थे। नात्सी लोग उनके असन्तोष से लाभ उठाने में बड़े सफल हुए। उन्होंने निम्न मध्यम वर्ग की, जिसमें छोटे व्यापारी और कृषक लोग थे पूँजीपति विरोधी भावना को बड़े-बड़े वायदे करके उभाड़ा और उनका सहयोग प्राप्त किया। नगरों की जनता की खरीदने की शक्ति कम हो जाने के कारण कृषि की दशा बड़ी खराब हो रही थी और किसानों पर बड़ा कर्ज़ लदा हुआ था। नात्सियों ने उन्हें विश्वास दिलाया कि उन्हें पूर्ण सहायता दी जायगी और उनके कष्टों का निवारण किया जायगा। छोटे-छोटे दूकानदारों को बड़े-बड़े स्टोरों (भण्डारों) की प्रतिस्पर्धा से बड़ी हानि पहुँचती थी। अतः उन्हें यह वायदा किया गया कि

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 389.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़े-बड़े स्टोरों का तुरन्त ही समाजीकरण कर दिया जायगा। मार्क का मूल्य गिर जाने से जिन लोगों की आय नष्ट हो चुकी थी उन्हें भी समृद्धि की आशा बँधाकर उन्होंने अपनी ओर मिला लिया। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण वर्ग जिसे उन्होंने अपनी ओर मिलाया वह था बेकारों का जिनकी संख्या १९३० के अन्त तक ५० लाख से ऊपर हो गई थी। नात्सीदल की संख्या में उसी वर्ष असाधारण वृद्धि हुई थी। यदि आर्थिक संकट न आता और जर्मनी में बेकारी इतनी न बढ़ती तो नात्सीवाद को यह असाधारण सफलता प्राप्त नहीं होती। नात्सियों के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि सत्ता उस समय प्राप्त हुई जब कि संकट का अन्त हो रहा था और पुनरुद्धार का आरम्भ हो रहा था।* यदि सत्ता ग्रहण करने का निमन्त्रण कुछ महीनों बाद मिला होता तो स्थिति शायद बदल जाती।†

(४) आर्थिक संकट तथा बेकारी तो नात्सीवाद की सफलता के मुख्य कारण थे। इसके साथ ही नात्सियों ने अन्य अनेक बातों से भी लाभ उठाया। महायुद्ध में जर्मनी की पराजय होने के समय से ही जनता में यह भावना व्याप्त हो गई थी कि जर्मनी की पराजय यहूदियों के ही कारण हुई थी। यहूदी वर्ग जर्मनी का सम्पत्तिशाली वर्ग था। बड़े-बड़े पूँजीपति तथा उद्योगपति यहूदी वर्ग के ही थे और साधारण जनता उन्हें शोषक समझकर उनसे घृणा करती थी। सार्वजनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में ही यहूदियों का स्थान प्रमुख था। हिटलर ने जनता की इस यहूदी-विरोधी भावना से भी लाभ उठाया और उन्हें निकालकर अपने देश के आर्थिक जीवन में जर्मन लोगों को समुचित स्थान प्राप्त कराने का लोभ दिखाकर भी उनका समर्थन प्राप्त किया।

(५) नात्सियों ने जर्मन लोगों की सैनिक जीवन में जो रुचि थी उससे भी लाभ उठाया। असंख्य युवकों को, जिनके लिये उस समय सेना में कोई स्थान नहीं था और जो बेकार थे, तथा असंख्य बेकार सैनिकों को उनकी निजी सेनाओं में स्थान प्राप्त हुआ जिससे उनकी बेकारी की समस्या हल हुई और उनकी सैनिक प्रवृत्ति भी सन्तुष्ट हुई। इस सेना से नात्सियों को अपने शत्रुओं के दमन में, सत्ता प्राप्त करने में तथा बाद में उसे अपने हाथ में बनाये रखने में बड़ी सहायता मिली। बड़े आश्चर्य की बात है कि जनतन्त्रीय सरकारों का इस

---

*Strong : Dynamic Europe, p. 358.

†जुलाई १९३२ के सामान्य निर्वाचन में नात्सी दल को लोक-सभा में २३० स्थान प्राप्त हुए थे परन्तु चार महिने बाद ही नवम्बर के निर्वाचन में उसको केवल १९६ स्थान ही प्राप्त हो सके थे। Slosson : Europe since 1870, p. 685.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर ध्यान तक नहीं गया और नात्सियों ने राज्य के अन्तर्गत अपना एक दूसरा राज्य स्थापित कर लिया। यदि सोश्यल डेमोक्रेटिक दल की सरकारें आरम्भ में ही इस संगठन पर रुकावट लगा देती तो नात्सियों की इतनी उन्नति नहीं हो पाती परन्तु उन्होंने उसकी उपेक्षा की और इस प्रकार स्वयं ही गणतंत्र के विनाश का बीजारोपण कर दिया।

(६) इस प्रकार नात्सियों की सफलता का एक कारण उसके शत्रुओं की कमजोरी और उनमें एकता का अभाव भी था। सोश्यल डेमोक्रेट लोगों ने तो इस प्रकार महान् निर्बलता एवं अदूरदर्शिता का परिचय दिया। साम्यवादी लोग यही समझते रहे कि नात्सियों द्वारा वर्तमान व्यवस्था के विनाश के बाद वे सरलता से सत्ता अपने हाथ में ले सकेंगे। अन्य दलों ने भी मुकाबला करने का कोई प्रयत्न नहीं किया और घुटने टेक दिये।

(७) बहुत से लोगों को जनतन्त्रीय पार्लामेण्टरी व्यवस्था से भी बड़ा असन्तोष था। लोकसभा में अनेक राजनीतक दलों की उपस्थित के कारण पार्लामेण्टरी पद्धति ठीक तरह से काम नहीं कर रही थी। बहुत से लोगों को उन दिनों की स्मृति थी जब कि लोक सभा में अनुशासन रहता था और व्यवस्थित ढङ्ग से काम होता था। बहुत से लोगों ने उन दिनों के विषय में पढ़ा था या सुना था। ऐसे लोगों को लोक सभा में निरन्तर होने वाले झगड़ों, राजनीतिक षड़यन्त्रों आदि से बड़ा असन्तोष था। वे देख रहे थे कि तुरन्त निर्णय करने और देश के लिए कुछ ठोस कार्य करने की जगह विभिन्न दलों के नेता केवल बकवाद करते थे, वचन देते थे और उज्ज्वल भविष्य की निरर्थक बातें किया करते थे। वे चाहते थे कि कोई ऐसा मजबूत व्यक्ति सामने आवे जो इस अव्यवस्था का अन्त करके जर्मनी की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर सके।§

(८) हिटलर ऐसा ही व्यक्ति था। वह बड़ा प्रभावशाली वक्ता था और उसकी वाणी में बड़ा जादू था। भावुक जर्मन जनता पर उसका जादू बड़ी अच्छी तरह से काम कर सका। उसके प्रचार का ढङ्ग भी ऐसा था जिससे उसे बड़ी सरलता से सफलता प्राप्त हो गई। वह और अन्य नात्सी नेता युक्तपूर्ण दलीलों से जनता को समझाने का प्रयत्न नहीं करते थे बल्कि उसकी भावनाओं को उभाड़ते थे। वे कुछ बातों को लेकर उन्हें जनता के सामने नाना प्रकार से बार-बार दोहराते थे, जनता उनमें विश्वास करने लगती थी और भावावेश में उनके साथ बह जाती थी। इस प्रकार के प्रचार में कई नात्सी नेता बड़े कुशल थे परन्तु प्रचार मंत्री गोबुल्स सबमें मुख्य था। किन्तु सबका सिरमौर

§ Langsam : The World since 1914, p. 439.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वयं हिटलर था। यदि वह मंच पर न आता तो शायद नात्सीवाद को इतनी सफलता न मिलती और जर्मनी का इतिहास ही दूसरा होता।

(९) अन्त में हमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात को ध्यान में रखना है। वह है जर्मन जनता की स्वाभाविक सैनिक मनोवृत्ति जो अनुशासन तथा एक वीर नायक के अनुकरण की शिक्षा देती है। महान् फ्रेडरिक, बिस्मार्क, क़ैसर विलियम–ये सब वीर राष्ट्र नायकों के रूप में जर्मन जनता की स्मृति में प्रतिष्ठित रहे हैं। हिटलर को भी उसने उसी रूप में देखा और स्वीकार किया। जर्मन जनता शताब्दियों से एकतन्त्र के अन्तर्गत रही थी और प्रजातन्त्रीय भावना उस पर अधिक प्रभाव नहीं डाल सकी थी। अतः उसके लिए हिटलर के शासन को स्वीकार कर लेना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी।†

———

§ महायुद्ध के अन्तिम दिनों में जर्मनी में गणतन्त्र की घोषणा इस कारण नहीं की गई थी कि जर्मन लोगों को गणतन्त्र या प्रजातन्त्र से प्रेम था। जर्मनी के समस्त वर्ग उस समय सोचते थे कि यदि जर्मनी ने गणतन्त्र का बाना पहन लिया तो उसे प्रेसिडेण्ट विल्सन की सहानुभूति प्राप्त हो सकेगी। Somervell : Between the Wars, pp. 89-90.

एक इतिहासकार ने कहा है कि 'नात्सीवाद कोई कृत्रिम या बाहरी सिद्धान्त नहीं, जर्मन सिद्धान्त ही था। नात्सी नेताओं में विचारों की मौलिकता नहीं है। उन्होंने ऐसे विचार ग्रहण कर लिये हैं जो उन्हें और जर्मन लोगों को स्वभाव से रुचे। नात्सी लोग किसी बिल्कुल ही बाहरी व्यवस्था को जर्मन जनता पर लाद कर उसकी भक्ति प्राप्त नहीं कर सकते थे। उन्होंने हृदय की गहराई में से जर्मन भावना को ही उभाड़ कर सफलता प्राप्त की है।' उसने समस्त नात्सी धारणाओं का स्रोत जर्मन विचारों में बतलाने का प्रयत्न किया है। वीर नेता की पूजा (फ़िख्टे १७६२-१८१४), शक्ति (might) को ही अधिकार (right) मानना (नोवेलिस १७७२-१८०१), राज्य के सामने व्यक्ति को तुच्छ समझना (हैगेल १७७०-१८३१), सैनिकवाद (द्वितीय फ़्रेडरिक १७१२-१७८६) जर्मन संस्कृति का अतिराष्ट्रीय प्रयोजन (फिख्टे तथा नोवेलिस) निवासस्थान की माँग (लिस्ट १७८९-१८४६), यहूदी-विरोध (मार्वित्स, १८३७), आदि सभी कल्पनाएं जर्मन विचारधारा में मिलती हैं। Butler : The Roots of National Socialism Quoted in Beveridge : The Price of Peace, p. 35.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १८

जर्मन की परराष्ट्र-नीति

युद्धोत्तर जर्मनी की परराष्ट्र-नीति का अध्ययन हम दो भागों में विभक्त करके कर सकते हैं—(१) गणतन्त्रकालीन परराष्ट्र-नीति (१९१९-१९३२) और (२) नात्सी परराष्ट्र नीति (१९३३-१९३९)।

गणतंत्रकालीन परराष्ट्र-नीति—

गणतंत्र के जन्म से लेकर उसके अन्त तक जर्मन नीति का मुख्य ध्येय जर्मनी को अन्तर्राष्ट्रीय संसार में फिर से सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित करना था।* इस ध्येय की पूर्ति केवल दुर्बल जर्मनी की रक्षा के लिये ही नहीं, वाणिज्य-व्यापार के पुनरुद्धार के लिये भी आवश्यक था क्योंकि जर्मनी का आर्थिक पुनरुत्थान वाणिज्य-व्यापार के पुनरुद्धार पर ही निर्भर था। इस लक्ष्य पर तो सब एकमत थे परन्तु इसकी पूर्ति के उपाय के विषय में मतभेद था। कुछ लोगों का विचार था कि इस लक्ष्य की पूर्ति सोवियत रूस से मिलकर की जा सकती है जिसकी सहायता से वे वार्साई की अन्यायपूर्ण सन्धि का भी अन्त करना चाहते थे। दूसरे लोगों का मत था कि यह काम वार्साई-सन्धि के दायित्वों की पूर्ति द्वारा अपने पूर्व शत्रुओं से समझौता करके और उनकी सद्भावना प्राप्त करके ही किया जा सकता है।

रूस की ओर झुकाव—

आरम्भ में तो ऐसा मालूम हुआ मानो रूस से मित्रता करने वालों का पक्ष ही प्रबल रहेगा। जैसा हम देख चुके हैं, जर्मनी ने १९२२ में रूस से रेपालो की सन्धि की और उसे वैध मान्यता प्रदान करके उसके साथ व्यापारिक समझौता किया। इस सन्धि के साथ एक गुप्त सैनिक समझौता भी हुआ था जिसके अनुसार यह निर्णय हुआ था कि रूस प्रति वर्ष कुछ जर्मन अफसरों को भारी तोपों, टेङ्कों तथा फौजी हवाई जहाज़ों से प्रयोग की, जिनका वार्साई की सन्धि द्वारा जर्मनी के लिये निषेध कर दिया गया था, शिक्षा देगा और इसके बदले जर्मनी प्रतिवर्ष कुछ धन देगा।§

* Langsam : The World since 1914, p. 433.
§ Somervell : Between the Wars, p. 97;
Woodward : The Origins of the War, p. 24.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पश्चिमी राष्ट्रों से सहयोग—

चार वर्ष बाद स्ट्रेस्मेन के परराष्ट्र-मन्त्री बनने पर जर्मन नीति में परिवर्तन हुआ। स्ट्रेस्मेन फ्रान्स के साथ समझौता करना और सन्धिजन्य दायित्वों को पूर्ण करके मित्रराष्ट्रों की सद्भावना प्राप्त करना तथा जर्मनी के लिए संसार के राष्ट्रों में समानता के आधार पर सम्मानित पद प्राप्त करना था। अतः उसने रूर-प्रदेशों के साथ असहयोग करने की नीति का परित्याग किया, लोकसभा से अनुरोध करके डावेस-योजना को स्वीकार करवाया और इस प्रकार रूर-प्रदेशों को खाली करवाया, अन्य राष्ट्रों का विश्वास प्राप्त किया और लाभप्रद व्यापारिक समझौते किये। उसका सबसे महत्वपूर्ण काम लोकार्नो की सन्धियाँ (१९२५) करना और जर्मनी को राष्ट्र-संघ में शामिल करना (१९२६) था जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं।

राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होने पर जर्मनी की स्थिति में और भी उन्नति हुई। मित्र-राष्ट्रों के अनेक कमिशन सन्धि की शर्तों का पालन करवाने के लिए जर्मनी में विद्यमान् थे। यह बात जर्मनों को बहुत अखरती थी। ये कमिशन धीरे-धीरे हटाये जा रहे थे। १९२७ में अन्तिम कमिशन जर्मनी से चला गया। १९२८ में जर्मनी ने ब्रियाँ-केलॉग पेक्ट पर हस्ताक्षर किये और १९२९ में यंग-योजना स्वीकृत हुई जिससे क्षतिपूर्ति के प्रश्न का अन्तिम निर्णय हुआ। १९३० में राइन-प्रदेश से विदेशी सेनाएँ चली गईं और जर्मनी को उनसे मुक्ति मिली।

परन्तु इसके पहले ही स्ट्रेस्मेन की मृत्यु हो चुकी थी (१९२९)। उसके बाद भी उसी की नीति पर काम होता रहा परन्तु फ्रांस की ज़िद के कारण जर्मनी कोई लाभ न उठा सका। १९३२ में प्रधान-मन्त्री पेपन तथा उसके बाद प्रधान मन्त्री श्लीख़र ने शस्त्रीकरण में समानता तथा क्षतिपूर्ति के भार में कमी कराने पर बड़ा ज़ोर दिया परन्तु जर्मनी को कोई रियायत न मिल सकी।

इस प्रकार १९३२ तक स्ट्रेस्मेन की नीति के कारण जर्मनी को बहुत सी शिकायतें दूर हो चुकी थीं, फिर भी शस्त्रीकरण में समानता और क्षतिपूर्ति के भार में कमी के प्रश्न के साथ कुछ प्रश्न और बचे थे जैसे जर्मनी की पूर्वी सीमाओं का संशोधन, आस्ट्रिया से संयोग, उपनिवेशों की वापसी और 'युद्ध-दोष' का निराकरण। १९३३ में हिटलर सत्तारूढ़ हुआ और इन समस्याओं के समाधान का अर्थात् वार्साई के बचे खुचे अन्याय के प्रतिकार का भार उसके हाथों में पहुँचा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नात्सी परराष्ट्र-नीति (१९३३-१९३९)

हिटलर की परराष्ट्र-नीति का ध्येय—

सत्ता प्राप्त करने के पहले हिटलर ने महायुद्ध के विजेता राष्ट्रों की कड़ी निन्दा करके तथा वार्साई के अन्याय एवं अपमान का प्रतिकार करने का दृढ़ निश्चय प्रगट करके जर्मन जनता में लोकप्रियता प्राप्त की थी। उसने वार्साई-सन्धि की धज्जियाँ उड़ाने का वचन दिया था और सत्ता हाथ में लेते ही उसने अपने वचन का पालन करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। उसकी परराष्ट्र-नीति का सार संक्षेप में वार्साई की संधि तथा उसके द्वारा स्थापित व्यवस्था को भंग करना ही था।* अपने वैदेशिक सम्बन्धों में उसने उन्हीं तरीकों का प्रयोग किया जिनका देश के अन्दर सत्ता प्राप्त करने के लिये किया था अर्थात् समझौते से इन्कार करना और बल-प्रयोग।‡ वह अपने लक्ष्य की पूर्ति दूसरों से बातचीत करके और समझौता करने की जगह स्वयं अपनी ओर से धौंस के बल पर करना अधिक अच्छा समझता था। इस धौंस की नीति में उसे उसी प्रकार सफलता प्राप्त हुई जिस प्रकार आंतरिक राज-नीति में प्राप्त हुई थी। जिस प्रकार देश के अन्दर उसके विरोधी उसके विरुद्ध एक होने में और दृढ़ता से उसका विरोध करने में हिचकते रहे उसी प्रकार योरोप के प्रजातन्त्रीय राष्ट्र भी उसका दृढ़ता से विरोध न कर सके।

राष्ट्र-संघ से सम्बन्ध विच्छेद और शान्ति की कामना—

हिटलर ने जिस ढंग से सत्ता प्राप्त की थी उसे देख कर संसार के राष्ट्र चिन्तित हो उठे थे, परन्तु आरम्भ में उसकी परराष्ट्र-नीति अप्रत्याशित रूप से सौम्य प्रमाणित हुई।§ उसके सत्तारूढ़ होने के पहले जर्मनी निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में भाग ले रहा था। एक बार वह सम्मेलन छोड़ भी चुका था और 'सभी राष्ट्रों की सुरक्षा निश्चित करने वाली व्यवस्था में समानता के पद' प्राप्त कर सकने का वचन दिया जाने पर उसके प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में फिर से भाग लेना आरम्भ किया था।$ हिटलर ने अपने प्रतिनिधियों को अक्टूबर १९३३ तक सम्मेलन में भाग लेने दिया, सम्मेलन के तथा राष्ट्र-संघ के सामने शस्त्रीकरण में फ्रान्स तथा अन्य महान् शक्तियों

*Schevill : A History of Europe, p. 798.
‡Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 398.
§Slosson : Europe since 1870, p. 692.
$Woodward : The Origins of the War, p. 14.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ समानता का दावा अन्तिम रूप में प्रस्तुत किया और जब उसकी माँग स्वीकार नहीं हुई तो उसने जर्मनी को निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा राष्ट्र-संघ दोनों से अलग हटा लिया। उसने यह भी घोषणा की कि अब जर्मनी मित्र-राष्ट्रों के क्षतिपूर्ति के दावों को स्वीकार नहीं करेगा और इसके साथ ही वार्साई-सन्धि की 'युद्ध के दोष' वाली धारा को भी, जिस पर क्षतिपूर्ति का दावा आधारित था, मानने से इन्कार कर दिया। उसने राष्ट्र-संघ से सम्बन्ध विच्छेद इस कारण किया था कि उसे उसके इक़रारनामे (Covenant) के नियन्त्रणों से मुक्ति और कार्य करने की स्वतन्त्रता मिल सके। जर्मन जनता ने भी विशाल बहुमत (६५ लाख में से ४५ लाख मत) से उसके इस कार्य का समर्थन किया।*

इतने पर भी उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई जल्दबाज़ी नहीं की। अपनी आत्मकथा में तो उसने आग उगली थी परन्तु सत्ता ग्रहण करने के बाद उसके भाषण बड़े सौम्य रहे और वह योरोप में शान्ति की कामना प्रगट करता रहा। उसकी इच्छा केवल इतनी ही थी कि अन्य राष्ट्र जर्मनी से छेड़छाड़ न करें। मुसोलिनी के प्रस्ताव पर उसने १९३३ में इटली, फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड के साथ पारस्परिक हितों के मामलों में सीधे कूटनीतिक परामर्श करने के लिए एक समझौता (Four Power Peace Pact) किया।‡ उसने अपने सहकारी रूडॉल्फ़ हेस के द्वारा १९३४ में फ़्रान्स से शान्ति के लिये जर्मनी के साथ सहयोग करने का प्रस्ताव किया। जनवरी १९३४ में उसने पोलेण्ड से दसवर्षीय अनाक्रमण-सन्धि द्वारा दोनों देशों के बीच का मनोमालिन्य और तनाव कम करके अपनी शान्तिप्रियता का परिचय दिया।

ऑस्ट्रिया को हड़पने का प्रयत्न—

परन्तु वह रवैया अधिक दिनों तक नहीं चला। जनता के सामने कुछ कर दिखाना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक था। अतः उसने वार्साई की सन्धि को भंग करके ऑस्ट्रिया को जर्मनी में सम्मिलित करने का प्रयत्न शुरू किया।‡

---

*Hayes and Cole : A History of Europe, Vol. II, p. 397.

$Slosson ; Europe since 1870, p. 693.

‡स्वयं ऑस्ट्रिया जर्मनी के साथ शामिल होना चाहता था। त्रियानों की सन्धि के फल-स्वरूप ऑस्ट्रिया का राज्य अत्यन्त छोटा, शक्तिहीन और ग़रीब रह गया था। आर्थिक दृष्टि से उसका जीवन असम्भव था और उसके लिये जर्मनी में अथवा अन्य किसी राज्य में सम्मिलित होना आवश्यक था। उसने जर्मनी के साथ संयोग करना चाहा परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसने जर्मनी के बाहर उन प्रदेशों में (ऑस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया, डेञ्जिग, सार) जहाँ जर्मन भाषाभाषी लोग रहते थे नात्सीवाद का प्रचार पहले से ही आरम्भ कर दिया था। ऑस्ट्रिया में एक नात्सीदल का सङ्गठन भी हो चुका था। अब उसने वहाँ के नात्सियों को जर्मनी में शामिल होने के लिये भड़काया। जुलाई १९३४ में उन्होंने विप्लव किया। आस्ट्रिया का चान्सलर डॉल्फ़ुस (Dolfuss) मारा गया परन्तु प्रयत्न व्यर्थ गया क्योंकि ऑस्ट्रिया में नात्सियों को पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं था और हिटलर ने भी अपनी सेना भेजकर समय पर सहायता नहीं की। इसका कारण मुसोलिनी का रुख़ था। वह जर्मनी को इटली के निकट आने देना नहीं चाहता था। अतः उसने फ़्रांस और चेकोस्लोवाकिया से मिलकर अपनी सेना ब्रेनर के दर्रे में भेज दी और चेतावनी दी कि यदि जर्मनी ने ऑस्ट्रिया को शामिल करने का प्रयत्न किया तो इटली से युद्ध छिड़ जायगा। हिटलर डर गया। उसने उत्तर दिया कि इस

फ़्रान्स के विरोध के कारण न हो सका। इटली के साथ आर्थिक संयोग करने का प्रयत्न भी फ़्रान्स तथा यूगोस्लाविया और चेकोस्लोवाकिया के विरोध के कारण संभव न हो सका। Jackson : The Between War World, p. 30: सम्राट् के सिंहासन-त्याग के बाद वहाँ पार्लमिण्टरी गणतंत्र स्थापित-हो गया था और आरंभ में शासन समाजवादी प्रजातन्त्रीय (Social Democrats) तथा ईसाई समाजवादी (Christian Socialists) दलों की सम्मिलित सरकार के हाथों में रहा। ये दोनों दल गणतन्त्र के भक्त थे परन्तु उन दोनों में मतभेद था और उनमें अधिक सहयोग नहीं हो सका। Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 732. समाजवादी प्रजातन्त्रियों में बहुत से लोग वामपक्षीय थे और ईसाई समाजवादियों में बहुत से लोग उग्र राष्ट्रीय विचारों के भी थे। ऑस्ट्रिया में उग्र राष्ट्र-वादियों ने अपना नेशनल सोश्यलिस्ट (नात्सी) दल बना लिया था जिसमें १९२९ के आर्थिक संकट के फल-स्वरूप नवयुवक तथा दुर्दशाग्रस्त मध्यवर्ग के लोग शामिल होने लगे। ये लोग धीरे-धीरे ज़ोर पकड़ने लगे। उनका विचार ऑस्ट्रिया को जर्मनी में शामिल करने का था। इस समय ईसाई समाजवादियों का नेता डॉल्फ़ुस था जिसने ऑस्ट्रियन नात्सियों से उत्पन्न खतरे को देखकर उनके विरुद्ध समस्त रूढ़िवादियों को एकत्र कर लिया। १९३२ में वह प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ और अगले वर्ष अधिनायक बन बैठा (१९३३)। उसने पार्लमिण्ट भङ्ग कर दी और प्रेस तथा सभा करने की स्वतन्त्रता पर कठोर नियंत्रण लगाकर ऑस्ट्रियन नात्सी पार्टी का दमन करके उसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया। Hazen : Modern European History, p. 814.। फ़र्वरी १९३४ में उसने वियना के समाजवादियों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की और उनको भी परास्त करके अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। परन्तु वास्तव में यह विजय उसके लिए घातक सिद्ध हुई। Marriott : Europe and Beyond, p. 328.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घटना में उसका बिलकुल हाथ नहीं था और न उसका इरादा ही ऑस्ट्रिया को जर्मनी में शामिल करने का था।*

सार-प्रदेश जर्मनी में शामिल—

इस प्रकार आस्ट्रिया में तो हिटलर की इच्छा पूरी नहीं हुई परन्तु अगले वर्ष एक घटना उसके अनुकूल घटित हुई। वार्साई की सन्धि के अनुसार जर्मनी का सार-प्रदेश, जो जर्मनी का महत्वपूर्ण कोयले का क्षेत्र था, १५ वर्ष के लिये राष्ट्र-सङ्घ के संरक्षण में रखा गया था और १९३५ में जनमत द्वारा उसका भाग्य निर्णय होना था। अतः जनवरी १९३५ में उस प्रदेश की जनता से यह निर्णय करने के लिये कहा गया कि सार-प्रदेश फ्रांस के साथ शामिल हो, जर्मनी में सम्मिलित हो या राष्ट्र-सङ्घ के संरक्षण में ही बना रहे। जनमत-संग्रह हुआ और ९० प्रतिशत मत से सार की जनता ने जर्मनी में शामिल होने की इच्छा प्रकट की।$ फलतः १ मार्च १९३५ को सार-प्रदेश जर्मनी में शामिल हो गया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर अब हिटलर ने जर्मनी के बाहर अन्य राज्यों में रहने वाले जर्मन लोगों में नात्सी प्रचार बढ़ाया। उन प्रदेशों में नात्सी प्रचारकों का ज़ोर बढ़ा और हिटलर भी समय समय पर उन प्रदेशों को, यहाँ तक कि रूसी यूक्रेन प्रदेश को भी, जर्मनी में सम्मिलित करके वृहत्तर जर्मनी के निर्माण की आशा प्रकट करने लगा।

पुनः शस्त्रीकरण का आरम्भ—

उसी महीने (मार्च १९३५) में हिटलर ने घोषणा की कि मित्र-राष्ट्रों ने निःशस्त्रीकरण की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया था। इसलिये वार्साई-सन्धि की निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी धाराएँ अब जर्मनी के लिये क़ानूनी या नैतिक किसी भी दृष्टि से बन्धनकारी नहीं रहीं।‡ यह घोषणा करके

---

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 406.

$ Slosson :Europe since 1870, p. 695.

‡ जर्मनी की शिकायतें तीन थी—(१) फ्राँस ने सन्धि की भाषा एवं भावना की अवहेलना की है और लोकार्नो-सन्धि के आधारों को एक एक करके नष्ट कर दिया है। उसने अपना निःशस्त्रीकरण नहीं किया। (२) उसने नैतिक दृष्टि से भी अपना निःशस्त्रीकरण नहीं किया है, बल्कि अभी तक वह जर्मनी के विरुद्ध शत्रुता तथा सैनिक गुट-निर्माण की नीति पर अमल करता आ रहा है। उसने पोलेण्ड और चेकोस्लोवाकिया से जो सन्धियाँ की हैं उनसे फ्रान्स और जर्मनी के सम्बन्ध में कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गई हैं। (३) फ्रान्स रूस की सन्धि से योरोप का शक्ति-सन्तुलन, जो सन्धि करने वाले राष्ट्रों का ध्येय था, बिलकुल नष्ट हो गया है। Erckner : Hitler's Conspiracy against Peace, pp. 43-44.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने समस्त सैनिक मर्यादाओं को ठुकरा कर जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा आरम्भ करने और इङ्गलैण्ड या फ्रांस के बराबर नभ-सेना का निर्माण करने की घोषणा की।* इसके पहले ही जर्मनी में गुप्त रूप से शस्त्रीकरण आरम्भ हो चुका था। अब यह कार्य प्रकट रूप से होने लगा। योरोप की शान्ति के लिये हिटलर का यह कदम बड़ा खतरनाक था। मित्र-राष्ट्र नाराज़ हुए, उन्होंने कुछ विरोध भी किया परन्तु व्यर्थ।

इंगलैण्ड से नाविक सन्धि—

इस विरोध की व्यर्थता का कारण इंगलैण्ड और फ्रांस का मन-मुटाव था। यदि वे दोनों मिलकर दृढ़ता से विरोध करते तो हिटलर को अवश्य पीछे हटना पड़ता। परन्तु वे दोनों एक दूसरे से अलग हटते जा रहे थे और उनका पारस्परिक वैमनस्य इतना बढ़ रहा था कि इंगलैण्ड जर्मनी से सहयोग के लिये तैयार होगया। उसने फ्रांस से छिपा कर जर्मनी से एक नाविक सन्धि करके जर्मनी को इस बात की छूट दे दी कि वह जिस प्रकार के समुद्री जहाज़ बनाना चाहे इस शर्त पर बना ले कि जर्मन जहाज़ों की टनेज (Tonnage) अंग्रेज़ी जहाज़ों की टनेज के ३५ प्रतिशत से अधिक न हो (जून, १९३५)। इसी समय इङ्गलैण्ड ने जर्मनी का एक और प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार जर्मनी को न केवल वायु-सेना रखने की छूट मिल गई बल्कि उसे अपने निकट पड़ौसियों की वायु-सेना की बराबरी पर आने की अनुमति भी प्राप्त हो गई।† उसके बाद मित्र-राष्ट्रों को जर्मनी से वार्साई की सन्धि का

---

* Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, 406.

† Schevill : A History of Europe, p. 800. इस सन्धि का तत्कालीन स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ सकता था और उसका क्या महत्व था यह बात न्यूयार्क से एक जापानी संवाददाता ने टोकियो को जो तार भेजा था उससे प्रकट होती है। इस संधि के विषय में अमेरिकनों के जैसे विचार थे उन पर उसने प्रकाश डाला है। उसने लिखा कि इस सन्धि का अर्थ है वार्साई की सन्धि का अन्त। इससे राष्ट्र-सङ्घ को बड़ी भारी चोट पहुँची है जिससे इङ्गलैण्ड ने इस सम्बन्ध में कोई परामर्श नहीं किया। इसने वाशिंगटन-सन्धि तथा लण्डन सन्धि को नष्ट कर दिया है। इसका अर्थ यह होगा कि स्ट्रेसा-सम्मेलन में जो निर्णय हुए थे उनका परित्याग कर दिया जायगा। इससे फ्रान्स-रूस की सन्धि तथा फ्रान्स-इटली की सन्धि सुदृढ़ हो जायगी। बाल्टिक सागर में जर्मनी की प्रधानता से रूस में काफी परेशानी हो रही है। अमेरिका का विश्वास है कि इस समझौते से सुदूर पूर्व में जापानी नीति को समर्थन प्राप्त होगा और एबिसीनिया के प्रति इटली का रुख कड़ा हो जायगा। Erckner : Hitler's Conspiracy against Peace, p. 173. हिटलर का उद्देश्य पूर्व की ओर बढ़ने का था और इसके लिये उसे इंग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भंग करने की शिकायत करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं रहा।*

जर्मनी के विरुद्ध स्ट्रेसा का सम्मिलित मोर्चा—

परन्तु हिटलर की इस कार्यवाही से अन्य देशों में बड़ा भय उत्पन्न हुआ। फ्रान्स तो भयभीत था ही। इटली भी डरने लगा। मुसोलिनी ने अप्रैल १९३५ में स्ट्रेसा (Stresa) में इङ्गलैण्ड तथा फ्रान्स के प्रधान मन्त्रियों को आमन्त्रित किया और उनसे मिलकर राष्ट्र-संघ वार्साइ की संधि की रक्षा करने में परस्पर सहयोग करने की सम्मिलित घोषणा की।§ उधर रूस भी सशङ्क हो रहा था। फ्रान्स ने इस स्थिति से लाभ उठाकर अपनी सुरक्षा के लिये मई में रूस से 'पारस्परिक सहायता-सन्धि' की। इसी प्रकार की सन्धि चेकोस्लोवाकिया ने भी रूस के साथ कर ली।‡

राइनलैण्ड के निःसैन्यीकरण का भंग—

ऐसा मालूम होता था कि योरोप के प्रजातन्त्रों तथा अधिनायकतन्त्रों के संयुक्त विरोध के सामने जर्मनी डर जायगा। परन्तु प्रजातन्त्र तथा अधिनायक-तन्त्र का संयोग अस्वाभाविक था और स्वय प्रजातन्त्रों के बीच भी सहयोग की भावना प्रबल नहीं थी। विरोधियों की इस निर्बलता से लाभ उठाने का मौका हिटलर को शीघ्र ही मिल गया। १९३५ के अन्त की ओर इटली ने एबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया जिसका राष्ट्रसंघ में फ्रान्स और इङ्गलैण्ड ने, मुख्यकर इङ्गलैण्ड ने, विरोध किया और राष्ट्र-संघ ने समस्त सदस्य-राष्ट्रों को इटली को

लैण्ड की मित्रता आवश्यक मालूम होती थी। इङ्गलैण्ड की मित्रता की आवश्यकता वह बहुत पहले से महसूस करता आया था। इसने अपनी आत्मकहानी के प्रथम भाग में लिखा था 'यदि योरोप मे नया प्रदेश प्राप्त करना है तो वह रूस से ही छीना जा सकता है·····ऐसी नीति की सफलता के लिये केवल एक ही मित्र हो सकता है और वह है इङ्गलैण्ड। इंगलैण्ड से मित्रता करके ही जर्मनी पीछे की ओर से निश्चित होकर आगे बढ़ सकता है····· इंगलैण्ड की मित्रता प्राप्त करने के लिये बड़े से बड़ा बलिदान भी करने के लिये तैयार होना चाहिए था।' Mein Kampf, pp. 87-88.

*Jackson : The Between-War World, p. 142.

§ इंगलैण्ड ने यह घोषणा कहाँ तक सच्चे मन से की थी, यह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि दो महीने बाद ही उसने जर्मनी से नाविक सन्धि करके स्वयं वार्साई-संधि को भंग करने में उसकी सहायता की। इस संधि की अभी ऊपर चर्चा हुई है।

‡ Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p. 376.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

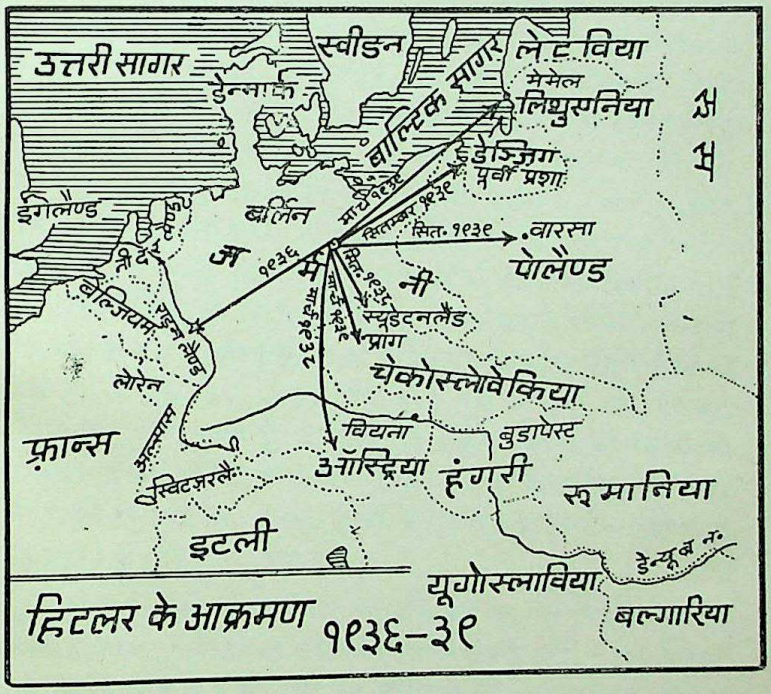

हिटलर के आक्रमण १९३६–३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध-सामग्री न देने का आदेश दिया। हिटलर ने इस स्थिति से लाभ उठाया। उसने इटली के साथ सहानुभूति प्रकट की और उसे युद्ध-सामग्री भी दी। इसके साथ ही उसने यह कह कर कि फ्रान्स ने रूस से पारस्परिक सहायता की सन्धि करके स्वयं लोकार्नो की सन्धि को भंग किया है, मार्च १९३६ में वार्साई तथा लोकार्नो की सन्धियों की अवहेलना करके राइनलैण्ड में, जहाँ सेना रखने का निषेध किया गया था, अपनी सेना भेज दी। राइनलैण्ड में सेना भेजने का आदेश देकर हिटलर ने एक बड़ा खतरनाक दाव फेंका था क्योंकि जर्मनी के सैनिक अधिकारी डरते थे कि इससे कहीं फ्रान्स से युद्ध न छिड़ जाय। इस समय तक जर्मनी की सैनिक तैयारी अपूर्ण थी और उसके पराजित हो जाने का भय था। परन्तु भाग्य ने हिटलर का साथ दिया। राष्ट्र-संघ की कौंसिल ने इस कार्य की निन्दा करते हुए एक प्रस्ताव पास किया। हिटलर के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने की इच्छा केवल फ्रान्स और बेल्जियम में ही थी किन्तु वे भी कोई कार्यवाही न कर सके क्योंकि उन देशों में शान्तिवाद का जोर था और अन्य देश इस मामले में उदासीन थे।* इटली फ्रान्स के विरुद्ध था और रूस ने उसके साथ सहयोग करने से इन्कार कर दिया। इंगलैण्ड को जर्मनी की कार्यवाही से कहीं अधिक चिन्ता अफ्रीका में इटली की कार्यवाहियों से थी। इसका परिणाम यह हुआ कि हिटलर ने निर्भय होकर अपनी पश्चिमी सीमाओं की किलाबन्दी शुरू कर दी, शस्त्रीकरण की गति बढ़ा दी और बाधित सेना की अवधि एक वर्ष से बढ़ा कर दो वर्ष कर दी। यह देखकर बेल्जियम डर गया। उसने १९२० में फ्रान्स के साथ की हुई सैनिक सन्धि को रद्द करके तटस्थता अख्त्यार कर ली।‡ अभी तक हिटलर की शक्ति अधिक नहीं बढ़ी थी। उसे रोकने का यह बड़ा अच्छा मौका था परन्तु वह निकल गया और योरोप की शान्ति के लिये खतरा बढ़ गया।

---

* फ्रांस में इस समय काफी तैयारी थी और यदि वह इस समय अपनी सेना जर्मनी के विरुद्ध भेजता तो हिटलर को अपनी सेना वापस हटानी पड़ती। आगे चलकर आस्ट्रिया के चान्सलर शुस्निग से भेंट करते हुए हिटलर ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया था। इङ्गलैण्ड ने केवल सहायता ही न दी, उसने फ्रान्स को भी रोका और उससे इस मामले को राष्ट्रसंघ के सामने प्रस्तुत करने का अनुरोध किया जिसे वह पहले ही जर्मनी से नाविक-सन्धि करके और इटली के विरुद्ध लगाये हुए प्रतिबन्धों के सम्बन्ध में धांधली करके निर्बल कर चुका था। हिटलर की आकांक्षाओं पर बिना युद्ध किये रुकावट लगाने का यह अन्तिम अवसर था जो इन दोनों ने खो दिया। Churchill : The Second World War. Vol. I, pp. 173-176, 235.

‡ Schuman ; International Politics, p. 741.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकाकिता का अन्त करने का प्रयत्न—

हिटलर अपनी आकांक्षाएँ पूरी करता जा रहा था परन्तु इसके साथ ही वह यह भी देख रहा था कि पहले की तरह उसके विरोधी राष्ट्र उसके विरुद्ध गुट बनाने लगे हैं और उसे घेरने का प्रयत्न करने लगे हैं। फ्रान्स-रूस तथा रूस-चेकोस्लोवाकिया की सन्धियाँ स्पष्टतः जर्मनी के विरुद्ध थीं, हालाँकि उनमें जर्मनी का उल्लेख नहीं था। यह देखकर उसने भी जर्मनी की एकाकिता का अन्त करके उसके लिए मित्र प्राप्त करने का प्रयत्न आरम्भ किया। उसने पहले से ही अपनी ओर से इङ्गलैण्ड तथा पोलैण्ड की शङ्काओं को दूर करने का प्रयत्न शुरू कर दिया था। जैसा हम देख चुके हैं, उसने १९३४ में पोलैण्ड से सन्धि कर ली थी। वह १९३५ में इङ्गलैण्ड से भी एक नाविक सन्धि कर चुका था। इस सन्धि का उद्देश्य इङ्गलैण्ड का यह डर मिटा देना था कि जर्मनी कहीं फिर से नाविक क्षेत्र में उसका प्रतिद्वन्द्वी बनने का प्रयत्न न करने लगे। उसे यह भी आशा थी कि इस सन्धि के फलस्वरूप इङ्गलैंड महाद्वीप पर जर्मनी के साथ छेड़खानी नहीं करेगा।

इटली से सन्धि (रोम-बर्लिन-धुरी)—

परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण सन्धि इटली के साथ हुई। इटली ने १९३४ में ऑस्ट्रिया में जर्मनी का विरोध किया था परन्तु इस समय वह भूमध्यसागर में अपना प्रभुत्व स्थापित करके उसे एक इटालियन झील बना लेना चाहता था और इस कार्य में उसका स्वाभाविक विरोधी फ्रान्स था। इटली चाहता था कि उसे कोई ऐसा मित्र मिले जो फ्रान्स पर दबाव डाल सके। ऐसा मित्र जर्मनी ही हो सकता था। हिटलर को भी योरोप में एक मित्र की आवश्यकता थी और वह इटली ही हो सकता था। उसे वह पहले ही एबिसीनियन युद्ध में सहायता दे चुका था। दोनों राष्ट्र-संघ को तुच्छ समझते थे, दोनों ही फ्रान्स और इङ्गलैंड के विरोधी थे, दोनों ही विस्तार के इच्छुक थे और दोनों के राजनीतिक विचार एवं शासन पद्धतियाँ समान ही थीं। अतः दोनों में मित्रता हो जाना स्वाभाविक था। अक्टूबर १९३६ में दोनों देशों में सन्धि (रोम-बर्लिन-धुरी—Rome-Berlin-Axis) होगई और योरोप में जर्मनी की एकाकिता का अन्त होगया।$

जापान से सन्धि—

नवम्बर १९३६ में जापान से भी रूस के विरुद्ध सन्धि (Anti-Commin-

$ Jackson : The Between-War World, p. 142.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

tern Pact) कर ली। जापान उन दिनों चीन में आगे बढ़ रहा था। उसे रूस के विरोध का भय था और वह ऐसा कोई मित्र चाहता था जो रूस पर दबाव डाल सकता। जर्मनी भी पूर्व की ओर बढ़ना चाहता था और रूस पर रुकावट लगाना चाहता था। १९३७ में इटली भी इस सन्धि में शामिल हो गया और 'रोम-बर्लिन-धुरी' 'रोम-बर्लिन-टोकियो-धुरी' में परिणत हो गई। इस प्रकार एक नवीन शक्ति-सन्तुलन स्थापित हो गया जिसमें एक ओर फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और रूस तथा दूसरी ओर जर्मनी, इटली और जापान थे। परन्तु यह शक्ति-सन्तुलन बड़ा संदिग्ध था क्योंकि पश्चिमी प्रजातन्त्रों तथा साम्यवादी रूस के बीच निरन्तर सहयोग कठिन था और जैसा हम आगे देखेंगे, हो भी नहीं सका।

पूर्व की ओर बढ़ने के प्रयत्न—

एबिसीनिया पर इटली के सफल आक्रमण के फल-स्वरूप राष्ट्र संघ की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई थी। 'सामूहिक सुरक्षा' के लिए जिस व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह उसके निर्माताओं की भूल के कारण ही नष्ट हो गई। वे भूल गये कि 'शान्ति अविभाज्य होती है।' एक जगह आक्रमण की उपेक्षा करने से अन्यत्र भी आक्रमण होने की सम्भावना रहती है और शान्ति कायम नहीं रह सकती। राष्ट्र-संघ को हिटलर पहले से ही तुच्छ समझता था परन्तु एबिसीनिया के दुर्भाग्य ने उसके सामने राष्ट्र-संघ की दुर्बलता प्रगट कर दी और उसके सामने यह स्पष्ट हो गया कि योरोप के राज्य उसके विरुद्ध एक नहीं हो सकते।* अब निर्भय होकर हिटलर ने मध्य तथा दक्षिणी-पूर्वी योरोप पर प्राधान्य जमाने और इस प्रकार जर्मनी की 'पूर्व की ओर आगे बढ़ने' Drang Nach Osten) की परम्परागत आकांक्षा की पूर्ति के लिए कदम बढ़ाया। इस योजना की सफलता के लिए उसने बिस्मार्क का अनुकरण किया। उसने अपने शत्रुओं से एक-एक करके निपटारा किया और साथ ही वह यह आश्वासन देता रहा कि अन्य दिशाओं में उसकी कोई आकांक्षा नहीं है।

ऑस्ट्रिया पर अधिकार—

हिटलर का पहला आक्रमण ऑस्ट्रिया पर हुआ। १९३४ में उसके

---

*एबिसीनिया में इटली की विजय को देख कर जर्मनी इंगलैण्ड को तुच्छ समझने लग गया था। इस विषय में बेवेरिया में स्थित एक अंग्रेज सम्वाददाता ने लिखा था—'आजकल कई जगह जब इंगलैण्ड की चर्चा होती है तो उसमें तिरस्कार झलकता है। मुझे भय है कि पश्चिमी योरोपीय तथा अन्य समस्याओं के सम्बन्ध में हिटलर का रुख कड़ा हो जायगा।' Churchill : The Second World War, Vol. I, p. 167.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऑस्ट्रिया को हड़पने के असफल प्रयत्न का हाल हम ऊपर देख चुके हैं। डॉल्फ़ुस की हत्या के उपरान्त डॉ० शुस्निग (Schuschnigg) ऑस्ट्रिया का चान्सलर बना। उसने डॉल्फ़ुस की नीति जारी रखी। वह ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता कायम रखने के लिए हाप्सबुर्ग राजवंश को पुनः सिंहासन पर आसीन करना चाहता था। डॉल्फ़ुस को तो इटली का संरक्षण प्राप्त था परन्तु अब इटली जर्मनी का मित्र हो चुका था। पश्चिमी सत्ताएँ भी ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में केवल अपनी शुभ कामनाओं को प्रगट करके ही सन्तुष्ट थीं। इस प्रकार ऑस्ट्रियन गणतन्त्र असहाय था और वह आसानी से हिटलर की आकांक्षाओं का शिकार बन गया। पहले तो उसने ऑस्ट्रिया के 'पूर्ण प्रभुत्व को स्वीकार करके यह आश्वासन दिया कि वह वहाँ नात्सी प्रचार को बिलकुल प्रोत्साहन नहीं देगा (१९३६)* परन्तु वास्तव में वहाँ नात्सियों का प्रचार बहुत बढ़ गया। फर्वरी १९३८ में उसने डॉ० शुस्निग से बर्ख़तेस्गादेन (Berchtesgaden) में बुलाकर भेंट की और उसे आक्रमण की धमकी देते हुए सुरक्षा-मन्त्री के स्थान पर एक आस्ट्रियन नात्सी को नियुक्त करने का आदेश दिया।† शुस्निग को इस आदेश के पालन के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं दिखाई दिया। नात्सियों की कार्यवाहियों पर से पुलिस का नियन्त्रण हट गया और क्रान्ति के आसार दिखाई देने लगे। यह देख कर शुस्निग ने ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर जनमत-संग्रह की घोषणा की और सोश्यलिस्टों से उसकी सहायता करने की अपील की।§ परन्तु हिटलर यह कैसे देख सकता था। १८ मार्च, १९३८ को सवेरे ही जर्मन सेनाएँ ऑस्ट्रिया में घुस पड़ीं। उनका कोई विरोध नहीं हुआ और ऑस्ट्रिया जर्मन साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया।

चेकोस्लोवाकिया की ओर—

ऑस्ट्रिया के बाद चेकोस्लावाकिया की बारी आई। चेकोस्लोवाकिया एक आदर्श प्रजातंत्रीय गणतंत्र था और योरोप में उसकी काफी प्रतिष्ठा थी। उसने अपने पड़ौसी देशों—यूगोस्लाविया तथा रुमानिया—से निकट सम्बन्ध

*Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p, 430.

†Churchill : The Second World War, Vol. I, pp. 235-236. इन पृष्ठों पर हिटलर और शुस्निग का वार्तालाप दिया हुआ है जो शुस्निग की डायरी में से लिया गया है। उसने शुस्निग को युद्ध की धमकी दी और जब शुस्निग ने अपने सहायकों की चर्चा की तो उसने बतलाया कि मुसोलिनी जर्मनी के साथ था और इंगलैण्ड तथा फ़्रान्स से उसे कोई आशा नहीं रखनी चाहिए।

§Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II p. 733.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापित करके 'लघु मैत्री' (Little Entente) स्थापित कर ली थी। इन तीनों देशों का समान हित इस बात में था कि हंगरी में हाप्सबुर्ग वंश की पुनः स्थापना न हो जाय नहीं तो हंगरी द्वारा अपने खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किए जाने का डर था। चेकोस्लोवाकिया की प्रमुख आन्तरिक समस्या ३७½ लाख जर्मनों की थी। अन्य देशों की अल्पसंख्यक जातियों के मुकाबले में उनकी स्थिति बहुत अच्छी थी। उनके अपने स्कूल तथा विश्वविद्यालय थे और उन्हें मन्त्रि-मण्डलों में भी स्थान प्राप्त था परन्तु वे असन्तुष्ट थे। असन्तोष का प्रथम कारण तो यही था कि वे किसी समय इस विभाग पर शासन करते थे परन्तु अब उनका दर्जा बहुसंख्यक चेकों से दूसरा था। इसके साथ ही कुछ उनकी वास्तविक शिकायतें भी थीं। उन्हें सरकारी पद उनकी संख्या के अनुपात में प्राप्त नहीं थे। यदि उनके दावों पर उदारता के साथ विचार किया जाता तो वे सन्तुष्ट हो जाते परन्तु जर्मनी में नात्सीवाद के उदय के साथ यह आशा लुप्त हो गई।* जर्मनी के नात्सी लोग चेकोस्लोवाकिया के जर्मनों में राष्ट्रीयता की भावना तथा अलग होने की आकांक्षा जगाने लगे और वहाँ भी नात्सी दल बन गया। सरकार ने जर्मनी से उसका सम्बन्ध होने का कारण नात्सी दल को तो भंग कर दिया (१९३३) परन्तु अगले ही वर्ष उसके स्थान पर स्यूडेटन जर्मन दल तैयार हो गया। उसकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर १९३७ में सरकार ने आनुपातिक सिद्धान्त पर जर्मनी की शिकायतों को दूर करने का प्रयत्न किया। अन्य जर्मन दल तो उन रियायतों से सन्तुष्ट हो गये परन्तु स्यूडेटन जर्मन दल को सन्तोष नहीं हुआ और जर्मनी के इशारे पर उसने 'पूर्ण स्वायत्त शासन' की माँग की।

म्यूनिख का विश्वासघात—चेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग—

ऑस्ट्रिया के जर्मनी में शामिल हो जाने से हिटलर को चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण करने को बड़ी सुविधा हो गई थी। ऐसा मालूम होता है कि वह उस पर सीधा आक्रमण करना चाहता था परन्तु इंगलैंड की चेतावनी पर वह रुक गया। उसने अपनी नीति बदल दी ‡ और आक्रमण करने की जगह उसने चेकोस्लोवाकिया के अन्दर उपद्रव करवा कर अपना उद्देश्य पूरा करने का निश्चय किया। उसने एक स्थानीय नात्सी नेता हेनलाइन के द्वारा समस्त जर्मनों को संगठित करके सरकार को परेशान करना शुरू किया और स्वयं समाचार पत्रों में चेकोस्लोवाकिया की सरकार पर जर्मनों पर अत्याचार करने का

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 406.

‡ Jackson : The Between-War World, pp. 143-144.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोष लगा कर उसके विरुद्ध विषैला प्रचार आरम्भ किया। दोनों में तनाव बढ़ा और योरोप के सामने एक नया अन्तर्राष्ट्रीय संकट खड़ा हो गया। यह देख कर इंगलैण्ड ने दोनों झगड़े का शान्तिपूर्ण ढंग से निर्णय कराने के लिए एक मध्यस्थ भेजा। परन्तु उससे कुछ नहीं हुआ और सितम्बर १९३८ में चेकोस्लोवाकिया पर जर्मनी के आक्रमण की तात्कालिक सम्भावना नज़र आने लगी। यदि यह आक्रमण हो जाता तो युद्ध योरोपीय युद्ध का रूप धारण कर लेता क्योंकि फ्रान्स और रूस चेकोस्लोवाकिया की सहायता करने के लिए वचनबद्ध थे और शायद इंगलैण्ड भी फ्रान्स की सहायता करता। इस खतरे को रोकने के लिए फ्रान्स ने चेकोस्लोवाकिया को दिये हुए आश्वासन का भंग करके इंगलैण्ड के साथ मिल कर इस शर्त पर हिटलर को स्यूडेटन प्रदेश का एक भाग देने का निश्चय किया कि वह शेष चेकोस्लोवाकिया की गारण्टी दे। इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन ने बर्ख़तेस्गादेन में हिटलर से भेंट की परन्तु हिटलर ने गारण्टी देने से इन्कार कर दिया। एक सप्ताह बाद चेम्बरलेन फिर जर्मनी गया परन्तु हिटलर टस से मस नहीं हुआ। जर्मनी में सेना का प्रयास आरम्भ हो गया। फ्रान्स की सेना तथा इंगलैण्ड का बेड़ा भी तैयार हो गया। परन्तु अन्त में हिटलर की धौंस काम कर गई। फ्रान्स और इंगलैण्ड दब गये। चेकोस्लोवाकिया की सरकार को एक संयुक्त सन्देश में उन्होंने कहा कि शान्ति तथा चेकोस्लोवाकिया के वास्तविक हितों की सुरक्षा की गारण्टी उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि वे प्रदेश जिनमें स्यूडेटन जर्मन लोग रहते हैं जर्मनी को नहीं दे दिये जाते। इसके साथ ही उन्होंने वचन दिया कि उसके बाद चेकोस्लोवाकिया की नई सीमाओं की अकारण आक्रमण के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय गारंटी दी जा सकेगी। चेकोस्लोवाकिया ने इस विचित्र प्रस्ताव की अनेक कठिनाइयों की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया परन्तु उसका प्रतिवाद व्यर्थ रहा। चेम्बरलेन (इंगलैण्ड), दलादिये (फ्रान्स), हिटलर (जर्मनी) तथा मुसोलिनी (इटली) के बीच म्यूनिख़ में एक समझौता हुआ (२९ सितम्बर १९३८) जिसके अनुसार स्यूडेटनलैंड जर्मनी को मिल गया। इस प्रकार चेकोस्लावाकिया का अंग-भंग हुआ। चेकोस्लोवाकिया ने भी इस समझौते को एक घोषणा के आधार पर जो उसमें सम्मिलित थी, उसे स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार इंगलैंड और फ्रान्स ने चेकोस्लोवाकिया की नई सीमाओं की गारंटी दी थी और जर्मनी तथा इटली ने भी पोलिश तथा हंगेरियन अल्पसंख्यकों की समस्याओं का समाधान हो जाने पर गारंटी देने का वचन दिया था। उसने कहा था, 'योरोप में यह मेरा अन्तिम दावा है। जर्मनी के सामने अब योरोप में कोई प्रदेश सम्बन्धी समस्याएँ नहीं हैं। अब मुझे चेक राज्य से कोई सरोकार नहीं है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

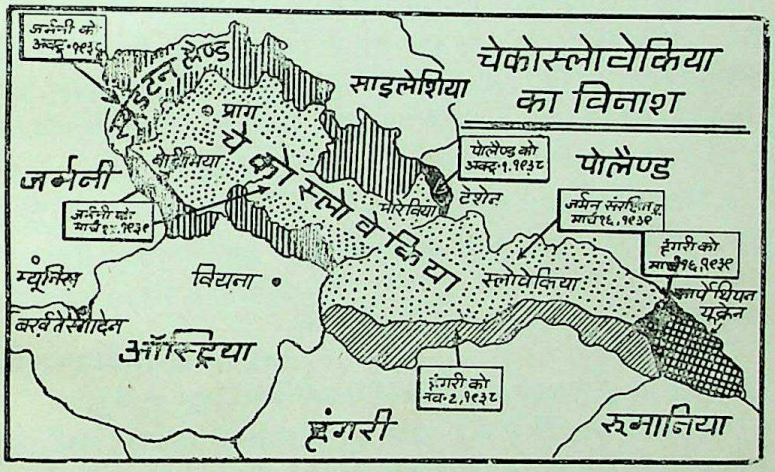

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और मैं उसकी गारण्टी दे सकता हूँ।'* आश्चर्य की बात है कि इस समझौते में रूस शामिल नहीं किया गया हालाँकि चेकोस्लोवाकिया से रूस की सन्धि थी, फ्रान्स तथा रूस भी परस्पर सन्धि में बंधे हुए थे और रूस सहायता के लिये तैयार भी था।† इसका कारण यह था कि हिटलर रूस के प्रतिनिधि के साथ बात नहीं करना चाहता था और फ्रान्स तथा इंगलैंड उसे अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। बेचारे चेकोस्लोवाकिया से भी कुछ नहीं पूछा गया और न उसकी कोई बात ही सुनी गई।

चेकोस्लोवाकिया को राष्ट्रीय अपमान का बड़ा कड़ुआ घूँट पीना पड़ा परन्तु इससे भी उसके कष्टों का अन्त नहीं हुआ। स्यूडेटनलैण्ड तो जर्मनी को मिल ही गया था। उसके साथ ही पोलेण्ड ने टेशेन (Teschen) प्रदेश छीन लिया और हङ्गरी ने स्लोवाकिया के एक भाग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार चेकोस्लोवाकिया की तृतीयांश भूमि निकल गई और उसकी पश्चिमी सीमा बिलकुल अरक्षित हो गई। चेम्बरलेन ने लन्दन लौट कर बड़ी प्रसन्नता के साथ घोषणा की कि मैंने योरोप को 'अपने समय के लिये शान्ति' प्रदान कर दी है।‡ चेकोस्लोवाकिया को छोड़ सर्वत्र लोगों ने सन्तोष की सांस ली। ऐसा मालूम हुआ मानों युद्ध की आशंका टल गई और आगे योरोपीय राष्ट्र शान्ति-पूर्वक सहयोग करते रहेंगे।

चेकोस्लोवाकिया का अन्त—

परन्तु ये आशाएँ व्यर्थ निकलीं। योरोप को केवल कुछ ही महीने की शान्ति मिली। हिटलर ने स्लोवाकिया में अलग होने के लिये आन्दोलन आरम्भ करवाया और वहाँ एक अलग स्लोवाक मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो गई। मार्च १९३९ में चेक सरकार ने उस मंत्रिमण्डल को बरखास्त कर दिया। इस पर पदच्युत प्रधानमन्त्री ने हिटलर से अपील की। हिटलर के इशारे पर स्लोवाक पार्लामेंट ने चेक लोगों से अलग होकर स्वतन्त्र स्लोवाक राज्य के निर्माण की घोषणा कर दी। स्थिति बड़ी नाजुक हो गई और चेक राष्ट्रपति डॉ० हाशा (Hacha) किसी प्रकार का समझौता करने की आशा में हिटलर से भेंट करने बर्लिन पहुँचा। हिटलर ने उसे धमकाया और अवशिष्ट चेकोस्लोवाकिया को जर्मनी के सुपुर्द करने का आदेश दिया। उस समय तक जर्मन सेनाएँ चेक सीमा की ओर बढ़ने लग गई थीं। बेचारे हाशा के सामने चेक राष्ट्र की स्वतन्त्रता

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 407-409.

† Falsifiers of History, p. 25.

‡ Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II. p. 410.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और मैं उसकी गारण्टी दे सकता हूँ।'* आश्चर्य की बात है कि इस समझौते में रूस शामिल नहीं किया गया हालाँकि चेकोस्लोवाकिया से रूस की सन्धि थी, फ्रान्स तथा रूस भी परस्पर सन्धि में बंधे हुए थे और रूस सहायता के लिये तैयार भी था।† इसका कारण यह था कि हिटलर रूस के प्रतिनिधि के साथ बात नहीं करना चाहता था और फ्रान्स तथा इंगलैंड उसे अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। बेचारे चेकोस्लोवाकिया से भी कुछ नहीं पूछा गया और न उसकी कोई बात ही सुनी गई।

चेकोस्लोवाकिया को राष्ट्रीय अपमान का बड़ा कड़ुआ घूँट पीना पड़ा परन्तु इससे भी उसके कष्टों का अन्त नहीं हुआ। स्यूडेटनलैण्ड तो जर्मनी को मिल ही गया था। उसके साथ ही पोलेण्ड ने टेशेन (Teschen) प्रदेश छीन लिया और हङ्गरी ने स्लोवाकिया के एक भाग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार चेकोस्लोवाकिया की तृतीयांश भूमि निकल गई और उसकी पश्चिमी सीमा बिलकुल अरक्षित हो गई। चेम्बरलेन ने लन्दन लौट कर बड़ी प्रसन्नता के साथ घोषणा की कि मैंने योरोप को 'अपने समय के लिये शान्ति' प्रदान कर दी है।‡ चेकोस्लोवाकिया को छोड़ सर्वत्र लोगों ने सन्तोष की सांस ली। ऐसा मालूम हुआ मानों युद्ध की आशंका टल गई और आगे योरोपीय राष्ट्र शान्ति-पूर्वक सहयोग करते रहेंगे।

चेकोस्लोवाकिया का अन्त—

परन्तु ये आशाएँ व्यर्थ निकलीं। योरोप को केवल कुछ ही महीने की शान्ति मिली। हिटलर ने स्लोवाकिया में अलग होने के लिये आन्दोलन आरम्भ करवाया और वहाँ एक अलग स्लोवाक मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो गई। मार्च १९३९ में चेक सरकार ने उस मंत्रिमण्डल को बरखास्त कर दिया। इस पर पदच्युत प्रधानमन्त्री ने हिटलर से अपील की। हिटलर के इशारे पर स्लोवाक पार्लामेंट ने चेक लोगों से अलग होकर स्वतन्त्र स्लोवाक राज्य के निर्माण की घोषणा कर दी। स्थिति बड़ी नाजुक हो गई और चेक राष्ट्रपति डॉ० हाशा (Hacha) किसी प्रकार का समझौता करने की आशा में हिटलर से भेंट करने बर्लिन पहुँचा। हिटलर ने उसे धमकाया और अवशिष्ट चेकोस्लोवाकिया को जर्मनी के सुपुर्द करने का आदेश दिया। उस समय तक जर्मन सेनाएँ चेक सीमा की ओर बढ़ने लग गई थीं। बेचारे हाशा के सामने चेक राष्ट्र की स्वतन्त्रता

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, pp. 407-409.
† Falsifiers of History, p. 25.
‡ Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II. p. 410.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिटलर की वेदी पर चढ़ाने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं रहा। उसने एक घोषणा पर चुपचाप हस्ताक्षर कर दिये और चेक लोगों के देश तथा भाग्य को हिटलर के हाथों में सौंप दिया। जर्मन सेनाओं ने बोहीमिया तथा मोरेविया के प्रदेशों (अवशिष्ट चेकोस्लोवाकिया) पर अधिकार कर लिया और उन्हें जर्मन साम्राज्य के 'रक्षित प्रदेश' घोषित कर दिया। दो दिन के बाद स्वतन्त्र स्लोवाकिया भी जर्मनी में शामिल कर लिया गया और जर्मनी के इशारे पर रूथीनिया के प्रदेश पर हङ्गरी ने अधिकार कर लिया।* स्वतन्त्र चेकोस्लोवाकिया का बीस वर्ष की आयु में ही इस प्रकार अन्त हो गया (मार्च १९३९)।

मेमेल पर अधिकार और पोलेण्ड से सम्बन्ध-विच्छेद—

उसी महीने में (२२ मार्च) हिटलर ने लिथुएनिया को धमकाकर मेमेल ले लिया और तुरन्त ही पोलेण्ड के विरुद्ध जर्मन अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करने का दोषारोपण शुरू हो गया।† इसके साथ ही उसने पोलैंड

---

* Strong ; Dynamic Europe, p. 404,

† पोलैण्ड का पुनरुत्थान महायुद्ध के फलस्वरूप हुआ था। राजनीतिक दृष्टि से यह देश सदा ही अव्यवस्थित रहा है। इस नये राज्य का निर्माता मार्शल पिल्स्यूड्स्की (Pilsuidski) था। नये राज्य ने पार्लमैण्टरी प्रजातन्त्रीय पद्धति स्वीकार की और पिल्स्यूड्स्की प्रथम राष्ट्रपति बना। १९२१ में वह अलग होगया परन्तु उसके अलग हो जाने पर प्रजातन्त्र की दशा खराब हो गई। अतः १९२६ में उसने मन्त्रिमण्डल को जबरदस्ती निकाल कर एक 'राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल' बनाया और स्वयं प्रधान मन्त्री बनकर वस्तुतः अधिनायक बन गया, हालांकि वह अधिनायक कहा जाना पसन्द नहीं करता था। उसने राष्ट्रपति बनने से भी इन्कार कर दिया और १९३० में प्रधानमन्त्री पद भी त्याग दिया। परन्तु सेना उसके पक्ष में थी और इस कारण बाद में भी वास्तविक सत्ता इसके हाथ में बनी रही। राष्ट्रपति और मन्त्री उसकी पसंद के व्यक्ति ही हो सकते थे। १९३५ में उसकी मृत्यु हो गई परन्तु इसके पहले ही वह विधान में संशोधन करवा चुका था जिसके अनुसार राष्ट्रपति के अधिकार बढ़ा दिये गये थे और पार्लमिण्ट के अधिकार सीमित कर दिये गये थे। Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 737.

पोलेण्ड अपने दोनों पड़ौसियों–रूस तथा जर्मनी-से खिचा हुआ था, रूस से तो बॉल्शेविक विचारों के कारण और जर्मनी से इस कारण कि जर्मनी की बहुत सी भूमि उसके पास थी। अतः उसकी स्वाभाविक मित्रता फ्रान्स से थी जो स्वयं भी बॉल्शेविज्म के प्रसार और जर्मनी के पुनुरुत्थान से डरता था। अतः १९२१ में उसने फ्रांस से सन्धि कर ली। परंतु जर्मनी के पुनरुत्थान के बाद से पोलेण्ड बड़ा चिंतित हो गया और अपने पड़ौसियों से सम्बन्ध सुधारने का प्रयत्न करने लगा। १९३२ में उसने रूस से संधि की जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे पर आक्रमण न करने का वचन दिया। इसी प्रकार की एक संधि दस वर्ष के लिये उसने जर्मनी से भी १९३४ में की। परन्तु यह संधि व्यर्थ प्रमाणित हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से मांग की कि डेञ्ज़िग जर्मनी में शामिल कर दिया जाय, और पोलिश गलियारे में से होकर जर्मनी को पूर्वी प्रशा तक रेल और सड़क बनाने के लिये भूमि दी जाय (२१ मार्च)। इसके बदले में उसने डेञ्ज़िग में पोलेण्ड के आर्थिक अधिकार सुरक्षित रखने, पोलैण्ड-जर्मनी की सीमा को स्थायी स्वीकार करने और उसके साथ १५ वर्ष की अनाक्रमण सन्धि करने का आश्वासन दिया।* पोलेण्ड ने इस माँग को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इस पर उसके पोलेण्ड के साथ की गई दस-वर्षीय सन्धि को रद्द कर दिया और डेञ्ज़िग में जर्मन आन्दोलन भड़काना तथा पूर्वी प्रशा में समुद्र की राह सेना भेजना शुरू कर दिया।† ऐसा मालूम होने लगा मानों पोलैण्ड पर जर्मनी का आक्रमण होने वाला था।

अब इङ्गलैण्ड को वास्तविकता का ज्ञान हुआ परन्तु बहुत देर से। उसने फ्रान्स तथा पोलैण्ड से सन्धि कर ली जिसके द्वारा प्रत्येक पक्ष ने एक दूसरे की स्वतन्त्रता की गारण्टी दी और आक्रमण होने पर परस्पर सहायता का वचन दिया। इसके साथ ही उसने रूमानिया, ग्रीस तथा टर्की को भी इसी प्रकार की गारण्टी देने के लिये अपनी तैयारी प्रकट की।$ परन्तु अब इस प्रकार की गारण्टी से कुछ नहीं हो सकता था। इससे उनकी ज़िम्मेदारियाँ ही बढ़ गई थीं, लाभ कुछ नहीं हुआ था क्योंकि वे रूस को अपने साथ सहयोग करने के लिये तैयार नहीं कर पा रहे थे। १९३९ में ग्रीष्मकाल में उन्होंने रूस से सन्धि करने का प्रयत्न किया। स्टालिन इस शर्त पर इङ्गलैंड और फ्रान्स से सन्धि करने के लिये तैयार था कि वे जर्मन आक्रमण से बाल्टिक राज्यों की रक्षा की गारण्टी दें। परन्तु वे इसके लिये तैयार नहीं हुए।§

रूस से अनाक्रमण-सन्धि—

इसके पहले ही रूस ने जर्मनी से कुछ सौदे के बदले में सन्धि करने की इच्छा गुप्त रूप से हिटलर के पास पहुँचा दी थी। स्टालिन को आशा थी कि जर्मनी का साथ देने से उसे पोलेण्ड के बटवारे में कुछ भाग तथा बाल्टिक और कालेसागर के तट के प्रदेश जो प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप रूस के हाथ से निकल चुके थे प्राप्त हो सकेंगे। वह यह भी समझ रहा था कि भावी युद्ध में दोनों पक्ष निर्बल हो जाँयगे और अन्त में वह समस्त योरोप में साम्यवाद का प्राधान्य

---

* Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p. 487.

† Strong : Dynamic Europe, pp. 405-406.

$ Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 411.

§ Strong : Dynamic Europe, p. 406.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापित कर सकेगा। हिटलर पहले तो राजी नहीं हुआ परन्तु ज्यों-ज्यों राजनीतिक संकट बढ़ता गया उसे रूस के साथ समझौता कर लेने में ही हित दिखाई दिया। गुप्त रूप से बातचीत चलती रही और जब कि इङ्गलैंड और फ़्रान्स के राजदूत रूस में बात कर ही रहे थे, संसार के समाचारपत्रों में रूस-जर्मनी की 'अनाक्रमण सन्धि' का समाचार प्रकाशित हुआ (२३ अगस्त)। इङ्गलैंड और फ़्रान्स देखते ही रह गये। इस सन्धि द्वारा दोनों ने एक दूसरे पर आक्रमण न करने का वचन दिया परन्तु इसके साथ ही कुछ गुप्त धाराओं द्वारा पोलेण्ड के बँटवारे की व्यवस्था हुई, जर्मनी ने रूस को बाल्टिक राज्यों में स्वतन्त्रता दे दी और रूस ने जर्मनी को खाद्यान्न, पेट्रोल तथा युद्ध की अन्य सामग्रियाँ देने का वचन दिया।*

यह सन्धि निर्णायक रही। हिटलर पोलेण्ड पर आक्रमण करना चाहता था परन्तु उसे रूस की ओर से भय था और वह दो मोर्चों पर लड़ने से हिचकिचाता था। इस सन्धि से उसका यह भय केवल दूर ही नहीं हो गया, उसे यह भी विश्वास हो गया कि उसे पूर्व में विरोध की जगह सहयोग प्राप्त हो सकेगा। वह यह भी जानता था कि इस बार इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स अवश्य लड़ेंगे परन्तु उसे मालूम था कि उनको, विशेषकर फ़्रान्स को युद्ध में उग्र फेसिस्ट दक्षिण-पक्षीय लोगों से जिन्हें जर्मनी के साथ सहानुभूति थी तथा उग्र वामपक्षीय लोगों की ओर से जिन्हें रूस से सहानुभूति थी, बाधा पहुँचेगी। इस प्रकार उसे स्थिति अपने अनुकूल मालूम हुई और उसने १ सितम्बर १९३९ को युद्ध की विधिवत् घोषणा किये बिना ही पोलेण्ड पर आक्रमण कर दिया। दो दिन बाद इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स ने संधिजन्य दायित्वों का पालन करके जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और द्वितीय विश्व-युद्ध आरम्भ हो गया।

———

* Hayes and Cole · History of Europe, Vol. II. p. 412.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय १९

इटली में उदारवाद की पराजय

फेसिज़्म का उदय

जर्मनी में प्रथम महायुद्ध के उपरान्त वास्तविक जनतन्त्र की स्थापना हुई थी परन्तु वह बड़ा अल्पकालीन रहा और १५ वर्ष में ही हिटलर ने उसका विनाश करके उसके स्थान पर प्रतिक्रियावादी अधिनायकतन्त्र स्थापित कर दिया। इटली में प्रजातन्त्र की स्थापना १८६० में ही हो चुकी थी और वहाँ के लोग ६० वर्ष से पार्लमिएटरी शासन में रह रहे थे। परन्तु वह महायुद्ध-जनित परिस्थिति का सामना नहीं कर सका। चार-पाँच वर्ष में ही उसका अन्त हो गया और उसका स्थान प्रतिक्रियावादी अधिनायकतन्त्र ने ले लिया। दोनों देशों में अधिनायकतन्त्र के उदय का कारण महायुद्ध और उसका अन्त करने वाली शान्ति सन्धियाँ थीं।

विजयी परन्तु वास्तव में पराजित—

इटली महायुद्ध में अपने मित्रों का पक्ष छोड़कर प्रादेशिक विस्तार के लोभ से मित्र-राष्ट्रों की ओर सम्मिलित हुआ था। मित्र-राष्ट्र विजयी हुए थे परन्तु इटली विजयी पक्ष में होते हुए भी वास्तव में युद्ध से पराजित अवस्था में ही निकला। युद्ध में अक्टूबर १९१७ में ऑस्ट्रिया की सेना ने उसे केपोरेटो की लड़ाई में बुरी तरह से परास्त कर दिया था। बाद में अवश्य वह अंग्रेज़ और अमेरिकन सेनाओं से सहायता पाकर विटोरियो वेनेटो की लड़ाई में ऑस्ट्रिया को परास्त कर सका था परन्तु उस समय तक ऑस्ट्रिया मरणासन्न हो चुका था और मरणासन्न शत्रु पर प्राप्त की हुई विजय इटली वालों के मस्तिष्क से केपोरेटो की पराजय की स्मृति को मिटा नहीं सकी थी। अतः इटली में कोई विजयजन्य उत्साह नहीं था। इसके साथ ही परास्त शत्रुओं के प्रदेशों की लूट के विभाजन-सम्बन्धी सौदे में वह स्वयं मित्र-राष्ट्रों से भी परास्त हुआ और लूट का जितना भाग वह चाहता था वह प्राप्त न कर सका। २६ अप्रैल १९१५ की लन्दन की सन्धि के अनुसार उसे मित्र-राष्ट्रों ने ट्रेन्टिनो, ब्रेनर के दर्रे तक टिरोल प्रदेश, ट्रीस्ट, इस्ट्रिया, फ्यूम को छोड़ कर शेष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डेल्मेशियन तट, अल्बेनिया का कुछ भाग तथा टर्की और जर्मनी के साम्राज्यों में से भी कुछ प्रदेश देने का वचन दिया था।* युद्ध की समाप्ति के बाद पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में प्रधान मन्त्री ऑर्लेण्डो ने अपना दावा पेश किया परन्तु प्रेसिडेण्ट विल्सन ने लण्डन की सन्धि को अस्वीकार कर दिया। इटली को दक्षिणी टिरोल, ट्रेण्टिनो तथा डेल्मेशिया के तट के कुछ भाग के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला और उसका बाल्कन प्रायद्वीप तथा अफ्रीका में प्रादेशिक विस्तार का स्वप्न भंग हो गया।

निराशा और दुर्दशा—

इटली वालों को इस व्यवहार से बड़ी निराशा हुई और वे समझने लगे कि मित्र-राष्ट्रों ने काम निकल जाने के बाद उनके साथ धोखा किया है। देशभक्तों तथा राष्ट्रवादियों ने इस राष्ट्रीय अपमान के लिए अपनी कमज़ोर सरकार को जिम्मेदार ठहराया जो न तो अपनी सेना को शक्तिशाली बना सकी थी और न शान्ति-सम्मेलन में इटली के दावे पर काफी जोर ही दे सकी थी। युद्ध के कारण इटली की आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी। उसे अपनी सेना तथा शस्त्रास्त्रों पर बड़ा खर्च करना पड़ा था जिसके फलस्वरूप उस पर कर्ज का भार बहुत बढ़ गया था। युद्ध के बाद दशा और भी बिगड़ गई। सिक्के का मूल्य बड़ी जल्दी-जल्दी गिरने लगा, व्यापार तथा उद्योग अस्तव्यस्त हो गये, जीवन का खर्च बढ़ गया और नगरों तथा गाँवों में भूख और बेकारी बहुत बढ़ गई।† असन्तोषजनक सन्धि के कारण तो राष्ट्र हतोत्साह था ही, आर्थिक संकट ने उसकी दुर्दशा कर दी और देश में सर्वत्र सामाजिक एवं नैतिक अशान्ति की ज्वाला भड़क उठी।

समाजवाद का ज़ोर और अराजकता—

ऐसी स्थिति में क्रान्तिकारियों—समाजवादियों, साम्यवादियों, अराजकतावादियों आदि—को उत्पात मचाने का और अपने आदर्शों के प्रचार का मौका मिला। इटली में बहुत पहले से समाजवादियों का एक दल—सोश्यल डेमॉक्रेटिक दल—था जो मार्क्स के विकासवादी विचारों का अनुयायी था परन्तु उनमें कुछ वामपक्षीय सिण्डिकेलिस्ट लोग भी थे जो विकासवादी वैधानिक ढंग की अपेक्षा सीधी कार्यवाही को पसन्द करते थे। उनके विचार रूस के बॉल्शेविकों से मिलते-जुलते थे। उनके सामने रूस का उदाहरण

* Jackson : The Between-War World, p. 76.
† Schevill : A History of Europe, p. 775.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मौजूद था। उन दिनों रूस से साम्यवाद का प्रचार भी जोरों से हो रहा था और साम्यवाद की लहर रूस से आरम्भ होकर मध्य-योरोप में सर्वत्र बढ़ रही थी। इटली पर भी उसका प्रभाव पड़ रहा था और मध्यम वर्ग के बेकार लोग तथा कारखानों के बेकार मजदूर लोग अधिकाधिक उसके प्रभाव में आने लगे। पार्लामेंट के नवम्बर १९१९ के सामान्य निर्वाचन में समाजवादियों को काफी सफलता मिली और उन्हें लोक सभा में ५७४ में से १५६ स्थान प्राप्त हुए। लोक-सभा के अन्दर वे वर्तमान सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करते थे और उसके बाहर वे अनेक प्रकार से उत्पात्त मचाने लगे।* उन्होंने कारखानों के मज़दूरों को भड़काना, जगह-जगह हड़तालें कराना और कारखानों में तोड़-फोड़ के विनाशकारी काम करवाना शुरू किया। रेलवे, डाकखानों आदि में हड़तालें होने लगी। कई जगह मजदूरों ने अपने मालिकों से कारखाने छीन कर उन पर अपना अधिकार कर लिया। समाजवादी लोग किसानों में भी घुस गये और उन्हें ज़मीदारों से भूमि छीन लेने के लिए भड़काने लगे।

राष्ट्र-वादियों को असन्तोष—

एक ओर तो इस प्रकार वामपक्षीय लोग देश में अराजकता फैला रहे थे। दूसरी ओर अनेक प्रकार के देशभक्त और राष्ट्रीय विचारों के लोग भी सरकार से नाराज़ थे। वे उसकी निन्दा करते थे और उसे परेशान करते थे। अपने आपको राष्ट्रीय कहने वाले कुछ सशस्त्र लोगों ने सैनिक-कवि-दानन्ज़ियो (D' Aununzio) के नेतृत्व में शान्ति-सम्मेलन की व्यवस्था तथा स्वयं इटली की सरकार की अवहेलना करके फ्यूम पर अधिकार कर लिया और वहाँ अपनी स्वतन्त्र सरकार स्थापित कर ली।† ऐसी स्थिति में अनेक प्रकार के गुण्डों, बदमाशों, आतंकवादियों आदि का भी उत्पात बढ़ा और देश भर में अव्यवस्था छा गई।

सरकार की अकर्मण्यता—

इस तरह इटली की बड़ी दुर्दशा हो रही थी, राष्ट्र अन्यायपूर्ण सन्धि से खिन्न था, देश में गृह कलह मच रहा था, आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी, कृषि, उद्योग-धन्धे तथा व्यवसाय अस्तव्यस्त हो गये थे, बेकारी बढ़ रही थी, और देश बड़ी तेजी से पूर्ण अराजकता की ओर बढ़ता चला जा रहा था।

---

*Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II. p. 687.

§Jackson : The Between-War World, p. 77.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह सब तो हो रहा था परन्तु सरकार चुपचाप बैठी हुई थी और इस अराजकता के दमन के लिए कुछ नहीं कर पा रही थी। सरकार की निर्बलता का मुख्य कारण आनुपातिक निर्वाचन-पद्धति थी जिसके परिणामस्वरूप लोक-सभा में अनेक राजनीतिक दल थे जिनके नेता देश की समस्याओं के समाधान के लिए प्रयत्न करने की जगह मिश्रित मंत्रि-मण्डल बनाने और सत्ता अपने हाथों में बनाये रखने में ही अपनी शक्ति खर्च करते रहते थे।* वैसे से तो लोक सभा में वैधानिक दलों का ही प्राधान्य था। १९१९ के निर्वाचन में नरम विचार वाले उदारवादियों का सामान्य बहुमत था। उनका नेता जियालिटी (Giolitti) था। दूसरा दल सोश्यल डेमॉक्रेट लोगों का था जिनका नेता बोनोमी (Bonomi) था। उन्हीं दिनों में एक नया केथोलिक पॉपुलर दल बन गया था जिनका नेता एक पादरी स्टर्ज़ो (Sturzo) था। ये सभी लोग प्रजातन्त्र के भक्त, वैधानिक पद्धति के अनुयायी और शांतिवादी थे।† परन्तु वे आतंकवादियों के सामने अशक्त थे। वे आपस में एक नहीं हो सकते थे। इसके अतिरिक्त वे उपद्रवकारियों के विरुद्ध कड़ा कदम कुछ तो इस कारण नहीं उठा सकते थे कि उन्हें निर्वाचन में मतों की हानि का भय था और कुछ इस कारण कि वे यही अच्छा समझते थे कि क्रान्तिकारी अग्नि को जल कर अपने आप ही बुझ लेने दिया जाय।§ कारण कुछ भी रहा हो, परन्तु सरकार बिलकुल अकर्मण्य बनी रही और स्थिति बिगड़ती ही चली गई।

राष्ट्रवादियों का व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न—

ऐसी परिस्थिति में ज़मीदार वर्ग, धनिक वर्ग, विश्वविद्यालयों के लोग, व्यावसायिक वर्ग, नवयुवक वर्ग, भूतपूर्व सैनिक वर्ग आदि अनेक वर्गों के लोग अपने देश का इस प्रकार विनाश होते हुये देखकर चिन्तित हुये और अपनी परम्परागत संस्थाओं की रक्षा के लिये आगे बढ़े। वे चाहते थे कि इस अकर्मण्य, भ्रष्ट सरकार के स्थान पर ऐसी सरकार स्थापित हो जो सुदृढ़ एवं देशभक्त हो और देश को पतन के गर्त में से निकाल कर उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ा सके।‡ लोग अनेक राजनीतिक दलों के थे परन्तु समिष्टरूप से वे राष्ट्रवादी कहे जा सकते हैं। इन लोगों ने अपने विरोधियों का मुकाबला करने के लिये स्थान-स्थान पर संगठन करना आरम्भ किया। ये संगठन फ़ेसियो (Fascio)

*Strong : Dynamic Europe, p. 329.
†Jackson : The Between-War World, p. 77.
‡Slosson : Europe since 1870, p. 645.
§Langsam : The World Since 1914, p. 335.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहलाते थे। यह आन्दोलन आरम्भ में संगठित नहीं था परन्तु शीघ्र ही उसे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति का नेतृत्व मिल गया जिसने उसे संगठित करके एक अदम्य शक्ति का रूप दे दिया * और उसकी सहायता से राष्ट्रवादियों की आकांक्षा की पूर्ति की।‡ यह व्यक्ति था मुसोलिनी।

बेनिटो मुसोलिनी—

मुसोलिनी का जन्म रोमान्या के एक ग्राम में १८८३ में हुआ था। उसका पिता लुहार था और उसके विचार उग्र क्रान्तिवादी थे। इस प्रकार मुसोलिनी बचपन से ही क्रान्तिवादी विचारों के प्रभाव में आ गया था। उसकी माता अध्यापिका थी। वह उसकी सलाह से नॉर्मल स्कूल में भरती हो गया और वहाँ शिक्षा प्राप्त करके एक प्रारंभिक स्कूल में शिक्षक हो गया। इसी समय उसने सोश्यल डेमोक्रेटिक दल के सिण्डिकेलिस्ट पक्ष से अपना सम्बन्ध जोड़ कर यूनियनों की स्थापना करना तथा हड़तालों को प्रोत्साहित करने का काम शुरू किया। उन दिनों सरकार ने अनिवार्य सैनिक सेवा का नियम बना दिया था जिससे बचने के लिये वह इटली छोड़कर स्विट्जरलैण्ड चला गया।$ जहाँ वह कारीगर का काम करते हुए मजदूर-संघों की स्थापना में लगा रहा

---

* Schevill : A History of Europe, p. 776.

‡ इटली की युद्धोत्तर स्थिति के विषय में बड़ा मतभेद है। साधारणतया यही माना जाता रहा है कि महायुद्ध के बाद के तीन-चार वर्षों में इटली में अराजकता छा गई थी। किंतु एक इटालियन इतिहासकार साल्वेमिनी (Salvemini) ने इस मत का खंडन किया है और बतलाया है कि इटली में भी अन्य देशों की तरह गड़बड़ फैली, हड़तालें हुईं और दंगे हुए परन्तु देश की आर्थिक व्यवस्था किसी भी समय छिन्न-भिन्न नहीं हुई। १९१९-१९२२ में सम्मिलित पूँजी वाली कम्पनियों की संख्या और उनकी पूँजी में वृद्धि हुई। बैंकों में अधिक रुपया जमा हुआ और सरकार की आमदनी बढ़ी। १९२१ के अन्त में एक इटालियन अर्थशास्त्री ने लिखा कि 'इटली की दशा में वास्तविक सुधार हुआ है ·····कृषि अपनी सामान्य दशा में पहुँच गई है, मज़दूरों में स्थिरता एवं निपुणता बढ़ गई है और विदेशी व्यापार भी बढ़ गया है।' इटली की आर्थिक दशा की उन्नति का एक स्पष्ट प्रमाण यह मिलता है कि उन दिनों अमेरिका और इंगलैंड के साहूकार उसे ऋण देने के लिये उत्सुक थे। स्वयं मुसोलिनी ने दिसम्बर १९२० में अपने समाचारपत्र में मजदूरों की मनोवृत्ति में बड़ा परिवर्तन हो जाने की चर्चा की और जुलाई १९२१ में लिखा कि 'बॉल्शेविज़्म परास्त हो चुका है। अब बॉल्शेविक भय की बात करना यथार्थता का उपहास करना है।' इन बातों को देख कर यह कहना ग़लत होगा कि महायुद्ध के बाद इटली की आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। Lipson: Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 415.

$ Schevill : A History of Europe, p. 776.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और बाद में एक समाजवादी समाचारपत्र का सम्पादन करने लगा। परन्तु क्रांतिकारी विचारों के कारण वह वहाँ अधिक दिनों तक न रह सका। सरकार की आज्ञा से उसे स्विट्ज़रलैण्ड छोड़ना पड़ा और वह इटली वापस लौट आया। इस समय उसकी अवस्था २३ वर्ष की थी। इटली में वापस आने पर भी उसने अपने क्रान्तिकारी काम जारी रखे जिसके लिये उसे १९०८ में कारावास का दण्ड मिला। कारागार से मुक्त होकर वह ट्रेण्ट चला गया। वहाँ वह साम्यवादी विचारों के प्रचार के साथ ट्रेण्ट को इटली में शामिल कराने का आन्दोलन करने लगा। यह देखकर ऑस्ट्रिया की सरकार ने उसे वहाँ से निकाल दिया।* वह फिर इटली लौट आया और पत्रकार का काम करने लगा। १९१२ में वह इटली के प्रधान समाजवादी पत्र 'अवन्टी' (Avanti) का सम्पादक बन गया।

जब १९१४ में महायुद्ध छिड़ा तो मुसोलिनी बिलकुल बदल गया। युद्ध में इटली के सम्मिलित होने के प्रश्न पर समाजवादियों में मतभेद था। अधिकांश समाजवादी नहीं चाहते थे कि इटली युद्ध में शामिल हो। पहले मुसोलिनी भी युद्ध के विरुद्ध था और १९११ में ट्रिपोली के युद्ध का विरोध करने के कारण उसे कारावास का दण्ड भुगतना पड़ा था। परन्तु अब वह उग्र देशभक्त हो गया और इस बात पर जोर देने लगा कि इटली को मित्रराष्ट्रों का पक्ष लेकर युद्ध में शामिल होना चाहिये। वह कहता था कि युद्ध में शामिल होकर इटली ऑस्ट्रिया से अपने प्रदेश जीतकर अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकेगा और इसके साथ ही साम्यवादी व्यवस्था को भी स्थापित कर सकेगा। इन विचारों के कारण उसे समाजवादी पत्र से सम्बन्ध छोड़ना पड़ा। अब उसने एक नया समाचारपत्र (Popolo d'Italia) निकाल कर अपने विचारों का प्रचार शुरू किया।† वह कहता था कि यह युद्ध जनता का अपना युद्ध है। यही भविष्य में एक क्रान्ति के रूप में परिवर्तित हो जायगा। इटली को युद्ध में सम्मिलित होना चाहिये और मज़दूरों तथा सर्वसाधारण जनता को उसमें उत्साहपूर्वक भाग लेना चाहिये।

जब १९१५ में इटली युद्ध में शामिल हुआ तो वह स्वयं एक साधारण सैनिक की भाँति सैना में भरती हो गया। वह युद्ध में गया और खाइयों में लड़ता रहा परन्तु १९१७ में घायल हो जाने पर उसे वापस लौटना पड़ा। युद्ध

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 688.

† ऐसा कहा जाता था कि मुसोलिनी को इस पत्र के चलाने में फ्रान्स से सहायता मिली थी। Jackson : The Between-War World, p. 79.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से वापस आने पर उसने फिर अपने पत्र का सम्पादन आरम्भ कर दिया। उस समय तक रूस में बॉल्शेविक क्रान्ति हो चुकी थी और इटली के साम्यवादी उससे प्रोत्साहित होकर अपने देश में भी क्रान्ति की बात करने लगे थे। मुसोलिनी ने अपने पत्र द्वारा साम्यवादी व्यवस्था को इटली के राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध बतला कर उनका विरोध शुरू किया।

युद्ध की समाप्ति पर शान्ति-सम्मेलन में इटली के साथ जो व्यवहार हुआ और देश के अन्दर जो अव्यवस्था फैली उसे देखकर वह बड़ा क्षुब्ध हुआ और स्वयं आगे बढ़कर कुछ करने के लिए तैयार हो गया। उसने देश में यत्र-तत्र स्थापित .फेसिस्ट गुटों का सगठन शुरू किया और स्वयं-सेवक सैनिक दलों (Fasci di Combattimento) का निर्माण करके आन्दोलन को सैनिक रूप दिया। इन दलों के सैनिकों की एक खास पोशाक (काली कमीज़) थी। वे शस्त्र से सुसज्जित होकर सैनिक क़वायद करते थे, उनका अपना झण्डा था और उन्हें कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था। स्वयं मुसोलिनी उनका प्रधान कमाण्डर (Duce) था। वह बड़ा प्रभावशाली वक्ता था और राष्ट्रीय जोश से भरे हुए उसके भाषणों से समाज के अनेक वर्गों के लोग, मुख्यकर सेना से अवकाश प्राप्त किए हुए सैनिक तथा विद्यार्थी, प्रभावित होकर उसके संगठन में शामिल होने लगे। वह कहता था कि .फेसिस्ट लोग ही देश को सभी बॉल्शेविज़्म के खतरों से रक्षा कर रहे हैं और केवल वे ही देश के अन्दर सुरक्षा स्थापित कर सकते हैं, समृद्धि को वापस ला सकते हैं और उसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्रदान कर सकते हैं। १९१९ में मिलान में उसने अपने दल का विधिवत् संगठन किया और अपने कार्यक्रम में कई बातें, कुछ समाजवादी और कुछ राष्ट्रवादी, शामिल कीं—आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली, दिन में काम के अधिक से अधिक आठ घंटे नियत करना, धनिकों पर भारी कर लगाना, चर्च की कुछ सम्पत्ति को ज़ब्त करना, सीनेट को तोड़ना, नये विधान के निर्माण के लिये विधान सभा आमंत्रित करना, शस्त्रास्त्र बनाने वाले कारखानों का राष्ट्रीयकरण, आर्थिक कौंसिलों का निर्माण करना जिन्हें कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो, कुछ उद्योगों पर मज़दूरों का नियन्त्रण स्थापित करना और .फ्यूम तथा डेल्मेशिया को इटली में शामिल करना आदि।* कुछ ही समय में यह आन्दोलन देश भर में फैल गया। गाँव-गाँव में और नगर-नगर में .फेसिस्ट दल की शाखायें और सैनिक टुकड़ियाँ बन गईं। १९१९ में .फेसिस्ट क्लबों (.फेसियो) की कुल संख्या २२ और उनके सदस्यों की संख्या १७,०००

* Langsam : The World since 1914, p. 337.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९२० में क्लबों की संख्या ११८ तथा सदस्यों की संख्या ३०,००० हो गई और १९२१ तक क्लबों की संख्या २,००० के ऊपर पहुँच गई थी जिनके सदस्यों की संख्या ३ लाख से ऊपर थी।*

इन टुकड़ियों की सहायता से मुसोलिनी ने समाजवादियों तथा साम्यवादियों का जो उसके विरोधी थे, दमन आरम्भ किया। उनकी सभाओं पर आक्रमण होने लगे और मारपीट होने लगी। धीरे धीरे उन्होंने उन्हें नगरों तथा ग्रामों के शासनतन्त्र से निकाल दिया और उनकी पार्टी के दफ्तरों पर ज़बरदस्ती अधिकार कर लिया। उन्होंने कानून द्वारा स्थापित मजदूर-संघों पर भी, जो क्रान्तिकारी आन्दोलनों के प्रधान अड्डे थे, वार किया। वे या तो तोड़ दिये गये या उन्हें .फेसिस्ट बना लिया गया।‡ १९२२ के मध्य तक .फेसिस्ट दल समस्त इटली में सर्व शक्तिशाली हो गया। सरकार यह सब देख रही थी परन्तु उसके विरुद्ध कुछ नहीं कर रही थी। सम्भवतः उसे मुसोलिनी के दल की ओर से कोई भय नहीं मालूम होता था क्योंकि मई १९२१ के चुनाव में लोक-सभा के लिए कुल ३३ .फेसिस्ट सदस्य चुने गये थे।$ अथवा वह अशक्त थी या शायद समझती थी कि .फेसिस्ट लोग साम्यवादियों का दमन करने में सरकार का ही काम कर रहे हैं।† परन्तु यह उसकी भूल थी। उसने उनकी उपेक्षा की, उन्हें कानून अपने हाथों में ले लेने दिया और इस प्रकार स्वयं अपने ही पैरों पर कुठाराघात कर लिया। मुसोलिनी ने क्रान्तिकारियों के दमन द्वारा सरकार का काम करके अन्त में सरकार का काम तमाम कर दिया।

'रोम पर चढ़ाई'—मुसोलिनी प्रधान मन्त्री के पद पर—

सरकार की शिथिलता और अकर्मण्यता को देखकर मुसोलिनी ने आगे बढ़ने का संकल्प किया। उसने राष्ट्रवादियों को आश्वासन देने के लिए घोषणा की कि मैं राजसत्तावादी हूँ और अपने राष्ट्र की साम्यवादियों से रक्षा

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 419.

‡ Schevill : A History of Europe, p. 777.

† Jackson : The Between-War World, p. 77. इस समय तक फेसिस्ट लोगों में एकता नहीं थी और न उनमें कोई अनुशासन ही था। देश भर में .फेसिस्ट लोग अपनी मनमानी करते थे। यह देखकर मुसोलिनी ने दल का नेतृत्व छोड़ दिया था परन्तु १९२१ के अन्त में दलीय कांग्रेस ने उसके आदेशों के पालन का वचन दिया और उसने फिर उसका नेतृत्व करना स्वीकार कर लिया।

Langsam : The World since 1914, p. 337.

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Preservation Foundation, Chandigarh

करना चाहता हूँ। जब अगस्त १९२२ में साम्यवादियों ने अन्तिम प्रयत्न किया तो फेसिस्ट टुकड़ियों ने उन्हें बुरी तरह से मार कर भगा दिया। अक्टूबर १९२२ में नेपिल्स में फेसिस्ट दल का सम्मेलन हुआ जिसमें शस्त्रास्त्र से सुसज्जित और अपनी विशिष्ट पोशाक में कोई ४०,००० फेसिस्ट स्वयं-सेवक सैनिक एकत्र हुए। सम्मेलन के खुले अधिवेशन में मुसोलिनी ने घोषणा की कि 'या तो शासन हमारे हाथों में सौंप दिया जायगा या हमें रोम पर चढ़ाई करनी पड़ेगी।'* चढ़ाई के लिये २७ अक्टूबर का दिन, जो विटोरियों वेनेटो की लड़ाई की तिथि थी, नियत किया गया और फेसिस्ट टुकड़ियाँ रोम की ओर चल पड़ीं। फेसिस्टों ने देश के प्रमुख नगरों के रेलवे स्टेशनों, पोस्ट तथा टेलिग्राफ ऑफिसों, केन्द्रीय टेलिफ़ोन स्टेशनों तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार कर लिया। सरकार ने राजा से देश भर में फौज़ी कानून जारी करने की प्रार्थना की। परन्तु मुसोलिनी गणतंत्र का परित्याग करके अपने आप को राजसत्तावादी घोषित कर चुका था और राजा समझता था कि शासन में सम्मिलित होकर मुसोलिनी कानून और व्यवस्था का प्रधान स्तम्भ बन जायगा।† यह सोचकर वह राज़ी नहीं हुआ। जब नियत दिन निकट आया तो मुसोलिनी ने अपने दो कर्मचारियों को राजा विक्टर इमेन्युएल के पास भेजकर सत्ता अपने हाथों में सौंप देने की माँग की। प्रधान मन्त्री ने त्यागपत्र दे दिया और जब फेसिस्टों ने अपने नेता को छोड़ अन्य किसी के भी अधीन मन्त्रिमंडल में शामिल होने से इन्कार कर दिया तो राजा के सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित हुई।$ इसी बीच में ५०,००० फेसिस्ट स्वयंसेवक सैनिकों ने रोम में प्रवेश करके उस पर अधिकार कर लिया था। ऐसी स्थिति में सरकार और फेसिस्टों के बीच युद्ध छिड़ जाने की संभावना दिखाई देने लगी और उसके सामने मुसोलिनी को अपना प्रधान मन्त्री बनाने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं रहा। उसे मुसोलिनी को नया मन्त्रिमडल बनाने को आमन्त्रित करना पड़ा। ३० अक्टूबर १९२२ को मुसोलिनी ने रोम पहुँचकर फेसिस्टों और अन्य दलों के सदस्यों को सम्मिलित करके अपना मन्त्रिमडल बनाया। यह घटना 'रोम पर चढ़ाई' के नाम से प्रसिद्ध है, हालाँकि मुसोलिनी रेल में सोता हुआ रोम पहुँचा था। मुसोलिनी की आकांक्षा पूरी हुई। २ नवम्बर को उसकी स्वयंसेवक सेना रोम छोड़ कर चुपचाप चली गई।

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe. Vol. II, p. 690.

† Slosson : Europe since 1870, p. 649.

$ Jackson : The Between-War World, p. 78.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फेसिस्ट राजनीतिक क्रान्ति–राजनीतिक उदारवाद (प्रजातन्त्र) की हत्या-

मुसोलिनी ने प्रधान मन्त्री बनते ही राज्य की समस्त सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम उसने पार्लामेण्ट को धमका कर एक वर्ष के लिये उसके सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथों में ले लिये और शासन में से समस्त विरोधियों को निकाल कर प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थानों पर अपने आदमी नियुक्त कर दिये। तब उसने पार्लामेण्ट से एक नया निर्वाचन-कानून पास करवाया (नवम्बर १९२३) जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि सामान्य निर्वाचन में जिस किसी दल को सबसे अधिक मत प्राप्त हों उसे लोक-सभा में दो तिहाई स्थान मिलें और शेष एक तिहाई स्थान बाकी दलों में प्राप्त मतों के अनुपात में बाँट दिये जाँय।* इस कानून के अनुसार अप्रेल १९२४ में सामान्य निर्वाचन हुआ। तब तक फेसिस्ट दल की शक्ति देश में बहुत बढ़ चुकी थी। उसे निर्वाचन में ६५ प्रतिशत मत प्राप्त हुए और लोक-सभा में इसका बहुमत होगया। विरोधी दलों ने सरकार पर निर्वाचन में अनुचित रूप से हस्तक्षेप करने और निर्वाचन-कानून को कई प्रकार से भंग करने का दोष लगाया और सोश्यलिस्ट नेता मेटिओटी (Matteotti) ने पार्लामेण्ट के प्रथम अधिवेशन में चुनाव को रद्द करके नये चुनाव कराने की माँग की। परन्तु इस विरोध का कोई परिणाम नहीं निकला और तीन दिन बाद फेसिस्टों ने मेटिओटी को उड़ाकर उसकी हत्या कर दी। इसके बाद मुसोलिनी का रुख और भी कड़ा हो गया और उसने समस्त विरोधियों को निर्मूल करने का बीड़ा उठाया। फेसिस्ट कानूनों की बाढ़ आगई। आर्थिक माँगों की पूर्ति के लिए हड़ताल करने का निषेध हो गया, समाचारपत्रों पर कठोर नियन्त्रण लगा दिया गया और सरकार को यह अधिकार मिल गया कि राजद्रोही व्यक्तियों को (अर्थात् सरकार के विरोधियों को) मनमाने ढंग से गिरफ्तार करके अनिश्चित काल के लिए कारागार में बन्द कर दे। इन कानूनों के परिणामस्वरूप अनेक विरोधी नेता गिरफ्तार करके जेलों में ठूँस दिये गये और बहुतसों ने देश छोड़कर अपने प्राण बचाये। अनेक समाचारपत्र बन्द हो गये। एक दूसरे कानून के द्वारा उसने स्थानीय अधिकारियों की स्वतन्त्र चुनाव द्वारा नियुक्ति बन्द कर दी। अब उनकी नियुक्तियाँ सीधे सरकार द्वारा होने लगीं जिससे उन पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। इसके साथ ही फेसिस्ट दल को छोड़कर अन्य समस्त राजनैतिक दल तोड़ दिये गये।† न्यायालयों में जूरी-पद्धति तोड़

*Langsam : The World Since 1914, p. 339.
†Schevill : A History of Europe, p. 778.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दी गई और राजनीतिक अपराधियों पर मुकद्दमा चलाने के लिये विशेष न्यायालय स्थापित किये गये। शिक्षा-संस्थाओं की स्वतन्त्रता छीन ली गई और प्रत्येक शिक्षालय में फ़ेसिज़्म के उदय, लक्ष्य तथा उसकी संस्थाओं की अधिकृत पाठ्य-पुस्तक पढ़ाना अनिवार्य होगया।* इस प्रकार प्रशासन पर उसने अपना पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया और समस्त विरोधियों का दमन करके महान् नेपोलियन के समान अपना एकछत्र शासन स्थापित कर लिया। पार्लामेण्ट में फेसिस्ट दल का बहुमत था ही परन्तु अब भी उसमें अन्य दलों के सदस्य थे। उसे यह बात भी असह्य थी। अतः १९२८ में उसने एक नया निर्वाचन क़ानून बनाया जिसके अनुसार लोक-सभा के समस्त सदस्यों की सूची फ़ेसिस्ट दल द्वारा तैयार की जाने लगी और मतदाताओं को केवल इतना ही अधिकार रह गया कि इस सूची के पक्ष में या विपक्ष में मत दे सकें।‡ इस क़ानून के अनुसार १९२८ में नया निर्वाचन हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप लोक-सभा पूर्णतया फेसिस्ट होगई। अब लोक-सभा पूरी तरह से उसकी आज्ञा-कारिणी सभा बन गई और उसके लिये किसी प्रकार का भी क़ानून इशारे मात्र पर पास कराना सरल हो गया।

मुसोलिनी का अधिनायकतन्त्र—

इस प्रकार मुसोलिनी ने पार्लामेण्ट को कठपुतली मात्र बनाकर और गाँव से लेकर प्रान्त तक और प्रान्त से लेकर राजधानी तक शासनतन्त्र के समस्त सूत्र अपने हाथ में लेकर अपना अधिनायकतन्त्र स्थापित कर लिया और इटली में जनतन्त्र शासन का अन्त हो गया। नाम मात्र के लिये अब भी वहाँ वैधानिक शासन था। राजा शासन का वैधानिक प्रमुख था। मुसोलिनी प्रधान मन्त्री था और लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी था तथा लोक-सभा एक निर्वाचित सभा थी। परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, सारी सत्ता मुसोलिनी के हाथों में केन्द्रित थी और १९२५ के एक क़ानून के अनुसार उसे अनिश्चित काल के लिए प्रधान मन्त्री बनाये रखना राजा का कर्तव्य था।§ इस प्रकार इटली में मुसोलिनी का पूर्ण अधिनायकतन्त्र स्थापित हो गया।

फ़ेसिस्ट दल का नया संगठन—

मुसोलिनी ने अपने दल तथा अपनी स्वयंसेवक सेना के बल पर सत्ता

---

* Strong : Dynamic Europe, p. 332.
‡ Jackson : The Between-War World, p. 81.
§ Strong : Dynamic Europe, p. 332.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हस्तगत की थी और वह समझता था कि इसी आधार पर वह सत्तारूढ़ रह सकता था। अतः उसने अपने दल का १९२६ में नया संगठन किया और उसका राज्य से अभेद स्थापित कर दिया। समस्त स्थानीय तथा प्रान्तीय शाखाओं का परस्पर तथा केन्द्रीय संगठन से सम्बन्ध स्थापित किया गया। स्थानीय शाखाएँ प्रान्तीय शाखाओं के आधीन कर दी गईं और समस्त प्रान्तीय शाखाएँ केन्द्रीय संस्था के आधीन कर दी गईं। इस समस्त संगठन में सबसे ऊपर एक कौंसिल—.फेसिस्ट ग्राण्ड कौंसिल (Fascist Grand Council)—थी जिसमें दल के प्रमुख २५ सदस्य होते थे और उसका स्थायी अध्यक्ष स्वयं मुसोलिनी था। इस प्रकार मुसोलिनी के .फेसिस्ट दल तथा प्रशासन दोनों ही के अध्यक्ष होने से शासन और दल दोनों का अभेद स्थापित हो गया।* इतना ही नहीं .फेसिस्ट ग्राण्ड कौंसिल का सम्बन्ध १९२६ के एक .कानून के अनुसार विधान से जोड़ कर उसे वैधानिक स्थिति भी प्रदान की गई। इस .कानून से यह कौंसिल '१९२२ की क्रान्ति से उत्पन्न शासनतंत्र के समस्त कार्यों को एक सूत्र में ग्रन्थित करने वाली सर्वोच्च संस्था' बन गई। उस क़ानून में इस बात का भी निर्देश किया गया कि मन्त्रि परिषद् के सदस्य अपने मन्त्रिपद के कारण ग्राण्ड कौंसिल के भी सदस्य होंगे। इस प्रकार मंत्रिपरिषद् और ग्राण्ड कौंसिल में वैधानिक दृष्टि से भी अभेद स्थापित हो गया।† और रूस की तरह इटली में भी .फेसिस्ट दल का एकदलीय एकछत्र राज्य स्थापित हो गया।

.फेसिस्ट शिक्षा—

नवीन संगठन के साथ-साथ उसने .फेसिस्ट दल के सदस्यों की संख्या बढ़ाने की ओर भी ध्यान दिया और इस बात की भी व्यवस्था की कि दल में केवल उपयुक्त व्यक्ति ही सदस्य बन सकें। .फेसिस्ट दल का वही व्यक्ति सदस्य बन सकता था जो उसके प्रति अपनी भक्ति और निष्ठा का पूरी तरह से प्रमाण दे सकता था। प्रार्थनापत्रों पर बड़े ध्यानपूर्वक विचार किया जाता था और बड़ी छान-बीन के बाद ही कोई सदस्य बनाया जाता था। भावी सदस्यों की तैयारी के लिए उसने एक विशाल योजना बनाई जिसके द्वारा राष्ट्र के नवयुवकों में .फेसिस्ट आदर्शों को कूट-कूट कर भरने और उन्हें .फेसिस्ट रंग में रंग देने का प्रयत्न किया गया। प्राथमिक तथा माध्यमिक पाठशालाओं में सामान्य शिक्षा के साथ-साथ .फेसिस्ट शिक्षा भी दी जाने लगी। आठ से चौदह वर्ष तक की

*Schevill : A History of Europe, p. 778.
†Strong : Dynamic Europe, p. 332.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवस्था वाले बालकों के लिये एक प्रकार की बाल-चर संस्था—बलिला (Balilla)—स्थापित की गई। इस संस्था से निकल कर वे एक दूसरी संस्था—अवानगार्डिया (Avanguardia-Advance Guard)—में प्रवेश करते थे जो चौदह से अठारह वर्ष तक की अवस्था वाले बालकों के लिये होती थी। इस संस्था से उत्तीर्ण होकर बालक 'युवक फेसिस्ट' (Giovani Fascisti) नामक दल में प्रवेश करता था। उसमें तीन वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करके वह फेसिस्ट नागरिक सेना (Fascist militia) में भरती होता था। पहले तो कोई भी व्यक्ति, जो अपनी भक्ति और निष्ठा का प्रमाण दे सकता था, दल का सदस्य बन सकता था परंतु इस प्रशिक्षण-पद्धति के पूर्ण रूप से कार्यान्वित होने पर यह नियम बना दिया गया कि इस प्रकार की शिक्षा पाये बिना कोई व्यक्ति फ़ेसिस्ट दल का सदस्य नहीं बन सकेगा। बालिकाओं पर इस सीमा तक सिद्धांत लादने का प्रयत्न नहीं किया गया परंतु उनकी उपेक्षा नहीं की गई। बारह वर्ष से कम आयु वाली लड़कियों के लिये एक संस्था (Piccole Italiani) और बारह वर्ष से अधिक आयुवाली लड़कियों के लिये एक दूसरी संस्था (Giovani Italiani) का निर्माण किया गया जिसमें उपयुक्त शारीरिक व्यायाम द्वारा उनके शरीर को दृढ़ बनाया जाता था, दलीय सिद्धांतों की शिक्षा दी जाती थी और उनमें दलीय एवं राष्ट्रीय भावना का सञ्चार किया जाता था।*

फ़ेसिस्ट क्रान्ति के दो पहलू—

अपने एक भाषण में मुसोलिनी ने १९३३ में कहा था कि 'फ़ेसिज्म ने राजनीतिक उदारवाद का अंत कर दिया है। अब वह आर्थिक उदारवाद का भी अंत करने वाला है।'‡ फ़ेसिस्ट क्रांति के दो पहलू थे—राजनीतिक तथा आर्थिक—और उसका उद्देश्य दोनों क्षेत्रों में उदारवाद को समाप्त कर देना था। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, १९२३ से १९२८ तक उसने अनेक क़ानून बनाकर राजनीतिक उदारवाद (प्रजातन्त्र)को समाप्त कर दिया। इसके साथ ही उसने आर्थिक क्षेत्र में भी अपने ढङ्ग की क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया था जिसका पूर्णरूप १९३३ से आगे राष्ट्रीय सिण्डिकेलिज़्म तथा निगम-राज्य की स्थापना में प्रकट हुआ।

आर्थिक क्रान्ति—राष्ट्रीय सिण्डिकेलिज्म—

मुसोलिनी का राष्ट्रीय सिण्डिकेलिज़्म फ़्रांस के विशुद्ध सिण्डिकेलिज्म से

---

* Schevill : A History of Europe, p. 779-780.

‡ Strong : Dynamic Europe, p. 332.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भिन्न था और राष्ट्रवाद तथा सिण्डिकेलिज़्म का सम्मिश्रण था। सिण्डिकेलिज़्म के इस नवीन रूप का प्रतिपादक एक इटालियन एडमण्डो रोसोनी (Edmondo-Rossini) था जिसने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को, जिसे सिण्डिकेलिस्ट लोग मानते थे, अस्वीकार करके पूँजीपति वर्ग को उत्पादन की व्यवस्था में एक आवश्यक तत्व माना। इसके साथ ही उसका लक्ष्य प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों पर आधारित पार्लामेण्टरी प्रतिनिधित्व के स्थान पर व्यावसायिक वर्गों के आर्थिक निर्वाचक-मण्डलों पर आधारित प्रतिनिधित्व की स्थापना करना था।* सिण्डिकेलिस्ट लोग राज्य विरोधी थे परंतु मुसोलिनी आरम्भ में उग्र सिण्डिकेलिस्ट होते हुए भी बाद में पूर्ण राष्ट्रवादी हो गया था और उद्योग-धंधों को स्वराज्य देने की जगह उन पर राष्ट्रीय नियंत्रण स्थापित करने के पक्ष में था।† उग्र राष्ट्रभक्त होने के पहले वह उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवाद के उस सारभूत सिद्धांत का भक्त था जिसके अनुसार राज्य का अस्तित्व नागरिकों के कल्याण के लिये माना जाता है, व्यक्ति साध्य समझा जाता है और राज्य साधन। परंतु अब उसने इस सिद्धांत को तिलाञ्जलि देकर इसके विपरीत सर्वस्वायत्तवादी (Totalitarian) सिद्धांत को स्वीकार कर लिया था जिसके अनुसार नागरिकों का अस्तित्व राज्य के कल्याण के लिये माना जाता है; राज्य साध्य समझा जाता है और व्यक्ति साधन। स्वयं मुसोलिनी ने राज्य की अपनी सर्वस्वायत्तवादी कल्पना को व्यक्त करते हुए कहा था—'प्रत्येक वस्तु राज्य के अन्तर्गत है, कोई वस्तु उसके बाहर नहीं है और न कोई वस्तु विरुद्ध ही हो सकती है। ·····राज्य जनता की समस्त शक्तियों, आशाओं एवं हितों को उनका रूपांतर करने तथा उन्हें प्रभावशाली बनाने के लिये अपने आप में विलीन कर लेता है।'§ उसकी राज्य की कल्पना सावयव (Organic) थी जिसके अनुसार राज्य के समस्त अङ्गों के लिये उसके मस्तिष्क (सरकार) की अधीनता में राज्य के कल्याण के लिये सहयोग करना अनिवार्य है। आर्थिक क्षेत्र में इस सिद्धांत का तकाज़ा था कि मालिक और मज़दूर लोग वर्ग-संघर्ष के अस्वाभाविक सिद्धान्त को भूल कर परस्पर सहयोग करें जिससे उत्पादन निरंतर होता रहे और राज्य एवं समाज का पोषण रहे।

अपने आर्थिक विचारों को कार्यान्वित करने के लिये उसने अप्रेल १९२६ में एक कानून बनाया जिसके अनुसार मालिकों और मज़दूरों के सिण्डिकेटों की रचना हुई—६ पूँजीपतियों के राष्ट्रीय सिण्डिकेट, ६ मज़दूरों के तथा

* Schevill : A History of Europe, p. 780.
† Strong : Dynamic Europe, p. 333.
§ Strong : Dynamic Europe, p. 332.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक वकीलों, डॉक्टरों आदि व्यावसायिक वर्गों का। प्रत्येक सिण्डिकेट की प्रांतीय तथा स्थानीय शाखाएँ थीं जिनके द्वारा वह राष्ट्रव्यापी बन गया। इन तेरहों सिण्डिकेटों का नियंत्रण करने के एक लिये एक विशेष मंत्री निगम-मंत्री (Minister of Corporations)—की नियुक्ति हुई। स्वयं मुसोलिनी सर्वप्रथम निगम-मंत्री बना। इन निगमों को उत्पादन के दोनों अंगों, मालिकों और मज़दूरों, के बीच सामूहिक इक़रारनामे करने का एकाधिकार मिला। हड़ताल और मिल की तालाबंदी का निषेध कर दिया गया और मालिकों तथा मज़दूरों के झगड़ों के निपटारे के लिये विशेष न्यायालय (Magistracy of labour) नियुक्त किये गये जिनके निर्णय विरुद्ध कोई अपील नहीं हो सकती थी। किसी व्यक्ति पर सिण्डिकेट में सम्मिलित होने के लिये ज़ोर नहीं डाला जाता था परंतु चूँकि मज़दूरों को केवल इन सरकारी सिण्डिकेटों के द्वारा ही संरक्षण प्राप्त हो सकता, यह स्पष्ट ही था कि प्रत्येक मजदूर को सरकारी सिण्डिकेट का सदस्य बनना पड़ता था और ऐसी अवस्था में ग़ैर-सरकारी सिण्डिकेट जीवित नहीं रह सकते थे। अप्रेल १९२७ में मजदूरों के अधिकार-पत्र (Charter of Labour) की घोषणा की गई। रविवार के दिन की छुट्टी रखी गई, प्रत्येक मज़दूर को सवेतन वार्षिक छुट्टी का अधिकार मिला और उनके लिये सामाजिक बीमे की भी व्यवस्था की गई। मजदूरों के मनोरंजन के लिये एक विशेष संस्था (Dopolovaro) बनाई गई जो छुट्टी के दिनों में उनके लिये सस्ते किराये पर सैर करने का आयोजन करती थी और वर्ष भर उनके सांस्कृतिक मनोरंजन की व्यवस्था करती थी।*

इस प्रकार १९२७ तक नई आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की गई और १९२८ में उसका राजनीतिक व्यवस्था के साथ सम्बन्ध भी जोड़ दिया गया। हम ऊपर १९२८ के क़ानून की चर्चा कर चुके हैं जिसके अनुसार लोक-सभा के निर्वाचन की पद्धति बदल दी गई थी और केवल फ़ासिस्ट दल की सूची पर ही मत लिया जाने लगा था। इस क़ानून के अनुसार तेरहों राष्ट्रीय सिण्डिकेटों की सामान्य परिषदें (General Councils) रोम में मिलकर ८०० व्यक्तियों की सूची बनाती थी। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक तथा परोपकारिक संस्थाएँ २०० व्यक्तियों के नाम भेजती थीं। इन १००० नामों में से फ़ासिस्ट ग्राण्ड कौंसिल ४०० व्यक्ति चुन लेती थी और इन्हीं ४०० व्यक्तियों की सूची पर मत लिया जाता था।‡ इस प्रकार लोक-सभा केवल फ़ासिस्ट सिण्डिकेटों की ही प्रतिनिधि-सभा बन गई। १९३३ तक यह व्यवस्था अच्छी तरह कार्य करने

*Schevill : A History of Europe, pp. 780-781.
‡ Langsam : The World since 1914, p. 346.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लगी। अभी तक उसका रूप सिण्डिकल था, अब उसे निगमात्मक(Corporate) रूप दिया गया। समस्त राष्ट्र-व्यापी आर्थिक व्यवस्थाओं के लिये एक-एक निगम (Corporation) की स्थापना की गई जिसमें मालिकों और मजदूरों के बराबर प्रतिनिधि रखे गये। ऐसे २२ निगम स्थापित किये गये—आठ कृषि के लिये, आठ उद्योग-धन्धों तथा वाणिज्य-व्यवसाय के लिये और ६ यातायात, विभिन्न व्यवसाय आदि अन्य सेवाओं के लिये। १९३९ में अन्तिम कदम उठाया गया। लोक-सभा (Chamber of Deputies) समाप्त कर दी गई और उसकी जगह 'फेसियो तथा निगमों की सभा' (Chamber of Fascios and Corporations) की स्थापना की गई। इसमें ६८२ सदस्य रखे गये जिनमें ४५० से कुछ अधिक सदस्य तो निगमों के प्रतिनिधि होते थे जो सामान्यतया सिण्डिकेटों के प्रमुख कर्मचारी होते थे और शेष सदस्य फेसिस्ट दल के प्रधान कर्मचारी होते थे। इस प्रकार सभा के लिये निर्वाचन की प्रथा न रही। सीनेट अब भी रही और सभा के साथ उसका वही पुराना सम्बन्ध रहा परन्तु विधान के अनुसार उसके सदस्यों को नियुक्ति पहले से ही राजा किया करता था और स्पष्ट है कि उसमें केवल फेसिस्टों की ही नियुक्ति होती थी। इस परिवर्तन के फलस्वरूप इटली की धारा-सभा का काम केवल परामर्श देना और मुसोलिनी के प्रस्तावों को स्वीकार करना रह गया।* इस प्रकार मुसोलिनी ने देश की समस्त राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था को फेसिस्ट बना कर राजनीतिक तथा आर्थिक उदारवाद का अन्त करके इटली पर फेसिस्ट दल का अर्थात् अपना पूर्ण अधिनायकतन्त्र स्थापित कर लिया।

गृह्य नीति

नई आर्थिक व्यवस्था की चर्चा करते हुए हम बहुत आगे बढ़ आये हैं। इन्हीं दिनों मुसोलिनी अन्य समस्याओं को हल करने का भी प्रयत्न कर रहा था। उसने शक्ति के आधार पर सत्ता हस्तगत की थी और जनता को बड़ी आशाएँ बधाई थीं। वह जानता था कि सत्ता को अपने हाथ में बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि जनता की आर्थिक कठिनाइयों को दूर किया जाय। उसकी गृह्य नीति का उद्देश्य युद्ध और क्रान्ति के विनाशकारी प्रभावों से देश को मुक्ति देना और उसकी उत्पादन-शक्ति को बढ़ाना था।† जिस समय मुसोलिनी ने सत्ता प्राप्त की थी, उस समय कई वर्षों से राज्य के बजट में बड़ा घाटा चला आ रहा था और मुद्रा का मूल्य गिरता चला जा रहा था।

* Strong : Dynamic Europe, pp. 333-336.
† Schevill : A History of Europe, p. 781.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने राज्य के व्यय में भारी कटौती करके और नये-नये कर लगा कर १९२५ तक बजट को सन्तुलित कर लिया और घाटे की जगह बचत होने लगी। इस सफलता के परिणाम-स्वरूप मुद्रा का गिरता हुआ मूल्य स्थिर हो गया और कुछ बढ़ भी गया। उसने रेलवे की व्यवस्था में सुधार किया। रेलवे प्रणाली वर्षों से बिगड़ रही थी और उसमें भी प्रतिवर्ष बड़ा घाटा होता था। परन्तु कुछ ही वर्षों में रेलवे का घाटा बन्द हो गया और रेलों का ठीक-ठीक संचालन होने लगा। देश की आर्थिक दशा को सुधारना कोई साधारण काम नहीं था। उसमें सबसे बड़ी बाधा प्राकृतिक साधनों के अभाव की थी। इटली एक ग़रीब देश है। उसी भूमि का दो तिहाई भाग पर्वतों से घिरा हुआ और अनुपजाऊ है। खनिज पदार्थों की भी कमी है। कोयला, लोहा, ताँबा, जस्ता, तेल आदि बहुत कम परिमाण में प्राप्त होते हैं। वे भी दूर-दूर हैं और थोड़े परिमाण में मिलते हैं। उन्हें बाहर से मँगाना पड़ता था। वे बड़े मंहगे पड़ते थे और उनके आधार पर स्थिर उद्योग दूसरे देशों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। मुसोलिनी अपने देश को स्वावलम्बी बनाना चाहता था और इसके लिये उसने अपने वैज्ञानिकों तथा इञ्जीनियरों की सहायता से बड़ा भगीरथ प्रयत्न किया जिसमें उसे काफी सफलता प्राप्त हुई। कोयले के अभाव की पूर्ति के लिए आल्प्स तथा एपीनाइन्स पर्वत से निकलने वाले झरनों से जलविद्युत बनाना शुरू किया और कुछ ही वर्षों में इस दिशा में इटली योरोप के अन्य सभी देशों से आगे निकल गया। इस शक्ति की सहायता से कारखानों की उन्नति होने लगी। रेशम तथा नकली रेशम (Rayon) के प्राकृतिक उद्योग ने बड़ी भारी उन्नति की और इटली उनके उत्पादन में अपने प्रतिस्पर्धियों से बहुत आगे बढ़ गया। मशीनें, रेल के इंजिन, मोटर, जहाज़ आदि बनाने के व्यवसायों में भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई परन्तु इसमें राज्य की ओर से सहायता देनी पड़ी। खेती की भी खूब उन्नति की गई। दलदल सुखाये गये, नई भूमि तोड़ी गई, अच्छी खाद का प्रबन्ध किया गया और किसानों को कृषि के नये ढंग सिखलाये गये। इन सब बातों के फलस्वरूप अन्न की उपज बहुत बढ़ गई। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, यह उन्नति इस कारण सम्भव हो सकी कि मुसोलिनी ने आर्थिक उदारवाद का अन्त करके कृषि, उद्योग, राजस्व आदि सब पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित करके एक सुनिश्चित योजना के अनुसार कार्य किया जिसमें उसने कानून के जोर से सभी वर्गों का सहयोग प्राप्त किया। इसी कारण विश्वव्यापी मन्दी के समय में भी इटली को बहुत अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ी। बेकारी मिटाने तथा देशभक्ति को जागृत करने के लिए उसने बड़े-बड़े सार्वजनिक निर्माण-कार्य शुरू किये। सड़कों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कूलों, निवास-गृहों, बाँधों आदि का निर्माण हुआ और बन्दरगाहों की उन्नति की गई। प्राचीन रोमन स्मारकों का पुनरुद्धार किया गया और नये-नये भव्य स्मारकों का निर्माण हुआ। इन उपायों से उसने बेकारों को तो काम पर लगा कर सन्तुष्ट किया ही, इसके साथ ही उसने इटलीवासियों को अपने प्राचीन गौरव की याद दिलाई और अपने राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिये उन्हें प्रेरित किया।

पोप के साथ समझौता

मुसोलिनी के सामने जो अनेक समस्याएँ थीं उसमें एक समस्या पोप की भी थी। इटली के एकीकरण के बाद से ही पोप अपने आपको स्वेच्छा से 'वेटिकन का बन्दी' कहा करता था और उसने इटली की सरकार से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखा था। मुसोलिनी के हृदय में धर्म के प्रति कोई विशेष श्रद्धा नहीं थी परंतु वह धर्म का राजनीतिक मूल्य समझता था। चर्च और राज्य, धार्मिक विश्वास और राजनीतिक कर्तव्य के संघर्ष से राष्ट्र की शक्ति कम होती थी। जिन लोगों ने फ़ेसिस्ट सिद्धांत स्वीकार किये थे वे केथोलिक भी थे, उनके अतिरिक्त लाखों अन्य केथोलिक भी थे। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये तथा चर्च की महान् शक्ति को राज्य के प्रतिकूल होने की जगह अनुकूल बनाने की दृष्टि से उसने पोप ग्यारहवें पायस से अनौपचारिक चर्चा आरम्भ की (१९२६)। पोप भी इस समय तक समझ चुका था कि पुराने झगड़ों को जीवित रखने से कोई लाभ नहीं है। उसे बाहर कहीं से भी सहायता प्राप्त नहीं हुई थी। इसके अतिरिक्त बॉल्शेविकों के दमन से तथा स्कूलों में धार्मिक शिक्षा पुनः जारी कर देने से मुसोलिनी से प्रसन्न भी था। दोनों में संधि चर्चा चलती रही और अन्त में ११ फ़र्वरी १९२९ को पोप के साथ संधि हो गई। इस संधि पर पोप के लेटरन (Lateran) प्रासाद में हस्ताक्षर हुए थे। इस कारण यह संधि लेटरन संधि कही जाती है। इसके अनुसार पोप ने रोम नगर पर अपना अधिकार त्याग कर इटली का अधिकार स्वीकार कर लिया और इसके बदले में इटली ने 'वेटिकन नगर' को पोप की प्रभुता में एक स्वतंत्र राज्य मान लिया। पोप के प्रभुत्व-सम्बन्धी समस्त अधिकार स्वीकार कर लिये गये। अपने प्रादेशिक अधिकार के परित्याग के लिये पोप को इटली की सरकार की ओर से १० करोड़ डॉलर प्रति वर्ष दिया जाना निश्चित हुआ। इटली की सरकार ने केथोलिक धर्म को राज्य का एकमात्र धर्म स्वीकार कर लिया। पादरियों का वेतन राज्य की ओर से पहले से ही दिया जा रहा था। इस दायित्व को सरकार ने पुनः स्वीकार किया। धार्मिक विवाह-संस्कार की क़ानूनी प्रामाणिकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वीकार कर ली गई और प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। प्रधान विषय तथा अन्य विषयों की नियुक्ति पर पोप का अधिकार रहा परन्तु इस शर्त पर कि नियुक्त व्यक्ति फ़ेसिस्ट सरकार का सक्रिय विरोधी न हो।❀

इस समझौते से पोप और राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध सुधर गये परन्तु शीघ्र ही युवकों की शिक्षा के प्रश्न पर दोनों में मतभेद हो गया। केथोलिकों की बालचर संस्थाएँ थीं। मुसोलिनी ने उन्हें 'बलिला' में विलीन कर लिया। चौदह वर्ष की अवस्था में प्रत्येक बालक को अपने 'नेता' (Duce)—मुसोलिनी—के प्रति भक्ति की और उसके आदेशों का आँख मींचकर पालन करने की शपथ लेनी पड़ती थी। पोप ने इस शपथ का विरोध किया। इस पर मुसोलिनी ने बालकों, बालिकाओं तथा प्रौढ़ों के लिये चर्च द्वारा संचालित समस्त मनोरजन संस्थाएँ बन्द कर दीं और इस प्रकार चर्च के शैक्षणिक प्रभाव का अन्त कर दिया। महीनों तक यह झगड़ा चलता रहा अन्त में १९३१ में दोनों में फिर समझौता हुआ। मुसोलिनी ने चर्च की संस्थाओं का धार्मिक शिक्षा देने का अधिकार स्वीकार कर लिया परन्तु मनोरंजन-संस्थाओं पर सरकार का ही अधिकार रहा।†

परराष्ट्र-नीति

महायुद्ध में इटली की सेनाओं ने कोई विशिष्ट वीरता प्रदर्शित नहीं की थी। इटली वाले अपनी सैनिक निर्बलता को समझते थे और उनमें एक प्रकार का हीन-भाव उत्पन्न होगया था। महायुद्ध के उपरान्त पेरिस के शांति-सम्मेलन में भी इटली के साथ उपेक्षा का बर्ताव हुआ था और इटली वाले समझते थे कि इसका कारण उनकी दुर्बलता ही थी। मुसोलिनी ने जिस समय सत्ता अपने हाथों में ली उस समय इटली में यह हीन भावना सर्वत्र व्याप्त हो रही थी और उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी बहुत ऊँची नहीं थी। मुसोलिनी की परराष्ट्र-नीति का प्रधान उद्देश्य इस दुर्बलता एवं हीन-भावना का अंत करके इटली के लिये अन्तर्राष्ट्रीय संसार में सम्मानपूर्ण पद प्राप्त करना और संसार की महान् शक्तियों में उसे स्थान दिलाकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाना था। इसके साथ ही उसका दूसरा उद्देश्य इटली के लिये एक साम्राज्य का निर्माण करना था। महायुद्ध के फलस्वरूप इटली का बाल्कन प्रायद्वीप, पश्चिमी एशिया तथा अफ़्रिका में साम्राज्य-विस्तार का जो स्वप्न था वह भंग हो गया था। मित्र-राष्ट्रों

❀ Schevill : A History of Europe, p. 784.

† Ingram : Years of Crisis, p. 82.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने उसे धोखा दिया था। उसे इसका प्रतिकार करना था और वार्साई की संधि का संशोधन करना था।

परंतु इस उद्देश्य की पूर्ति में सबसे बड़े बाधक फ्रांस और इंगलैण्ड दिखाई देते थे। बाल्कन प्रायद्वीप, भूमध्यसागर या पूर्वी अफ्रिका, इनमें से जिधर भी वह दृष्टि दौड़ाता था उधर उसे यही दोनों मार्ग रोके हुये दिखाई देते थे। फ्रांस अपनी सुरक्षा के लिए सर्वत्र यथास्थिति बनाये रखना चाहता था और संधिजन्य व्यवस्था में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं चाहता था। इंगलैण्ड इस नीति की तरफ से तो उदासीन था परन्तु अफ्रिका में इटली के विस्तार के मार्ग में फ्रांस के साथ-साथ इंगलैंड के भी प्रदेश थे।* किन्तु मुसोलिनी इन कठिनाइयों की परवाह न करके अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भूमध्यसागर में अपनी स्थिति मज़बूत बनाने तथा अपने लिये मित्र प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गया।

भूमध्यसागर में स्थिति सुधारने के प्रयत्न—

भूमध्यसागर में अपनी स्थिति सुधारने के लिये उसने लॉसेन की संधि (१९२३) के द्वारा टर्की से डोडेकेनीज़ तथा रोड्ज़ द्वीप, जो पहले उसके पास थे परन्तु १९२० में उससे लेकर ग्रीस को दे दिए गये थे, पुनः प्राप्त करके उनकी किलेबन्दी की और वहाँ अच्छे नौसैनिक अड्डे शामिल कर लिए।† उसने पेण्टेलेरिया द्वीप की किलेबन्दी और सिसिली तथा ट्रिपोली में वायु-सेना तथा नौसेना के अच्छे अड्डे तैयार किये गये। १९२४ में यूगोस्लाविया से संधि करके एड्रियाटिक सागर के शीर्ष पर फ्यूम का नगर प्राप्त किया, हालाँकि उसका उपनगर, जिसमें बन्दरगाह है, यूगोस्लाविया के पास ही रहा।‡ इसके साथ ही उसने अल्बेनिया को आर्थिक सहायता देकर उस पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया (१९२६-२७) और इस प्रकार एड्रियाटिक सागर को एक इटालियन झील बना लिया।§ आगे चलकर १९३९ में उसने अल्बेनिया को इटली में शामिल कर लिया।

इन प्रयत्नों के साथ ही वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली की धाक जमाकर प्रतिष्ठा प्राप्त करने का भी प्रयत्न करता जाता था। १९२३ में ग्रीस तथा

---

* Barbara Ward : Italian Foreign Policy, p. 13.
† Schevill : A History of Europe, p. 785.
‡ Jackson : The Between-War World, p. 87.
§ Ingram : Years of Crisis, p. 83.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अल्बेनिया की सीमा निर्धारित करने वाले कमिशन में जो इटालियन लोग थे उनकी क़ॉर्फ़्यू नामक द्वीप में कुछ ग्रीक लोगों ने हत्या कर दी। इस पर मुसोलिनी ने क़ॉर्फ़्यू पर गोलाबारी करके उस पर अधिकार कर लिया और ग्रीस से भारी क्षतिपूर्ति की माँग की। उसने इस मामले में राष्ट्र-संघ की उपेक्षा की और पेरिस में स्थित महान् राष्ट्रों के राजदूतों की समिति की सहायता से ग्रीस से क्षतिपूर्ति प्राप्त की।*

मित्रों की खोज—

इस प्रकार मुसोलिनी ने इटली की प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा भूमध्यसागर में अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयत्न शुरू किए। १९२२ में वाशिंग्टन की सन्धि के द्वारा नाविक शक्ति में इटली को फ़्रान्स के साथ समानता का पद मिल चुका था। उसने अड्डे तैयार कर लिये थे और समुद्री जहाज़ों की तैयारी भी शुरू कर दी थी। वह स्थल-सेना तथा नभ-सेना का भी विस्तार कर रहा था। परन्तु फिर भी उसकी स्थिति निर्बल थी क्योंकि उसे बहुत सा आवश्यक माल बाहर से मँगाना पड़ता था और युद्ध के दिनों में उसका तटावरोध बड़ी सरलता से हो सकता था। अतः वह शान्तिपूर्वक बातचीत द्वारा ही सन्धि का संशोधन और प्रादेशिक विस्तार करना चाहता था। इसके साथ वह ही अपना पक्ष सबल बनाने के लिये मित्र भी प्राप्त करना चाहता था।

रूस से मित्रता—

तत्कालीन योरोप में मित्र की खोज सरल नहीं थी। फ़्रान्स, इंगलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, पोलेण्ड आदि राष्ट्र-संघ, तथा यथास्थिति के समर्थक थे और संधि-संशोधन के विरोधी थे। केवल ऑस्ट्रिया, हंगरी और बल्गारिया ही ऐसे राज्य थे जो सन्धि में संशोधन चाहते थे। ये राज्य इटली की ओर आकर्षित होने लगे और हंगरी से तो इटली का १९२६ तक घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया। परन्तु ये सब राज्य छोटे थे। बड़े राज्यों में जर्मनी की दशा क्षीण हो रही थी। केवल रूस बचा था। वह भी सन्धि के संशोधन के पक्ष में था। अतः उसने फ़र्वरी १९२४ में रूस की सोवियत सरकार को वैध मान्यता प्रदान करके उसके साथ व्यापारिक सन्धि करली।† वह सोवियत रूस को राष्ट्र-संघ में सम्मिलत करने का प्रयत्न करने लगा और दोनों देशों में घनिष्टता बढ़ने लगी।

---

*Carr : International Relations Between the Two World Wars, pp. 71-72. राजदूतों की समिति पेरिस के शान्ति-सम्मेलन का संक्षिप्त रूप थी। Somervell : Between the Wars, p. 38.

† Ward : Italian Foreign Policy, p. 15.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ्रान्स के साथ सम्बन्ध—

मुसोलिनी ने भूमध्यसागर में फ्रान्स के विरुद्ध अपने दावों के समर्थन के लिये रूस से मित्रता स्थापित की थी। फ्रान्स यह समझता था और उसे इन बातों को देख कर इटली की तरफ़ से बड़ी आशंका थी। फ्रान्स और इटली के बीच कई कारणों से वैमनस्य था। फेसिस्ट प्रचारक भूमध्यसागर को 'अपना समुद्र' कहते थे और मुसोलिनी के प्रयत्न स्पष्टतः उस समुद्र पर प्राधान्य स्थापित करने की दिशा में हो रहे थे।* फ्रान्स में कोई दस लाख इटालियन मज़दूरी करते थे और उसे उनमें फेसिस्ट प्रचार की आशंका थी। ट्यूनिस का उपनिवेश फ्रान्स के आधीन था परन्तु उसमें फ्रेञ्च लोगों की अपेक्षा इटालियन लोगों की संख्या अधिक थी और मुसोलिनी उनके लिये विशिष्ट व्यवहार की माँग कर रहा था। इसके साथ ही वह लिबया और मोटी तौर से उत्तरी अफ्रिका में अधिकाधिक प्रदेश माँग रहा था। जून १९२५ में इटली की उपेक्षा करके इङ्गलैंड फ्रान्स और स्पेन ने आपस में एक समझौता करके टेञ्जियर की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति स्वीकार कर ली थी। मुसोलिनी इस बात से बड़ा नाराज़ हुआ और उसने इस समझौते को अस्वीकार कर दिया। फ्रान्स 'लघु मैत्री' वाले देशों से घनिष्टता स्थापित करने का जो प्रयत्न कर रहा था उससे भी मुसोलिनी अप्रसन्न था। इस प्रकार फ्रान्स और इटली के बीच वैमनस्य के अनेक कारण थे। परन्तु यथार्थवादी मुसोलिनी झगड़ा मोल लेना नहीं चाहता था और फ्रांस भी इटली को शत्रु बनाना नहीं चाहता था। अतः ऊपर से दोनों के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण बने रहे। इतना ही नहीं, १९२८ में दोनों ने टेञ्जियर के सम्बन्ध में स्पेन को शामिल करके एक समझौता किया और अपने-अपने अधिकारों का निर्णय कर लिया।†

हिटलर का उदय—

जर्मनी में १९३३ के आरम्भ में हिटलर के सत्तारूढ़ होने पर रूस की

---

* अप्रेल १९२६ में मुसोलिनी ने घोषणा की थी कि 'हमने देश के आन्तरिक युद्ध में विजय प्राप्त कर ली है, परन्तु बाहर के युद्ध में अभी विजय प्राप्त करना है।' उसी महीने में उसने ट्रिपोली में भाषण देते हुए कहा था—'इटली भूमध्यसागर में महान् रह चुका है और मैं फिर उसे महान् देखना चाहता हूँ..... भाग्य हमें फिर इस प्रदेश में ला रहा है। भाग्य को कोई नहीं रोक सकता और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमारी अदम्य इच्छा को कोई दबा नहीं सकता।' Maxwell : International Relations, p. 380.

†Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, pp. 163.-172.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीति में परिवर्तन होगया और इटली बड़े असमंजस में पड़ गया। हिटलर बॉल्शेविज़्म का शत्रु था। उधर पूर्व में जापान आगे बढ़ रहा था। ऐसी स्थिति में रूस को अपनी एकाकिता की अनुभूति होने लगी। इन शत्रुओं के सामने इटली की मित्रता में कोई सार नहीं था। अतः वह .फ्रान्स की तरफ़ झुकने लगा। १९३४ में वह राष्ट्रसंघ में सम्मिलित हो गया और १९३५ में उसने .फ्रांस तथा चेकोस्लोवाकिया से सन्धि कर ली। इटली के साथ उसकी मित्रता बनी रही। इतना ही नहीं, १९३३ में दोनों में एक दूसरे से किसी भी दशा में युद्ध न करने का वचन देते हुए एक मित्रता की सन्धि भी कर ली।* परन्तु यह मित्रता केवल दिखावटी थी। उधर मुसोलिन इटली की ओर से भी सशंक था क्योंकि उसकी आस्ट्रिया पर निगाह थी।

.फ्रान्स और इंगलैण्ड से सहयोग—

ऐसी परिस्थिति में मुसोलिनी को अपना पैंतरा बदलना पड़ा। उसने हिटलर के विरुद्ध .फ्रान्स और इंगलैण्ड से अपने सम्बन्ध सुधारने और उनके साथ सहयोग करने का निश्चय किया। उसने फ़र्वरी १९३४ में इंगलैंड और .फ्रान्स से मिलकर ऑस्ट्रिया की स्वतन्त्रता कायम रखने के लिए एक संयुक्त घोषणा पर हस्ताक्षर किए और जैसा हम देख चुके हैं, जब जुलाई १९३४ में नात्सी विप्लव हुआ तो मुसोलिनी ने ब्रेनर के दर्रे में अपनी सेना भेजकर हिटलर के ऑस्ट्रिया के अधिकार करने के स्वप्न को भंग कर दिया। इसी प्रकार जब मार्च १९३५ में हिटलर ने वार्साई-सन्धि की सैनिक धाराओं को तोड़ा तो उसने .फ्रान्स और इंगलैण्ड से मिलकर स्ट्रेसा के स्थान पर सन्धि करके उसके विरुद्ध संयुक्त मोर्चा क़ायम किया।

.फ्रान्स से मित्रता—

.फ्रान्स भी हिटलर के इरादों से अपनी सुरक्षा के लिए चिन्तित था। अतः उसने भी इटली की शिकायतों को दूर करके उससे घनिष्टता स्थापित करने का प्रयत्न आरम्भ किया। जनवरी १९३५ में .फ्रान्स का विदेश-मन्त्री लावाल (Laval) रोम पहुँचा और उसने लिबया में कुछ हज़ार वर्गमील मरुस्थली प्रदेश तथा जिबुटी (लाल सागर के तट पर) से अदिस अबाबा (एबिसीनिया की राजधानी) को जाने वाली रेल में .फ्रान्स के जो हिस्से थे उन्हें इटली को देकर उससे समझौता कर लिया। सम्भवतः इसी भेंट में मुसोलिनी ने लावाल से एबिसीनिया पर अधिकार करने की अपनी आकांक्षा प्रगट की

*Maxwell : International Relation, pp. 400-401.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और ऐसा विश्वास किया जाता है कि लावाल ने मुसोलिनी को उसे यह आश्वासन दिया कि एबिसीनिया में फ्रान्स का कोई हित नहीं है अर्थात् उसे छूट दे दी।*

राष्ट्र-संघ की निर्बलता और मुसोलिनी के हौसले—

फ्रान्स से इस प्रकार अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर तथा एबिसीनिया के सम्बन्ध में लावाल का प्रच्छन्न आश्वासन मिल जाने पर मुसोलिनी का साहस बढ़ा। राष्ट्र-संघ की निर्बलता प्रमाणित हो चुकी थी। १९३१ में जापान ने मंचूरिया पर सफल आक्रमण करके उसे चुनौती दी थी परन्तु वह कुछ भी नहीं कर सका था। हिटलर ने वार्साई-सन्धि का भंग किया था परन्तु राष्ट्रसंघ उसके विरुद्ध भी कोई कार्यवाही नहीं कर सका था। यह देखकर मुसोलिनी ने एबिसीनिया पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया।

एबिसीनिया—

इस आक्रमण की वह बहुत पहले से कूटनीतिक एवं सैनिक तैयारियाँ कर रहा था। १९२५ में उसने इंगलैण्ड से समझौता करके एबिसीनिया में 'रियायतें' प्राप्त करने की अनुमति ले ली थी। परन्तु एबिसीनिया इस समाचार को पाकर सशंक हो गया और उसने राष्ट्रसंघ से, जिसका वह सदस्य था, शिकायत की। इस पर उसकी आशंका का निवारण करने के लिए मुसोलिनी ने १९२८ में एबिसीनिया से 'चिरकालीन मित्रता' तथा मध्यस्थता की सन्धि की। परन्तु इससे एबिसीनिया के सम्राट् हेल सलासी की शंका नहीं मिटी और वह मुसोलिनी को किसी प्रकार की भी रियायतें देने से इन्कार करता रहा। अन्त में मुसोलिनी ने बल प्रयोग का निश्चय करके † और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति अनुकूल देख कर पूर्वी अफ्रिका में अपनी सेना भेज कर आक्रमण की तैयारी करना शुरू कर दिया।§

एबिसीनिया की विजय—

यह देखकर हेल सलासी ने राष्ट्र-संघ से अपील की। इंगलैण्ड ने उसका समर्थन किया क्योंकि उसे इटली की ओर से इजिप्ट में अपने हितों का भय था। उसने अपना बेड़ा भूमध्यसागर में भेज दिया और राष्ट्र-संघ से कड़ी

---

*Maxwell : International Relations, p. 386.

†मुसोलिनी ने आक्रमण के दो वर्ष पहले १९३३ में ही एबिसीनिया हड़पने का निश्चय कर लिया था। Keith : The Cause of the War, p. 264.

$ Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 403,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार्यवाही करने का अनुरोध किया। फ़्रान्स ने इटली को एबिसीनिया का एक भाग दिलाकर समझौता कराने का प्रयत्न किया परन्तु व्यर्थ।* मुसोलिनी अपनी तैयारी करता रहा और अन्त में उसने राष्ट्र-संघ के इक़रारनामे, केलॉग-सन्धि तथा स्वयं एबिसीनिया से की हुई सन्धि को भंग करके अक्टूबर १९३५ में आक्रमण कर दिया। इटली की सेना ने एडोवा लेकर शीघ्र ही बड़ी तेज़ी से भीतर की ओर बढ़ना शुरू किया। राष्ट्र-संघ ने उसे 'आक्रामक' घोषित करके विधान की सोलहवीं धारा के अनुसार उसके विरुद्ध 'आर्थिक प्रतिबन्ध' लगाये जिसका अर्थ यह था कि राष्ट्र-संघ के सदस्य इटली से अपना आर्थिक सम्बन्ध तोड़कर उसे कोई वस्तु नहीं बेचें। इस प्रतिबन्ध से इटली को कठिनाइयाँ होने लगीं और यदि उनका कठोरता से पालन होता तो इटली घुटनों आ जाता। परन्तु फ़्रान्स को उससे सहानुभूति थी। इङ्गलैण्ड यदि चाहता तो स्वेज़ नहर का मार्ग रोक सकता था परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून का लिहाज़ करके उसने ऐसा नहीं किया।† उधर इटली को युद्ध की

---

* दिसम्बर १९३५ में फ़्रांस के विदेश-मंत्री लावाल तथा इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री सेम्युएल होर के बीच पेरिस में एक समझौता—होर-लावाल समझौता—हुआ जिसके अनुसार यह निर्णय हुआ कि इटली को एबिसीनिया का पूर्वी प्रदेश तथा इरीट्रिया और सुमालीलैण्ड की सीमाओं के पास के कुछ प्रदेश दे दिये जाँय और दक्षिणी एबिसीनिया में एक अंचल इटालियनों के बसने तथा आर्थिक विस्तार के लिये रखा जाय। एबिसीनिया को लाल सागर पर एक बन्दरगाह दिया जाय ताकि उसे समुद्रतट पर निकास-स्थान प्राप्त हो सके। एबिसीनिया ने इस समझौते को ठुकरा दिया। इंगलैंड में इस समझौते का जनमत ने बड़ा विरोध किया और सेम्युएल होर को इस्तीफ़ा देना पड़ा। Maxwell : International Relations, p. 393.

†Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 404. इस मामले में इंगलैण्ड का रुख़ बड़ा अनिश्चित और संदिग्ध रहा। जनवरी १९३५ में इटली की सरकार ने इंगलैण्ड के विदेश-विभाग को आश्वासन दिया था कि एबिसीनिया में इटली के पहुँच जाने से ब्रिटिश हितों को कोई क्षति नहीं पहुँचेगी। ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन मेफ़ी की अध्यक्षता में एक गुप्त समिति इस प्रश्न पर विचार करने के लिये नियुक्त की थी परन्तु उस रिपोर्ट में क्या था इसका ठीक-ठीक पता नहीं चला। शायद सच बात तो यह थी कि अंग्रेज़ सरकार ने अधिनायकों को 'सन्तुष्ट करने की नीति' (Appeasement Policy) आरम्भ कर दी थी। एबिसीनिया का पक्ष लेते हुए भी उसने उसकी सहायता नहीं की, बल्कि उसे अपनी रक्षा के लिये शस्त्रास्त्र भी प्राप्त नहीं होने दिये। कोरी बातों से ही वह उसकी सहायता करता रहा। इंगलैण्ड ने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों का पूरी तरह से पालन नहीं किया। सबसे बड़ा प्रतिबन्ध तेल का था परन्तु मुसोलिनी ने धमकी दी कि यदि तेल का प्रतिबन्ध लगाया गया तो युद्ध छिड़ जायगा। यह केवल धौंस थी। इंगलैण्ड, फ़्रान्स और अन्य राज्यों से अकेले लड़ना इटली के लिये असम्भव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आवश्यक सामग्री जर्मनी से प्राप्त होती रही और मई १९३६ में उसने राजधानी आदिस अबाबा पर अधिकार कर लिया। सम्राट् हेल सलासी ने भाग कर इङ्गलैण्ड में शरण ली और एबिसीनिया इटली के साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

राष्ट्र-संघ से सम्बन्ध-विच्छेद—

इस प्रकार इटली ने राष्ट्र-संघ के एक सदस्य की स्वतन्त्रता का अन्त कर दिया और वह देखता ही रहा। इटली की निन्दा करने के अतिरिक्त उससे कुछ नहीं बन पड़ा। इटली राष्ट्र-संघ से अलग हो गया और राष्ट्र-संघ ने भी जुलाई १९३६ में उसके विरुद्ध लगाये हुए प्रतिबन्धों को हटाकर अपनी निर्बलता स्वीकार करली।*

'रोम-बर्लिन-धुरी'—

एबिसीनिया के मामले में इङ्गलैण्ड और फ्रान्स का रुख देखकर मुसोलिनी उनसे चिढ़ गया। उनका विरोध होते हुए भी उसने एबिसीनिया विजय कर लिया था। यह देखकर उसे उनकी ओर से कोई भय नहीं रहा और वह समझने लगा कि बिना लड़े ही उन्हें दबाकर भूमध्यसागर में तथा उसके तट पर प्रादेशिक विस्तार किया जा सकेगा।† इस युद्ध में उसे हिटलर ने बड़ी सहायता दी थी। अतः अब उसने जर्मनी से मैत्री करने की ओर क़दम बढ़ाया। अक्टूबर १९३६ में दोनों में सन्धि होगई और 'रोम-बर्लिन-धुरी' (Rome-Berlin-Axis) का निर्माण हुआ। इसी बीच में मुसोलिनी इंगलैण्ड, फ्रान्स और रूस से अधिक रुष्ट हो गया था। इसका कारण यह था कि टर्की बॉस्फ़ोरस तथा डार्डेनेलीज़ के जल-संयोजकों का पुनः सैन्यीकरण (Remilitarization) करना चाहता था और इसी दृष्टि से उसने महान् सत्ताओं को इस प्रश्न पर विचार करने के लिये आमन्त्रित किया था। जून-जुलाई १९३६ में मांत्रों (Montreux)-सम्मेलन हुआ, परन्तु इटली उसमें सम्मिलित नहीं हुआ और इंगलैण्ड, फ्रान्स, रूस तथा टर्की ने इटली के सहयोग के बिना ही समझौता कर लिया।

था। परन्तु धौंस काम कर गई और तेल का प्रतिबन्ध कार्यान्वित नहीं किया गया। इंगलैण्ड इस प्रकार मुसोलिनी को प्रसन्न रखना चाहता था परन्तु उसका परिणाम उल्टा निकला Maxwell : International Relations, pp. 395-396.

* Carr : International Relations between the Two World Wars, p: 228.

† Ward : Italian Foreign Policy, p. 20.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे इटली को बहुत बुरा लगा और वह रूस के विरुद्ध नवम्बर १९३६ में जर्मनी ने जापान से जो सन्धि (Anti-Commintern Pact) की थी, उसमें शामिल हो गया (१९३७)।

स्पेन के गृह-युद्ध में हस्तक्षेप—

इस प्रकार इटली और जर्मनी में मैत्री का आरम्भ हुआ और उसे सुदृढ़ बनाने का मौक़ा भी साथ ही साथ स्पेन में मिल गया।* स्पेन में १९३१ में गणतन्त्र की स्थापना के बाद से ही दक्षिणपक्षीय तथा वामपक्षीय दलों में संघर्ष आरम्भ हो गया था जिसने जुलाई १९३६ में एक भयंकर गृह-कलह का रूप धारण कर लिया। उसमें एक ओर तो गणतन्त्रीय सरकार थी जिसमें सभी वामपक्षीय दल सम्मिलित थे और दूसरी ओर अपने आपको 'राष्ट्रीय' कहने वाले रूढ़िवादी लोग थे जिनमें सेना के कई ऊँचे पदाधिकारी भी शामिल थे। जनरल फ़्रेङ्को उनका नेता था जो फ़ेसिस्ट मनोवृत्ति का था। शीघ्र ही इस संघर्ष का वास्तविक रूप प्रगट हो गया। सेना फ़ेसिज़्म का प्रतीक बन गई जिसके साथ चर्च, सामन्त वर्ग, पूँजीपति आदि प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ थीं

---

*स्पेन महायुद्ध में तटस्थ रहा था। वहाँ वैधानिक एकतन्त्र (पार्लामेण्टरी शासन) था परन्तु वास्तविक शक्ति राजा, कुछ राजनीतिज्ञों तथा सेना के अफसरों के हाथों में थी और शासन बड़ा भ्रष्टाचारयुक्त था। तटस्थ रहने के कारण युद्धकाल में स्पेन ने अपना व्यापार बढ़ा लिया था और देश में कुछ समृद्ध थी। परन्तु युद्ध की समाप्ति पर उसका व्यापार कम हो गया, आर्थिक दशा बिगड़ गई, बेकारी फैलने लगी और असन्तोष बढ़ने लगा। गणतन्त्रीय, समाजवादी, अराजकतावादी, साम्यवादी आदि अपना-अपना प्रचार करने लगे और क्रान्ति की सम्भावना दिखाई देने लगी। इसके साथ ही मोरक्को में विद्रोह हो रहा था जिसमें स्पेनी सेना हार रही थी। इस दशा में बिगड़ी हुई स्थिति को सम्हालने के लिए एक सैनिक अधिकारी जनरल रिवेरा (Primo de Rivera) ने बलपूर्वक सत्ता अपने हाथ में लेकर सैनिक अधिनायकतन्त्र स्थापित कर लिया। राजा नाममात्र को बना रहा।

रिवेरा ने देश की अवस्था सुधारने के अनेक प्रयत्न किये। उसने साम्यवादियों का दमन किया, कृषि को प्रोत्साहन दिया, आर्थिक तथा औद्योगिक सन्तुलन स्थापित किया और मोरक्को के विद्रोह का दमन किया। परन्तु इन सुधारों से सेना अप्रसन्न हो गई और राजा तेरहवें एल्फ़ॉन्सो ने उसे सेना के दबाव में आकर बरखास्त कर दिया। इससे स्वयं राजा के भाग्य का भी निर्णय हो गया। १९३१ के निर्वाचन में गणतंत्रीय दल की विजय के फलस्वरूप क्रान्ति हो गई और राजा भाग गया। दिसम्बर १९३१ में स्पेन में गणतन्त्र की विधिवत् स्थापना हुई। Hayes : Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, pp. 740-743 ; Marriott : Europe and Beyond, pp. 330-331.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और जनतन्त्र लोकसत्तात्मक शक्तियों का केन्द्र बन गया जिसका झुकाव क्रान्तिकारी वर्गों की ओर अधिक था।* इन परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के संघर्ष की ओर शीघ्र ही अन्य राज्यों का ध्यान गया और बाहर से धीरे-धीरे दोनों पक्षों को सहायता मिलने लगी। इटली भूमध्यसागर में अपना प्राधान्य स्थापित करना चाहता था। उसे यह अच्छा अवसर मिला। फ्रेंको ने सहायता की प्रार्थना की और मुसोलिनी तैयार हो गया। जर्मनी ने भी फ्रेंको को सहायता देना शुरू किया। इंगलैण्ड और फ्रान्स की जनता की स्वाभाविक सहानुभूति गणतन्त्रीय पक्ष के साथ थी परन्तु वहाँ की सरकारों को स्पेन के जनतन्त्र में साम्यवाद का लाल रंग दिखाई देता था और उन्होंने तटस्थता का आश्रय लेकर जनतन्त्र को बचाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। केवल रूस ने उसकी सहायता की। दूरी के कारण रूस की सहायता अधिक प्रभावकारी न हो सकी और अन्त में इटली तथा जर्मनी की सहायता से मार्च १९३९ में फ्रेंको विजयी हुआ। इस प्रकार स्पेन के गृह-युद्ध में फ़ेसिज़्म की विजय हुई। इससे मुसोलिनी का पश्चिमी भूमध्यसागर में इटली विरोधी गुट बन जाने का भय मिट गया और फ्रांस के विरुद्ध एक मित्र मिल गया। इसके साथ ही उसका साहस बढ़ गया। उसे फ्रांस और इंगलैंड की, या यों कहिये कि राष्ट्र-संघ की, निर्बलता का पूर्ण प्रमाण मिल गया। वह जान गया कि उनमें योरोप की संकट में पड़ी हुई यथास्थिति की रक्षा करने के लिए युद्ध करने का साहस नहीं है। उनकी निर्बलता से प्रोत्साहित होकर उसने अप्रेल १९३९ में अल्बेनिया को इटली में शामिल कर लिया।

इंगलैण्ड का रुख—

स्पेन में गणतन्त्रीय सरकार को रूस ने ही सहायता दी थी। यदि इंगलैण्ड और फ्रांस भी सहायता करते या अकेला फ्रांस ही सहायता करता तो फ्रेंको को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती थी।† इंगलैण्ड तो इस समय बिलकुल भीरु बन गया था। यह देखते हुए भी कि जर्मनी और इटली फ्रेंको की खूब सहायता कर रहे हैं, वह हस्तक्षेप न करने की नीति के अवलंबन का ढोंग रचता रहा और रूस, जर्मनी तथा इटली से भी तटस्थ रहने का अनुरोध करता रहा। वे उसे आश्वासन देते रहे कि उनकी ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं हो रहा था या हस्तक्षेप तुरंत ही बन्द कर दिया जायगा और साथ ही साथ अधिकाधिक सहायता देते रहे। इंगलैण्ड तो इन दिनों इटली और जर्मनी को

---

*Schevill : A History of Europe, p. 846.

† Maxwell : International Relations, p. 430.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सब प्रकार से सन्तुष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था। उसने इटली से भूमध्य-सागर तथा पूर्वी अफ़्रिका के सम्बन्ध में समझौता कर लिया, (१९३७-३८)* एबिसीनिया की विजय स्वीकार कर ली और राष्ट्र-संघ से यह प्रस्ताव स्वीकार करवाया कि राष्ट्र-संघ के सदस्य एबिसीनिया की विजय को अपनी इच्छानुसार स्वीकार कर सकते हैं (मई १९३९)।†

इस प्रकार इटली के सम्बन्ध जर्मनी तथा इङ्गलैण्ड दोनों से अच्छे रहे। परन्तु चेकोस्लोवाकिया की हत्या के बाद इंगलैण्ड को विश्वास हो गया कि अधिनायकों के वचनों में विश्वास नहीं किया जा सकता। तब तक योरोप की स्थिति अत्यन्त भयंकर हो चुकी थी और महायुद्ध बिलकुल निकट दिखाई देने लगा था। फ़्रान्स और इंगलैण्ड की निर्बलता को देख कर मुसोलिनी ने फ़्रान्स से 'कॉर्सिका, ट्यूनिस तथा नीस' की माँग आरंभ कर दी। मई १९३९ में जर्मनी और इटली में पूर्ण आक्रमणात्मक एवं रक्षात्मक सन्धि हो गई। परन्तु जब सितम्बर १९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ा तो आरंभ में इटली युद्ध में शामिल नहीं हुआ। हिटलर को यह विश्वास था कि यदि इटली तटस्थ रहा तो अधिक लाभकारी रहेगा और शायद जैसे उसने चेकोस्लोवाकिया के मामले में बीच-बचाव करके उसकी आकांक्षा पूर्ण की थी, उसी प्रकार इस समय भी वह सहायता कर सकेगा।§

———

* Ingram : Years of Crisis, p. 163.
† Hayes and Cole : History of Europe, Vol. II, p. 410.
§ Ward : Italian Foreign Policy, p. 26.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २०

उदारवाद की विजय

फ्रान्स

जनतन्त्र और अधिनायकतन्त्र—

मित्र-राष्ट्रों का कहना था कि महायुद्ध संसार को जनतंत्र के लिये सुरक्षित बनाने के लिये लड़ा जा रहा था। हम देख चुके हैं कि योरोप में इस भावना का प्रचार मुख्यतः फ्रेंच क्रान्ति की देन था। तभी से यह भावना राष्ट्रीयता की भावना के साथ ज़ोर पकड़ती जा रही थी और निरंकुश शासन के विरुद्ध इसका संघर्ष चल रहा था। प्रथम महायुद्ध के पूर्व तक हम जनतन्त्रीय भावना की प्रगति का इतिहास देख चुके हैं। महायुद्ध के दिनों में भी इसका बड़ा प्रचार किया जाता रहा और आरम्भ में तो ऐसा मालूम होता था मानों सर्वत्र जनतन्त्र की विजय होगी और निरंकुश शासन निर्मूल हो जायगा। १९१७ में रूस में मार्च-क्रान्ति के फल-स्वरूप शताब्दियों से चली आई ज़ारशाही का अन्त और जनतन्त्र का जन्म हुआ परन्तु उसका जीवन बड़ा अल्पकालीन रहा और कुछ ही महीनों में लेनिन के नेतृत्व में साम्यवादियों ने उसका अंत करके अपने दल का अधिनायकतन्त्र स्थापित कर दिया। जर्मनी में, जैसा हम १५वें अध्याय में देख चुके हैं, युद्ध के अन्तिम दिनों में निरंकुश सम्राट् को जनतंत्रीय शक्ति के सामने झुक कर सिंहासन त्यागना पड़ा और वहाँ गणतन्त्र की स्थापना हुई। जर्मनी जैसे देश में, जिसने अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति होहेनत्सॉलर्न वंश के निरंकुश शासन तथा बिस्मार्कवाद की बदौलत की थी और जिसकी जनता धीरे-धीरे बिस्मार्कवाद के रंग में ही रंग गई थी, गणतन्त्र की स्थापना जनतंत्र की साधारण विजय नहीं थी। परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, कई कारणों से वहाँ भी जनतन्त्र स्थायी न रह सका और १५ वर्ष में ही हिटलर ने उसका अन्त करके नात्सी अधिनायकतंत्र स्थापित कर लिया। इटली ने अपने स्वातन्त्र्य-संग्राम का संचालन जनतन्त्रीय आधार पर किया था और अपनी स्वतंत्रता तथा अपने एकीकरण के बाद उसने जनतंत्रवाद को ही अपनाया था। परन्तु वहाँ भी कई कारणों से उसका अंत हो गया और उसका स्थान फ़ेसिस्ट अधिनायकतंत्र ने ले लिया। मध्य-पूर्वी योरोप तथा बाल्कन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रायद्वीप में भी जनतंत्र को हार खानी पड़ी और कई जगह अधिनायकतंत्र स्थापित हो गये।

परन्तु यह समझना ग़लत होगा कि योरोप में इस अधिनायकतंत्रीय बाढ़ में जनतन्त्रवाद बह गया। योरोप के अनेक देशों में, मुख्यकर फ्रान्स और इंगलैण्ड में जनतन्त्रवाद अधिनायकतन्त्र के भीषण आघातों को सहते हुए भी अडिग खड़ा रहा। बेल्जियम, हॉलैण्ड, नॉर्वे, स्वीडन तथा स्विट्ज़रलैण्ड जनतन्त्र बने रहे। युद्धजनित परिस्थिति के कारण उनके सामने बड़ी भीषण गृह समस्याएँ उपस्थित हुईं, वहाँ भी साम्यवादी तथा फ़ेसिस्ट दलों का निर्माण हुआ, उन्होंने काफ़ी परेशानी भी पैदा की परन्तु वे जनतन्त्रीय मार्ग से विचलित न हुए। ये छोटे राष्ट्र जनतंत्रीय बने रह सके इसका मुख्य कारण है इंगलैण्ड और फ्रांस का जनतंत्रीय बने रहना। यदि कहीं ये राष्ट्र भी जनतन्त्र से डिग जाते तो इन छोटे राष्ट्रों के लिये जनतंत्रीय बने रहना असम्भव हो जाता।* अब हम इन्हीं राष्ट्रों का अध्ययन करेंगे।

फ्रान्स

महायुद्ध का परिणाम—

जर्मनी के पतन के बाद फ्रांस योरोप का सबसे शक्तिशाली राज्य बन गया। योरोप के नवजात राज्य अपनी सुरक्षा के लिये उसी की ओर देखते थे और वह भी उन राज्यों को राजनीतिक एवं आर्थिक सहायता देकर अपने साथ बनाये रखना चाहता था। इसमें उसे भी स्वयं अपनी सुरक्षा का साधन दिखाई देता था। फ्रांस वास्तव में सदा ही अपनी सुरक्षा के लिये चिंतित रहा आया है। उसकी समस्त नीति का आधार सुरक्षा की चिन्ता ही रहा है।‡ १९१९ के बाद की योरोपीय राजनीति पर जो बात स्थायी रूप से प्रभाव डालती रही वह फ्रांस की सुरक्षा के लिये माँग थी।† उसे सबसे अधिक भय जर्मनी की ओर से रहता है और वह चाहता है कि जर्मनी सदा निर्बल बना रहे। वार्साई की संधि की कठोरता का मुख्य कारण यही था। सुरक्षा की चिन्ता के अतिरिक्त फ्रांस में प्रतिशोध की भावना भी बड़ी तीव्र थी। पिछले इतिहास को देखते हुए उसकी चिन्ता स्वाभाविक ही थी और युद्ध में उसके उत्तर-पूर्वी प्रदेशों का जो सर्वनाश हुआ था उसे देखते हुये प्रतिशोध की प्रबल

---

* Schevill : A History of Europe, pp. 802-803.

‡ Jackson : The Between- War World, p. 64.

† Carr : International Relations Between the Two World Wars, p. 25.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भावना में भी कोई अस्वाभाविकता नहीं थी। वैसे तो युद्ध में हानि होती ही है परन्तु जिस प्रदेश पर वर्षों तक जर्मनों का अधिकार रहा उसमें उन्होंने जानबूझ कर बड़ा विनाश किया था। उस प्रदेश की जनसंख्या ४७,५०,००० से घट कर २०,००,००० रह गई थी ; वहाँ जितने मकान, कारखाने आदि थे उनमें से एक तिहाई नष्ट हो गये थे ; कोयले तथा लोहे की खानें बरबाद कर दी गईं थीं, खेती की भूमि की भी बहुत हानि हुई थी और पशुओं का तो वहाँ नामोनिशान भी नहीं रहा था।*

समस्याएँ—पुनर्निर्माण और सुरक्षा—

अतः फ्रान्स के समक्ष दो प्रकार की समस्याएँ थीं—प्रथम, इस नष्ट-भ्रष्ट प्रदेश का पुनर्निर्माण करना और द्वितीय, अपनी सुरक्षा की चिन्ता करना। दोनों ही समस्याएँ बड़ी थीं परन्तु प्रथम समस्या की ओर तत्काल ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक था। इन दोनों समस्याओं के अतिरिक्त फ्रांस में सदा ही एक समस्या रही है जिसको हल करने का उसके पास कोई उपाय नहीं है और वह है—उसकी सरकार की अस्थिरता।

क्लीमेन्सो की बिदा—

फ्रान्स में अनेक छोटे-छोटे राजनीतिक दल हैं। इस कारण वहाँ पार्लामेण्ट में किसी भी दल का बहुमत नहीं हो सकता और सदा ही दो-तीन दलों का सम्मिलित मंत्रिमण्डल बनता है। ऐसे मंत्रिमण्डल स्थायी नहीं हो सकते। किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर मतभेद होने पर वह टूट जाते हैं। महायुद्ध के अन्त के समय केन्द्रीय तथा दक्षिण-पक्षीय दलों के सम्मिलित दल—नेशनल ब्लॉक (National Bloc)—का मंत्रिमण्डल शासन कर रहा था जिसमें क्लीमेन्सो प्रधान मन्त्री था। यह मन्त्रिमण्डल १९१६ से ही चला आ रहा था। उसने युद्धकालीन संकट में समस्त जनता का सहयोग प्राप्त करके युद्ध का बड़ी कुशलता से संचालन किया था और फ्रान्स को विजय-गौरव प्रदान किया था। पेरिस के शान्ति-सम्मेलन का क्लीमेन्सो ही अध्यक्ष बना था और वार्साई की संधि वास्तव में उसी की कृति 'क्लीमेन्सो की संधि'—थी। उसने फ्रान्स पर बड़ी दृढ़ता से शासन किया था परन्तु कुछ तो इस कारण और कुछ अन्य कारणों से फ्रांस में कई वर्गों के लोग उससे अप्रसन्न थे।† जब नवम्बर १९१९ में सामान्य निर्वाचन हुआ तो कृतज्ञ राष्ट्र ने नेशनल ब्लॉक का

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 437.
† Marriott : A Short History of France, p. 270.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समर्थन किया और उसकी विजय हुई परन्तु अगले वर्ष (१९२०) जब पुँकारे (जो उस समय राष्ट्रपति था और उसकी अवधि समाप्त हो रही थी) के स्थान पर राष्ट्रपति के प्रतिष्ठित पद के लिए क्लीमेन्सो खड़ा हुआ तो वह नहीं चुना गया। इसे अपना अपमान समझ कर वह राजनीतिक जीवन से अलग हो गया। उसके स्थान पर मिलराँ (Millerand) प्रधान मन्त्री बना जो कुछ महिने बाद राष्ट्रपति बन गया।

पुनर्निर्माण—

नया मन्त्रिमण्डल नेशनल ब्लॉक का ही बना। उसने उत्तरी-पूर्वी प्रदेशों के पुनरुद्धार की ओर ध्यान दिया और इस कार्य के लिये बड़े परिमाण में ऋण लिया। पुनर्निर्माण का कार्य बड़ी तेज़ी एवं बड़े उत्साह के साथ शुरू हुआ और कुछ ही वर्षों में हज़ारों नये मकान तथा कारखाने तैयार हो गये। नये-नये नगर बन गये और कारखानों में नवीनतम मशीनें लगाई गईं जिनकी सहायता से कुछ ही वर्षों में औद्योगिक उत्पादन बहुत बढ़ गया और कपड़ा, लोहा तथा अन्य धातुओं के कारोबार में वह इंगलैंड का मुकाबला करने लगा। देश समृद्ध हो गया* और सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि जहाँ अन्य देशों में सैनिकों का काम समाप्त होने तथा युद्ध-सम्बन्धी उद्योगों में शिथिलता आ जाने से लाखों आदमी बेकार हो गये थे, वहाँ फ्रान्स में विशाल पैमाने पर होने वाले इस पुनर्निर्माण के कार्य के कारण बेकारी की समस्या उत्पन्न नहीं हुई।†

रूर-प्रदेश पर आक्रमण—

इस पुनर्निर्माण के कार्य में फ्रांस ने अनाप-शनाप रुपया ऋण लेकर इस आशा में खर्च किया था कि जर्मनी से क्षतिपूर्ति का रुपया मिलेगा।§ परन्तु उसकी आशा पूरी नहीं हुई। प्रथम तो जब तक वार्साई की सन्धि अन्तर्राष्ट्रीय कानून नहीं बन गई तब तक क्षतिपूर्ति की रकम ही निर्धारित नहीं हुई थी और जब उसका प्रारम्भिक निर्धारण हुआ तो जर्मनी के लिये तत्कालीन परिस्थिति में उसका चुकाना अत्यन्त कठिन था। इस समय पुँकारे फ्रांस का

---

*इस नष्ट-भ्रष्ट प्रदेश का पुनर्निर्माण युद्धोत्तर योरोप में आर्थिक क्षेत्र की सबसे महान् सफलता थी। Brogan : The Development of Modern France, P. 599.

†Schevill : A History of Europe, p. 804.

§Somervell : Between the Wars, p. 188.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रधान मंत्री था जो जर्मनी से कठोरता के साथ संधि की शर्तों का पालन एवं क्षतिपूर्ति करवाना चाहता था। हम देख चुके हैं कि इंगलैंड के विरोध करते हुए भी उसने बेल्जियम से मिल कर जर्मनी के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश—रूर-प्रदेश—पर अपनी सेना भेज कर अधिकार कर लिया। जर्मनी के असहयोग से फ्रांस का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। उसे अपने ही सिपाहियों से जो स्थानीय परिस्थितियों से बिलकुल अनभिज्ञ थे, खानों में काम करवाना पड़ा और रेलों का संचालन करवाना पड़ा। उसने सख्ती भी की और रूर-क्षेत्र को जर्मनी से अलग करके अपने प्रभाव में लाने के लिए जर्मनी से अलग 'राइनलैंड गणतंत्र' बनाने के लिए जनता को भी उकसाया परन्तु इन सब बातों से काम नहीं निकला।* उसका इसमें बहुत खर्च हो गया। इसके अतिरिक्त इस कार्यवाही से जो देश में तथा बाहर राजनीतिक उथल पुथल हुई उससे फ्रांस की साख को काफी क्षति पहुँची और उसके सिक्के—फ्राङ्क का मूल्य एक दम गिर गया। इससे देश में बड़ी निराशा उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप पुंकारे की स्थिति कमज़ोर हो गई। १९२४ के निर्वाचन में वामपक्षीय दलों ने एक नया दल (Cartel des Gauches—Cartel of the Left) बना कर उसे हरा दिया और उसे त्यागपत्र देना पड़ा।

आर्थिक संकट और पुँकारे –

पुँकारे के स्थान पर अब एदुवर्द हेरियो (Edouard Herriot) प्रधान मंत्री बना। उसने बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति को सम्हालने का प्रयत्न किया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। स्थिति बिगड़ती गई, जल्दी-जल्दी मंत्रिमंडल बनाने लगे परन्तु कोई कुछ न कर सका। प्रतिवर्ष राष्ट्रीय कर्ज़ बढ़ता जा रहा था और फ्रांक का मूल्य गिरता जा रहा था, यहाँ तक कि १९२६ में उसका मूल्य असली मूल्य का दशमांश रह गया। ऐसा मालूम होने लगा कि राज्य शीघ्र ही दिवालिया हो जायगा। इस आशंका से चिन्तित होकर दक्षिणपक्षीय तथा वामपक्षीय दल एक नये सम्मिलित दल (Union Nationale) में शामिल हो गये और उन्होंने पुँकारे को पुनः प्रधान मंत्री कर राष्ट्रीय सरकार का निर्माण किया। उसने प्रशासनीय खर्च में बचत करने तथा नये कर लगाकर बजट को संतुलित करने का प्रयत्न किया। उसके प्रयत्नों से फ्रांक का मूल्य बढ़कर असली के पंचमांश तक पहुँच गया और फ्रेञ्च जनता ने उसे 'फ्राङ्क के रक्षक' की उपाधि देकर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट की।‡ इस

* Ingram : Years of Crisis, pp. 36-37,
‡ Schevill : A History of Europe, p. 804.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सफलता से पुँकारे की स्थिति बड़ी मज़बूत हो गई और १९२८ के निर्वाचन में उसके नेशनल यूनियन को सफलता प्राप्त हुई। परंतु पुँकारे का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। अतः उसने १९२९ में त्यागपत्र दे दिया परंतु शासन नेशनल यूनियन के हाथों में ही रहा।

पुनः आर्थिक संकट और अस्थिर शासन—

१९३२ के निर्वाचन में वामपक्षीयों की विजय रही और रेडिकल दल का नेता हेरियो फिर प्रधान मंत्री बना। परन्तु साम्यवादियों से न बनने के कारण उसे शीघ्र ही त्यागपत्र देना पड़ा। उसके बाद फिर अल्पकालीन मंत्रि-मण्डलों का ताँता लग गया जो सभी वामपक्षीय थे। इस समय तक विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी का प्रभाव फ्रांस पर काफ़ी पड़ने लगा था। निर्यात कम हो रही थी और परोक्ष करों से होने वाली आमदनी से घाटा पड़ रहा था। इस पर कठिनाई यह थी कि योरोप की बिगड़ती हुई राजनीतिक स्थिति के कारण सरकार को सैनिक तैयारी पर खर्च अधिक करना पड़ रहा था। सर-कार बजट के घाटे को कर बढ़ाकर ही पूरा कर सकती थी परंतु कर बढ़ने से उसे जिन दलों की सहायता से वह काम कर रही थी उनका समर्थन खो देने का डर था। इस समय एक दृढ़ सरकार की आवश्यकता थी परंतु सरकार में शामिल रेडिकल, सोश्यलिस्ट तथा कम्युनिस्ट दलों में परस्पर अविश्वास था और ऐसी स्थिति में सुदृढ़ सरकार का निर्माण कठिन था।

भ्रष्टाचार—

यह देखकर जनता का गणतंत्रीय पार्लामेण्ट की व्यवस्था में विश्वास डिगने लगा। इसका एक कारण व्यापक भ्रष्टाचार भी था जिसका १९३४ के आरम्भ में यकायक भण्डाफोड़ हुआ। एक रूसी यहूदी साहूकार स्टेविस्की जाली बाँड बेचकर लाखों रुपए की गड़बड़ करता रहता था। जनवरी १९३४ में पकड़े जाने के भय से उसने आत्महत्या कर ली। जाँच होने पर पता चला कि १९२६ में वह ७५,००,००० फ्राङ्क के गोलमाल के संबंध में पकड़ा गया था परंतु कुछ बड़े आदमियों के प्रभाव से उसके मुकद्दमों की जाँच १९ बार स्थगित कर दी गई थी और अंत में वह मुक्त कर दिया गया था। इस जाँच के संबंध में मालूम हुआ कि इस मामले में बड़े-बड़े आदमियों-मंत्रियों, सरकारी कर्म-चारियों, पार्लामेण्ट के सदस्यों आदि—का भी हाथ था और यह कहा जाता था कि इन लोगों की करतूतों पर पर्दा डालने के लिये पुलिस ने उसे मरवा दिया था।*

---

*Jackson : The Between-War World, p. 72.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जनवादी मोर्चा—

इस भण्डाफोड़ से जनता समझने लगी कि गणतंत्रीय शासन अत्यन्त भ्रष्ट था। गणतंत्र के प्रति असंतोष जनता के सभी वर्गों में था परंतु उसका सबसे अधिक जोर राजसत्तावादियों तथा फ़ेसिस्ट भावनाओं से अनुप्राणित प्रतिक्रियावादी गुट (Croix de Feu) में था जो सबसे अधिक शोर मचा रहे थे, सार्वजनिक प्रदर्शन कर रहे थे और दंगे कर रहे थे जिनमें फ़ेसिस्ट लोग अधिक भाग ले रहे थे। इटली में मुसोलिनी तथा जर्मनी में हिटलर के दलों के इस प्रकार के प्रदर्शन और उनके परिणाम फ़्रांस के स्वतंत्र संस्थाओं के प्रेमियों की स्मृति में ताज़ा थे। उन्हें भय हुआ कि यदि वे मिलकर इस भय का मुकाबला न कर सके तो फ़्रांस में भी इटली और जर्मनी की तरह प्रतिक्रियावादी अधिनायकतंत्र स्थापित हो जायगा।* अतः १९३५ में रेडिकल सोश्यलिस्ट, सोश्यलिस्ट और समाजवादी दल ने अपने कार्यक्रम संबंधी मतभेदों को भुलाकर एक 'जनवादी मोर्चा' (Popular Front) बनाया। १९३६ के निर्वाचन में उसका बहुमत रहा और फ़्रान्स के इतिहास में प्रथम बार एक सोश्यलिस्ट लियों ब्लुम (Leon Blum) प्रधान मन्त्री बना। उसने अपने तथा रेडिकल सोश्यलिस्ट दल में से मन्त्री चुने। साम्यवादी लोग फ़ेसिस्टों के विरोध में सहायता देने को तैयार थे परन्तु सरकार में शामिल होने को नहीं।†

मज़दूरों की अवस्था में सुधार—

ब्लुम ने फ़ेसिस्ट गुटों का दमन किया, परन्तु वह उन्हें निर्मूल न कर सका। वे शीघ्र ही दूसरे नाम से प्रगट होते रहे। उसे सबसे अधिक सफलता मज़दूरों को संतुष्ट करने में मिली जो इस समय एक नये अस्त्र का प्रयोग करने लगे थे। वे कारखानों में घुसकर बैठ जाते थे और काम नहीं करते थे। ब्लुम ने उनके लिए अनेक कानून बनवाकर ४० घण्टे के सप्ताह, वर्ष में दो सप्ताह की तनख्वाह सहित छुट्टी, और कुछ उद्योगों में सामूहिक सौदा करने के अधिकार आदि की व्यवस्था की।§

जनवादी मोर्चे का विध्वंस—

मज़दूरों को कम से कम कुछ दिनों के लिए सन्तुष्ट करने में तो ब्लुम को सफलता मिली परन्तु उसके सामने आर्थिक स्थिति फिर बिगड़ गई जिसके

---

* Somervell : Between the Wars, p. 126.

† Jackson : The Between-War World p. 73.

§ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 442.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कारण उसकी सरकार का पतन हो गया। उसने फ्रान्स के निर्यात को बढ़ाने तथा बजट सन्तुलित करने की दृष्टि से फ्रांक में सोने का अंश कम कर दिया परन्तु इससे उसकी आशाएँ पूर्ण नहीं हुईं और एक वर्ष के अन्दर ही उसे त्यागपत्र देना पड़ा। उसके बाद रेडिकल सोश्यलिस्ट दल का नेता शोतेम्प (Chautemps) प्रधान मन्त्री बना जिसे जनवादी मोर्चे का समर्थन प्राप्त रहा। उसने इंगलैंड, सयुक्त-राष्ट्र आदि का अनुकरण करके अपने देश को सोने के आधार पर रखने का प्रयत्न छोड़ दिया और फ्रांक की कीमत को जो फिर से गिर रही थी उठाया, हालाँकि वह उसे पुंकारे द्वारा स्थापित स्तर पर नहीं ला पाया। अप्रेल १९३८ में रेडिकल सोश्यलिस्ट दल का एक अन्य नेता दलादिये (Daladier) प्रधान मन्त्री बना। वह स्वभाव से कुछ रूढ़िवादी होने के कारण जनवादी मोर्चे की अपेक्षा दक्षिणपक्षीय दलों का समर्थन प्राप्त करने लगा जिससे जनवादी मोर्चा भंग हो गया।*

युद्ध के बादल—

दलादिए के प्रधान मन्त्रित्व-काल में हिटलर की करतूतों के कारण योरोप का राजनीतिक वातावरण अत्यन्त अशान्त हो गया। १९३८ में उसने आस्ट्रिया पर आक्रमण किया और चेकोस्लोवाकिया के स्यूडेटनलैन्ड नामक प्रदेश में भी संकट उपस्थित किया। ऐसा मालूम होने लगा मानो युद्ध सर पर मंडरा रहा था। वैदेशिक समस्याओं के सामने फ्रान्स वाले अपनी घरेलू समस्याओं को भूल गये और अप्रैल १९३९ में पार्लामेंट ने आठ महिनों के लिये दलादिए के मंत्रिमंडल को अध्यादेशों द्वारा शासन करने का अधिकार दे दिया। दलादिए ने इस अधिकार का अच्छी प्रकार प्रयोग करके मज़बूत शासन स्थापित किया और सितम्बर १९३९ में द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ तक फ्रान्स के आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में स्थिरता ला दी।‡

परराष्ट्र-नीति

सुरक्षा—

गृह नीति में, विशेषकर आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में, तो फ्रान्स के विभिन्न दलों में मतभेद था परन्तु परराष्ट्र-नीति के विषय में यह बात नहीं थी क्योंकि उसका आधार फ्रांस और जर्मनी का सम्बन्ध था। इस विषय में सभी

*Schevill : A History of Europe, p. 806.

‡Langsam : The World since 1914, pp. 319-322.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एकमत थे। सभी जर्मनी के संभावित आक्रमण से फ्रांस की सुरक्षा के लिये चिन्तित थे और सभी की परराष्ट्र-नीति का एकमात्र उद्देश्य इस सुरक्षा के साधन खोजना था।

सुरक्षा के साधन—(१) अमेरिका और इंगलैंड की गारण्टी—

पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में क्लीमेन्सो का मुख्य लक्ष्य फ्रांस की सुरक्षा के लिये पूर्ण व्यवस्था करना था। जहाँ उसने सन्धि में जर्मनी के विरुद्ध अनेक दंडात्मक धाराओं को शामिल करवाया था, वहाँ साथ ही उसने संयुक्त राष्ट्र और इंगलैंड से जर्मनी द्वारा फ्रांस पर अकारण आक्रमण होने की अवस्था में सैनिक सहायता का वचन ले लिया था (जून, १९१९)। परन्तु अमेरिका की सीनेट ने सन्धि को स्वीकार नहीं किया और यह आश्वासन रद्द हो गया। इंगलैंड से भी आशा नहीं रही क्योंकि सहायता का वचन तभी बन्धनकारी होता जब अमेरिका उसमें शामिल होता।*

(२) रक्षात्मक सन्धियाँ—

जब सुरक्षा का यह उपाय न रहा तो उसने जर्मनी की सीमाओं पर स्थित छोटे-छोटे राज्यों-बेल्जियम, (१९२०), पोलेण्ड (१९२२) तथा चेकोस्लोवाकिया (१९२४) से रक्षात्मक सन्धियाँ कीं। चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया तथा यूगोस्लाविया ने मिलकर पहले से ही अपना एक रक्षात्मक गुट—लघु मैत्री (Little Entente)—बना रखा था। जब चेकोस्लोवाकिया की फ्रांस से मैत्री हो गई तो उसके द्वारा रुमानिया (१९२६) और यूगोस्लाविया (१९२७) से भी सन्धि करना सरल हो गया। इस प्रकार युद्ध समाप्त होते ही फ्रांस ने युद्ध के पहले बरती जाने वाली—शत्रु को घेरने की—नीति पर अमल करना शुरू कर दिया।† इस तरह फ्रांस ने अपनी सुरक्षा का एक साधन जुटा लिया।

(३) और (४) राष्ट्र-संघ और इंगलैंड से सहयोग—

उसकी सुरक्षा का दूसरा साधन राष्ट्र-संघ था। बहुत से दूरदर्शी फ्रेञ्च राजनीतिज्ञ इस बात को मानते थे कि राष्ट्र-संघ की सामूहिक कार्यवाही से राष्ट्रीय सुरक्षा की कारगर गारंटी मिल सकती है। सुरक्षा का तीसरा साधन इंगलैंड से समान हित के आधार पर अच्छे साधन बनाये रखना था। फ्रान्स

*Langsam : The World since 1914, p. 173.
†Schevill : A History of Europe, p. 807.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की परराष्ट्र नीति के इन तीनों उद्देश्यों में कोई विरोध नहीं था; वे आन्योन्याश्रित थे। छोटे-छोटे राष्ट्रों को अपनी सुरक्षा के लिए राष्ट्र-संघ का ही भरोसा था। इंगलैण्ड भी विरोधी गुटों के निर्माण की अपेक्षा राष्ट्र-संघ को ही शान्ति कायम रखने का अधिक अच्छा और स्थायी उपाय समझता था।* फ्रान्स ने आरम्भ में राष्ट्र-संघ का समर्थन भी किया परन्तु आगे चल कर जब इटली ने एबिसीनिया पर आक्रमण किया तो उस अग्नि-परीक्षा के समय उसने उसे धोखा दिया और स्वयं अपने पैरों कुल्हाड़ी मार ली क्योंकि उससे राष्ट्र-संघ, केवल वही जो जर्मन आक्रमण के विरुद्ध संसार की समस्त शक्तियों को एकत्रित कर सकता था, निर्बल पड़ गया।

फ्रान्स और इंगलैण्ड—मतभेद—

यह स्थिति तो आगे चल कर उपस्थित हुई परन्तु इङ्गलैण्ड से तो फ्रांस के सम्बन्ध आरम्भ से ही बिगड़ने लगे। जर्मनी से कैसा व्यवहार किया जाय इस प्रश्न पर दोनों में बड़ा मतभेद था। जर्मनी से इंगलैण्ड का अच्छा व्यापार होता था और वह चाहता था कि जर्मनी जल्दी ही अपने पैरों पर खड़ा हो जाय और उसकी आर्थिक स्थिति सुधर जाय। परन्तु फ्रान्स जर्मनी के पुनरुत्थान की सम्भावना से चिन्तित था और उसे फिर से उठने देना नहीं चाहता था। वहाँ ब्रियाँ ही ऐसा व्यक्ति था जिसका दृष्टिकोण बड़ा उदार एव अन्तर्राष्ट्रीय था और जो इङ्गलैंण्ड के साथ सहमत था तथा जर्मनी को फिर से योरोपियन राज्य-समाज में ले आने के लिए उसके साथ सहयोग करने के लिए तैयार था। परन्तु फ्रेञ्च लोक-सभा के विरोध के कारण उसे प्रधान-मन्त्रित्व त्यागना पड़ा (१९२२) और उसके स्थान पर संकुचित कट्टर राष्ट्रीय मनोवृत्ति वाला पुंकारे प्रधान मन्त्री बना जो कठोर नीति का समर्थक तथा राजनीतिज्ञों के पारस्परिक सम्पर्क एवं सम्मेलन को 'नई कूटनीति' की जगह 'पुरानी कूटनीति का ही अनुयायी था। उसने ब्रिटेन के विरोध की परवाह न करके, जैसा हम देख चुके हैं, बेल्जियम से मिलकर रूर-क्षेत्र पर सैनिक अधिकार करके जर्मनी को दबाने का प्रयत्न किया।

ब्रियाँ और इंगलैण्ड से सहयोग-लोकार्नो—

परन्तु उसे इसमें सफलता नहीं मिली। फ्रेञ्च लोकमत उसके विरुद्ध हो गया। १९२४ में उसके दल—दक्षिणपक्षीय नेशनल ब्लॉक—का पतन

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 436.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो गया और रेडिकल तथा सोश्यलिस्ट दलों के गुट (Bloc des Gauches) के हाथ में शक्ति पहुँच गई। पुंकारे को त्यागपत्र देना पड़ा और नया मंत्रिमंडल बना जिसमें ब्रियाँ विदेश मन्त्री नियुक्त हुआ। ब्रियाँ की पहले से ही इंगलैण्ड से सहयोग करने (जिसका अर्थ था जर्मनी से नरमी का बर्ताव करना) और अकेले ही कार्यवाही करने की जगह सामूहिक कार्यवाही करने की थी। अब इङ्गलैण्ड के साथ सहयोग होने लगा और 'सान्त्वना' (Appeasement) का युग आरम्भ हुआ।* पेरिस और बर्लिन के बीच सीधी बातचीत होने लगी जिसका परिणाम लोकार्नो की संधियों में दृष्टिगोचर हुआ और जर्मनी को राष्ट्र-संघ की सदस्यता प्राप्त हुई। योरोप में शान्ति का वातावरण स्थापित होता हुआ मालूम पड़ा और फ्रान्स में बाधित सैनिक सेवा की अवधि में एक वर्ष की कमी कर दी गई।

ब्रियाँ-केलॉग सन्धि—

फ्रान्स की स्थित १९२८ में बड़ी सुदृढ़ थी। उसके पास योरोप की सबसे बड़ी सेना थी, सबसे अधिक सोना था, राष्ट्रीय आय खर्च से अधिक थी और उसके बड़े उद्योग-धन्धे भी खूब चल रहे थे। बाहर से संकट की सम्भावना तो थी, जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण का डर था, मुसोलिनी की हेकड़ी बढ़ रही थी, ऑस्ट्रिया और हंगरी में फिर से हाप्सबुर्ग राजवंश के अधीन एक हो जाने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही थी और रूस तो एक पहेली बना हुआ ही था।† फिर भी उस समय स्थिति बड़ी अच्छी थी और फ्रान्स की इच्छा थी कि यही स्थिति बनी रहे। ब्रियाँ उसे फ्रान्स के लिए अधिक अच्छा बनाना चाहता था। उसने अमेरिका से स्थायी शान्ति की सन्धि करने का प्रस्ताव किया परन्तु वहाँ के विदेश-सचिव केलॉग (Kellogg) ने किसी एक देश से ही सन्धि करना अनुचित बतलाकर यह प्रस्ताव किया कि संसार के समस्त राज्य सदा के लिये आक्रमणात्मक युद्ध का विचार छोड़ने का वचन देकर एक सामान्य सन्धि करें। पेरिस में सम्मेलन हुआ और १९२८ तथा १९२९ में पेरिस की सन्धि अथवा ब्रियाँ-केलॉग-सन्धि (Briand-Kellogg Pact) पर ५३ राज्यों ने हस्ताक्षर किये। § सन्धि तो हो गई, परन्तु इससे विभिन्न राज्यों में शान्ति की कोई वास्तविक भावना उत्पन्न हुई हो या भविष्य में शान्ति की गारन्टी

---

* Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 440.

† Jackson : The Between-War World, p. 70.

§ Carr : International Relations Between the Two World Wars, p. 118.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त हो सकी हो ऐसा नहीं मालूम होता। इस सन्धि में ऐसी कोई बात नहीं थी जो किसी राज्य को आत्म-रक्षा का बहाना लेकर युद्ध करने से रोक सकती। इसके अतिरिक्त कई राज्यों ने उस पर कुछ शर्तें लगाकर हस्ताक्षर किये थे।*

राष्ट्र-संघ के अन्तर्गत योरोपीय संघ बनाने का असफल प्रयत्न—

अब ब्रियाँ ने योरोप में शान्ति क़ायम रखने के लिये राष्ट्र-संघ के योरोपीय सदस्यों का एक उप-संघ निर्माण करने का प्रस्ताव किया और भविष्य में उसके आधार पर योरोप के संयुक्त-राष्ट्र का निर्माण हो सकने की आशा प्रकट की। यह प्रस्ताव बिल्कुल निर्दोष मालूम होता था परन्तु उसमें कई आपत्तियाँ थीं। इङ्गलैण्ड को उसमें एक बड़ी आपत्ति दिखाई देती थी। इस उप-संघ में फ्रांस के तो अनेक मित्र होते—बेल्जियम, पोलैंड तथा 'लघु मैत्री' के तीनों राज्य परन्तु इङ्गलैण्ड के डॉमीनियन उसके सदस्य नहीं हो सकते थे। इस प्रकार उसमें फ्रान्स के ६ मत होते जब कि इङ्गलैण्ड का मत एक ही रहता। इसके अतिरिक्त रूस और टर्की को अ-योरोपीय राज्य कह कर अलग रखने से यह संभावना थी कि यह उप-संघ सदा के लिये वार्साई-व्यवस्था में संशोधन रोकने के लिये फ्रान्स के एक षड्यंत्र का रूप ले लेता। अतः ब्रियाँ का प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ और फ्रान्स अपनी सेना की शक्ति बढ़ाने, अपनी पूर्वी सीमा की किलेबन्दी करने और सैनिक ऋण देकर अपने मित्रों की सीमाओं को सुदृढ़ करने की अपनी पुरानी नीति व्यवहार करने लगा।§

लोकार्नो की निस्सारता—जर्मनी और फ्रान्स की पारस्परिक शंका—

यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण था कि फ्रान्स अपनी सुरक्षा के लिये केवल अपने ही ऊपर निर्भर रहना आवश्यक समझता था। लोकार्नो की सन्धि से फ्रान्स और जर्मनी के सम्बन्धों के बारे में एक नये युग का आरम्भ समझा

---

* Ingram : Years of Crisis, p. 58.

§ Jackson : The Between-War World, p. 71 इसी समय फ्रान्स ने अपनी पूर्वी सीमा पर प्रख्यात मेजिनो-पंक्ति (Maginot Line) का निर्माण आरम्भ किया। Maxwell : International Relations, p. 411. मेजिनो पुंकारे के मंत्रिमण्डल में युद्ध मंत्री था। यह पंक्ति जर्मनी की सीमा के सामने थी। फ्रान्स-बेल्जियम की सीमा पर रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था जिधर से जर्मनों ने १९१४ में आक्रमण किया था। यह एक उत्साहहीन योजना थी। Somervell : Between the Wars, p. 123.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। ब्रियाँ ने कई प्रकार से जर्मनी को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया था। डॉवेस-योजना तथा यंग योजना को स्वीकार करके जर्मनी के क्षतिपूर्ति के भार में कमी करने का प्रयत्न किया था और १९३२ के लॉसेन-सम्मेलन में क्षतिपूर्ति का अन्त कर दिया था। उसने जर्मनी को राष्ट्र-संघ में प्रवेश करने में सहायता दी थी, और राइन-प्रदेश से अपनी सेनाएँ १९३० में (निर्धारित समय से पाँच वर्ष पहले) ही हटा ली थीं तथा जर्मनी में सन्धि की शर्तों का पालन कराने के लिये मित्र-राष्ट्रों के जो कमिशन थे वे भी हटा लिये गये थे। यह सब फ्रान्स ने लोकार्नो-भावना के अनुसार किया था परन्तु वह सन्धि और उसकी भावना निस्सार निकली। ऐसा मालूम होता था कि उससे केवल उनकी पारस्परिक घृणा का प्रदर्शन कुछ समय तक स्थगित हो गया था, उनकी पारस्परिक शंका में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। उग्र फ्रेंच राष्ट्रवादी इन सब बातों को फ्रान्स की निर्बलता का प्रदर्शन समझते थे और सोचते थे कि इससे जर्मनी की मांगें और बढ़ेंगी। उनका विचार ठीक ही था। ऑस्ट्रिया को जर्मनी में शामिल करने, शस्त्रीकरण में समानता तथा सीमाओं में संशोधन करने आदि के प्रश्नों पर जर्मनी के साथ फिर तनाव बढ़ा फ्रान्स इन बातों में कुछ भी रियायत नहीं करना चाहता था क्योंकि इन रियायतों से जर्मनी की शक्ति बढ़ती जिससे फ्रान्स की सुरक्षा के लिये खतरा खड़ा हो जाता। फ्रान्स के लिये सुरक्षा का अर्थ था यथास्थिति को अर्थात् फ्रेंच प्राधान्य को यथावत् बनाये रखना। अतः उसने जर्मनी की नई मांगों को अस्वीकार कर दिया जिसका परिणाम उसके लिए घातक प्रमाणित हुआ। जर्मन गणतन्त्र का विनाश हो गया और उसके स्थान पर हिटलर का सैनिक अधिनायकतंत्र स्थापित हुआ। फ्रान्स ने आगे चल कर हिटलर के साथ रियायतें कीं। यदि वे रियायतें गणतंत्र के साथ ही करदी जातीं तो उसका विनाश नहीं होता।*

निःशस्त्रीकरण—

इन्हीं दिनों (१९२७-३३) राष्ट्र-संघ की ओर से निःशस्त्रीकरण के प्रयत्न हो रहे थे परन्तु, जैसा हम आगे देखेंगे, विभिन्न राष्ट्रों के स्वार्थों के संघर्ष के कारण उनमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई और १९३३ में जनीवा निःशस्त्रीकरण-सम्मेलन भंग हो गया। यह सत्य है कि सम्मेलन के भंग होने का कारण यह था कि विभिन्न राज्य अपनी रक्षा के साधनों को दूसरों के हाथों में सौंपने

* Schuman : International Politics, p. 739 ; Maxwell : International Relations, p. 411.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिये राजी नहीं किये जा सके, परन्तु यह बात भी सत्य है कि इस असफलता के मूल में फ्रान्स तथा जर्मनी का परस्पर विरोधी दृष्टिकोण था। * जर्मनी का कथन था कि वार्साई की सन्धि एक नैतिक इक़रार था जिसके अनुसार प्रत्येक सत्ता का यह कर्त्तव्य था कि वह अपना निःशस्त्रीकरण करके जर्मनी के स्तर पर आ जाय। इसके विपरीत फ्रान्स की राय थी कि सन्धि से किसी राज्य के लिये अपनी सैन्य शक्ति को कम करने का दायित्व उत्पन्न नहीं होता था। इस प्रश्न पर कोई समझौता न होने पर हिटलर ने (जो उस समय तक जर्मनी का चान्सलर बन चुका था) अक्टूबर १९३३ में जर्मनी को सम्मेलन से अलग कर लिया और राष्ट्र-संघ से भी त्यागपत्र दे दिया। इतना ही नहीं, उसके वार्साई की सन्धि को भंग करके जर्मनी का पुनः शस्त्रीकरण आरम्भ कर दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय संकट का आरम्भ—

हिटलर के उदय के साथ योरोप की राजनीतिक स्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया और अन्तर्राष्ट्रीय संकट के युग का आरम्भ हुआ। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय संकट का आरम्भ १९३१ में ही हो चुका था जब कि आर्थिक मन्दी का प्रभाव सारे संसार में व्याप्त हो चुका था। उसी वर्ष जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण करके चुनौती दी थी। अब तक तो योरोप में फ्रान्स का प्राधान्य बना हुआ था परन्तु अब उसे जर्मनी की ओर से अपनी सुरक्षा को ख़तरा दिखाई देने लगा। देश के अन्दर भी यह समय बड़ा संकट का था। इंगलैण्ड के प्रति उसे शंका थी और इटली नाराज़ था। रूस से भी उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। छोटे-छोटे मध्य योरोपीय राज्यों से उसकी मित्रता अवश्य थी परन्तु जर्मनी के मुकाबले में उनकी सहायता का कोई विशेष मूल्य नहीं था। ऐसी स्थिति में उसे किसी बड़ी शक्ति से मित्रता करना आवश्यक मालूम होता था।

रूस और इटली से मित्रता--

अतः अब फ्रान्स ने रूस और इटली से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न आरम्भ किया। उसने १९३४ में रूस को राष्ट्र-संघ में प्रवेश करने में सहायता दी और अगले वर्ष उससे संधि कर ली जिसके अनुसार युद्ध के समय दोनों ने एक दूसरे की सहायता का वचन दिया। जैसा हम पहले देख चुके हैं, उसने इटली की शिकायतों को दूर करके उससे भी समझौता कर लिया। इटली को भी आरम्भ में जर्मनी से भय था। अतः उसके विरुद्ध कुछ दिनों तक दोनों का

* Schevill : A History of Europe, p. 809.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहयोग होता रहा। उन्होंने इंगलैंड से मिलकर ऑस्ट्रिया की स्वतंत्रता की गारंटी दी (१९३४) और १९३५ में स्ट्रेसा के स्थान पर वार्साई की सन्धि तथा राष्ट्र-संघ की रक्षा के लिये भी घोषणा की। इटली को प्रसन्न रखने के लिये उसने एबिसीनिया के मामलों में राष्ट्र का पूरा-पूरा साथ नहीं दिया जिससे वह इटली के विरुद्ध कोई कड़ी कार्रवाई नहीं कर सका और इटली ने एबिसीनिया विजय कर लिया। इससे राष्ट्र-सङ्घ की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्क लगा। उसकी निर्बलता अच्छी तरह से प्रगट हो गई और फ़्रान्स की सुरक्षा का एक साधन--राष्ट्र-संघ द्वारा सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था-नष्ट हो गया। इसके परिणाम-स्वरूप उसकी सुरक्षा का साधन—छोटे राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध—भी नष्ट हो गया। छोटे राज्यों को अपनी सुरक्षा के लिए राष्ट्र-संघ का ही भरोसा था परन्तु जब उन्होंने देखा कि राष्ट्र-संघ इटली जैसे सशक्त राष्ट्र से एबिसीनिया की रक्षा नहीं कर सका तो उन्हें उसका भरोसा नहीं रहा, उन्होंने तटस्थता अख्त्यार कर ली और जर्मनी के डर से उसकी ओर झुकने लगे।* फ़्रान्स का उनकी मित्रता के बल पर अब तक जो प्राधान्य था वह लुप्त हो गया। इतना ही नहीं, जिस इटली को प्रसन्न करने के लिए उसने यह सब किया था वह भी निराश हो गया क्योंकि फ़्रान्स ने इस समय दोरङ्गी चाल चली थी। वह इटली को प्रसन्न करने के साथ-साथ इंगलैंड को भी अप्रसन्न नहीं करना चाहता था, अतः उसने ऊपर से दिखाने के लिए राष्ट्र-संघ में इटली के विरोध में तथा उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगाने में उसके साथ सहयोग दिया था। इसी कारण इंगलैण्ड भी रुष्ट हो गया।† इस प्रकार फ़्रांस की सुरक्षा के समस्त बाहरी साधन भी एक एक करके नष्ट हो गये राष्ट्र-संघ निर्बल हो गया, छोटे राज्यों ने तटस्थता स्वीकार कर ली और इंगलैण्ड भी नाराज़ हो गया।

---

*Schuman : International Politics, p. 741.

†Brogan : The Development of Modern France p. 697. फ़्रेञ्च विदेश-मन्त्री लावाल ने इंगलैण्ड और इटली को यह समझ कर सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया कि दोनों जर्मनी के विरुद्ध फ़्रान्स का समर्थन करेंगे। इंगलैण्ड को प्रसन्न रखने के लिए उसने जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण को स्वीकार कर लिया और इटली के विरुद्ध प्रतिबन्ध लगाने में उसका समर्थन किया। इटली को प्रसन्न करने के लिए उसने एबिसीनिया सम्बन्धी उसकी आकाँक्षाओं का अनुमोदन किया और राष्ट्र-संघ को निर्बल किया ऐसा करने से उसे किसी बात की सफलता नहीं हुई। इंगलैण्ड और इटली दोनों को उससे विरक्ति हो गई, जर्मनी का पक्ष मजबूत हो गया और फ़्रेञ्च शक्ति एवं प्रतिष्ठा को क्षति पहुँची। Schuman : International Politics, p. 740.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार फ्रान्स की स्थिति बड़ी कठिन हो गई। हिटलर यह सब देख रहा था। उसने इस स्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाया। उसने मार्च १९३६ में राइन-प्रदेश में अपनी सेना भेजकर वार्साई की सन्धि को पुनः भंग किया और अपनी पश्चिमी सीमा की किलेबन्दी आरम्भ करके फ्रान्स की मेजिनो पंक्ति (Maginot line) के मुकाबले में साइग फ्राइड-पंक्ति (Seigfreid line) का निर्माण कर लिया।

हिटलर की यह कार्रवाई वास्तव में फ्रान्स की सुरक्षा के लिए बड़ी खतरनाक थी और हिटलर की प्रगति को रोकना अत्यन्त आवश्यक था। हिटलर की सैन्य तैयारी अभी पूरी नहीं थी और उसकी सेना के अधिकारियों ने हिटलर को राइन-प्रदेश में सेना भेजने से रोकने का प्रयत्न भी किया था। यदि फ्रान्स इस समय अपनी सेना हिटलर के विरुद्ध भेज देता तो उसे अवश्य पीछे हटना पड़ता। परन्तु दुर्भाग्यवश स्वयं फ्रान्स में मतभेद था। सरकार तो सेना भेजना चाहती थी परन्तु सेना के अधिकारी शान्ति रखने के लिये अनुरोध कर रहे थे।* ऐसी स्थिति में फ्रान्स ने इङ्गलैण्ड का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया और उससे परामर्श किया। इङ्गलैण्ड को हिटलर से सहानुभूति थी और वह उसे सन्तुष्ट करना चाहता था। अतः उसने फ्रान्स को सेना भेजने से मना कर दिया और राष्ट्रसंघ से शिकायत करने की सलाह दी। परन्तु राष्ट्र-संघ ने हिटलर की निन्दा करने के अतिरिक्त, जिसमें इङ्गलैंड ने भी साथ दिया, कुछ नहीं किया और हिटलर के बढ़ते हुए हौसलों पर रुकावट लगाने का अन्तिम अवसर निकल गया। फ्रांस की इस कमज़ोरी से स्थिति उसके हाथ से निकल गई और अब घटना-चक्र का निर्धारण फ्रान्स की जगह जर्मनी और इङ्गलैण्ड के हाथों में पहुँच गया। वास्तव में अब फ्रांस की कोई विदेश नीति न रही, वह इङ्गलैण्ड की विदेश-नीति में सम्मिलित हो गई क्योंकि अब फ्रांस अपनी विदेश-नीति में बिल्कुल इङ्गलैण्ड पर निर्भर रहने लगा।‡

अब हिटलर की ज़्यादतियाँ आरम्भ हुईं और इङ्गलैण्ड तथा फ्रान्स चुपचाप देखते रहे। उसने इटली के साथ स्पेन के गृह-कलह में फ्रेंकों को सहायता दी। फ्रान्स की सरकार स्पेन की गणतन्त्रीय सरकार को सहायता देना चाहती थी परन्तु इंगलैण्ड की धमकी में आकर वह हस्तक्षेप न करने की

---

* Churchill : The Second World War, Vol. I. p. 174.

‡ David Thomson : French Foreign Policy, p. 29.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीति का ही अवलम्बन करती रही।* १९३८ में तो फ्रान्स की विदेश-नीति पूर्णतया इंगलैण्ड की विदेश-नीति में विलीन हो गई और जब हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया को हड़पने का निश्चय किया तो फ्रान्स से कुछ करते न बना। उसने १९२५ में चेकोस्लोवाकिया से सन्धि करके उसकी रक्षा का दायित्व स्वीकार किया था। मई १९३८ में दलादिये ने उसे अपने दायित्व को निभाने का आश्वासन भी दिया था परन्तु इंगलैण्ड अब भी हिटलर को सन्तुष्ट करने की नीति पर ही अड़ा हुआ था। फ्रान्स को भी युद्ध के डर तथा आन्तरिक मतभेद के कारण इंगलैंड का साथ देना पड़ा और चेकोस्लोवाकिया का अंगभंग हो गया। उसके बाद, जैसा हम देख चुके हैं, हिटलर ने अवशिष्ट चेकोस्लोवाकिया को भी हड़प लिया जिस पर इंगलैंड ने उसका विरोध करना शुरू किया। फ्रान्स ने भी उसका साथ दिया और उसके साथ पोलैंड आदि देशों को गारण्टी दी। परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। फ्रान्स की नीति जर्मनी को निर्बल रख कर तथा अपनी सुरक्षा के साधनों को बढ़ा कर युद्ध को रोकने और यदि युद्ध न रोका जा सके तो कम से कम पराजय से बचने की थी। परन्तु यह नीति पूर्णतया असफल रही। जब हिटलर ने पोलेण्ड पर १ सितम्बर को आक्रमण किया तो ३ सितम्बर को इंगलैंड के साथ फ्रान्स ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया और ६ महीने के अन्दर ही फ्रान्स धराशायी हो गया।

———

*इंगलैण्ड ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि स्पेन को सहायता देने से धुरी-शक्तियों (जर्मनी और इटली) से युद्ध छिड़ गया तो वह अकारण युद्ध नहीं होगा और इंगलैण्ड पर लोकार्नो की सन्धि के अनुसार सहायता देने का दायित्व नहीं रहेगा। Maxwell : International Relations, p. 429.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २१

उदारवाद की विजय

इंगलैण्ड

युद्धोत्तर समस्याएँ—

महायुद्ध की समाप्ति के समय इंगलैण्ड में लॉयड जार्ज का सम्मिलित मन्त्रि-मंडल था जिसका निर्माण १९१६ में हुआ। रणक्षेत्रों से दूर होने के कारण इंगलैण्ड की उतनी हानि नहीं हुई थी जितनी फ्रांस या बेल्जियम की और आरम्भ में जर्मनी को चूस लेने की भावना प्रबल होते हुए भी वहाँ लोग महायुद्ध को इतिहास की वस्तु समझने और यदि अन्य राष्ट्र उसे भूलने देते तो उसे भूलने के लिये तैयार थे।* युद्ध के पहले इंगलैंड संसार का सबसे धनी देश, संसार का कारखाना और उसका साहूकार था और किसी को भी इस बात में कोई सन्देह नहीं था कि युद्ध की समाप्ति पर वह फिर अपनी पूर्व स्थिति में पहुँच जायगा। परन्तु यह आशा शीघ्र ही निराशा में बदल गई। इंगलैण्ड की राष्ट्रीय आय के चारों बड़े स्त्रोत सूखते जा रहे थे। प्रथम, उसकी निर्यात गिर गई। ब्रिटेन के कारखानों में बना हुआ माल पहले कई देशों में बिका करता था परन्तु अब उन्हें उसकी आवश्यकता कम रह गई थी। उसके तैयार माल का मुख्य खरीदार भारतवर्ष था परंतु युद्ध के दिनों में भारत के उद्योग-धन्धे काफ़ी उन्नति कर गये थे। वहाँ बहुत सा कपड़ा तथा अन्य सामान बनने लगा था। साथ ही जापान ने भी अपने व्यवसायों की तरक्की कर ली थी। जिन दिनों जर्मनी इंगलैंड के जहाज़ों को डुबा रहा था और उसका माल भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी देशों को नहीं पहुँच रहा था, उन दिनों जापान ने भारत तथा एशिया के अन्य बाज़ारों को अपने सस्ते माल से भरना आरम्भ कर दिया था और युद्ध के बाद इन बाज़ारों में जापान से मुकाबला करना इंगलैण्ड के लिए कठिन हो गया। योरोप के कई देशों, विशेषकर हॉलैण्ड, स्केण्डिनेविया तथा इटली को इङ्गलैण्ड से बहुत सा कोयला जाता था, परन्तु अब उसकी माँग में भी कमी हो गई। जर्मनी क्षतिपूर्ति के रूप में फ्रांस को प्रतिवर्ष २० लाख टन कोयला देता था। फ्रांस को इतने कोयले की आव-

* Somervell : Between the Wars, p. 129.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्यकता नहीं थी और वह उसमें से बहुत सा उन देशों को सस्ते दामों पर बेच देता था। द्वितीय कोयले के व्यवसाय के साथ इङ्गलैंड के जहाज़ी व्यवसाय की भी हानि हुई। जहाज़ों को कोयला ढोने से जो आय होती थी वह कम हो गई। हाँ, जर्मनी के व्यापारी बेड़े को छीन लेने से इंगलैण्ड के जहाज़ों को यात्री लाने ले जाने से आमदनी होने लगी परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ के जहाज़ बनाने वाले कारखानों का काम कम हो गया और १९२१ तक उन कारखानों में काम करने वालों में से दो तिहाई बेकार हो गये।* तृतीय, इङ्गलैण्ड का करोड़ों पौंड रूस में लगा हुआ था जिसे रूस की नई बॉल्शेविक-सरकार ने अदा करने से इन्कार कर दिया। पहले तो उसने अन्य देशों से मिल कर बॉल्शेविक-विरोधियों को सहायता देकर उन्हें हराने का प्रयत्न किया परन्तु अन्त में बॉल्शेविक दल विजयी हुआ और इङ्गलैण्ड का रुपया मारा गया। युद्ध के दिनों में इङ्गलैण्ड ने बहुत सा धन अपने मित्रों को भी ऋण में दिया था जिसे वसूल करना कठिन था। इसके साथ ही उसने स्वयं अमेरिका से कई अरब पौंड ऋण ले रखा था जिसे चुकाना अत्यन्त कठिन था। अन्त में इङ्गलैण्ड में रुपए की कमी हो गई थी और लन्दन का स्थान, जो युद्ध के पहले संसार का बैंकिंग-केन्द्र था, न्यूयार्क ने ले लिया था। इस प्रकार युद्ध की समाप्ति के साथ ही इङ्गलैंड को भी बड़ी विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा।

बेकारी—

इन समस्याओं में सबसे विकट समस्या बेकारी की थी। जुलाई १९२१ में इङ्गलैण्ड में बेकार मजदूरों की संख्या २० लाख से भी अधिक थी।† कारखानों के मालिक मजदूरों की दर में कमी करना चाहते थे क्योंकि उसके बिना उनका खर्च पूरा नहीं हो सकता था और मज़दूर कम मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार नहीं थे। लॉयड जॉर्ज को इस समस्या पर ध्यान देना पड़ा। १९११ में बिस्मार्क का अनुकरण करके मज़दूरों की बेकारी के समय के लिए बीमा-व्यवस्था की थी जिसके अनुसार बीमा-फण्ड में सरकार भी कुछ रुपया देती थी। उसने राज्य की ओर से दिये जाने वाले धन में वृद्धि कर दी और बेकार मजदूरों को निर्वाह-खर्च दिया जाने लगा। यह व्यवस्था करके उसने मज़दूरों को भूखे मरने से और क्रांतिकारी विचारों से तो रक्षा कर ली परंतु उससे इङ्गलैण्ड की

*Jackson : The Between-War World, p. 108.
†Hazen : Modern European History, p. 718.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर्थिक दशा में कोई सुधार नहीं हो सकता था। बजट में घाटा हो रहा था और इस व्यवस्था की सफलता के लिये अधिक धन की आवश्यकता थी। अतः उसने कई प्रकार से खर्च में बचत की, आय-कर की दर में भारी वृद्धि की और १९२१ में चिरकाल से प्रतिष्ठित मुक्त व्यापार की नीति का परित्याग करके बाहर से आने वाली कुछ वस्तुओं पर आयात कर लगाया।*

कंज़र्वेटिव सरकार—बॉल्डविन का प्रथम मन्त्रि-मण्डल—

लॉयड जॉर्ज कंज़र्वेटिव लोग सन्तुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने उसका समर्थन करना बन्द कर दिया। उसने इस्तीफ़ा दे दिया और नये निर्वाचन में कंज़र्वेटिव दल ने विजयी होकर अपना मंत्रि-मण्डल बनाया जिसमें बोनर लॉ प्रधान-मन्त्री बना। परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उसने कुछ दिन बाद ही इस्तीफ़ा दे दिया और उसके स्थान पर बॉल्डविन प्रधान-मन्त्री नियुक्त हुआ। कंज़र्वेटिव दल देश की आर्थिक दशा को सम्हालने के लिये आवश्यक समझता था कि रुपये के बाजार में लन्दन की स्थिति पहले जैसी ही हो जाय। परन्तु यह कार्य सरल नहीं था। उसे बहुत सा धन अपने कर्ज़दारों से वसूल करना था परन्तु उसे भी २२० करोड़ पौंड अमेरिका को देना था। उसने यह घोषणा की कि यदि अमेरिका अपना रुपया छोड़ दे तो इङ्गलैण्ड भी अपना छोड़ देगा परन्तु अमेरिका इस बात के लिये तैयार नहीं हुआ। इंगलैण्ड के लिये संसार में अपनी साख जमाना अत्यन्त आवश्यक था। अतः उसने अमेरिका को सारा ऋण ६२ किश्तों में अदा करने का वचन दिया। यह एक बहुत भारी ज़िम्मेदारी थी। इतना ऋण नये कर लगा कर ही चुकाया जा सकता था जिसका भार देश के उद्योगों पर ही पड़ने वाला था। इससे उद्योगों की भारी हानि की सम्भावना थी परन्तु कंज़र्वेटिव सरकार ने ऐसा करके संसार में इंगलैण्ड की स्थिरता तथा ईमानदारी का प्रमाण देकर उसकी प्रतिष्ठा पुनः जमा ली। इसके साथ ही बड़ी कठिनाइयाँ होते हुए भी उसने इंगलैण्ड की मुद्रा को सोने के आधार पर फिर स्थिर कर दिया और लन्दन फिर से संसार का बैंकर हो गया।†

प्रथम मज़दूर सरकार—

यह व्यवस्था अप्रैल १९२५ तक हो पाई, परन्तु इसके पहले ही कंजर्वे-

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 699.

† Jackson : The Between-War World, p. 109.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टिव दल के हाथों से सत्ता निकल चुकी थी। बॉल्डविन संरक्षण की नीति में आगे बढ़ना चाहता था परन्तु उसके लिये वह देश को स्वीकृति चाहता था।* अतः उसने १९२४ में नया निर्वाचन कराया जिसमें कञ्ज़र्वेटिव दल को २५८, लिबरल दल को १५७ और लेबर दल को १९१ स्थान प्राप्त हुए। लिबरल तथा लेबर दल आयात कर के विरुद्ध थे। इन दोनों की संख्या कञ्जर्वेटिव दल से अधिक होने के कारण उसे स्तीफ़ा देना पड़ा और लिबरल दल के समर्थन के साथ लेबर दल ने इंगलैंड के इतिहास में प्रथम बार अपना मन्त्रि-मण्डल बनाया जिसमें रेमज़ेमेक्डॉनेल्ड प्रधान मन्त्री बना।

मज़दूर दल की उन्नति—उदार दल का ह्रास—

युद्धोत्तर इंगलैंड की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना मज़दूर (Labour) दल का उत्थान तथा उदार दल का अवसान है।‡ उस समय औद्योगिक मज़दूरों की दशा बिगड़ रही थी। उनके रहने सहने की व्यवस्था बड़ी खराब थी, बेकारी बराबर बनी हुई थी और देश में बाहुल्य होते हुए भी ग़रीबी उनके सामने मुँह बाये खड़ी थी। ऐसी अवस्था में वे बड़े असन्तुष्ट थे और उसका तुरन्त प्रभावकारी इलाज चाहते थे। मज़दूर दल इन बीमारियों का एक मात्र इलाज समाजवाद समझता था और मुख्य उद्योग-धन्धों, रेलवे, बैंकों तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण की माँग करता था ताकि जो धन अभी तक पूँजीपतियों की तिजोरियों में पहुँचता था वह सरकार के कोष में जाने लगे और सरकार सम्पत्ति का अधिक न्यायपूर्ण वितरण कर सके। मज़दूरों को यह कार्यक्रम बड़ा आकर्षक मालूम होता था। अतः मज़दूर दल का ज़ोर बढ़ने लगा। अनुदार (Conservative) दल समाजवाद का विरोधी था और उसका दावा था कि पूँजीवादी व्यवस्था में ही बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल आवश्यक सुधार करके स्थिति ठीक की जा सकती है। उदार (Liberal) दल के पास इन दोनों के बीच की कोई ऐसी बात नहीं थी जिसे वह देश की जनता के सामने रखता। अतः धीरे-धीरे उसकी शक्ति क्षीण होने लगी।

मज़दूर सरकार का भंग—

मेकडॉनेल्ड ने अपनी सरकार का तो निर्माण कर लिया परन्तु उदार दल की सहायता पर निर्भर होने के कारण, जो समाजवाद का विरोधी था,

*Slosson ; Europe since 1870, p. 721.

‡ Carter and Mears : A History of Britain, p. 1003.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह उद्योगों तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण की बात नहीं कर सकता था और ऐसे ही काम कर सकता था जिससे उदार दल वाले नाराज़ न हों। अतः वह केवल कुछ आयात-निर्यात करों को रद्द करवाने और मज़दूरों के लिए मकानों के निर्माण के लिए पार्लामेंट से स्वीकृति लेने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाया। वह बेकारी का भी कोई इलाज नहीं कर सका। परन्तु उसकी इस मर्यादित नीति से उसके ही दल के कुछ लोग असन्तुष्ट हो गये तथा उदार दलीय लोग उसके खर्चीले तथा बेकारों की सहायता के लिए किए जाने वाले व्यय से ही नाराज़ हो गए और जब उसने रूस के व्यापार से लाभ उठाने की दृष्टि से उसकी साम्यवादी सरकार को कूटनीतिक स्वीकृति प्रदान की तो उदार दल ने चिढ़कर उसका साथ छोड़ दिया।* इस पर मेकडॉनेल्ड ने पार्लामेंट को भंग करवाकर दूसरा निर्वाचन करवाया (अक्टूबर १९२४) परन्तु उसमें अनुदार दल की विजय हुई। मजदूर दल को १५५ स्थान मिले और उदार दल को केवल ३६। मेकडॉनेल्ड ने त्याग-पत्र दे दिया और स्टेनली बॉल्डविन द्वितीय बार प्रधान मन्त्री बना।

बॉल्डविन का द्वितीय मन्त्रिमण्डल—सामान्य हड़ताल—

बॉल्डविन का मंत्रिमंडल ५ वर्ष तक रहा। उसने मेकडॉनेल्ड की नीति का परित्याग करके 'संरक्षण' की नीति अपनाई। परन्तु उसे आरम्भ से ही औद्योगिक क्षेत्र में एक बड़े संकट का सामना करना पड़ा जिसका आरम्भ कोयले के उद्योग में हुआ। युद्धकाल में कोयले की मांग बहुत थी और खानों में खूब काम हो रहा था परन्तु युद्ध के बाद देश के अन्दर कारखानों की माँग कम हो गई और बाहर की माँग तो प्रायः समाप्त हो गई। अतः कई खानें बन्द हो गईं और हज़ारों मज़दूर बेकार हो गये। कठिनाई बढ़ी और मई १९२६ में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। ट्रेड यूनियनों ने उनकी सहायता की और उनके साथ सहानुभूति प्रगट करते हुए यातायात (रेलवे आदि) छापेखानों तथा अन्य खानों आदि के मज़दूरों ने भी हड़ताल कर दी और इस प्रकार हड़ताल ने 'सामान्य हड़ताल' (General Strike) का रूप धारण कर लिया। परन्तु इस हड़ताल का मनोवांछित फल नहीं निकला। सरकार ने जनता से सहायता की प्रार्थना की और हजारों स्वयंसेवकों ने हड़तालियों का काम सम्हाल कर उन्हें विफल कर दिया। आम हड़ताल तो नौ दिन में ही टूट गई। कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों की हड़ताल ६ महिने तक

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 700.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चलती रही। अन्त में जाड़ा आने पर उन्हें भी दबना पड़ा और मालिकों की (कम वेतन और अधिक काम की) शर्तों को स्वीकार करके उन्होंने हड़ताल बंद कर दी। इस संकट का तात्कालिक परिणाम तो प्रतिक्रियावादी हुआ हाँलाकि वह अल्पकालीन ही रहा। पार्लामेंट ने एक एक्ट (Trades Disputes Act) पास करके हड़ताल को ग़ैर कानूनी घोषित कर दिया, पिकेटिंग का निषेध कर दिया और ट्रेड यूनियन के कामों पर भी कई प्रकार के नियन्त्रण लगा दिये। इस प्रतिक्रियावादी लहर में अनुदार लोगों ने लॉर्ड सभा को, उन अधिकारों में से जो १९११ में छीन लिए गये थे, कुछ अधिकार वापस देने का प्रयत्न किया परंतु उसका घोर विरोध होने पर उन्हें अपना इरादा छोड़ना पड़ा।* जैसा हम अभी कह चुके हैं, यह प्रतिक्रियावादी लहर अल्पकालीन रही। १९२८ में पार्लामेंट ने स्त्रियों को भी उन्हीं शर्तों पर मताधिकार दे दिया जिन पर पुरुषों को प्राप्त था और इस प्रकार स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार देकर विधान को पूर्णतया प्रजातंत्रीय बना दिया।

द्वितीय मजदूर सरकार—

अगले वर्ष (१९२९) में पार्लामेंट का चुनाव हुआ जिसमें मज़दूर दल को सबसे अधिक (२८९) स्थान मिले। अनुदार दल की स्थिति गिर गई। उसे केवल २५९ स्थान प्राप्त हुए और उदार दल को ५८ स्थान मिले। बॉल्डविन ने त्यागपत्र दे दिया और रेमज़े मेकडॉनेल्ड ने द्वितीय मज़दूर मंत्रिमण्डल बनाया (१९२९-१९३१)। पार्लामेंट में अपना अजेय बहुमत न होने के कारण उसे फिर भी उदार दल का समर्थन लेना पड़ा। इसबार भी वह आर्थिक समस्याओं को हल करने में सफल नहीं हो सका और दुर्भाग्यवश १९३१ में उसे विश्वव्यापी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा जिसका इंगलैण्ड पर भी उस वर्ष तक पूर्ण अनिष्टकारी प्रभाव पड़ने लग गया था। इंगलैण्ड की बैंकिंग व्यवस्था में बड़ी स्थिरता आ गई, सरकारी बजट में घाटा होने लगा और देश के आर्थिक क्षेत्र में बड़ा आतंक छा गया। उसके अर्थमंत्री स्नोडन ने सरकारी खर्च और बेकारों को दी जानेवाली सहायता में कमी करने का प्रस्ताव किया। मेकडॉनेल्ड ने तो उसका समर्थन किया परन्तु इस प्रश्न पर मज़दूर दल में फूट पड़ गई।† मंत्रि-मण्डल के अधिकांश सदस्यों ने भी

---

* Hazen : Modern European History, p. 723.

† Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 701.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसका समर्थन करने से इन्कार कर दिया। इस पर मेकडॉनेल्ड ने अनुदार और उदार दल से उस राष्ट्रीय संकट में उसकी सहायता करने और सम्मिलित मंत्रि-मण्डल बनाने का प्रस्ताव किया। अनुदार दल वाले और कुछ उदार दल वाले राज़ी हो गये। मेकडॉनेल्ड ने समस्त मंत्रि-मंडल का इस्तीफ़ा दे दिया और एक नया 'राष्ट्रीय' (National Coalition) मंत्रि-मण्डल का निर्माण किया (अगस्त १९३१) जिसमें कुछ मज़दूर दल के और कुछ उदार दल के परन्तु अधिकांश मंत्री अनुदार दल के थे। अनुदार दल के नेता बॉल्डविन और नेविल चेम्बरलेन इस मंत्रि-मंडल में शामिल थे।

राष्ट्रीय मन्त्रि-मण्डल—

राष्ट्रीय मन्त्रि-मण्डल को अपनी सारी शक्ति आर्थिक संकट का मुकाबला करने में लगानी पड़ी। कर बढ़ाये गये और सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कमी की गई। उसने पौंड का सोने से सम्बन्ध तोड़ दिया (सितम्बर १९३१) जिससे पौंड की क़ीमत गिर गई, इङ्गलैण्ड संसार के बाजारों में अन्य देशों से जिन्होंने पहले से ही अपने सिक्कों की कीमत गिरा रखी थी, बराबरी से मुकाबला कर सका और ब्रिटिश व्यापार को प्रोत्साहन मिला।* इससे देश में फिर विश्वास लौट आया। यह देख कर मेकडॉनेल्डने अपनी राष्ट्रीय सरकार की नीति के लिए जनता का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए पार्लामेंट का नया निर्वाचन करवाया जिसमें राष्ट्रीय सरकार के समर्थकों को ६१५ में से ४९३ स्थान प्राप्त हुए। मेकडॉनेल्ड फिर प्रधान-मन्त्री बना, वॉल्डविन उप-प्रधान-मंत्री हुआ, नेविल चेम्बरलेन अर्थ-मन्त्री नियुक्त हुआ और जॉन साइमन विदेश-मन्त्री बनाया गया। मेकडॉनेल्ड प्रधान-मन्त्री तो था परन्तु वास्तव में पार्लामेंट और मन्त्रि-मण्डल दोनों में अनुदार दल का प्राधान्य था। पार्लामेंट में अनुदार दल के ३२७ सदस्य थे। १९३१ से १९३९ तक ब्रिटिश सरकार अनुदार एवं 'राष्ट्रीय' रही। नाम के लिए तो वह 'सम्मिलित' (Coalition) सरकार थी परन्तु वह वास्तव में अनुदार दलीय थी। जिस प्रकार युद्धकाल में अनुदार दल ने उदारदलीय लॉयड जार्ज को अपने में सम्मिलित कर लिया था, उसी प्रकार अब उन्होंने मजदूर दलीय मेकडॉनेल्ड को अपने साथ ले लिया और १९३५ तक मेकडाकेल्ड के नेतृत्व में, १९३२ से १९३७ तक बॉल्डविन के और उसके आगे नेविल चेम्बरलेन के नेतृत्व में सरकार अनुदार एवं राष्ट्रीय नीति का अवलम्बन करती रही।† १९३२ में 'मुक्त व्यापार' की नीति का क़रीब क़रीब परित्याग

*Hazen : Modern Europe History, p. 725.

†Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II. p. 702.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करके संरक्षण नीति अपना ली गई और अनेक वस्तुओं पर भारी आयात कर लगाये गये। इसके साथ ही ब्रिटिश डॉमीनियनों के व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए ओटावा की इम्पीरियल कॉन्फ्रेन्स में उसने उनके मुकाबले में अन्य देशों से आयात पर अधिक ऊँचे कर लगाना स्वीकार किया। १९३४ तक संसार में सर्वत्र आर्थिक संकट प्रायः समाप्त हो चुका था। कुछ तो उसके प्रभाव से और कुछ उपर्युक्त उपायों से राष्ट्रीय सरकार इङ्गलैण्ड की आर्थिक दशा को सम्हाल सकी।* परन्तु १९३५ से योरोप के वातावरण में अशान्ति छाने लगी और जर्मनी की सैनिक नीति के कारण सभी देश शस्त्रास्त्र बढ़ाने लगे। इङ्गलैण्ड ने महायुद्ध की समाप्ति के बाद अपनी सैन्यशक्ति बहुत घटाली थी परन्तु कुछ वर्षों से उसने अपनी थल सेना तथा जल सेना पर खर्च बढ़ाना शुरू कर दिया था। अब उसमें और भी वृद्धि की गई। इससे सरकार के खर्च में भारी वृद्धि होने लगी। इसके साथ ही अभी तक बेकारों की सहायता के लिए भी काफी खर्च हो रहा था। इस ख़र्च के भार को कुछ तो, जैसा हम अभी लिख चुके हैं, गोल्ड स्टेण्डर्ड का परित्याग करके और कुछ संयुक्त राष्ट्र को कर्ज़ की किश्त देना बन्द करके सरकार ने कम करने का प्रयत्न किया।

साम्यवाद और फ़ेसिज्म—

युद्धोत्तर काल के अधिकांश में, जैसा अभी तक प्रकट हो गया होगा, और सबसे अधिक संकटमय समय में इङ्गलैण्ड में अनुदार दल का प्राधान्य रहा। उदारदल इस समय निर्बल पड़ गया था और अनुदार दल का विरोध करने वाला मुख्य दल मज़दूर दल था। मेकडॉनेल्ड और उसके साथियों (National Laborites) के अलग हो जाने से मज़दूर दल को क्षति तो अवश्य पहुँची थीं और वह कुछ कमज़ोर हो गया था परन्तु यह निर्बलता अल्पकालीन थी और देश में अनुदारवाद तथा समाजवाद का विरोध अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि इंगलैण्ड में क्रान्ति या अधिनायकतन्त्र की तैयारी हो रही थी।† इतना तो अवश्य था कि युद्धोत्तर काल में इंगलैण्ड में पार्लामेण्टरी शासन की असाधारण मात्रा में आलोचना होती रही। एक ओर तो कुछ मज़दूर लोग और कुछ बुद्धिजीवी लोग रूसी ढंग के साम्यवाद का समर्थन कर रहे थे और दूसरी ओर एक व्यक्ति सर ओस्वाल्ड मोजले (Sir Oswald Mosley,) जो कभी अनु-

*Carter and Mears : A History of Britain, p. 1006.

†Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 702.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दारवादी और कभी उग्र मजदूरदलीय रह चुका था, फ़ेसिज़्म से प्रभावित होकर पार्लामेंट तथा यहूदियों के विरुद्ध प्रचार कर रहा था और 'काली कुर्तीवालों' का एक दल संगठित कर रहा था। परन्तु साम्यवादियों की संख्या इङ्गलैण्ड में अधिक नहीं थी और मोज़ले का कोई विशेष प्रभाव नहीं था; उसका और उसके साथियों का जनता मज़ाक उड़ाती थी। इन लोगों को जो इतनी कम सफलता प्राप्त हुई यह इस बात का प्रमाण है कि इङ्गलैण्ड की जनता में जनतन्त्र के प्रति अगाध भक्ति थी।‡ इङ्गलैण्ड के बहुसंख्यक लोग या तो अनुदार दल के या मज़दूर दल के समर्थक थे और दोनों ही दल अपने देश की परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं को बनाये रहना चाहते थे।

पंचम जार्ज की मृत्यु के पहले ही १९३५ में मेकडॉनेल्ड ने त्यागपत्र दे दिया था और उसके स्थान पर बाल्डविन तीसरी बार प्रधान-मन्त्री बन चुका था। वह १९३७ तक प्रधान-मन्त्री रहा। उसके बाद नेविल चेम्बरलेन प्रधानमंत्री बना। इन दोनों के समय में योरोप की राजनीति अत्यन्त अशान्त रही और सरकार का ध्यान अधिकतर योरोप के झमेलों में लगा रहा।

परराष्ट्र-नीति

महायुद्ध की समाप्ति के बाद इङ्गलैण्ड के लिये सबसे आवश्यक काम मित्र-राष्ट्रों से मिलकर पराजित राष्ट्रों के साथ सन्धि करना और योरोप की नवीन व्यवस्था करना था। लॉयड जार्ज ने १९१८ के सामान्य निर्वाचन के आरम्भ में घोषणा की थी कि 'हमारा प्रथम कार्य न्यायपूर्ण एवं स्थायी शान्ति की सन्धि करना और योरोप का इस प्रकार नवनिर्माण करना है कि भविष्य में कभी युद्ध की आवश्यकता न पड़े।'*

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि लॉयड जार्ज की नीति के दोनों उद्देश्य पूरे नहीं हुए। वार्साई की सन्धि न्यायपूर्ण नहीं हुई और योरोप की व्यवस्था भी ऐसी हुई जिससे २० वर्ष के बाद ही द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। इस अनर्थ का दायित्व बहुत कुछ अंश में इङ्गलैण्ड की परराष्ट्र-नीति पर था।

अव्यवस्थिति नीति—

वार्साई के बाद इङ्गलैण्ड के सामने सुरक्षा की प्राप्ति के लिए केवल दो उपाय थे—योरोपीय या विश्व-शक्ति-सन्तुलन की नीति का परित्याग करके

*Schevill : A History of Europe, p. 811.

‡Petrie : Diplomatic History, p. 327.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामूहिक सुरक्षा के लिए राष्ट्र-संघ का पूर्ण समर्थन करना या योरोप में सबल राष्ट्र के विरुद्ध निर्बल राष्ट्रों को सहायता देने की परम्परागत नीति का अवलम्बन करना।* इङ्गलैण्ड को सामूहिक सुरक्षा में बिल्कुल विश्वास नहीं था।‡ उस नीति के पालन में उसे अपने कन्धों पर बड़ी भारी जिम्मेदारियाँ लेनी पड़ती जिसके लिए वह तैयार नहीं था। दूसरी नीति के पालन के लिए वार्साई-सन्धि की सैनिक धाराओं पर अमल करवाना, जर्मनी के पुनः सैन्यीकरण को रोकना और ऐसा सम्भव न होने पर फ्रान्स तथा 'लघुमैत्री' के राष्ट्रों को पूर्ण सहायता देना तथा जर्मनी पर रुकावट डालने के लिए रूस से सहयोग करना आवश्यक था। परन्तु इङ्गलैण्ड ने इन दोनों नीतियों में से किसी को भी नहीं अपनाया। उसने बड़ी अनिच्छापूर्वक राष्ट्र-संघ का समर्थन किया और बाद में उसे धोखा दिया। उसे आरम्भ में फ्रान्स के विरूद्ध जर्मन गणतन्त्र को और बाद में नात्सी जर्मनी का समर्थन किया, तथा रूस को नाराज़ कर लिया।

साम्यवाद का भय—

जैसा हम देख चुके हैं, यह नीति आत्मघाती थी। इसका कारण यह था राष्ट्र-संघ के अन्तर्गत सामूहिक सुरक्षा और सहयोग में ब्रिटिश जनता का विश्वास होते हुए भी इंगलैण्ड का अनुदार दल इन सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता था। दोनों युद्धों के बीच के काल में कुछ वर्षों को छोड़ इसी दल के हाथ में सत्ता रही। उसकी धारणा थी कि भविष्य में योरोप में जर्मनी और रूस तथा एशिया में रूस और जापान ही बड़े राज्य होंगे। वह रूस के साम्यवाद को अपने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के लिए बड़ा ख़तरनाक समझता था और चाहता था कि पश्चिम में जर्मनी (और इटली) और पूर्व में जापान रूस पर आक्रमण करके समाप्त कर दें। अतः वह जर्मनी और जापान को सहायता देता रहा और पूर्व की ओर उसका मार्ग निष्कंटक बनाने के लिए फ्रान्स को पूर्वी योरोप के उसके मित्रों को सहायता देने से रोकता रहा। यह भी सम्भव था कि ये तीनों शक्तियाँ रूस को परास्त करने के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के लिए ख़तरनाक बन जाँय परन्तु उसे यह ख़तरा साम्यवाद के ख़तरे के सामने तुच्छ दिखाई देता था।$ इस प्रकार सारतः साम्यवाद के खतरे को दूर रखना ही ब्रिटिश परराष्ट्र-नीति का मूल-मन्त्र था।

---

*Schuman ; International Politics, pp. 835-836.
‡Maxwell : International Relations, p. 445.
$Schuman : International Politics, p. 836.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जर्मनी से सहानुभूति—फ्रान्स की नाराज़ी—

जर्मनी से सहानुभूति के अन्य कारण भी थे। यह बात इंगलैण्ड के हित में नहीं थी कि योरोप में फ्रान्स ही एक मात्र शक्तिशाली राज्य रह जाय।* अतः उसने पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में जर्मनी को खण्ड-खण्ड हो जाने से बचाने का प्रयत्न किया। इङ्गलैण्ड के इस रुख से फ्रान्स नाराज़ था। सन्धियाँ हो जाने के बाद शीघ्र ही फ्रान्स और इंगलैण्ड में मतभेद हो गया और इंङ्गलैंड की नीति स्पष्टतः जर्मनी के पुनरुत्थान की समर्थक बन गई। इसके कई कारण थे। सर्वप्रथम, अँग्रेज़ भूलने तथा क्षमा करने के लिये स्वभाव से तैयार रहता है और इसके साथ ही वह अपने मित्रों और अपने साथ किये हुए उपकारों को भी सरलता से भूल जाता है।† द्वितीय, फ्रान्स अपनी सुरक्षा के लिये जर्मनी की ओर से चिन्तित था और उसे सदा निर्बल ही देखना चाहता था। इसके विपरीत इङ्गलैंड का हित इसमें था कि जर्मनी का शीघ्रातिशीघ्र पुनरुत्थान हो जाय ताकि वह उसके साथ फिर से व्यापार कर सके। तृतीय, सुरक्षा के विषय में दोनों के विचार बिलकुल भिन्न थे। इङ्गलैंड 'युद्ध से सुरक्षा'—अर्थात् युद्ध को रोकना चाहता था। वह उन शिकायतों को दूर करना चाहता था जिनके कारण युद्ध होने की सम्भावना हो सकती थी और शस्त्रास्त्रों में कमी करना चाहता था ताकि शस्त्रास्त्र-प्रतियोगिता न हो और युद्ध का डर मिट जाय। परन्तु फ्रान्स 'युद्ध के समय सुरक्षा' चाहता था अर्थात् अपने पक्ष को इतना मज़बूत बनाना चाहता था कि युद्ध छिड़ने पर उसकी पराजय न हो सके। इसीलिये वह वार्साई की सन्धि में, जिसे वह किसी अंश तक अपनी सुरक्षा की गारण्टी समझता था, लेशमात्र भी संशोधन नहीं चाहता था और जर्मनी से बल-पूर्वक उसका पूर्णतया पालन करवाना चाहता था। इंगलैंड झगड़ा मिटाने तथा युद्ध की आशंका को रोकने के लिये समझौते की बातचीत द्वारा सन्धि में संशोधन चाहता था। इंगलैंड और फ्रान्स के मनोमालिन्य का इससे अधिक महत्वपूर्ण कारण दूसरा कोई नहीं था। अन्त में, क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में भी दोनों के दृष्टिकोण भिन्न थे। इंगलैंड उसे एक दण्ड-व्यवस्था समझता था। जिस प्रकार शत्रु उदारतापूर्वक क्षमा किया जा सकता है और उसकी सज़ा कम की जा सकती है उसी प्रकार वह क्षतिपूर्ति की रक़म में कमी करवाना चाहता था। परन्तु फ्रान्स ने क्षतिपूर्ति का शाब्दिक अर्थ ग्रहण कर रखा था। जर्मनी ने

---

* Maxwell : International Relations, p. 443.

†Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, pp. 27-28.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी हानि की थी और उसकी पूर्ति करना उसका कर्तव्य था। क्षतिपूर्ति की रक़म में कमी करना उसे अन्याय दिखाई देता था।* इस प्रकार इंगलैंड का रुख़ जर्मनी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था और इस कारण आरम्भ से ही दोनों में मतभेद हो गया। जब १९२३ में फ़्रान्स ने जर्मनी पर दबाव डालने के लिए रूर-प्रदेश पर आक्रमण किया तो इंगलैंड ने उसका विरोध किया।

फ़्रान्स को प्रसन्न करने के प्रयत्न—

इतना होते हुए भी वह फ़्रान्स को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। फ़्रान्स जर्मनी की ओर से आक्रमण होने की दशा में इंगलैंड से सैनिक सहायता की गारण्टी चाहता था। इस पर जनवरी १९२२ में लॉयड जॉर्ज ने उसे सहायता की गारण्टी दी परन्तु फ़्रान्स का आग्रह था कि उसके साथ ही एक सैनिक समझौता भी हो जिसमें यह स्पष्ट कर दिया जाय कि इंगलैंड क्या सहायता देगा। इंगलैंड की सरकार इस प्रकार वचनबद्ध होना नहीं चाहती थी। अतः उसने गारण्टी वापस ले ली।‡ इंगलैंड को, जैसा हम देख चुके हैं, सामूहिक सुरक्षा में विश्वास नहीं था फिर भी उसने फ़्रान्स का भय मिटाने के लिये जर्मनी को फ़्रान्स के साथ सुरक्षा-सन्धि करने और राष्ट्र-संघ की सदस्यता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जिसका परिणाम लोकर्नो-संधि में प्रकट हुआ।

राष्ट्र-संघ के प्रति उदासीनता—

इंगलैंड ऊपर से तो राष्ट्र-संघ के आदर्श के प्रति श्रद्धा प्रकट करता रहा परन्तु आरम्भ से ही उसके कार्य ऐसे रहे जिससे राष्ट्र-संघ में निर्बलता आने लगी।¶ जब १९२३ में कॉर्फ़्यू के मामले में इटली ने राष्ट्र-संघ की उपेक्षा की तो इंगलैंड ने राष्ट्र-संघ का साथ नहीं दिया और, जैसा हम देख चुके हैं, 'राजदूतों की समिति' द्वारा मामले का निर्णय करके उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाई।

---

* David Thomson : French Foreign Policy, pp. 20-22.

‡ Carr : International Relations between the Two World Wars, p. 30.

¶ राष्ट्र-संघ के निर्माण के लिये उत्तरदायी स्वयं लॉयड जॉर्ज उसे केवल एक अलंकारिक संस्था समझता था। योरोपीय झगड़ों में बीच बचाव करने में वह राष्ट्र-संघ के द्वारा काम करने की जगह सदा या तो राजदूतों की समिति के द्वारा या केन्स में, जीनोआ में, या अन्यत्र विशिष्ट सम्मेलन आमन्त्रित करके (जनीवा में नहीं) काम करना अधिक पसन्द करता था। Somervell : Between the Wars, p. 38.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार जब १९३१ में जापान ने चीन के मंचूरिया-प्रदेश पर आक्रमण किया और चीन ने राष्ट्र-संघ के सामने मामला प्रस्तुत किया तब भी इंगलैण्ड के ही रुख़ के कारण राष्ट्र-संघ जापान के विरुद्ध कुछ नहीं कर पाया।* आगे चल कर जब हिटलर ने राष्ट्र-संघ से सम्बन्ध विच्छेद किया और जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण की घोषणा करके वार्साई की सन्धि को भंग किया तब भी इंगलैंड ने उसका कोई ख़ास विरोध नहीं किया। इसी प्रकार जब १९३४ में उसने ऑस्ट्रिया की सरकार को पलटने का प्रयत्न किया तब भी ऐसा ही हुआ। उन दिनों इंगलैंड में राष्ट्रीय सरकार थी जिसमें सर जॉन साइमन परराष्ट्र-मन्त्री था। उधर फ़्रान्स में लावाल परराष्ट्र-मन्त्री के पद पर था। उन दोनों को आशा थी कि जब १९३५ में सार-प्रदेश जर्मनी के पास चला जायगा तो जर्मनी से समझौता हो सकेगा और वह फिर से राष्ट्र-संघ में शामिल हो जायगा।† परन्तु यह आशा पूर्ण नहीं हुई। हिटलर का साहस बढ़ता गया जिसमें मुसोलिनी की सफलता ने और भी वृद्धि की।

ऑस्ट्रिया पर हिटलर के असफल आक्रमण के बाद इंगलैण्ड के रुख में परिवर्तन होता हुआ मालूम हुआ। १९३४ में इंगलैण्ड में शान्ति के प्रश्न पर जनमत-संग्रह (British National Peace Ballot) हुआ जिससे प्रकट हुआ कि इंगलैण्ड की बहुसंख्यक जनता सामूहिक सुरक्षा की समर्थक थी। उन्हीं दिनों मेक्डॉनेल्ड ने त्यागपत्र दिया और पार्लमेण्ट का निर्वाचन हुआ। अपने पक्ष में बहुमत प्राप्त करने के लिये बॉल्डविन ने कहा कि राष्ट्र-सङ्घ ब्रिटिश नीति का मूलाधार बना हुआ है। हम राष्ट्र-सङ्घ का समर्थन करने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।$ इंगलैंड ने अप्रेल १९३५ में इटली और फ़्रान्स के साथ मिलकर स्ट्रेसा-सम्मेलन में हिटलर के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा कायम किया और जब एबिसीनिया पर इटली ने आक्रमण किया तो उसने राष्ट्रसङ्घ में इटली का ज़ोरदार विरोध भी किया। परन्तु यह सब दिखावा मात्र था। स्ट्रेसा की घोषणा के पहले ही वह जर्मनी से नाविक समझौता करके वार्साई-सन्धि का भंग करने में उसे स्वयं सहायता दे चुका था और इटली के विरुद्ध कार्रवाई करने में भी उसने शिथिलता बतलाई।

यह दिखावा भी शीघ्र बन्द हो गया। हिटलर इंगलैंड की कमज़ोरी को अच्छी तरह समझ चुका था। अब उसने निर्भय होकर अपनी आकांक्षाओं को

---

* Keith : The Causes of the War, pp. 261-263.

† Maxwell : International Relations, p. 446.

$ Schuman : International Politics p. 839.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्ति करना आरम्भ किया। उसने राइन-प्रदेश में अपनी सेना भेज दी, ऑस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया और अन्त में चेकोस्लोवाकिया को भी हड़प लिया जिसमें स्वयं इङ्गलैण्ड और फ्रान्स ने ही सहायता दी।

चेकोस्लोवाकिया की हत्या के बाद अवश्य इङ्गलैण्ड की आँखें खुलीं और उसने अन्य राज्यों से मिलकर हिटलर के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयत्न किया परन्तु तब तक किसी भी राष्ट्र को इङ्गलैण्ड में विश्वास नहीं रह गया था। उसने पोलेण्ड, रूमानिया, ग्रीस तथा टर्की को सहायता की गारण्टी दी और रूस से भी सन्धि करने का प्रयत्न किया परन्तु उस समय तक काफ़ी देर हो चुकी थी। यदि चेकोस्लोवाकिया के मामले में इंगलैंड और फ्रान्स रूस से सहयोग करके हिटलर का मुक़ाबला करते तो वह अवश्य रुक जाता। रूस से सन्धि न हो सकी। उसने जर्मनी से सन्धि कर ली।

रूस की सोवियत सरकार से तो, जैसा हम आरम्भ में ही कह चुके हैं, इंगलैंड नाराज़ था और उसी के नाश की दृष्टि से ही वह जर्मनी तथा इटली का समर्थन कर रहा था। क्रान्ति के बाद तुरन्त ही इंगलैंड ने अन्य राष्ट्रों से मिलकर क्रान्ति-विरोधियों को सहायता दी थी और स्वयं उसकी सेना में रूस पर आक्रमण भी किया था। केवल १९२४ में कुछ दिनों के लिये मेक्डॉनेल्ड की प्रथम मज़दूर सरकार के समय में रूस से कुछ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो सके थे परन्तु उसके बाद इंगलैंड की अनुदार सरकार ने उसके साथ अपने सम्बन्ध सुधारने या सामूहिक सुरक्षा के लिये उसका सहयोग प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, हालाँकि रूस दोनों बातों के लिये तैयार था। चेकोस्लोवाकिया के मामले में रूस सैनिक सहायता देने को तैयार था परन्तु इंगलैंड ने उससे परामर्श तक नहीं लिया। अन्त में जब उसने रूस से सन्धि करने का प्रयत्न किया उस समय भी उसका दिल साफ़ नहीं था। उन्हीं दिनों वह छिपे-छिपे हिटलर से भी समझौता करने का प्रयत्न कर रहा था।*

सुदूर पूर्व में—

सुदूर पूर्व में भी इंगलैंड की नीति वैसी ही निर्बल रही जैसी योरोप में। इंगलैंड का हित इसी में था कि चीन अखंड और स्वतन्त्र बना रहे। संयुक्त-राष्ट्र जापान के अत्यधिक उत्कर्ष को सहन नहीं कर सकता था। यदि इंगलैंड और संयुक्त-राष्ट्र दोनों मिलकर आरम्भ में ही जापान को रोकने का

* Keith : The Causes of the War, p. 425.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रयत्न करते तो मंचूरिया में उसका आक्रमण रोका जा सकता था परन्तु इङ्गलैण्ड ने इस दशा में कोई प्रयत्न नहीं किया। सुदूर पूर्व में तो इङ्गलैण्ड ने अत्यधिक कायरता बतलाई। जापानी लोग अंग्रेजों का अपमान करते रहे परन्तु चेम्बरलेन उसको सहन करता रहा।*

इस प्रकार युद्धोत्तर काल में इङ्गलैण्ड की परराष्ट्र-नीति बड़ी पोच और स्वयं उसके तथा योरोप के लिये घातक रही। योरोप में फ्रेन्च प्राधान्य के भय से और ब्रिटिश शासक वर्ग के हितों को बॉल्शेविज़्म की ओर से ख़तरा देखकर, इङ्गलैण्ड ने जर्मनी को उस सीमा तक बढ़ जाने दिया जहाँ वह स्वय इंगलैण्ड और फ्रान्स की सुरक्षा के लिये खतरनाक हो गया। अपनी निर्बल नीति के ही कारण उसने इटली को भूमध्यसागर में और जापान को पूर्व में अत्यधिक शक्तिशाली हो जाने दिया और अपने साम्राज्य की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया। यदि जर्मनी के साथ किये हुए अन्याय का प्रतिकार करके इंगलैण्ड और फ्रान्स राष्ट्र-सङ्घ के द्वारा सामूहिक रक्षा के लिये ईमानदारी से प्रयत्न करते तो संसार को द्वितीय विश्वयुद्ध नहीं देखना पड़ता।

ब्रिटिश साम्राज्य

महायुद्ध के प्रभाव—

प्रथम विश्वयुद्ध का ब्रिटिश साम्राज्य पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। उसके फलस्वरूप इंगलैंड तथा साम्राज्य के अन्य प्रदेशों के पारस्परिक सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। युद्ध के आरम्भ में कोई नहीं कह सकता था कि साम्राज्य पर उसका क्या प्रभाव होगा और साम्राज्य के विभिन्न भाग इंगलैंड का कहाँ तक साथ देंगे परन्तु इंगलैंड ने जो साम्राज्य-नीति अपना रखी थी उसका युद्ध में औचित्य सिद्ध हो गया और आयर्लैण्ड तथा दक्षिणी अफ्रीका को छोड़ साम्राज्य के अन्य समस्त प्रदेशों ने युद्ध में इंगलैंड के साथ पूरा-पूरा सहयोग किया। साम्राज्य की शक्ति का प्रमाण प्राप्त होने के साथ ही इस महायुद्ध के फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में भी वृद्धि हुई। जैसा हम देख चुके हैं, राष्ट्र-सङ्घ ने इंगलैंड, दक्षिणी अफ्रिका, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड को टर्की और जर्मनी के साम्राज्य के अनेक भागों का शासन 'आदेश' के रूप में अपनी ओर से सौंपा।

युद्धकालीन साम्राज्य मंत्रि-परिषद्—

किन्तु महायुद्ध का इससे अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव परोक्ष था। युद्ध

Maxwell : International Relations, p. 455.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पहले साम्राज्य की विदेश-नीति का निर्धारण इंगलैंड की सरकार करती थी और इसी के परिणाम-स्वरूप समस्त साम्राज्य अपने आप ही युद्ध में शामिल हो गया था। परन्तु १९१५ से ही डॉमिनियनों के मंत्री उन पर प्रभाव डालने वाली नीतियों के निर्धारण में भाग लेने की माँग करने लगे। इंगलैंड ने इस माँग पर विचार करके दिसम्बर १९१६ में एक युद्धकालीन साम्राज्य-मन्त्रि-परिषद् (Imperial War Cabinet) का निर्माण किया जिसमें समस्त डॉमिनियनों और भारतवर्ष के प्रतिनिधि आमंत्रित किये गये। इसके पहले भी १८८७ से साम्राज्य की सामान्य समस्याओं पर परामर्श करने के लिये समय-समय पर साम्राज्य-सम्मेलन होते रहते थे परन्तु वैधानिक दृष्टि से यह केबिनेट उन सम्मेलनों से भिन्न थी। यह ६ समकक्ष राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक समिति थी जिसमें इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री अध्यक्ष का पद ग्रहण करता था।

डॉमिनियन-स्वराज्य—

युद्ध की समाप्ति पर शान्ति-सम्मेलनों में इंगलैण्ड के प्रतिनिधियों के साथ डॉमिनियनों तथा भारतवर्ष के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए और सभी राष्ट्र-संघ के सदस्य भी बन गये। आगे चलकर धीरे-धीरे डॉमिनियनों की स्वतन्त्रता अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी। वे संसार के विभिन्न राज्यों में अपने-अपने राजदूत रखने लगे और विदेश नीति में भी स्वतन्त्रता का व्यवहार करने लगे। लोकार्नो-सन्धि को इंगलैंड ने स्वीकार किया परन्तु डॉमिनियनों ने उसे स्वीकार नहीं किया।* इस प्रकार धीरे-धीरे डॉमिनियनों का दर्जा बढ़ने लगा और स्थिति को स्पष्ट करने तथा वैधानिक रूप देने के लिये बाल्फ़ोर के नेतृत्व में १९२६ में एक साम्राज्य-सम्मेलन किया गया। उसमें साम्राज्य के विधान पर विचार हुआ और एक घोषणा (Balfour Declaration) द्वारा समस्त डॉमिनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वेच्छा से शामिल, क्राउन के प्रति सामान्य भक्ति से परस्पर सम्बद्ध और गृह्य एवं बाह्य नीति में एक दूसरे से स्वतन्त्र, परस्पर समकक्ष, स्वायत्तशासी राष्ट्र स्वीकार कर लिये गये। १९३० और १९३१ में यह स्थिति और भी स्पष्ट कर दी गई और ब्रिटिश साम्राज्य का नाम बदल कर ब्रिटिश कॉमनवेल्थ ऑफ नेशन्स रख दिया गया। १९३१ के स्टेट्यूट ऑफ़ वेस्टमिन्स्टर (Statute of Westminster) के अनुसार सभी डॉमिनियन सब प्रकार से स्वतन्त्र और इंगलैण्ड के समकक्ष हैं।†

---

* Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p. 75.

† Langsam : The World since 1914, p. 259.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डॉमिनियनों को तो इस प्रकार स्वतन्त्रता मिल गई परन्तु साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों तथा अधीनस्थ प्रदेशों को स्वतन्त्रता नहीं मिली। उनमें से कई भागों में विशेषकर भारतवर्ष और इजिप्ट में वहाँ के निवासियों को अपनी स्थिति से बड़ा असन्तोष था और वहाँ स्वराज्य के लिये आन्दोलन होने लगा।

आयर्लैण्ड—

डॉमिनियनों में भी आयरिश फ्री स्टेट अपनी स्थिति से असन्तुष्ट थी। प्रथम महायुद्ध के पहले अल्स्टर के प्रान्त को छोड़ शेष आयर्लैंड को स्वराज्य देने की व्यवस्था की गई थी परन्तु उसका विरोध हुआ और उतने में ही महायुद्ध छिड़ गया। अतः वह व्यवस्था स्थगित कर दी गई थी। महायुद्ध के दौरान में १९१६ में आयर्लैण्ड में विद्रोह भी हुआ था परन्तु उसका दमन कर दिया गया था। युद्ध की समाप्ति पर इस समस्या को हल करना आवश्यक हो गया और दिसम्बर १९२१ में सिनफ़िन दल के नेताओं तथा ब्रिटिश सरकार के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार अल्स्टर को छोड़ शेष आयर्लैण्ड को आयरिश फ्री स्टेट के नाम से डॉमिनियन का पद प्राप्त हुआ। परन्तु सिनफ़िन दल के उग्र सदस्यों को यह व्यवस्था, जिसके अनुसार आयर्लैण्ड का अंग-भंग हो गया था और वह ब्रिटिश साम्राज्य का भाग बना हुआ था, पसन्द नहीं आई। उसका नेता डी वेलेरा था। वह 'नरम' सिनफ़िन नेताओं का विरोध करता रहा। इन दोनों पक्षों में सङ्घर्ष चलता रहा और कुछ दिनों तक तो आयर्लैण्ड में एक भयंकर गृह-कलह चलता रहा। डी वेलेरा तथा उसके अनुयायी आयरिश पार्लामेण्ट का वर्षों तक बहिष्कार करते रहे। अन्त में देश में जनमत उनका समर्थन करने लगा। यह देखकर डी वेलेरा और उसके अनुयायी राजनीतिक जीवन में भाग लेने लगे (१९२७) और शीघ्र ही पार्लामेण्ट में बहुमत प्राप्त करके शासन अपने हाथों में लेने में सफल हो गये (१९३२)। उस वर्ष डी वेलेरा शासन का अध्यक्ष बन गया और उसने प्रेसिडेण्ट की पदवी धारण की। उसने अगले वर्ष इंगलैंड के बादशाह के प्रति भक्ति की शपथ तथा गवर्नर जनरल के पद का अन्त करके इंगलैंड से वैधानिक सम्बन्ध तोड़ दिया।* आगे चलकर (१९३७) उसने नये विधान का निर्माण किया और आयरिश फ्री स्टेट के डॉमिनियन की जगह आयर (Eire) के स्वतन्त्र एवं पूर्ण प्रभुत्वयुक्त राज्य की घोषणा की। इस प्रकार आयर्लैण्ड की स्वतन्त्रता का युद्ध, जो शताब्दियों से चला आ रहा था, समाप्त हुआ, परन्तु अल्स्टर फिर भी उससे अलग रहा और ब्रिटिश द्वीप समूह का भाग बना रहा।

---

* Schevill : A History of Europe, p. 814.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतवर्ष—

महायुद्ध के दौरान में भारतवर्ष में स्वशासन की माँग बढ़ रही थी और लोकमान्य तिलक तथा एनी बिसेण्ट के नेतृत्व में स्वराज्य के लिये आन्दोलन भी शुरू हो गया था। इंगलैण्ड को भारतवर्ष से युद्ध में बहुमूल्य सहायता मिल रही थी और सरकार को अधिक सहायता की आवश्यकता थी। इस कारण भारतवासियों को सन्तुष्ट करने के लिये ब्रिटिश सरकार के भारत-सचिव मॉण्टेग ने अगस्त १९१७ में घोषणा की कि 'ब्रिटिश सरकार की नीति शासन के प्रत्येक विभाग में भारतवासियों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने और स्वशासन सम्बन्धी संस्थाओं का सामान्य विकास करने की है ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवर्ष में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित हो सके।'* इस घोषणा के बाद मॉण्टेग भारतवर्ष पहुँचा और तत्कालीन वाइसराय चेम्स-फ़ोर्ड के साथ भारतवर्ष का भ्रमण करके उसने दोनों के परामर्श से एक रिपोर्ट (Montague-Chelmsford Report) पेश की जिसमें भारतवर्ष के प्रान्तों में निर्वाचित धारा-सभाओं की स्थापना करने और प्रान्तीय शासन के कुछ विभागों का प्रबन्ध धारासभाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंपकर द्वैध-शासन (Dyarchy) स्थापित करने की सिफ़ारिश की। केन्द्रीय सरकार में धारा-सभा का विस्तार करने और उसे कुछ विशेष अधिकार देने के अतिरिक्त किसी ख़ास परिवर्तन की सिफ़ारिश नहीं की गई।

इस रिपोर्ट के आधार पर पार्लामेण्ट ने १९१९ में क़ानून बनाकर १९२० में विधान को लागू किया। कुछ लोगों ने इसका समर्थन किया परन्तु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसका विरोध किया और उस पर निर्विघ्नतापूर्वक काम नहीं हो सका। १९२७ में ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष की स्थिति पर विचार करने के लिये एक कमिशन नियुक्त किया जिसने १९३० में अपनी रिपोर्ट पेश की। परन्तु भारतवर्ष में सभी दलों ने कमिशन का बहि-ष्कार किया था और असन्तोष बढ़ रहा था। यह देखकर सरकार ने भारतीय समस्या पर पूर्णरूप से विचार करने के लिये ब्रिटिश सरकार, ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की लण्डन में गोलमेज़ सभाएँ की (१९३०–३२)। इन सभाओं की सिफारिशों के आधार पर पार्लामेण्ट ने १९३५ में एक एक्ट पास किया जिसके अनुसार प्रान्तों में गवर्नरों के विशेषाधिकारों के साथ पूर्ण स्वराज्य की व्यवस्था की गई और समस्त भारतवर्ष (देशी राज्यों सहित)

---

* Carter and Mears : A History of Britain, p. 1010.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिए संघ-शासन की व्यवस्था की गई जिसमें वाइसराय के हाथों में कुछ महत्वपूर्ण विषयों (रक्षा, विदेश-नीति आदि) को छोड़ शेष विषयों को केन्द्रीय धारासभा के प्रति उत्तरदायी मन्त्रियों को सोंपने का निर्णय किया गया। १९३७ में प्रान्तों में तो नया विधान लागू हो गया परन्तु देशी राजाओं ने सम्मिलित होने में देरी लगाई और केन्द्र में कोई परिवर्तन न हो सका। १९३९ में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ जाने से विधान का केन्द्र-सम्बन्धी भाग स्थगित कर दिया गया। नये विधान का एक परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मा भारतवर्ष से अलग हो गया।

इजिप्ट—

भारतवर्ष का स्वतन्त्रता-आन्दोलन तो द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक पूर्णतया सफल नहीं हुआ, परन्तु इजिप्ट को सफलता मिली। इजिप्ट पहले टर्की के साम्राज्य का भाग था। १८८२ से वहाँ अंग्रेजों ने अपना प्राधान्य जमा लिया था और महायुद्ध के आरम्भ में ही उसे अपने साम्राज्य का एक संरक्षित प्रदेश घोषित कर दिया था। युद्ध की समाप्ति के बाद वहाँ स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन छिड़ गया जिसके परिणाम-स्वरूप १९२२ में स्वेज़ नहर तथा इजिप्ट के अन्दर ब्रिटिश संचार-साधनों (Communication) के संरक्षण के लिए कुछ नियन्त्रणों के साथ इजिप्ट को स्वतन्त्रता दे दी गई।* राष्ट्रवादियों को इन नियंत्रणों से बड़ा असन्तोष हुआ, क्योंकि उनके कारण इजिप्ट में अंग्रेज़ी सेना रहती थी जिससे उनकी स्वतन्त्रता केवल दिखावटी ही रह गई थी। इस कारण वर्षों तक गड़बड़ मचती रही। अन्त में १९३६ में एक सन्धि की गई जिसके अनुसार इंगलैण्ड ने स्वेज़ नहर की रक्षा के अधिकार के बदले में काहिरा तथा एलेक्ज़ेण्ड्रिया से अपनी सेना हटा लेने का वचन दिया और इजिप्ट ने अपनी परराष्ट्र नीति को इंगलैण्ड के अनुकूल रखना स्वीकार किया। सूडान में जैसी स्थिति थी वैसी ही बनी रही।

इराक़—

जैसा हम बतला चुके हैं, महायुद्ध के बाद राष्ट्र-संघ ने मेसोपोटामिया के शासन का भार इंगलैंड को सौंपा था। १९२१ में एक अरब सरदार अमीर फ़ैजल वहाँ का बादशाह नियुक्त किया गया और उसे भविष्य में स्वतन्त्रता प्रदान

---

* Carter and Mears : A History of Britain, p. 1009.

† Jackson : The Between-War World, p. 246.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने का वचन दिया गया। १९३० में इस वचन का पालन हुआ और जिस प्रकार की मर्यादा इजिप्ट पर लगाई गई थीं उसी प्रकार की मर्यादाओं के साथ उसे स्वतन्त्र कर दिया गया। स्वतन्त्र मेसोपोटामिया का नाम इराक रक्खा गया और १९३२ में वह राष्ट्र-संघ का सदस्य भी बना लिया गया।

पेलेस्टाइन—

मेसोपोटामिया के समान पेलेस्टाइन के शासन का भार भी राष्ट्र-संघ ने इङ्गलैण्ड को सौंपा था। यहाँ अंग्रेजों को आरम्भ से ही बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की ओर संसार में सर्वत्र बिखरे हुए यहूदियों में पेलेस्टाइन में जहाँ के वे मूल निवासी थे अपना 'राष्ट्रीय घर' बसाने के लिए आन्दोलन हो रहा था। उस आन्दोलन के नेता डा० वीज़मेन के दबाव में ब्रिटिश सरकार ने १९१७ में एक घोषणा (Balfour Declaration) द्वारा पेलेस्टाइन में यहूदियों को 'राष्ट्रीय घर' प्रदान करने का वचन दिया था।* अब उसे अपना वचन निभाना पड़ा और उसने योरोप तथा अमेरिका के यहूदियों को पेलेस्टाइन में बसने का निमन्त्रण दिया। यहूदी धनी थे। वे बड़ी संख्या में आकर पेलेस्टाइन में बसने लगे और अरबों से अनापशनाप भूमि खरीदने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अरबों के हाथों से बहुत सी भूमि निकल गई और बहुत से अरब भूमिहीन मजदूर बन गये। अरब लोगों को यह बहुत बुरा लगा और वे यहूदियों का विरोध करने लगे। वे ब्रिटिश सरकार से भी बड़े नाराज़ हुए जिसने बालफोर घोषणा में ही उनके 'नागरिक तथा धार्मिक' अधिकारों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाने का वचन दिया था और युद्ध के दिनों में अरबों को स्वतन्त्र कर देने की भी प्रतिज्ञा की थी।†

अरबों का असन्तोष बढ़ता रहा और १९२९ में उसने यहूदियों के विरुद्ध विद्रोह का रूप धारण कर लिया। दोनों में लड़ाई-झगड़ा और मारकाट होने लगी। इंगलैण्ड ने पेलेस्टाइन में आकर बसने वाले यहूदियों की संख्या में कमी करके और कभी-कभी उनका आना बिल्कुल बन्द करके अरबों का असन्तोष कम करने का प्रयत्न किया परन्तु व्यर्थ। धीरे-धीरे दोनों दलों में राष्ट्रीयता और धार्मिकता की भावना बड़े उग्र रूप में व्याप्त हो गई और तनाव बढ़ता रहा।

अन्त में १९३६ में ब्रिटिश सरकार ने इस झगड़े पर विचार करने और उसका अन्त करने के लिए सुझाव देने के निमित्त एक कमीशन नियुक्त किया

---

*Schuman : International Politics, p. 453.

†Langsam : The World since 1914, p. 294.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसने पेलेस्टाइन के विभाजन का प्रस्ताव किया। उसने सिफ़ारिश की कि पेलेस्टाइन का उत्तरी भाग यहूदी राज्य बना दिया जाय, दक्षिणी भाग अरबों का राज्य रहे और बीच का भाग, जिसमें जेरुसेलम, बेथलेहम आदि ईसाई तीर्थ स्थान हैं, ब्रिटिश प्रबन्ध में ही रहे। इस योजना का दोनों ओर से विरोध हुआ। अतः वह रद्द कर दी गई और एक नई योजना पार्लामेण्ट के सामने प्रस्तुत की गई। परन्तु इसी बीच में द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ गया और यह मामला टल गया।*

———

* Schevill : A History of Europe, p.842.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २२

राष्ट्र-संघ और सुरक्षा की खोज

राष्ट्र-संघ के उद्देश्य—

जब प्रथम महायुद्ध में शामिल होने के प्रयोजन की चर्चा करते हुए अमेरिका के संयुक्तराष्ट्र के प्रेसिडेण्ट विल्सन ने कहा था कि अमेरिका युद्ध में 'युद्ध का अन्त करने के लिये सम्मिलित हो रहा था तो यह विचार केवल विल्सन का ही नहीं था। यह मानवता की पुकार थी। हम देख चुके हैं कि भविष्य में युद्ध रोकने तथा शान्ति को क़ायम रखने के लिये पेरिस के शान्ति-सम्मेलन ने विल्सन के आग्रह पर 'राष्ट्र-सङ्घ' की स्थापना की। राष्ट्र-संङ्घ के चार उद्देश्य थे—(१) युद्ध रोकना, (२) शान्ति को संगठित करना, (३) १९१९-१९२० की शान्ति-सन्धियों द्वारा निर्धारित कुछ विशिष्ट कर्त्तव्यों को करना और (४) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि।

शान्ति का संगठन—

प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के लिये राष्ट्र-सङ्घ के विधान की कुछ (१०-१७) धाराओं में व्यवस्था की गई जिसका संक्षिप्त विवरण हम पहले दे चुके हैं।* यह कार्य तो केवल निषेधात्मक था, राष्ट्र-सङ्घ से इससे अधिक आशा की जाती थी। युद्ध रोकने के साथ उसे युद्ध के कारणों को मिटाना और शान्ति का संगठन भी करना था। इस दृष्टि से कौंसिल, एसेम्बली तथा सेक्रेटेरियट (कार्यालय) की और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गई। न्यायालय को उसके समक्ष प्रस्तुत किये हुए अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुनने तथा उनका निर्णय करने और कौंसिल अथवा एसेम्बली की प्रार्थना पर किसी भी प्रश्न पर, जिसे वे उसके समक्ष रखें, परामर्श देने का अधिकार था। इस विश्वास के आधार पर कि विश्व-युद्ध गुप्त सन्धियों के कारण ही हुआ था, यह व्यवस्था की गई कि भविष्य में सभी सन्धियाँ प्रकट रूप से हों और प्रकाशित की जाँय तथा जब तक राष्ट्र-सङ्घ के कार्यालय में वे दर्ज न करली जाँय तब तक वे बन्धनकारी न हों। जो सन्धियाँ भविष्य में अनुपयुक्त हो जाँय उनके संशोधन के लिए भी एसेम्बली

* पृष्ठ २५९ देखिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को परामर्श देने का अधिकार दिया गया। युद्ध का एक कारण शस्त्रास्त्रों की प्रतिस्पर्धा भी था। अतः राष्ट्र-संघ के सदस्यों से शान्ति क़ायम रखने के लिए शस्त्रास्त्रों को उस समय तक कम करने की आवश्यकता स्वीकार करने का अनुरोध किया गया जहाँ तक राष्ट्रीय सुरक्षा को कोई ख़तरा न पहुँचे। भविष्य में युद्ध रोकने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि संसार के विभिन्न राष्ट्र के लोगों में सहयोग बढ़े, विभिन्न लोग एक दूसरे को समझें, मानव जीवन की अवस्थाओं में सुधार हो, विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में न्याय एवं औचित्य की भावनाओं का प्रवेश हो और अनावश्यक झगड़ों का निराकरण हो। इस दृष्टि से पहले से काम करने वाली जितनी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ थीं वे सब राष्ट्र-संघ के आधीन कर दी गईं और उसे भविष्य में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय समझौते कराने का दायित्व सौंपा गया जैसे 'पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों के लिए श्रम की मानवोचित एवं न्यायपूर्ण अवस्थाओं को सुलभ करना'; राष्ट्र-संघ के सदस्यों के उपनिवेशों की 'मूल जातियों के साथ न्यायोचित व्यवहार', राष्ट्र-संघ के समस्त सदस्यों के लिए 'यातायात और संचार की स्वतन्त्रता और उनके वाणिज्य-व्यापार के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार' प्राप्त करना; स्त्रियों एवं बच्चों का व्यापार', अफीम तथा अन्य हानिकर पदार्थों का व्यवसाय', 'ऐसे देशों के साथ, जिनमें सामान्य हित के लिए शस्त्रास्त्र के व्यापार पर नियन्त्रण आवश्यक है, इन वस्तुओं के व्यापार' का नियमन करना आदि। इसी उद्देश्य से 'अन्तर्राष्ट्रीय हित की दृष्टि से रोगों की रोकथाम के लिए प्रयत्न करना', 'स्वयं-सेवक, राष्ट्रीय रेडक्रॉस संस्थाओं की स्थापना करना तथा उनको प्रोत्साहन देना, और 'संसार भर में दुःख-दैन्य में कमी करना आदि भी राष्ट्र-संघ का कर्त्तव्य माना गया। संसार के मज़दूरों की अवस्था तथा मालिकों और मज़दूरों के पारस्परिक सम्बन्धों को सुधारने के लिए एक पृथक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था—इण्टरनेशनल लेबर कॉन्फरेन्स तथा इण्टर नेशनल लेबर आफ़िस—भी स्थापित की गई जिसका राष्ट्र-संघ से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा।

सफलता--

यह आशा की जाती थी कि राष्ट्र-संघ के आधार पर शान्तिपूर्ण सहयोग तथा सामान्य सुरक्षा की एक नवीन विश्व-व्यवस्था स्थापित की जा सकेगी। परन्तु अनेक कारणों से, उनकी चर्चा हम आगे करेंगे, यह आशा पूरी नहीं हुई। फिर भी यह कहना गलत होगा कि राष्ट्र-संघ सर्वथा असफल रहा। उसका मुख्य उद्देश्य—युद्ध रोकना—तो पूरा नहीं हुआ परन्तु अन्य बातों में उसने काफ़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अच्छा काम किया। संघ के कार्यालय ने संसार की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाओं से सम्बन्धित बड़ी उत्तम सामग्री एकत्रित करके प्रकाशित की। अपनी विभिन्न एजेन्सियों के द्वारा स्त्रियों और बच्चों के जघन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अफ़ीम और अन्य मादक द्रव्यों के व्यापार को रोकने का बड़ा प्रशंसनीय प्रयत्न किया। टाइफ़स, हैज़ा तथा चेचक को रोकने के प्रयत्न हुए और मलेरिया तथा क्षय जैसे रोग की रोक-थाम के लिए काफी अनुसंधान हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर सम्मेलन के द्वारा मज़दूरों की अवस्था में भी बहुत से सुधार हुए। आर्थिक एवं सामाजिक मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग हुआ और अनेक मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हुए। विभिन्न राष्ट्रों के बीच शान्ति के आदर्शों के प्रसार के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामंजस्य स्थापित करने के लिए बौद्धिक सहयोग के भी प्रयत्न हुए। युद्धोत्तर काल की गड़बड़ से उत्पन्न अनेक विकट समस्याओं का समाधान हुआ। राष्ट्र-संघ ने २६ राष्ट्रों के कोई ४ लाख युद्ध-बंदियों को उनके घर पहुँचाया। इस कार्य में नार्वे के डॉ० नानसेन ने बड़ी प्रशंसनीय सेवा की। लॉसेन की संधि के उपरांत ग्रीस और टर्की के बीच जब आबादी की अदला-बदली का प्रश्न उठा तो उस कार्य को भी राष्ट्र-संघ ने अपने निरीक्षण में करवाया। इसी प्रकार युद्धोत्तर काल की अस्त-व्यस्त आर्थिक दशा में भी व्यवस्था लाने का उसने प्रयत्न किया और १९२१-२२ में ऑस्ट्रिया तथा हंगरी के आर्थिक पुनर्निर्माण में बड़ी सहायता की।* शांति-संधियों से उत्पन्न अनेक दायित्वों का भी उसने निर्वाह किया, सार तथा डेन्ज़िग प्रदेशों का शासन सम्हाला और आदेश (Mandate) व्यवस्था द्वारा औपनिवेशिक प्रशासन में सुधार किया। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने भी कई मामले तै किए। इस प्रकार अपने तृतीय तथा चतुर्थ उद्देश्यों में राष्ट्र-संघ को काफी सफ़लता प्राप्त हुई।

युद्ध-निवारण में प्रारम्भिक सफलता—

आरम्भ में तो उसे अपने प्रथम उद्देश्य में ही कुछ सफलता मिली और उसने कुछ राज्यों के झगड़े का निपटारा भी किया। १९२० में बाल्टिक सागर में स्थिति आलैण्ड (Aaland) द्वीपों के स्वामित्व के विषय में स्वीडेन और फ़िनलैण्ड में झगड़ा हुआ। राष्ट्र-संघ ने एक कमिशन द्वारा मामले की जाँच करके ये द्वीप फिनलैण्ड को शांतिपूर्वक दिलवा दिये परन्तु साथ ही यह शर्त रख दी गई कि उनकी किलाबन्दी नहीं की जायगी। इसी प्रकार १९२१ में जब जनमत-संग्रह के परिणाम-स्वरूप ऊपरी साइलेशिया में सीमा-निर्धारण के

*Slosson : Europe since 1870, pp. 494-495.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध में पोलेण्ड और जर्मनी में मतभेद हुआ तो संघ ने उसमें समझौता करवाया। १९२५ में सीमा सम्बन्धी कुछ झगड़ों को लेकर जब ग्रीस ने बल्गारिया पर आक्रमण किया तो राष्ट्र-सङ्घ की कौंसिल ने उसका विरोध करके और आर्थिक बहिष्कार की धमकी देकर आक्रमण को रोक दिया। १९३२ में दक्षिणी अमेरिका में पेरू ने कोलम्बिया के लेटिसिया (Leticia) नामक सीमावर्ती प्रदेश पर अपनी सेना भेज कर अधिकार कर लिया परन्तु राष्ट्र-सङ्घ ने एक कमिशन भेजकर युद्ध रोक दिया और १९३४ में दोनों में समझौता करवा दिया। पेरू ने क्षमा माँगी और लेटिसिया कोलम्बिया को वापस कर दिया।*

असफलता—लिथुएनिया का बलात्कार—

इस प्रकार राष्ट्र-सङ्घ आरंभ में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निपटारा करके युद्ध रोकने में सफल हो सका परन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ये सब झगड़े छोटे-छोटे राज्यों के थे। जब कभी कोई ऐसा झगड़ा हुआ जिसमें कोई बड़ी सत्ता शामिल थी, उस समय राष्ट्र-सङ्घ कुछ न कर सका एक बार तो एक अत्यन्त छोटे राज्य ने भी उसकी उपेक्षा की। १९२३ में लिथुएनिया ने मेमेल के बन्दरगाह को, जिस पर राष्ट्र-संघ का अधिकार था और उसकी ओर से एक फ्रेञ्च हाई कमिश्नर शासन कर रहा था, ज़बरदस्ती अधिकार कर लिया। फ्रान्स इस समय जर्मनी के रूर-क्षेत्र पर अधिकार करने की तैयारी कर रहा था। अतः मित्र-राष्ट्र अपनी सेनाएँ उधर नहीं भेज सकते थे। राष्ट्र-सङ्घ ने लिथुएनिया के बलात्कारपूर्वक अपहरण की निन्दा की परन्तु मेमेल में रहने वाले जर्मन लोगों के स्वायत्त शासन के बहुत कुछ अधिकार दिलवाकर उसे लिथुएनिया के पास ही रहने दिया।§

पोलेण्ड का बलात्कार—

इसी प्रकार पोलेण्ड ने १९२० में विलना नामक नगर छीन लिया जो लिथुएनिया के अधिकार में था। लिथुएनिया ने यह मामला राष्ट्र-सङ्घ के सामने प्रस्तुत किया परन्तु पोलेण्ड को फ्रान्स का समर्थन प्राप्त था। सङ्घ कुछ न कर सका। फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और इटली ने आपस में समझौता करके विलना पर पोलेण्ड का अधिकार मान लिया (१९२३) और राष्ट्र-सङ्घ देखता ही रहा।

---

* Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p. 211-213.

§ Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p. 98.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इटली और ग्रीस--

उसी वर्ष (१९२३) इटली और ग्रीस में झगड़ा हुआ और जैसा हम देख चुके हैं, इटली ने कार्फ़्यू के द्वीप पर अधिकार कर लिया। जब ग्रीस ने राष्ट्र-संघ से शिकायत की और राष्ट्र-संघ हस्तक्षेप करने के लिए तैयार हुआ तो इटली ने उसमें अपने राष्ट्रीय गौरव की हानि बतलाकर उसका विरोध किया। संघ ने बड़ी चतुराई से मामला पेरिस में स्थिति 'राजदूतों की समिति' (Council of Ambassadors) को सौंप कर अपनी लाज बचाई। ग्रीस को हर्जाना देना पड़ा और तभी इटली ने कॉर्फ़्यू खाली किया एक प्रकार से यह राष्ट्र-संघ की विजय थी परन्तु इससे और पोलैंड सम्बन्धी उपर्युक्त घटना से यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्र-संघ बड़े राज्यों के विरुद्ध उतनी जल्दी और उतने ही उत्साह से कार्य नहीं कर सकता था जितना छोटे राज्यों के विरुद्ध कर सकता था।*

जापान का मंचूरिया पर आक्रमण--

यह बात १९३१ में और भी स्पष्ट हो गई कि जापान ने जो राष्ट्र-संघ का सदस्य होने के साथ ही कौंसिल का स्थायी सदस्य भी था संघ के एक दूसरे सदस्य चीन के मंचूरिया प्रान्त पर आक्रमण किया। चीन ने संघ से अपील की। संघ ने जापान को मंचूरिया खाली करने के लिए कहा और जाँच पड़ताल के लिए लॉर्ड लिटन की अध्यक्षता में एक कमिशन नियुक्त किया जिसने अक्टूबर १९३२ में जापान की निंदा करते हुए परन्तु साथ ही मंचूरिया में जापान के हितों एवं अधिकारों का ध्यान रखते हुए मंचूरिया को चीनी प्रभुत्व के अन्तर्गत स्वराज्य देने का प्रस्ताव करते हुए अपनी रिपोर्ट पेश की।‡ इसमें काफी विलम्ब लगा और इसी बीच में जापान ने मंचूरिया में एक दल को प्रोत्साहित करके मंचूरिया की स्वतन्त्रता की घोषणा करवा दी और उसका नाम मंचुकुओ रख कर तथा चीन के एक भूतपूर्व सम्राट् को उसका राजा नियुक्त करके उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। मंचुकुओ नाममात्र को स्वतन्त्र राज्य था, वास्तव में वहाँ जापान का प्राधान्य था।

जापान इस प्रकार मंचूरिया को हस्तगत करके ही चुप नहीं रहा। संघ की निर्बलता का प्रमाण पाकर उसने १९३३ में उसकी सदस्यता का त्याग कर

---

*Langsam : The World since 1914, p. 619.

‡Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, p. 320.

§Schevill : A History of Europe, p. 754.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया और उसी वर्ष चीन के उत्तरी प्रान्त जेहोल को जीत कर मंचुकुओ में शामिल कर लिया। चीन उन दिनों गृह-कलह के कारण निर्बल हो रहा था। चीनी सरकार का प्रमुख च्यांगकाई शेक इस आशा में ही बना रहा कि संघ हस्तक्षेप करेगा परन्तु जब उसने देखा कि संघ केवल जाँच-पड़ताल करके ही सन्तुष्ट हो गया और सङ्घ के सदस्यों ने केवल सहानुभूति प्रगट करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझली तो उसे बड़ी निराशा हुई और उसे अकेले ही जापान का सामना करना पड़ा। अब जापान खुले तौर पर लड़ने लगा। १९३५ में उसने उसके होपी नामक उत्तरी प्रान्त पर आक्रमण किया जिसमें पेकिंग स्थिति है। अभी तक तो च्यांगकाई शेक कुछ नम्रता प्रदर्शित करके जापान से समझौते की बातें करता रहा था परन्तु अब वह कड़ा पड़ गया। उसके विरुद्ध लड़ने वाले साम्यवादियों ने भी आपसी झगड़ा बन्द करके उसकी सहायता की।* परन्तु फिर भी जापान की सुसज्जित सेना के सामने उनकी हार पर हार होती रही और चीन के बहुत से भाग पर जापानियों का अधिकार हो गया। युद्ध चलता रहा और जब १९४० में जापान ने अमेरिका से युद्ध छेड़ा तो यह चीन जापान का युद्ध द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल हो गया।

बोलिविया और पेरेग्वे—

जापान के विरुद्ध कोई कार्यवाही न कर सकने के कारण राष्ट्र-संघ की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। अब अन्य राज्यों ने भी जापान का अनुसरण करना आरम्भ किया। दक्षिणी अमेरिका में संघ के दो सदस्यों—बोलविया और पेरेग्वे—के बीच ग्रेनचेको नामक प्रदेश के सम्बन्ध में १९२८ में झगड़ा चल रहा था और पेरेग्वे ने उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। दोनों के बीच समझौते कराने के प्रयत्न राष्ट्र-संघ तथा अमेरिका की तरफ़ से होते रहे परन्तु १९३३ में पेरेग्वे ने बोलिविया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। संघ ने हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला और पेरेग्वे १९३५ में राष्ट्र-संघ से अलग हो गया।†

इटली की एबिसीनिया-विजय—

संघ की निर्बलता से सर्वप्रथम लाभ उठाने वाला मुसोलिनी था जो एबिसीनिया को इटली के साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। जैसा हम देख चुके हैं, उसने १९३५ में एबिसीनिया पर आक्रमण किया। इस बार संघ ने कुछ

---

*Hayes and Cole : History of Europe Vol. II, p. 402.
†Schuman : International Politics, pp. 314-315.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सरगर्मी दिखाई, इटली को आक्रामक घोषित किया और उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध भी लगाये परन्तु सङ्घ की प्रमुख शक्तियों—फ्रांस और इङ्गलैण्ड—की स्वार्थमय नीति के कारण प्रतिबन्धों पर पूरी तरह से अमल नहीं हो पाया और राष्ट्र-सङ्घ के विरोध करते हुए भी इटली ने एबिसीनिया को हड़प लिया।

हिटलर और राष्ट्र-संघ—

इस घटना से राष्ट्र-सङ्घ की दयनीय निर्बलता का अकाट्य प्रमाण मिल गया और हिटलर ने उससे पूरा-पूरा लाभ उठाया। उसने, जैसा हम देख चुके हैं, एक-एक करके वार्साई-सन्धि की शर्तों का, जिसका राष्ट्र-सङ्घ संरक्षक था, भङ्ग करना आरम्भ किया। उसने जर्मनी को १९३३ में ही राष्ट्र-सङ्घ से अलग कर लिया था और गुप्त शस्त्रीकरण में, जो उसके पहले से ही आरम्भ हो गया था, तेज़ी करना शुरू कर दिया था। मार्च १९३५ में उसने सैनिक सेवा को अनिवार्य करके वार्साई-सन्धि का प्रथम उल्लंघन किया। अगले वर्ष (१९३६) उसने राइनलैण्ड में, जिसमें वार्साई-सन्धि के अनुसार सेना नहीं रह सकती थी, अपनी सेना भेज दी। राष्ट्र-सङ्घ इस घटना पर अप्रसन्नता प्रगट करने के और उसकी निन्दा करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सका। आगे चलकर उसने ऑस्ट्रिया को जर्मनी में शामिल कर लिया (१९३८) और चेकोस्लोवाकिया का अङ्ग-भङ्ग करके उसका अधिकांश जर्मनी में मिला लिया, परन्तु सङ्घ कुछ न कर सका। इन्हीं दिनों स्पेन के गृह-कलह में जर्मनी, इटली और रूस हस्तक्षेप करते रहे परंतु सङ्घ अत्यन्त असहाय अवस्था में देखता ही रहा और उससे कुछ न बन पड़ा। आगे चल कर इटली ने अल्बेनिया पर अधिकार कर लिया और जर्मनी ने सितम्बर १९३९ में पोलेण्ड पर आक्रमण किया जिससे विश्वयुद्ध का आरम्भ हुआ और यह सिद्ध हो गया कि राष्ट्र-सङ्घ एक निष्प्राण संस्था थी।

इस प्रकार राष्ट्र-सङ्घ युद्ध रोकने के अपने प्रधान उद्देश्य की पूर्ति में नितान्त असफल रहा। इसकी असफलता के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी था कि युद्ध रोकने और शान्ति को सङ्गठित करने के लिए शस्त्रास्त्रों में कमी कराने का जो अत्यन्त आवश्यक काम था उसे वह बिलकुल नहीं कर सका। अकेली इस असफलता के कारण न केवल जर्मनी ने सङ्घ से अलग हो कर अपने शस्त्रीकरण पर लगाई हुई मर्यादाओं को तोड़ना शुरू किया, बल्कि साधारणतया सर्वत्र यह विश्वास फैल गया और बढ़ता गया कि सङ्घ से राष्ट्रीय सुरक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की गारण्टी नहीं मिल सकती।❀

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 757.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

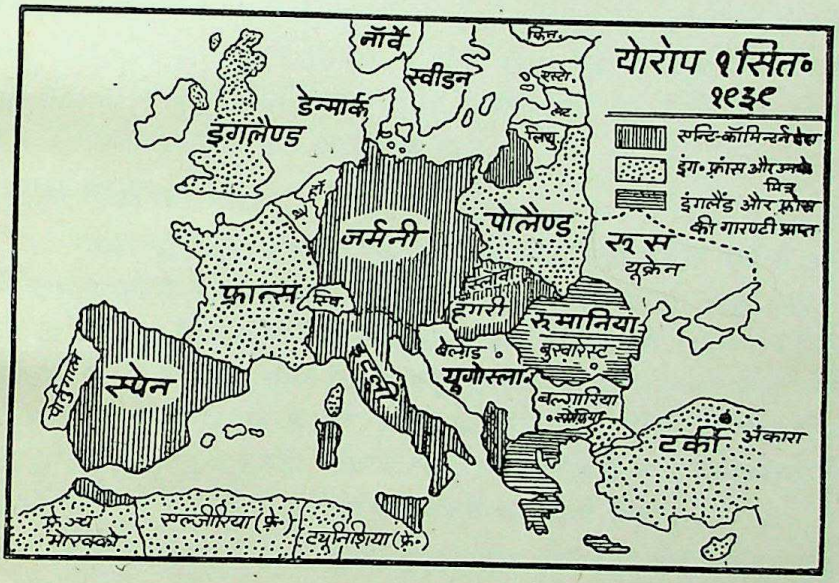

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुरक्षा की खोज

मतभेद—

राष्ट्र-सङ्घ का द्वितीय उद्देश्य शान्ति का सङ्गठन करना था जिसके लिए यह आवश्यक समझा गया था कि विभिन्न राष्ट्र अपने शस्त्रास्त्रों को उस सीमा तक कम कर लें जहाँ तक राष्ट्रीय सुरक्षा को कोई खतरा न पहुँचे।* इसका अर्थ यही था कि सुरक्षा ही सब कुछ है। परन्तु सुरक्षा ऐसी वस्तु थी जिसके विषय में विभिन्न राष्ट्रों के बीच बड़ा मतभेद था। एक राष्ट्र की 'सुरक्षा' दूसरे राष्ट्र की 'सुरक्षा के लिये ख़तरा' बन सकती थी। फ्रान्स जैसा विजयी राष्ट्र सुरक्षा का एक अर्थ लेता था परन्तु जर्मनी जैसे पराजित राष्ट्र के लिये उसका अर्थ भिन्न था। योरोप के राज्यों में पारस्परिक ईर्ष्या और सन्देह शताब्दियों से चले आ रहे थे और राष्ट्र-सङ्घ के निर्माण से उनमें किसी प्रकार की भी कमी नहीं हुई थी। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिये चिन्तित था और अपने ही अर्थ में उसे सुनिश्चित बनाने के लिये प्रयत्नशील था।

फ्रान्स की सुरक्षा—

सुरक्षा की चिन्ता सबसे अधिक फ्रांस को थी। पिछले पचास वर्षों में उसे दो बार जर्मनी के आक्रमण का सामना करना पड़ा था और इस समय यद्यपि वह विजयी हुआ था तथा योरोप का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य था तो भी उसे भय था कि पराजित जर्मनी फिर से कहीं शक्तिशाली होकर उससे बदला लेने का प्रयत्न न करे। महायुद्ध के बाद उसकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक थी और वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसका प्राधान्य रहा। इस स्थिति से लाभ उठाकर उसने अपनी सुरक्षा के साधनों को हर तरह से बढ़ाने का प्रयत्न किया।

पेरिस-सम्मेलन में उसने अपनी सुरक्षा और योरोप की शान्ति को क़ायम रखने के लिये राइन नदी के बाँये किनारे के समस्त प्रदेश को जर्मनी से अलग करके फ्रान्स में शामिल करने या कम से कम उसका एक पृथक राज्य बनाने का प्रयत्न किया था। जब विल्सन ने राष्ट्र-सङ्घ की स्थापना पर ज़ोर दिया तो उसने उसके लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना की व्यवस्था आवश्यक बतलाई ताकि उसकी सहायता से वह सन्धियों का पालन करवा सके। परन्तु विल्सन और लॉयड जॉर्ज दोनों ने ही इन दोनों बातों को स्वीकार नहीं किया।‡ इस पर

---

*Schevill : A History of Europe, p. 796.

‡ परंतु फ्रांस का भय मिटाने के लिये जर्मनी को राइन नदी के बाँये किनारे पर और उसके दाहिनी (पूर्व की) ओर ५० मील तक सेना रखने का निषेध कर दिया गया। इसके साथ ही राइन के बाईं ओर के प्रदेश में मित्र-राष्ट्रों की सेना १५ वर्ष के लिये रखने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसने इंगलैण्ड और अमेरिका को एक रक्षात्मक सन्धि करने के लिये राज़ी किया जिसके अनुसार दोनों ने फ़्रांस की सीमाओं की गारण्टी दी और जर्मनी के द्वारा आक्रमण होने पर उसे सैनिक सहायता देने का वचन दिया। परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, अमेरिका ने न राष्ट्र-सङ्घ को स्वीकार किया और न फ़्रान्स के साथ की हुई सन्धि को ही माना। ऐसी अवस्था में सन्धि इंगलैण्ड के लिये भी बंधनकारी न रही और फ़्रान्स को अपनी सुरक्षा के लिये साधन खोजने पड़े।

सैनिक संधियाँ--

उसकी दृष्टि योरोप के उन छोटे-छोटे राज्यों पर पड़ी जो स्वयं भी पेरिस-सम्मेलन द्वारा की हुई व्यवस्था को बनाये रखना चाहते थे और संधियों के संशोधन के विरोधी थे। उसने बेल्जियम (१९२०), पोलेण्ड (१९२१) और चेकोस्लोवाकिया (१९२४) से सैनिक सन्धियाँ कर लीं। चेकोस्लोवाकिया ने पहले से (१९२०-२१) रूमानिया तथा यूगोस्लाविया से हंगरी से प्राप्त प्रदेशों की रक्षा की दृष्टि से परस्पर संधि करके 'लघु मैत्री' (Little Entente) की स्थापना कर ली थी। इस कारण फ़्रांस को बाद में चलकर रूमानिया (१९२६) और यूगोस्लाविया (१९२७) से भी सन्धि करके उन्हें अपनी सुरक्षा-व्यवस्था में सम्मिलित करने की सुविधा हो गई। इस प्रकार फ़्रान्स ने जर्मनी के सीमावर्ती राज्यों से मित्रता करके उसकी ओर से सम्भावित ख़तरे के निराकरण तथा अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया। परंतु इस व्यवस्था में कई कठिनाइयाँ थीं। अपने मित्र-राज्यों को उसे बार-बार धन से सहायता करनी पड़ती थी और इस प्रकार उसके लिये यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली रही। ये राज्य सभी छोटे और दूर-दूर थे, उनकी सैन्यशक्ति भी हलके दर्जे की थी और उन पर अधिक विश्वास नहीं किया

की व्यवस्था की गई इस प्रकार फ़्रान्स को जो सुरक्षा प्राप्त हुई वह केवल इतनी ही रही कि राइन-प्रदेश को सैन्यविहीन दशा में रखने का वचन मिला। राइन-प्रदेश में मित्र-राष्ट्रों की सेना रखने की व्यवस्था फ़्रान्स की रक्षा के लिए नहीं, बल्कि सन्धि की शर्तों पर अमल होने की गारण्टी प्राप्त करने के लिये की गई थी। यह व्यवस्था केवल १५ वर्ष के लिये थी जिस अवधि में जर्मनी आवश्यक रूप से निर्बल रहता। इस अवधि के अन्त तक जर्मनी अवश्य ही अपनी स्थिति सुधार लेता और पुनः शक्तिशाली होकर फ़्रान्स के लिये ख़तरनाक बन जाता (जैसा वास्तव में हुआ भी), परन्तु तभी इस व्यवस्था का अन्त भी होना था। इस प्रकार इस व्यवस्था से फ़्रान्स को सुरक्षा का कोई वास्तविक आश्वासन नहीं प्राप्त हुआ। David Thomson : French Foreign Policy, p. 20.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जा सकता था। इसके साथ ही उनके साथ मित्रता करने से फ्रान्स को पूर्वी तथा पश्चिमी योरोप के समस्त झगड़ों में उलझना पड़ा।*

सशस्त्र गुटों का निर्माण—

परन्तु इस व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह था कि इसके फल-स्वरूप योरोप में फिर से एक सशस्त्र गुट बन गया और अन्तर्राष्ट्रीय आशङ्का का आरम्भ हुआ जो प्रथम महायुद्ध का प्रधान कारण थी। फ्रान्स के इन प्रयत्नों को देखकर इटली और रूस सशङ्क हो गये और उन्होंने भी अपने पड़ोसियों से सन्धियाँ करके अपने-अपने गुट बनाना शुरू कर दिया। इटली को फ्रान्स से पहले ही शिकायत थी और उसको बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ थी। फ्रान्स की इन कार्यवाहियों को देखकर उसके मुकाबले में उसने चेकोस्लोवाकिया और यूगोस्लाविया से मित्रता एवं तटस्थता की सन्धियाँ कीं (१९२४)। हंगरी, ऑस्ट्रिया और बल्गारिया से मित्रता करने का प्रयत्न किया और उन्हें सन्धियों में संशोधन कराने की आशा बंधाना आरम्भ किया। उधर रूस ने भी १९२२ में जर्मनी से रेपालो की सन्धि की और १९२५ में टर्की से अनाक्रमण सन्धि कर ली। इसी प्रकार की सन्धियाँ उसने अफ़गानिस्तान और लिथुएनिया (१९२६) से तथा फ़ारस (१९२७) से भी कर लीं। इस प्रकार युद्ध समाप्त होने के बाद के आठ-नौ वर्षों में ही योरोप फिर सशस्त्र गुटों में विभक्त हो गया हालाँकि इस समय दो की जगह चार गुट थे और कई देशों का सम्बन्ध दो विरोधी गुटों से भी था।†

राष्ट्र-संघ की कमज़ोरी—

यह देखकर फ्रान्स को अपनी सुरक्षा के लिये अतिरिक्त साधनों को खोजने की चिन्ता हुई और उसने राष्ट्र-सङ्घ के इक़रारनामे (Covenant) की कमज़ोरियों को दूर करके उसे अधिक प्रभावकारी बनाने का प्रयत्न किया। इक़रारनामे में दो बड़ी भारी कमियाँ थीं—(१) उसने 'आक्रमण' (Aggression) की व्याख्या नहीं की थी और (२) उसमें यह बात बिलकुल

---

*Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 759. इन सन्धियों के परिणामस्वरूप फ्रान्स की अपनी सुरक्षा की कल्पना बड़ी विशद हो गई। अब तक तो उसका ध्येय केवल वार्साई की व्यवस्था की रक्षा करना ही था, परन्तु अब वह समस्त योरोपीय व्यवस्था का संरक्षक बन गया और पेरिस में हुई समस्त सन्धियों एवं व्यवस्थाओं का विरोध करने लगा। Carr : Internationl Relations between the Two World Wars, p. 42.

†Langsam: The World since 1914, pp. 176-178.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट नहीं की गई थी कि आक्रमण के विरुद्ध क्या कार्रवाई की जाएगी। दसवीं और सोलहवीं धाराओं के सम्बन्ध में, जिनमें इस प्रकार की कार्यवाही का वर्णन है, कई प्रस्ताव भी राष्ट्र-संघ की एसेम्बली में स्वीकार हो चुके थे जिनका सम्मिलित प्रभाव यह हुआ था कि संघ की आक्रमण के विरुद्ध कार्यवाही करने की क्षमता बहुत कम हो गई थी। कई जगह, विशेषकर इङ्गलैण्ड तथा उसकी डॉमिनियनों में, यह धारणा होती जा रही थी कि राष्ट्र-संघ के विधान की आक्रमण के विरुद्ध गारण्टी देने वाली व्यवस्था का कोई महत्व नहीं है, बल्कि वह ख़तरनाक है। अतः राष्ट्र-संघ से प्राप्त होने वाली सुरक्षा में राष्ट्रों का विश्वास आरम्भ से ही हट गया और वे अपनी तथा अपने मित्रों की शक्ति पर ही फिर से निर्भर रहने की बात सोचने लगे।

राष्ट्र-संघ को प्रभावकारी बनाने के प्रयत्न--

यह देखकर इङ्गलैण्ड के लॉर्ड रॉबर्ट सेसिल ने सङ्घ के समक्ष कुछ प्रस्ताव पेश किये (१९२२) जिन पर एक अन्तर्राष्ट्रीय कमिशन ने विचार करके 'पारस्परिक सहायता की सन्धि' (Treaty of Mutual Assistance) का एक मसविदा तैयार किया (१९२३) जिसकी प्रतियाँ संघ के सदस्यों को विचारार्थ भेजी गईं। इस सन्धि के द्वारा उन राज्यों को, जो एक निश्चित पैमाने पर अपने शस्त्रास्त्रों में कमी करने के लिये राज़ी थे, इक़रारनामे में दी हुई गारण्टी से अधिक प्रभावशाली गारण्टी देने का प्रस्ताव किया गया। इस गारण्टी का आधार प्रादेशिक था अर्थात् राष्ट्र-संघ के इक़रारनामे का भंग होने पर आक्रामक के विरुद्ध युद्ध करने का दायित्व उसी महाद्वीप के राज्यों पर रखा गया जिसमें इक़रारनामे का भंग हुआ था।† फ्रान्स ने उसे संघ की उपर्युक्त कमज़ोरियों को दूर करने का अच्छा साधन समझकर उसका समर्थन किया परन्तु कई सदस्यों ने उस पर आपत्तियाँ कीं और इङ्गलैण्ड तथा उसकी डॉमिनियनों ने तो उसे बिलकुल अस्वीकार कर दिया। १९२४ की एसेम्बली में इस प्रश्न पर फिर विचार हुआ और पुनः एक नया मसविदा (Geneva Protocol) तैयार किया गया जिसके अनुसार यह निर्धारित किया गया कि प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े का निर्णय समझौते (Conciliation) या माध्यस्थ्य (Arbitration) द्वारा हो। जो राज्य मध्यस्थ-निर्णय को न माने या झगड़े का शान्तिपूर्ण हल करने में बाधा डाले, वह आक्रमक समझा जाय और सन्धि पर हस्ताक्षर

* Gathorne Hardy : A Short History of International Affairs, pp. 67-69.

† Somervell : Between the Wars, p. 55.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करने वाला प्रत्येक राज्य उसके विरुद्ध इस रीति से कार्यवाही करे जो उसकी भौगोलिक स्थिति और शस्त्रास्त्र सम्बन्धी विशिष्ट स्थिति के अनुकूल हो।* अक्टूबर १९२४ में राष्ट्र-सङ्घ ने एक मत हो कर समस्त सदस्यों से इस सन्धि को स्वीकार कर लेने के लिए अनुरोध किया। कई राज्यों ने उसे स्वीकार कर लिया परन्तु इंगलैण्ड किसी ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के निर्णय को, जिसमें फ्रांस और उसके महाद्वीपीय अनुयायियों का प्राधान्य हो, मानने और उस पर अमल करवाने का दायित्व स्वीकार करने को तैयार नहीं था। उसने उसके विरुद्ध दो आपत्तियाँ की। (१) इससे इंगलैंड को अमेरिका से युद्ध में उलझ जाने की सम्भावना थी क्योंकि राष्ट्र-संघ से बाहर होने के कारण वह उसकी किसी मध्यस्थ-समिति के निर्णय की उपेक्षा कर सकता था और इस आधार पर आक्रामक घोषित किया जा सकता था। (२) इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि इंगलैण्ड को समस्त संसार में, यहाँ तक कि पूर्वी योरोप जैसे प्रदेशों में भी, जिनसे उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था, पुलिस का काम करना पड़ेगा। इन आपत्तियों के साथ उसने जनीवा प्रोटोकल को अस्वीकार कर दिया (१९२५)। फ्रांस चाहता था कि इंगलैण्ड इसे स्वीकार कर ले और अमेरिका को इस संधि से अलग करके उसकी प्रथम शिकायत को दूर करने के लिए तैयार था। परंतु दूसरी आपत्ति का कोई इलाज नहीं था। वास्तव में इस अस्वीकृति का मुख्य कारण ब्रिटिश डॉमीनियनों का विरोध था जो योरोप के झगड़ों में फंसना नहीं चाहती थीं।

लोकार्नो—

इस प्रकार राष्ट्र-संघ की सुरक्षा सम्बन्धी व्यवस्था की त्रुटियों को दूर करके अपनी सुरक्षा को अधिक सुनिश्चित बनाने के फ्रांस के प्रयत्न व्यर्थ गये। परंतु उसी वर्ष (१९२५), जैसा हम देख चुके हैं, फ्रांस और जर्मनी के सम्बन्ध ब्रियाँ और स्ट्रेसमेन के प्रयत्न के फल-स्वरूप कुछ सुधरे और लोकार्नो की संधियों के द्वारा योरोप के वातावरण में परिवर्तन हुआ और भविष्य में शांति कायम रख सकने की आशा का संचार हुआ। इससे पराजित और विजेता राष्ट्रों के बीच सामंजस्य स्थापित हो गया और इस घटना का युगान्तरकारी घटना की तरह स्वागत हुआ।

---

* Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 759.

§ Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, pp. 71-72.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्रियाँ-केलॉग-पेक्ट--

इसी आशावाद की लहर में अमेरिका के सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट केलॉग (Kellogg) ने ब्रियाँ के प्रस्ताव पर संसार के समस्त राष्ट्रों के सामने 'राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में युद्ध का प्रयोग त्याग देने' का इकरारनामा करने का प्रस्ताव रखा। सभी राज्यों ने उसे स्वीकार किया। २७ अगस्त १९२८ को पेरिस में १५ राज्यों ने इकरारनामे पर हस्ताक्षर किए और धीरे-धीरे अन्य राज्यों ने भी उसे स्वीकार कर लिया।

व्यर्थ आशा--

इस प्रकार की प्रतिज्ञा संसार के इतिहास में अभूतपूर्व थी। परन्तु यह एक पवित्र घोषणामात्र थी और उसका वास्तविक व्यावहारिक मूल्य कुछ नहीं था। इस सन्धि में ऐसी कोई बात नहीं थी जो किसी राज्य को आत्मरक्षा का बहाना लेकर युद्ध करने से रोक सकती। इसके अतिरिक्त कई राज्यों ने उस पर कुछ शर्तें लगाकर हस्ताक्षर किये थे।* इस प्रकार प्रतिज्ञा का पालन हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र की सद्भावना पर निर्भर था और प्रतिज्ञा भंग के लिए किसी प्रकार की दण्डात्मक कार्यवाही की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। उस समय के शंकापूर्ण वातावरण में न लोकार्नो की सन्धियाँ और न केलॉग-ब्रियाँ सन्धि की सुरक्षा की समस्या का समाधान कर सकी। लोकार्नो-सन्धि का फ़्रांस और जर्मनी दोनों भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते थे। फ़्रांस समझता था कि इस सन्धि के द्वारा जर्मनी ने वार्साई-सन्धि को (उसकी दण्डात्मक शर्तों सहित) पूर्णतया स्वीकार कर लिया था। जर्मनी को आशा थी कि इस सन्धि के फल-स्वरूप वार्साई-संधि में संशोधन किया जायगा। परन्तु दोनों ने समझने में भूल की। जर्मनों वार्साई सन्धि की उन समस्त शर्तों को, जो उनके प्रतिकूल थीं, रद्द कराने पर ज़ोर देता रहा। परन्तु इंगलैंड और इटली के समर्थन के विश्वास पर फ़्रांस जर्मनी की माँगों का विरोध करता रहा और उसने पौलेण्ड तथा चेकोस्लोवाकिया के साथ की हुई सैनिक-सन्धियों की पुनरावृत्ति करके अपनी स्थिति और दृढ़ कर ली। इतना ही नहीं, १९३१ में इटली से मिलकर उसने

*Ingram : Year of Crisis, p. 58. इस सन्धि से राष्ट्र-संघ का इकरारनामा और लोकार्नो-सन्धि दोनों खतरे में पड़ गई क्योंकि दोनों के अनुसार किसी विशेष परिस्थिति में विभिन्न राष्ट्रों पर युद्ध करने का दायित्व था। इंगलैंड ने इस कठिनाई की ओर केलॉग का ध्यान आकर्षित किया जिसके फलस्वरूप आत्मरक्षा के लिए युद्ध निषिद्ध नहीं रहा। इस योजना से युद्ध बन्द तो नहीं हुआ; उल्टे विधिपूर्वक युद्ध की घोषणा करने की प्रथा का धीरे-धीरे उल्लंघन होने लगा। Petrie : Diplomatic History, pp. 348-349.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जर्मनी को ऑस्ट्रिया से आर्थिक संयोग करने से भी रोका। इससे जर्मनी और फ्रान्स की विदेश-नीतियों के परस्पर विरोधी लक्ष्य स्पष्ट हो गये और लोकार्नो की सन्धि से जिस प्रकार की सुरक्षा की आशा थी उसकी व्यर्थता प्रमाणित हो गई। लोकार्नो सन्धि तो जीवित रही परन्तु लोकार्नो-भावना का अन्त हो गया और सुरक्षा का एकमात्र साधन राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों का संतुलन ही रह गया।*

निःशस्त्रीयकरण की समस्या

राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों में कमी करवाना राष्ट्र-संघ का कर्तव्य था। जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हंगरी और बल्गारिया की सेनाएँ जो शान्ति सन्धियों द्वारा ही बहुत कम कर दी गई थीं और यह आशा प्रगट की गई थी कि विजेता राष्ट्र भी अपने शस्त्रास्त्रों में कमी करेंगे। परन्तु, जैसा हम देख चुके हैं, निःशस्त्रीकरण का प्रश्न सुरक्षा के प्रश्न के साथ जुड़ा हुआ था और विभिन्न राष्ट्र पारस्परिक शंका और ईर्ष्या के कारण निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर बात करने में संकोच करते थे। प्रत्येक सरकार कहती थी और शायद विश्वास भी करती थी कि उसकी सब प्रकार की सम्मिलित सैन्य-शक्ति उतनी ही है, जितनी उसकी सुरक्षा के लिये आवश्यक है और इसलिए निःशस्त्रीकरण स्वयं उसे नहीं, वरन् उसके पड़ौसी को करना चाहिए जिसके पास आवश्यकता से अधिक शस्त्रास्त्र हैं।

वाशिंग्टन नाविक सम्मेलन—

शस्त्रास्त्रों की कमी करने का सर्वप्रथम प्रयत्न नाविक क्षेत्र में बड़े आशाप्रद ढंग से हुआ। नौसेना को सीमित करने का प्रस्ताव 'राष्ट्र-संघ' की ओर से नहीं वरन् अमेरिका के संयुक्त-राष्ट्र की तरफ से हुआ। महायुद्ध की समाप्ति के बाद संयुक्त-राष्ट्र संसार की दो सबसे बड़ी सामुद्रिक शक्तियों—इंगलैंड और जापान—के साथ सामुद्रिक जहाज़ बनाने की दौड़ में भाग लेना चाहता था। परंतु चूँकि यह स्पर्धा बड़ी खर्चीली थी, अतः उसे बुद्धिमानी इसी में दिखाई दी कि तीनों शक्तियाँ आपस में समझौता करके अपनी-अपनी नाविक शक्तियों को मर्यादित कर दें। इसके साथ ही वाशिंग्टन सरकार संसार को यह दिखलाने के लिए उत्सुक थी कि यद्यपि अमेरिका राष्ट्र-संघ में सम्मिलित न हो तो भी संसार में शांति बनाये रखने के उसके प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह भी यथाशक्ति प्रयत्न करने के लिए तैयार है।†

अमेरिका के नियंत्रण पर १९२१-२२ में वाशिंग्टन में नाविक शक्ति

---

*Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol, II, p. 762.

$Schevill : A History of Europe, p. 757-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को मर्यादित करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें संयुक्त राष्ट्र, इंगलैण्ड, जापान, फ्रान्स, इटली तथा कुछ अन्य राष्ट्र एकत्रित हुए।* इसमें लड़ाई के सभी प्रकार के जहाज़ों को सीमित करने का विचार हुआ परन्तु युद्ध के बड़े जहाज़ों—युद्ध के जहाज़ तथा युद्ध के क्रूज़र (Battle-Ships and Battle—Cruisers) को छोड़ अन्य श्रेणियों के विषय में कोई समझौता नहीं हो पाया। बड़े जहाजों के प्रश्न पर इतना ही निर्णय हुआ कि पाँचों बड़े राष्ट्र अपने टनेज (Tonnage) के वर्तमान अनुपात को दस वर्ष तक क़ायम रखें। यह अनुपात इस प्रकार था—इंगलैण्ड ५, संयुक्त राष्ट्र ५, जापान ३, फ्रान्स १.६७ और इटली १.६७। हल्के क्रूज़र, डिस्ट्रॉयर, पनडुब्बियों आदि के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हो पाया। संयुक्त राष्ट्र हल्के क्रूज़र को सीमित करना चाहता था। परन्तु इंगलैंड ने उसका विरोध किया। इंगलैंड युद्ध में पनडुब्बियों के प्रयोग का निषेध करना चाहता था, परन्तु फ्रान्स सहमत नहीं हुआ। यह सम्मेलन दस वर्ष के लिए लड़ाई के बड़े जहाजों पर होने वाले भारी खर्च को रोक सका, परन्तु अन्य प्रकार के जहाजों के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं होने का अर्थ यह था कि उनके सम्बन्ध में प्रतिस्पर्धा चलती रही और सुरक्षा की भावना बढ़ने की अपेक्षा कम हो गई।† इस समझौते में दो कठिनाइयाँ थी। वाशिंगटन सम्मेलन में फ्रान्स और इटली की नाविक शक्ति में समानता स्वीकार कर ली गई थी परन्तु फ्रान्स को इसमें आपत्ति थी। उसका कहना था कि इटली को तो केवल भूमध्यसागर में ही अपनी रक्षा करना है परन्तु स्वयं उसे भूमध्यसागर के अतिरिक्त उत्तरी तथा एटलांटिक महासागर के तट की भी रक्षा करना है। इस कारण वह चाहता था कि उसकी नाविक शक्ति इटली की शक्ति से अधिक हो। परन्तु इस विषय पर कोई समझौता नहीं हो पाया।$ दूसरी कठिनाई जापान के सम्बन्ध में थी। उसने संयुक्त राष्ट्र तथा इंगलैण्ड के दबाव के कारण अपने जहाज़ों में अधिक कमी स्वीकार कर ली थी और इसी प्रकार उसे चीन को शान्तुङ्ग प्रायद्वीप जो महायुद्ध के बाद उसको मिला था, वापस करने का वचन भी देना पड़ा था। जापान इसमें अपनी प्रतिष्ठा

---

*यह सम्मेलन नाविक निःशस्त्रीकरण के अतिरिक्त प्रशान्त महासागर तथा सुदूर पूर्व सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर भी विचार करने के लिए आमन्त्रित किया गया था। अतः इसमें चीन, हॉलैण्ड, बेल्जियम तथा पोर्तुगाल भी निमन्त्रित किये गये थे।

†Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 764.

$ Langsam : The World since 1914, p. 190.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की हानि समझता था और आगे चलकर इस समझौते को भंग करने का प्रयत्न उसके लिये स्वाभाविक था।*

जनेवा तथा लन्दन सम्मेलन--

इस सम्मेलन के बाद पाँचों राज्यों में नौ-सेना की बची हुई श्रेणियों को सीमित करने के सम्बन्ध में बातचीत चलती रही और १९२७ में जनेवा में इसी उद्देश्य से दूसरा सम्मेलन हुआ परन्तु क्रूज़रों के विषय में इंगलैण्ड और संयुक्त राष्ट्र में समझौता न हो सका और सम्मेलन विफल हो गया।† १९३० में लन्दन में तीसरा सम्मेलन हुआ परन्तु उसमें भी कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। वाशिंग्टन का समझौता १९३२ में समाप्त होता था। इस सम्मेलन में उसकी अवधि ५ वर्ष के लिये और बढ़ा दी गई। इंगलैण्ड और संयुक्त राष्ट्र ने आपस में एक पूरक समझौता भी किया जिसके द्वारा बिटेन अधिक हल्के क्रूज़र और अमेरिका का अधिक बड़े क्रूज़र बनाने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। जापान ने बड़ी अनिच्छा से और इस शर्त पर इस व्यवस्था को स्वीकार किया कि पनडुब्बियों के सम्बन्ध में उसे अन्य राष्ट्रों के साथ बराबर कर दिया जाय और उसके क्रूज़रों का अनुपात बढ़ा दिया जाय। परन्तु इटली और फ्रांस ने इस समझौते को स्वीकार नहीं किया और यह नया वाशिंग्टन समझौता शेष तीनों राज्यों के बीच ही रहा। परंतु यह तीनों राज्यों का समझौता भी एक विशेष धारा के कारण कमज़ोर पड़ गया जिसके अनुसार हस्ताक्षर न करने वाले राज्यों को यह अधिकार मिल गया कि उन्हें किसी हस्ताक्षर न करने वाली शक्ति के नाविक नव-निर्माण से अपनी सुरक्षा को ख़तरा मालूम हो तो वे किसी भी श्रेणी के जहाज़ों की संख्या बढ़ा सकते हैं।§

असफलता--

ये सभी समझौते अल्पजीवी रहे। १९३४ में जापान ने संयुक्त राष्ट्र और इङ्गलैण्ड को सूचना दी कि यदि उसे उन दोनों के साथ समुद्री शक्ति में बराबरी का अधिकार नहीं मिला तो अवधि समाप्त होने के बाद वह उन समझौतों में से किसी को भी आगे के लिये नहीं बढ़ायगा। संयुक्त राष्ट्र और इङ्गलैण्ड इस शर्त को मानने के लिये राज़ी नहीं हुए और १९३७ में जापान ने इस मामले में

*Carr : International Relations between the Two World Wars, pp. 21-22.

†Slosson : Europe since 1870, p. 517.

§Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe. Vol. II, p. 764.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्व स्वतन्त्रता ग्रहण कर ली। इसके बाद भी विभिन्न राज्यों में, विशेष कर संयुक्त राष्ट्र और इंगलैण्ड के बीच, कुछ बातचीत चलती रही परन्तु अब उसका कोई महत्व नहीं रहा। इस समय तक प्रत्येक राष्ट्र फिर से अपनी सुरक्षा को इतना महत्व देने लग गया था कि वह सामान्य कल्याण के विचार से किसी प्रकार की मर्यादाएँ स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था। यह स्थिति एक कारण से और भी अधिक खराब हो गई। अभी तक जर्मनी और रूस की नाविक सेना नगण्य थी परन्तु १९३५ से वे भी नाविक प्रतियोगिता में कूद पड़े। अब समुद्री तैयारी पर इतना अधिक खर्च होने लगा जितना पहले कभी नहीं हुआ था।* नाविक समझौते व्यर्थ गये और उनसे सुरक्षा प्राप्त न हो सकी।

स्थल पर निःशस्त्रीकरण

कठिनाइयाँ—

स्थल-सेना में कमी करने के प्रयत्नों में तो उतनी भी सफलता न मिली जितनी नाविक निःशस्त्रीकरण में प्राप्त हुई थी। इस दिशा में प्रयत्न ज़रा देर से और राष्ट्र-संघ की तरफ़ से आरम्भ हुआ। १९२५ में संघ ने इस समस्या का अध्ययन करने और सिफ़ारिशों का मसविदा तैयार करने के लिये एक प्रारम्भिक कमिशन नियुक्त किया ताकि उस मसविदे पर एक अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में विचार हो सके। इस कमिशन को नाविक निःशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार करने के लिये नहीं कहा गया क्योंकि, जैसा हम देख चुके हैं, इस पर संसार की नाविक शक्तियों ने अपनी ओर से पहले ही विचार शुरू कर दिया था। कमिशन को शीघ्र ही मालूम हो गया कि निःशस्त्रीकरण की समस्या इतनी पेचीदा और उलझी हुई थी कि उसके विषय में कुछ भी निश्चित सिफ़ारिशें करना असम्भव था। यह मालूम कर लेना तो सरल था कि किस राज्य के पास कितनी सेना और कितने शस्त्रास्त्र हैं परन्तु स्थायी सेना के अतिरिक्त राज्यों के पास सम्भावित सेनाएँ भी होती हैं जिनका पता चलाना बड़ा कठिन था। जिस देश में अनिवार्य सैनिक शिक्षा और अनिवार्य सैनिक सेवा हो वहाँ बात की बात में लाखों सैनिक रणक्षेत्र में पहुँचाये जा सकते हैं। सवारी ले जाने वाले और माल ढोने वाले हवाई जहाज़ सरलता से लड़ाई के जहाज़ों में परिवर्तित किये जा सकते हैं। कितने ही प्रकार के कारखानों का बड़ा सरलता से शस्त्रास्त्र-निर्माण के लिये प्रयोग किया जा सकता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये किस राज्य के पास कितनी सेना होनी चाहिये इसका निर्णय भी सरल नहीं था। कई राज्य स्थिति को यथावत् बनाये रखना चाहते थे और कई उसमें

*Schevill : A History of Europe, p. 759.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परिवर्तन करना चाहते थे। ऐसे भिन्न उद्देश्यों वाले राज्यों की सैनिक आवश्यकताएँ भिन्न थीं और उनमें सामंजस्य स्थापित करना कठिन था।*

इन सभी कठिनाइयों के कारण कमिशन को मसविदा तैयार करने में पूरे ६ वर्ष लग गये और तिस पर भी वह कुछ सिद्धान्तों का ही निरूपण कर सका। उसमें यह सिफारिश की गई कि प्रत्येक राज्य के लिये यह निर्णय कर दिया जाय कि उसकी थल, जल और नभ-सेनाओं में अधिक से अधिक कितने आदमी हों, विभिन्न राज्य सेना की सामग्री पर अधिक से अधिक कितना खर्च करें, युद्ध में ज़हरीली गैसों तथा रोग के कीटाणुओं का प्रयोग न किया जाय और एक स्थायी कमिशन नियुक्त किया जाय जो निःशस्त्रीकरण की प्रगति के विषय में जानकारी करता रहे और समय-समय पर रिपोर्ट करता रहे। एक तो वैसे ही इस मसविदे में कोई खास बात नहीं थी, फिर एक धारा उसमें रख कर कमिशन ने उसका जो कुछ भी मूल्य था वह भी नष्ट कर दिया। उस धारा के अनुसार समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले राज्य को यह अधिकार दिया गया कि यदि उसे परिस्थिति में परिवर्तन हो जाने से अपनी सुरक्षा के लिये खतरा दिखाई दे तो वह युद्धकालीन शर्तों को छोड़कर अन्य शर्तों को अस्थायी रूप से स्थगित कर सकेगा।

जनेवा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन (१९३२)—

इस मसविदे पर विचार करने के लिये फ़र्वरी १९३२ में जनेवा में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ जिसमें राष्ट्र-संघ के समस्त सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि एकत्र हुए और उनके साथ ही संयुक्त राष्ट्र तथा रूस के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। जब इस जटिल समस्या का कुछ चुने हुए विशेषज्ञ ही समाधान नहीं ढूँढ़ सके थे तो इतने बड़े सम्मेलन के लिये अनेक विवादग्रस्त मामलों का सन्तोषप्रद हल ढूँढ़ निकालना असम्भव था। शीघ्र ही विभिन्न राज्यों के विभिन्न दृष्टिकोण सामने आये और सम्मेलन में निरर्थक वादविवाद होने लगा। आरम्भ से ही फ्रान्स और जर्मनी के दृष्टिकोण एक दूसरे के बिलकुल विपरीत थे। फ्रान्स का सर्वोपरि लक्ष्य सुरक्षा था जिसका अर्थ था शस्त्रास्त्र में उसकी श्रेष्ठता। आरम्भ से ही उसका कहना था कि सेना और शस्त्रास्त्रों में कमी तभी की जा सकती है जब कि राष्ट्र-संघ एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना का संगठन करे जो विभिन्न राज्यों की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी ले सके।† ऐसी सेना के अभाव में

*Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, p. 765.

†Langsam : The World since 1914, p. 192.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि उसकी सेना कम करके जर्मनी की सेना के बराबर कर दी जाती है तो फ्रांस की सुरक्षा खतरे में पड़ जायगी। जर्मनी वार्साई-सन्धि द्वारा अरक्षित बना दिये जाने की शिकायत करके फ्रांस के साथ बराबरी चाहता था और कहता था कि यदि फ्रांस की सैन्य शक्ति कम नहीं की गई तो वह अरक्षित रह जायगा।* उसने इस बात पर आग्रह किया कि या तो मित्र राष्ट्र अपनी सेना कम करके जर्मनी के स्तर पर आ जाय या जर्मनी को उनके स्तर तक पहुँचने की अनुमति दी जाय। इस प्रधान मतभेद के अतिरिक्त अन्य कई बातों पर भी मतभेद था। उदाहरणार्थ; इंगलैण्ड का प्रस्ताव था कि जो शस्त्रास्त्र आक्रमण करने के लिए प्रयोग में आते हैं वे कम किये जाँय परन्तु जो केवल आत्मरक्षा के काम में आते हैं उनके सम्बन्ध में कोई मर्यादा निश्चित न की जाय। परंतु विभिन्न राज्य इस बात पर एकमत नहीं हो सके कि कौन से शस्त्र आक्रमण के लिये और कौन से आत्मरक्षा के लिये समझे जाँय। इंगलैण्ड और संयुक्तराष्ट्र लड़ाई के बड़े जहाज़ों को रक्षा करने वाले तथा पनडुब्बियों को आक्रमण करने वाले हथियार कहते थे परंतु अन्य राज्य इस वर्गीकरण को मानने को तैयार नहीं हुए।‡ अंत में, इसका निर्णय करने के लिए विशेषज्ञों की उप-समितियाँ नियुक्त की गई परंतु वे भी कुछ निश्चत न कर सकीं। महीने पर महीने बीतते चले गये और कुछ निर्णय न हो पाया। इसी बीच में जर्मनी में हिटलर सत्तारूढ़ हो गया था। सम्मेलन में अपनी उचित माँग पर विचार न होते देख कर उसने जर्मनी को सम्मेलन से अलग कर लिया (अक्टूबर १९३३)$ और घोषणा की कि अब जर्मनी वार्साई-सन्धि के प्रतिबन्धों का भंग करके अपना पुनः शस्त्रीकरण करेगा। इसके बाद कई महीनों तक सम्मेलन चलता रहा परंतु जर्मनी के अलग हो जाने से किसी प्रश्न पर विचार करना

---

* Schevill : A History of Europe, p. 757.

‡ Ingram : Years of Crisis, p. 63.

जुलाई १९३२ में जर्मनी ने स्पष्ट कर दिया था कि आगे वह सम्मेलन में तभी भाग ले सकेगा जबकि समस्त राष्ट्रों के अधिकारों की समानता का सिद्धान्त स्पष्टतया स्वीकार कर लिया जायगा। जब उसी वर्ष अक्टूबर में सम्मेलन की बैठक हुई तो जर्मनी उसमें शामिल नहीं हुआ। इस पर इंगलैण्ड, फ्रान्स और इटली के प्रस्ताव पर सम्मेलन ने 'सभी राष्ट्रों के लिए सुरक्षा सुलभ करने वाली व्यवस्था में अधिकारों की समानता' का जर्मनी का दावा स्वीकार कर लिया और इस प्रकार जर्मनी को अन्य राष्ट्रों के साथ समानता का पद प्राप्त हो गया। Carr : International Relations between the Two World Wars, p. 187. यह निश्चय हुआ कि जर्मनी अपना पुनः शस्त्रीकरण करके धीरे-धीरे अन्य महान् राष्ट्रों की बराबरी पर आ जाय। Strong : Dynamic Europe, p. 394.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यर्थ हो गया। अन्त में १९३४ की ग्रीष्म-ऋतु तक सम्मेलन की विफलता बिलकुल स्पष्ट हो गई।

अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता की ओर—

इस प्रकार स्थल सेना में कमी करने के सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए। जनेवा सम्मेलन की विफलता के साथ वाशिंगटन तथा लन्दन के नाविक समझौतों का भी भंग हो चुका था। यह स्पष्ट हो गया कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों द्वारा सुरक्षा की समस्या का हल नहीं हो सकता था। यह पद्धति पूर्णतया असफल रही, असफल ही नहीं हानि कारक भी हुई। विभिन्न राज्यों की सैन्य शक्तियों में तो इससे जरा भी कमी नहीं हुई, उल्टे उसके कारण जर्मनी पर पहले से लगी हुई मर्यादा नष्ट हो गई, बड़े-छोटे सभी राष्ट्रों ने अपनी सेना का विस्तार आरम्भ कर दिया और संसार उसी अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता की स्थिति में पहुँच गया जिसमें योरोप प्रथम महायुद्ध के था।*

राष्ट्र-संघ की असफलता--

इस प्रकार राष्ट्र-संघ से संसार के शस्त्रास्त्रों में कमी करवा कर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने की जो आशा थी वह भंग हो गई और राष्ट्र-संघ, कुछ थोड़ी सी बातों को छोड़ कर, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, अपने प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति में बिलकुल असफल रहा। इस असफलता के कई कारण थे।

असफलता के कारण—सार्वभौमिकता में कमी—

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, राष्ट्र-संघ से सामान्य सुरक्षा तथा शान्तिपूर्ण सहयोगयुक्त नवीन विश्व-व्यवस्था की स्थापना की आशा थी। यह स्पष्ट था कि इस महान् उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती थी जबकि उसमें संसार के समस्त, कम से कम समस्त बड़े, राज्य सम्मिलित होते। आरम्भ में उसमें ४२ राज्य शामिल हुए और १९३५ तक यह संख्या ६२ तक पहुँच गई थी। परन्तु आरम्भ से ही उसमें सबसे बड़ी कमी तो यह रही स्वयं संयुक्त-राष्ट्र, जिसका राष्ट्रपति इस महान् संस्था का जन्मदाता था, उसमें सम्मिलित नहीं हुआ। इसका अर्थ यह था कि वह एक ऐसे महान् राष्ट्र के नैतिक समर्थन एवं सक्रिय सहयोग से वंचित हो गया जो उसके सामने आने वाली अनेकों विकट समस्याओं पर निष्पक्षतापूर्वक

*Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe. Vol, II, p. 767.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचार कर सकता था और अपना प्रभाव डाल कर उनका सन्तोषजनक हल निकालने में सहायक हो सकता था। संयुक्त राष्ट्र के अतिरिक्त पराजित राष्ट्रों-जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी तथा बल्गारिया—उस समय तक के लिये अलग रखा गया जब तक कि वे अपने सन्धि-जन्य दायित्वों को पूर्ण करके अपनी विश्वासपात्रता का प्रमाण न दे दें। रूस के अधिनायकतंत्र से संघ के अनेक सदस्य नाराज़ थे और साथ ही इस बात में उन्हें संदेह भी था कि रूस में सहयोग की इच्छा या सामर्थ्य थी भी या नहीं। स्वयं रूस भी राष्ट्र-संघ को पूँजीवाद का संरक्षक समझ कर उससे डरता था या घृणा करता था।* वह चौदह वर्ष तक बाहर रहा और १९३४ तक राष्ट्र-संघ का सदस्य बना। इसके पहले ही जर्मनी राष्ट्र-संघ का सदस्य बन चुका था (१९२६) और उसकी सदस्यता छोड़ भी चुका था (१९३३)। उसके साथ जापान भी राष्ट्र-संघ से सम्बन्ध विच्छेद कर चुका था और १९३६ में इटली भी निकल गया था। इटली के बहिष्कार के बाद राष्ट्र संघ में केवल तीन बड़े राज्य—इंगलैण्ड, फ्रांस और रूस—रह गये थे। जापान, जर्मनी और इटली के अलग हो जाने के बाद राष्ट्र-संघ एक प्रकार से ऐसे राज्यों के विरुद्ध जो शांति भंग पर उतारू थे शांतिप्रिय राज्यों की एक संस्था मात्र रह गया था।† उसका सार्वभौमिक रूप (जो वास्तव में कभी नहीं था) बिलकुल नष्ट हो गया था। उस समय भी उसके सदस्यों की सख्या ५० से अधिक थी परन्तु उनमें से अधिकांश छोटे-छोटे राज्य थे और उसके शत्रु प्रायः कहा करते थे कि राष्ट्र-संघ इंगलैण्ड और फ्रान्स के हितों की रक्षा के लिये एक एग्लो-फ्रेंच संस्था मात्र था। इस कथन में कोई विशेष अत्युक्ति भी नहीं थी। स्पष्ट है कि जब बड़े-बड़े राज्यों का सहयोग प्राप्त नहीं था तो उससे सफलता की आशा करना व्यर्थ था।

अन्तर्राष्ट्रीय सेना का अभाव—

संघ के उद्देश्यों के विरुद्ध कार्यवाही करने वाले राज्यों पर दबाव डालने के लिये उसके पास कोई सेना भी नहीं थी। विग्रही राज्य के विरुद्ध कार्य करने के लिये वह केवल सदस्य राज्यों से सिफारिश कर सकता था और उसके आदेश का पालन करना या न करना उनकी इच्छा पर निर्भर था। यदि सदस्य राज्य सहयोग करने के लिए तैयार नहीं हुए, जैसा प्रायः हुआ तो राष्ट्र-संघ

---

*Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol II, p. 754.

†Strong : Dynamic Europe, p. 397.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ नहीं कर सकता था।* इसी बात को हम दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि प्रभुता राष्ट्र संघ में नहीं थी, वह प्रत्येक सदस्य राज्य में अक्षुण्ण बनी हुई थी।†

असंगत सिद्धान्तों का सम्मिश्रण—

संघ के निर्माताओं ने वास्तव में दो असंगत सिद्धान्तों—राज्य की पूर्ण प्रभुता के सिद्धान्त और सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त—का सम्मिश्रण किया था। सामूहिक सुरक्षा के लिये यह आवश्यक था कि प्रत्येक सदस्य राज्य पर राष्ट्र-संघ का निर्णय बन्धनकारी हो। परन्तु यह सम्भव नहीं था क्योंकि प्रत्येक सदस्य राज्य पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न था और अन्तिम निर्णय उसी के हाथों में था। इन परस्पर विरोधी सिद्धान्तों में से कोई एक सिद्धान्त ही प्रधान रह सकता था। सामूहिक सुरक्षा को प्रभुत्व के सिद्धान्त के सामने दबना पड़ा। प्रभुत्व के सिद्धान्त को तो कोई छोड़ना नहीं चाहता था परन्तु कई राष्ट्र, मुख्यकर फ़्रान्स और उसके मित्र, सामूहिक सुरक्षा के लिये राष्ट्र-संघ के अधिकार में सेना रखना चाहते थे। इसके विपरीत इङ्गलैण्ड और उसके डॉमिनियनों की धारणा थी कि वास्तविक सुरक्षा संसार के विभिन्न राज्यों की सद्भावना और संयम से ही प्राप्त हो सकती है। उनके विचार में राष्ट्र-संघ का काम दमन नहीं, सहयोग

---

* एक दृष्टि से यह ठीक ही था कि संघ के पास कोई सेना नहीं थी नहीं तो उसका प्रयोग आरम्भ में अवश्य ही विजेता राष्ट्रों के स्वार्थसाधन में होता। फ़्रान्स चाहता था कि संघ के पास सेना हो और वह उसका प्रयोग उस राज्य (अर्थात् जर्मनी) के विरुद्ध करना चाहता था जो वार्साई-सन्धि के संशोधन की माँग करता था। सघ में सदा ही वार्साई-गुट का प्राधान्य रहा Jackson : The Between-War World, p. 430.

† एक लेखक ने राष्ट्र-संघ के इक़रारनामे में दो कमियाँ बतलाई। (१) वह इस विश्वास पर आधारित था कि एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्रों की राय का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। यह विश्वास ग़लत था। (२) सामूहिक सुरक्षा के लिए सैन्य सहायता का कर्तव्य प्रत्येक राष्ट्र की इच्छा पर छोड़ देना भी ग़लत था क्योंकि इसके तीन अनिष्टकारी परिणाम हुए—(अ) इस व्यवस्था से यह आवश्यक हो गया कि प्रत्येक राज्य के पास, शान्ति भंग करने के लिए तैयार राज्य के पास भी, सेना हो, (आ) इससे सामूहिक सुरक्षा और निःशस्त्रीकरण की नीतियों में संघर्ष उत्पन्न हुआ। यदि इंगलैण्ड, फ़्रान्स जैसे बड़े राष्ट्र अपनी सेना को न्यूनतम स्तर पर पहुँचा देते तो वे राष्ट्र-संघ को सामूहिक सुरक्षा के कार्य में सहायता देने के योग्य नहीं रहते, और (इ) इसमें न्याय (राष्ट्र-संघ) के दावों तथा राज्यों की नीतियों में भी संघर्ष उत्पन्न हुआ। किसी भी राज्य से यह आशा करना व्यर्थ था कि वह अपनी सेना ऐसे निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए देगा जो उसके हितों के विरुद्ध हो या जिसके द्वारा उसे ऐसे युद्ध में शामिल होना पड़े जिसे जनता न चाहती हो। Beveridge : The Price of Peace, pp. 24-25.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को प्रोत्साहन देना, अपने सदस्य राष्ट्रों को परामर्श देना तथा उन्हें उचित युक्तिसंगत नीतियों का अवलम्बन करने के लिये प्रोत्साहित करना था।*

सदस्य राज्यों का असहयोग—

अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य-शक्ति के अभाव में राष्ट्र-संघ के पास विग्रही राज्य पर दबाव डालने का एकमात्र साधन 'आर्थिक प्रतिबन्ध' लगाना और आवश्यकता पड़ने पर संघ के सदस्य राज्यों को उसके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने की सिफ़ारिश करना था। संघ की सिफ़ारिशों पर पूरी तरह से अमल करना प्रत्येक सदस्य राज्य का कर्त्तव्य था परन्तु वे अपने दायित्वों को निभाने के लिए तैयार नहीं थे। आर्थिक प्रतिबन्ध विग्रही राज्य का दमन करने में पूर्णतया सफल हो सकते थे परन्तु केवल उसी समय जब कि संसार के समस्त राज्य प्रतिबन्ध लगाने में शामिल हों। एक तो वैसे ही संघ में संसार के सभी राज्य कभी नहीं रहे और जो थे भी वे सचाई के साथ सहयोग करने के लिये तैयार नहीं हुए। जब इटली ने एबिसीनिया पर आक्रमण किया तो राष्ट्र-संघ ने उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये। ५० राष्ट्रों ने इसका समर्थन किया और सम्भवतः वे उसके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही का भी समर्थन करते। आर्थिक प्रतिबन्ध तो उसके विरुद्ध लगाये गये परन्तु सबसे महत्वपूर्ण तेल का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया क्योंकि मुसोलिनी ने स्पष्ट कह दिया था कि तेल के प्रतिबन्ध का अर्थ युद्ध की घोषणा होगा। इङ्गलैण्ड, जो मुख्य कर प्रतिबन्धों पर ज़ोर दे रहा था, युद्ध के लिए तैयार नहीं था क्योंकि उसे भय था कि अन्य राज्य सहयोग नहीं करेंगे। सैनिक कार्यवाही सामूहिक रज़ामन्दी के बिना नहीं हो सकती थी और सामूहिक रज़ामन्दी उपलब्ध नहीं हो सकती थी क्योंकि महान् शक्तियों में से कोई भी शक्ति कोरे सिद्धान्त के लिये इटली से युद्ध करना नहीं चाहती थी। युद्ध का ख़तरा उठाने में संकोच करने में विभिन्न सरकारों का अधिक दोष भी नहीं था क्योंकि कोई भी सरकार, विशेषकर प्रजातन्त्रीय देशों की सरकार, जनमत के समर्थन के बिना ऐसा कोई क़दम नहीं उठा सकती जिससे युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना हो। उस समय सरकार चुप रहना ही पसन्द करती थी।†

फ्रान्स की नीति—

राष्ट्र-संघ की असफलता का एक मुख्य कारण—तात्कालिक दृष्टि से निर्णायक कारण—फ्रान्स की नीति था।§ वैसे तो राष्ट्र-संघ का समर्थन करना

---

* Somervell : Between the Wars, pp. 54-55.

† Carr : The Twenty Years' Crisis, 1919-1939, p. 22.

§ Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, p. 340.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
फ्रांस के हित में हो था परंतु ऐन मौके पर उसका रुख उदासीन और निषेधात्मक हो गया। जैसा हम देख चुके हैं, बात यह थी कि उसे संघ की ओर से सुरक्षा की अधिक आशा नहीं रही थी और उसने इटली से संधि कर ली थी जिससे उत्तरी अफ्रिका में उसे औपनिवेशिक झगड़ों तथा इटली की तरफ से अपनी सीमा सम्बन्धी चिंता से मुक्ति प्राप्त हो चुकी थी। इटली के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करके वह उसे नाराज़ करना और उसे जर्मनी की बाहों में डाल देना नहीं चाहता था। वह इंगलैण्ड को भी नाराज़ नहीं करना चाहता था क्योंकि जर्मनी की ओर से उसे जो भय था उसका मुकाबला करने में उसे इंगलैण्ड की सहायता की आवश्यकता थी। इन बातों के साथ ही वह राष्ट्र-संघ के प्रति अपने दायित्वों से भी खुल्लमखुल्ला इन्कार नहीं कर सकता था। उसकी स्थिति सांप-छछूंदर वाली हो रही थी और ऐसी जटिल परिस्थिति में वह इटली के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही को रोककर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहा तथा उसके साथ ही प्रतिबन्धों का समर्थन करने में इंगलैण्ड का साथ देकर उसकी सद्भावना को बनाये रखने की भी कोशिश करता रहा। इस प्रकार इंगलैण्ड व फ्रान्स में पूर्ण सहयोग नहीं हुआ और सक्रिय विरोध के अभाव में इटली ने संघ को ठुकरा कर उसे वह घातक चोट पहुँचाई जिसने अन्त में उसे समाप्त ही कर दिया।

वार्साई की सन्धि से सम्बन्ध—

राष्ट्र-संघ की निर्बलता का एक कारण यह भी था कि उसका इक़रारनामा (Covenant) विभिन्न शांति-संधियों का अभिन्न अंग था और उन सन्धियां का पालन करवाना उसका कर्तव्य था। इस प्रकार अन्यायपूर्ण संधियों का संरक्षक होने के कारण वह आरम्भ से ही बदनाम रहा और पराजित राष्ट्रों के दमन के लिए विजेता राष्ट्रों का एक शस्त्रमात्र समझा जाने लगा। इस संदेह के लिए कारण भी था क्योंकि आरम्भ में पराजित राष्ट्र उससे अलग रखे गये थे। इन संधियों से सम्बद्ध होने के कारण से ही संयुक्त-राष्ट्र उसमें शामिल नहीं हुआ क्योंकि वह योरोप के झगड़ों में पड़ना नहीं चाहता था। इस प्रकार जिस ढंग से उसका जन्म हुआ उसके कारण आरम्भ से ही उसमें निर्बलता आ गई।

राष्ट्रीय भावना की प्रधानता—

वास्तव में बात यह थी कि राष्ट्र-संघ ऐसे आदर्श पर आधारित था जिसके लिए संसार अभी तक तैयार नहीं हो पाया है। उसका आदर्श था विश्वबन्धुत्व जो विभिन्न राष्ट्रों से राष्ट्रीय स्वार्थों से ऊपर उठकर मानव समाज के हितों पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज़ोर देकर परस्पर सहयोग की अपेक्षा करता है। प्रथम महायुद्ध उत्कट राष्ट्रीयता के कारण हुआ था और विभिन्न राष्ट्र उसके घातक परिणामों को देख चुके थे, फिर भी कोई राष्ट्र उसके परित्याग के लिए तैयार नहीं था। महायुद्ध के बाद भी राष्ट्रीयता की भावना उतनी ही अधिक उत्कट और संकुचित बनी रही जितनी उसके पहले थी। जब कभी राष्ट्रीय हित और राष्ट्र-संघ के आदर्श में संघर्ष हुआ तभी किसी भी राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श और दायित्वों को ठुकराने में लेशमात्र भी संकोच नहीं हुआ। राष्ट्र-संघ की स्थापना इस आशा से हुई थी कि विभिन्न राष्ट्र अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विचार-विनिमय से काम लेंगे और सेना का प्रयोग छोड़ देंगे। यह आशा अत्यधिक थी और वह पूरी नहीं हुई यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में मनुष्य अभी भौतिक उन्नति से बहुत पीछे है।

D2
45-b

पाठ्य ग्रन्थ

1. Barbara Ward : Italian Foreign Policy, Oxford, 1941.
2. Barbara Ward : Russian Foreign Policy, Oxford, 1940.
3. Beveridge, Sir William : The Price of Peace, London, 1945.
4. Brett : British History, London, 1945.
5. Brogan : The Development of Modern France, London, 1945.
6. Carr : International Relations between the Two World Wars, London, 1950.
7. Carter and Mears : A History of Britain, Oxford, 1937.
8. Cyril Falls : Was Germany defeated in 1918 ?, Oxford, 1942.
9. David Thomson : French Foreign Policy, Oxford, 1944.
10. Dhar : Europe between Two Wars, Madras, 1951.
11. Erckner : Hitler's Conspiracy against Peace, London, 1937.
12. Falsifiers of History (Historical Survey), Moscow, 1948.
13. Fisher : A History of Europe, London, 1946.
14. Fisher and Others : The Background and Issues of the War, Oxford, 1940.
15. Gathorne-Hardy : A Short History of International Affairs, 1920-1939, Oxford, 1950.
16. Goering, Hermann : Germany Reborn, London, 1934.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

17. Grant and Temperley : Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries, London, 1950.
18. Hayes : A Political and Cultural History of Modern Europe, Vol. II, New York, 1932.
19. Hayes and Cole : A History of Europe, Vol. II, New York, 1949.
20. Hazen : Modern European History, New York, 1938.
21. Hirendranath Mukherji and others : The Land of the Soviets, Calcutta, 1941.
22. Hilter : Mein Kampf (translated by James Murphy), London, 1942.
23. Ingram : Years of Crisis, An Outline of International History, London, 1946.
24. Jackson : The Between-War World, London, 1947.
25. Keith : The Causes of the War, London, 1940.
26. Ketelbey : A History of Modern Times, London, 1951.
27. Keynes : The Economic Consequences of the Peace, London, 1924.
28. Langsam : The World since 1914, New York, 1947.
29. Lipson : Europe in the 19th and 20th Centuries, London, 1949.
30. Marriott : A Short History of France, London, 1942.
31. Marriott : Europe and Beyond, London, 1943.
32. Maxwell : International Relations, New York, 1938.
33. Muir : A Short History of the British Commonwealth, Vol. II, London, 1934.
34. Norman Hillson : I speak of Germany, London, 1937.
35. Petrie : Diplomatic History, 1713-1933, London, 1946.
36. Schevill : A History of Europe, New York, 1946.
37. Schuman : International Politics, New York, 1948.
38. Slosson : Europe since 1870, London, 1935.
39. Somervell : Between the Wars, London, 1948.
40. Strong : Dynamic Europe, London, 1945.
41. Vernadsky : A History of Russia, Philadelphia, 1944.
42. Churchill : The Second World War, Vol. I, London, 1950.
43. Woodward : The Origins of the War, Oxford, 1940.

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh